

## अनुक्रम

### जीवन

तो फिर विपथन ही सही... **भानु भारती** 1

### शताब्दी

उत्पीड़ित और अपमानित लोगों का संसार **मोहम्मद मसूद** 17

### लेख

प्राचीन भारत में शिल्पियों की स्थिति **रमानाथ मिश्र** 31 / सामाजिक पदानुक्रम का प्रत्यंतरण **अवधेश मिश्र** 40

### कहानियां

मिनाल पार्क और तीन बूढ़े **वंदना शुक्ला** 54/ ए घटरू ! ए घटरू ! कहनी कहो न... **शिवेन्द्र** 66

### विशेष

अपनी अपनी आधुनिकता **हरबंस मुखिया** 82

### कविताएं

आठ कविताएं **विष्णु नागर** 93 / कविताएं **बद्री नारायण** 98/ कविताएं **प्रकाश** 103 / हलफनामा : कविता के दक्खिन टोले से **अशोक कुमार पाण्डेय** 107/ कविताएं **अपर्णा मनोज** 112 / तीन कविताएं **अविनाश मिश्र** 115

### आत्मकथा

मणिकर्णिका-II **डॉ. तुलसीराम** 122

### वृत्तांत

अर्थात् औरों की कथा II **अरुण कमल** 146

### उपन्यास

बखेड़ापुर **हरे प्रकाश उपाध्याय** 155

### समीक्षाएं

निज लय का अनुपम गद्य **पंकज पराशर** 234 / ब्यंजना शक्ति का नया रूप **अजय वर्मा** 237 / भूमंडलीकरण के दौर में आधुनिकता **अरुण होता** 242 / समय की सचाइयां तलाशता साहित्य **बिपिन तिवारी** 247 / कविता की नाउम्मीदी के खिलाफ **मदन कश्यप** 256 / तो जीवन कितना वृहत्तर हो जायेगा **अनिल त्रिपाठी** 259 / काव्य चित्त का परिष्कार और विस्तार **जितेन्द्र श्रीवास्तव** 262

# तो फिर विपथन ही सही...

भानु भारती

आधुनिक रंगमंच के अग्रणी निर्देशकों में से एक हैं भानु भारती। गहरी सृजनात्मकता और प्रस्तुति के क्षेत्र में साहसपूर्ण संधान के कारण भारतीय रंगकर्म की दुनिया में उन्हें विरल सम्मान हासिल है। हमारे विशेष आग्रह पर लिखा गया उनका यह गद्य एक तरफ इस रंग निर्देशक की निर्मित के सूत्र देता है तो दूसरी तरफ यहां सत्तर के बाद का नाट्य परिदृश्य सजीव हो रहा है।

**लोग** मुझसे पूछते हैं कि मैं क्या करता हूं, और जब मैं जवाब में कहता हूं ‘रंगकर्म’ यानि ‘थियेटर’ तो यकायक अचकचा कर चुप हो जाते हैं। लेकिन कुछ हिम्मत बटोर कर कह ही देते हैं “वह तो आप शौक के लिए करते होंगे, आपका ‘प्रोफेशन’ तो कुछ और होगा।”

यह सच है कि हमारे देश में कलाकर्म को आज भी ‘प्रोफेशन’ के रूप में नहीं देखा जाता, क्योंकि आजादी के 65 वर्षों बाद भी ऐसी व्यवस्था विकसित नहीं हुई है कि आप कला कर्म से इस देश में रोजी रोटी कमा सकें। और फिर रंगमंच की स्थिति तो ज्यादा दूभर है, क्योंकि रंगमंच एकाकी नहीं सामूहिक कर्म है। इसमें आपको केवल अपनी ही नहीं, बल्कि आपके साथ जुड़े और भी कई लोगों की रोजी रोटी की चिन्ता करनी होती है। यही कारण है कि हमारे यहां रंगकर्म ‘शौकिया’ से आगे नहीं बढ़ पाया है, और पैसे तथा बाजार के बढ़ते प्रभाव के साथ रंगमंच की सक्रियता लगातार कम होती गयी है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के मेरे सहपाठी या तो फिल्मों में किनारा कर गये हैं या फिर यहां वहां नौकरियों में हैं। कुछ बचे हुए लगातार शिकायत करते हैं कि रंगमंच ने हमें क्या दिया, और यहां वहां कुछ अन्य ‘असाइनमेण्ट’ करते हुए यदा कदा कोई नाटक भी कर लिया करते हैं।

ऐसे में, स्वाभाविक है मेरे सामने भी यह प्रश्न सदैव उपस्थित रहा है कि मैं रंगकर्म क्यों करता हूं? तो अगर नाटक करना विपथन है तो फिर विपथन ही सही...

## नेपथ्य

बचपन में वह पलंग खड़े करके और चादरों के पर्दे तान कर नाटक किया करता था, जिनमें आस पड़ोस के बच्चे शामिल रहते। नाटक क्या होते थे यह तो अब स्मृति से बाहर है, लेकिन उस जमाने के हिसाब से उन नाटकों के टिकट चार आना कीमत के खासे महंगे होते थे यह अभी भी याद है। याद यह भी है कि सारे मोहल्ले को यह हस्तलिखित टिकट लाजमी खरीदने पड़ते थे, और दर्शकों की उपस्थिति भी ठीकठाक हो जाती थी।

इसके अलावा उसे यह भी याद है कि वह घर की बड़ी मेज पर चढ़ कर राणा प्रताप पर लिखी राजस्थानी कविता 'अरे घास री रोटी ही, बन बिलावड़ो ले भाज्यो...' का अभिनय सहित पाठ किया करता था। घर के लोगों के लिए यह मात्र मनोरंजन होता था, लेकिन मां उसके इन करतबों को हमेशा गम्भीरता से लेतीं और उसे भरपूर प्रोत्साहन देतीं।

साहित्य का चस्का भी उसे मां से ही लगा। बच्चों से भरेपूरे घर के तमाम कामों के बीच भी मां मोटे मोटे उपन्यास तीन चार दिन में पढ़ डालतीं। उपन्यासों की उनकी मांग कभी खत्म न होती। एक खत्म करतीं तो दूसरा शुरू कर देतीं। प्रेमचंद, शरत से लेकर कृष्ण चंदर और अमृता प्रीतम तक सब उन्होंने पढ़ डाले थे। मां के साथ साथ उसने भी बहुत छोटी उमर में इन सबको पढ़ लिया था।

इन्हीं दिनों उसने एक स्थानीय दैनिक के बच्चों के कालम में कुछ तुकबंदियां भी प्रकाशित करवायीं, जिसके चलते पड़ोस की हमवयस्क लड़की से उसे 'कपिराज' की उपाधि हासिल हुई।

## पूर्वर्ग

साठ का दशक, जब वह जवान हो रहा था, भारत और दुनिया में काफी उथलपुथल और बदलाव का दशक था। पहले चीन और फिर पाकिस्तान से युद्ध, नेहरू युग का अवसान, कांग्रेस पार्टी का विघटन, माओवादी प्रभाव में भारतीय साम्यवादी आंदोलन में बिखराव, नक्सलवाद का उदय, इंदिरा गांधी के प्रादुर्भाव के साथ राष्ट्रीय राजनीति का चरित्र सिकुड़ कर व्यक्ति केन्द्रित हो चुका था। ऐसे में, क्षेत्रीय एवं भाषायी अस्मिताओं की राजनीति की दस्तकें मजबूत हो रही थीं और स्वतंत्रता आंदोलन का आदर्शवादी चरित्र तिरोहित हो चुका था। इसके साथ ही अमेरिका और सोवियत रूस में विश्वशक्ति के रूप में उभरने की होड़ के चलते शस्त्र उद्योग में अभूतपूर्व वृद्धि और नित नये विनाशकारी अस्त्रों का विकास, वियतनाम युद्ध, मध्य एशिया, अफ्रीका और लातिनी अमेरिका में नये तनाव और संघर्ष। पूर्वी यूरोप में सोवियत रूस का दमनकारी हस्तक्षेप। पूरी दुनिया जैसेकि बारूद के ढेर पर बैठी हुई, और कभी भी विस्फोट की आशंका।

लेकिन इन सबके बीच नयी राहों के अन्वेषण की सम्भावनाएं भी कम नजर नहीं आती थीं। मानव मुक्ति का संघर्ष अपने चरम पर पहुंचा लगता था। विज्ञान में हर दिन कुछ नया घट रहा था। मनुष्य ने चांद पर अपनी पदछाप छोड़ दी थी। धरती के गुरुत्वाकर्षण के पार, मनुष्य की स्वतंत्रता के नये द्वार खुलने लगे थे। फ्रांस के छात्र आंदोलन ने विश्व भर के युवाओं को नयी ऊर्जा और उमंग से भर दिया था। सार्त्र को भी छात्र, मजदूर और किसानों के साथ, क्रांतिदूत लगे थे।

यानि एक ओर जहां हताशा और मोहभंग की स्थिति थी, वहीं उससे उबरने और पार पाने की अदम्य इच्छाशक्ति भी मौजूद थी। जहां एक ओर गोहत्या के खिलाफ आंदोलन चल रहे थे, वहीं दूसरी ओर विश्वविद्यालयों में छात्र अपनी डिग्रियां जला रहे थे। साहित्य में नयी कविता के बाद नयी

कहानी का आंदोलन पनप चुका था। जबरदस्त साहित्यिक धड़ेबंदियां कायम हो चुकी थीं, जिनमें विचारधारात्मक विरोध ही एकमात्र कारण नहीं रह गया था। फिर भी गहमागहमी तो थी ही। नित नये लेखक जन्म ले रहे थे।

ऐसे में मन में लेखक होने का गुमान पाले एक नवयुवक जयपुर की सड़कों पर रात भर घूमता हुआ दोस्तों से नीलेशे, काफ़का, काम्यू पर बतियाता था। मार्क्सवाद के प्रति भी उसमें गहरा आकर्षण था, पर सवाल भी थे, जिनका संतोषजनक समाधान उसे कहीं से नहीं मिल रहा था।

रात भर सड़कों पर घूम कर, अलस्सुबह जब वह घर पहुंचता तो मां को सर्दी में बाहर बरामदे में बैठे इंतजार करते पाकर उखड़ जाता। वे क्यों इंतजार करती हैं? जानती तो हैं वह अक्सर रात में देर से आता है, या फिर सुबह ही लौटता है। मां पूछती “तुम रात भर करते क्या हो?” जवाब होता “बातें करते हैं।” वे फिर पूछती “ऐसी कौन सी बातें हैं जो रात में ही होती हैं?” झुंझलाहट भरा जवाब “आप नहीं समझेंगी।”

इसके बाद भी वे इंतजार करतीं।

घर पर चूँकि सिगरेट नहीं पी जा सकती थी, वह एकआध घंटा रुक कर यूनिवर्सिटी के गेस्ट हाउस पहुंच जाता। युनिवर्सिटी उसके घर के करीब ही थी। गेस्ट हाउस में भरपेट चाय पी जाती और सिगरेटें फूँकी जातीं। फिर वहीं नित्यकर्म से फारिग होकर, दिन भर यूनिवर्सिटी में छात्र राजनीति। कभी वियतनाम के डेलिगेशन का स्वागत (युद्ध अभी जारी था), कभी किसी राजनीतिज्ञ का भाषण, या फिर आये दिन के आंदोलन। यूनिवर्सिटी से निकले तो इंडियन काफ़ी हाउस। वहां होता साहित्यकारों/पत्रकारों का जमावड़ा। जयपुर से बाहर के साहित्यकार भी अक्सर वहीं टकरा जाते। छात्र आंदोलनों के दौरान की सारी गतिविधियां भी काफ़ी हाउस से ही संचालित होतीं। भाई लोगों ने मजाक भी बना रखा था भानु भारती की अर्थी काफ़ी हाउस के सामने से निकल रही थी, तो वह उठ बैठा ‘यारों एक कप काफ़ी तो हो जाये।’ काफ़ी हाउस बंद हो जाता तो फिर वही सड़कों पर भटकने का सिलसिला...

बीच बीच में कभीकभार अकेले निकल कर किसी रेस्तरां में कोई कहानी या कविता लिख ली जाती, जो ‘वातायन’, ‘लहर’, ‘मधुमती’ या ‘आजकल’ जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो जाती।

लेकिन, दशक का अंत आते स्थितियां काफ़ी बदलने लगी थीं। छात्र आंदोलन दिशाविहीन हो भटकने लगे थे। नक्सलवाड़ी आंदोलन के प्रभाव में मध्यवर्गीय और उच्च मध्यवर्गीय जिन छात्रों ने बंगाल और खासतौर पर कलकत्ता में, क्रांति का परचम लहराया था, उन्हें इंदिरा गांधी की शह पर, सिद्धार्थ शंकर राय की तत्कालीन पश्चिम बंगाल सरकार ने बेहरमी से कुचल दिया था। कनु सान्याल और चारु मजुमदार जैसे शीर्ष नेता सीखचों के पीछे डाल दिये गये थे। इसमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) का भी सहयोग था।

ऐसे में, भारतीय परिप्रेक्ष्य में, साम्यवादी राजनीति को लेकर उसके संशय और भी गहरा गये थे, और इसका प्रभाव उसके बेहद करीबी दोस्तों से रिश्तों पर भी पड़ने लगा था। तब उसने छात्र राजनीति से किनारा करने का ख्याल किया। लेकिन, जयपुर में रहते यह आसान नहीं था। परंतु जयपुर छोड़ कर वह जाये कहां? और करे क्या?

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के स्नातक और उसके बड़े भाई, मोहन महर्षि भी उन दिनों जयपुर में ही रंगकर्म कर रहे थे। वह भी उनके नाटकों में छोटी मोटी भूमिकाएं निभाता रहा था। उन्हें दिल्ली में दूरदर्शन में प्रोड्यूसर की नौकरी मिली तो उसे भी दिल्ली के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में प्रवेश की सम्भावना का ख्याल आया, और उसने उनसे अधूरे से मन से प्रवेशपत्र भेजने के लिए कह दिया।

## अंक-1

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का माहौल उसके लिए बिल्कुल अलग था। भारत के विभिन्न प्रांतों से आये वयस्क लड़के लड़कियों का चौबीस घंटों का साथ, और अल्काजी (इब्राहीम अल्काजी) के रूप में एक ऐसा अध्यापक जो केवल क्लास रूम तक ही सीमित न रह कर आपके रोजमर्रा के जीवन में भी दखल दे। जो आपको केवल लायब्रेरी का इस्तेमाल करना ही न सिखाये, 'टॉयलेट' कैसे इस्तेमाल किया जाता है यह भी बताये। हॉस्टल के आपके कमरे में आकर कबर्ड पर जमी धूल उंगली से पोंछ कर आपको दिखाये।

साफ सफाई का मर्ज उसकी मां को भी कम नहीं था। खाल छिल जाने की हद तक रगड़ रगड़ वह उसको नहलाती थीं। लेकिन थोड़ा बड़ा हो गया तो वह उनके हाथ से निकल गया। फिर तो हफ्तों नहाने का नाम नहीं लेता। जब पानी सर से गुजर जाता तो मां उसे नहाने ढकेलतीं, तब भी वह लोटे फर्श पर बिखेरता हुआ नहाने का ढोंग करता और सर थोड़ा गीला कर बाहर निकल आता।

पर, वे तो मां थी। यहां यह अल्काजी साहब? शुरू में उसे बड़ी चिढ़ होती। 'हम क्या बच्चे हैं जो हमें टायलेट की ट्रेनिंग दी जा रही है? ये ऐसे कैसे हमें ट्रीट करते हैं? जयपुर में छात्र नेता और एक उभरते हुए लेखक के रूप में उसे पहचाना जाता था, पर यहां उसकी कोई अलग हैसियत नहीं थी। वह भी औरों की तरह विद्यालय का प्रथम वर्ष का छात्र था। शुरू शुरू में यह गुमनामी भी उसे अखरती थी। अखरता और भी काफी कुछ था मसलन अंग्रेजी भाषा पर अत्यधिक जोर। पाश्चात्य संस्कृति और कला मूल्यों पर आधारित शिक्षण। जो छात्र अंग्रेजी न लिख बोल सकें उनके साथ भेदभाव। यह सब उसे बेहद खलता था। इससे कई दफा तनाव भी पैदा होता था। एकाध बार तो कुछ ज्यादा तीव्र।

लेकिन इसके साथ ही नयी खिड़कियां भी खुल रही थीं, इसलिए एक उत्तेजना भी बराबर बनी रहती थी। साहित्य और नाटक से तो थोड़ा बहुत साबका उसका रहा था, पर चित्रकला, मूर्तिकला आदि से परिचय न के बराबर था। अतः जब शुरूआती दौर में ही अल्काजी साहब ने पश्चिम के महान चित्रकारों के चित्रों की पारदर्शियों को दिखाते हुए, पश्चिम में चित्रकला के इतिहास का व्याख्यात्मक परिचय दिया, तो वह उसके लिए रोंगटे खड़े कर देने वाला अनुभव था। इसी तरह हेनेरी मूर के मूर्ति शिल्पों की उनकी व्याख्या और इलियट की प्रसिद्ध कविता 'वेस्ट लैण्ड' का उनका अद्भुत पाठ, जिसके साथ उन्होंने कविता को दृश्यांकित करने वाली पारदर्शियों का भी इस्तेमाल किया था, आज भी उसकी स्मृति में ताजा है।

उसके प्रवेश के साथ ही हॉस्टल शुरू हुआ था। उससे पहले छात्र यहां वहां कमरे किराये पर लेकर रहते थे। हॉस्टल आने के बाद अब विद्यालय 'रेजिडेन्शल स्कूल' में तब्दील कर दिया गया। यानी, हर छात्र के लिए हॉस्टल में रहना अनिवार्य हो गया चाहे वह दिल्ली का ही निवासी हो। अल्काजी का जोर पूर्वकालिक और सर्वांगीण शिक्षा पर था। उनके अनुसार रंगकर्म सम्पूर्ण समर्पण मांगता है, इसलिए उसके पूर्णकालिक अभ्यास एवं कठोर अनुशासन आवश्यक है। सवेरे से जो कक्षाओं का क्रम शुरू होता तो शाम पांच बजे तक चलता। फिर रात आठ नौ बजे तक हर रोज कोई न कोई रिहर्सल। फिर रात में विभिन्न विषयों के 'प्रोजेक्ट्स'। यानिकि एक क्षण की फुरसत नहीं। केवल रविवार का दिन होता था जब आप थोड़ी सांस ले सकें। लेकिन, रविवार को भी कब आल्काजी साहब आ धमकें कोई पता नहीं।

इस सबके साथ यह भी अपेक्षा होती थी, कि आप चित्रवीथियों में प्रदर्शनियां देखें और संगीत

तथा नृत्य के कार्यक्रम भी। नाटक से दूसरी कलाओं के अंतर्सम्बंध को समझना ही काफी नहीं था, हर कला की स्वतंत्र गुणग्राहकता अपने में विकसित करने की भी आपसे अपेक्षा की जाती थी।

विद्यालय मंडी हाउस के पास रवीन्द्र भवन में स्थित होने के कारण, संगीत नाटक अकादमी, साहित्य अकादमी तथा ललित कला अकादमी के एक भाग जैसा ही था जहां सीढ़ियां चढ़ते उतरते आप भारत की किसी भी कला विभूति से कभी भी टकरा जा सकते थे। फिर तमाम कलावीथियां और प्रेक्षागृह भी इर्दगिर्द ही थे। कनाट प्लेस और वहां स्थित शामियाना काफी हाउस और टी हाउस भी पैदल पंद्रह बीस मिनट के फासले पर। और तब की दिल्ली आज जैसी भागमभाग वाली भी नहीं थी लोगों के पास समय था अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी।

सो धीरे धीरे अब उसकी एक नयी पहचान बन रही थी। अब वह इस दिल्ली में अपने को इतना बेगाना नहीं पाता था। भिन्न प्रांतर भाषाओं और संस्कृतियों से उसका परिचय ही नहीं हो रहा था, गहरी दोस्तियां भी हो रही थीं। विविध कला माध्यमों में कार्य करने वाले निष्णात लोगों के साथ आत्मीय रिश्ते बन रहे थे। जिन लेखकों को अब तक केवल उसने पढ़ा भर था अब उनमें से अधिसंख्य के साथ उसके ऐसे सम्बंध विकसित हो रहे थे, जो हमेशा टिके रहने वाले थे।

उसने तीन साल (1970 से 73 तक) नाट्य विद्यालय में पढ़ाई की और श्रेष्ठ छात्र तथा श्रेष्ठ निर्देशक का पुरस्कार प्राप्त कर, एक साल विद्यालय के रंगमंडल में रहा। रंगमंडल में रहते हुए उसके द्वारा निर्देशित दो नाटकों का सार्वजनिक मंचन हुआ आयनेस्को रचित 'द लैसन' तथा मणि मधुकर का पहला लिखा नाटक 'रस गंधर्व'। 'द लैसन' पहले उसने डिप्लोमा प्रोडक्शन के रूप में किया था तब उसमें नसीरुद्दीन शाह, ज्योति देशपांडे और जयश्री थे, बाद में सार्वजनिक मंचन के समय ओमपुरी, उत्तरा बावकर और ज्योति देशपांडे अभिनय करते थे। 'रस गंधर्व' में स्त्री भूमिका एक ही थी और पुरुष भूमिकाएं पांच। लेकिन उस समय रंगमंडल में चार पुरुष मनोहर सिंह, बलराज पंडित, राजन सब्बरवाल और वह ही थे, और स्त्रियां थीं तीन उत्तरा बावकर, सुरेखा सीकरी तथा ज्योति देशपांडे। वह स्वयं अभिनय करना नहीं चाहता था, तो बचे तीन पुरुष अभिनेता। ऐसे में हल एक ही था दो स्त्रियां पुरुष भूमिका करें। सो सुरेखा और ज्योति ने चुनौती स्वीकार की, और पुरुष चरित्र अभिनीत किये। यह दोनों भरीपूरी स्त्रियां जब मंच पर अभिनय करतीं तो दर्शकों को यकीन ही नहीं आता कि ये स्त्रियां हैं। भारत के लोक नाटकों में पारम्परिक तौर पर पुरुष स्त्रीपात्र करते आये हैं, लेकिन आधुनिक भारतीय रंगमंच में, और वह भी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय जैसे संस्थान में, यह पहला अवसर था जब स्त्रियां पुरुष पात्रों में थीं। बाद में भी; मेरी जानकारी में तो नहीं।

दोनों नाटक बहुत सराहे गये, और इनके प्रदर्शन भी बहुत हुए। 'रस गंधर्व' एक और कारण से भी याद किया जाता है। तब तक विद्यालय केवल गम्भीर नाटकों के मंचन ही करता आ रहा था और वह भी अधिकतर 'कॉस्ट्यूम ड्रामा' जैसे कि 'अंधायुग', 'किंग लियर', 'तुगलक' आदि। इसके अतिरिक्त मनोहर सिंह भी 'ओथेलो' और 'तुगलक' के किरदारों से जाने जाते थे। लेकिन 'रस गंधर्व' में कोई तामझाम नहीं था, वह एक राजनैतिक व्यंग्य नाटक था, जो इंदिरा गांधी की एकाधिकारवादी राजनीति पर गहरा कटाक्ष करता था। सो पहली बार विद्यालय के किसी नाट्य मंचन को भद्रलोक के साथ साथ पान बीड़ी बेचने वालों ने भी देखा। इस प्रस्तुति में 'तुगलक' जैसी भूमिकाएं निभाने वाले मनोहर सिंह ने लंगड़े सिपाही की यादगार हास्य भूमिका निभायी, जो आज भी दिल्ली के रंगमंच पर मनोहर सिंह की एकमात्र हास्य भूमिका के रूप में याद की जाती है। मनोहर भाई में कॉमेडी की अद्भुत प्रतिभा थी, दुर्भाग्य से उसका उपयोग 'रस गंधर्व' के बाद फिर कभी नहीं हुआ।

## अंक-2

रंगमंडल छोड़ कर उसने दिल्ली में ही 'सबरंग' नाम से एक संस्था बनायी, और पहली प्रस्तुति के लिए शेक्सपीयर के 'हेमलेट' को चुना। लेकिन, उसे नाटक में एक बड़ा बदलाव जरूरी लगा। उसे लगा जहर बुझी तलवार से घायल, मरता हुआ हेमलेट अपने चाचा और मां के दूसरे शौहर, जो कि राजा भी है, को यों नहीं मार सकता। शैतान बहुत चौकस होता है, उसे अधक्के में नहीं मारा जा सकता। और न ही अंगेजी की कहावत के अनुसार वह अपनी मौत खुद मरता है। फिर हेमलेट जैसे अनिर्णय के शिकार, अंतिम क्षणों में भी, कोई चमत्कार नहीं दिखाते। इसके अलावा, होरेशियो की हेमलेट से दोस्ती भी उसकी समझ से परे थी। उसे इस दोस्ती का एक ही आधार समझ में आता था, और वह यह कि होरेशियो हेमलेट को राजगद्दी का असली हकदार बता कर, उसको चाचा से बदले के लिए उकसाता रहता है ताकि हेमलेट गद्दी पर बैठे तो उसके भी दिन फिरे। इसलिए उसने अपनी प्रस्तुति को 'अ हेमलेट' कहा। उसकी इस प्रस्तुति में क्लाडियस मरता नहीं है बल्कि जब हेमलेट उस पर झपटता है, तो होरेशियो उसे बचा लेता है। क्लाडियस उसे स्वीकृति से मुस्करा कर देखता है। नाटक में इस बड़े बदलाव ने उस समय बड़ा हंगामा पैदा किया। रंगमंच के समीक्षकों को लगा यह ब्लैसफीम (blaspheme) है। शेक्सपीयर के साथ इस तरह का व्यवहार निन्दनीय है, जिसकी कठोर शब्दों में भर्त्सना की जानी चाहिए। और भर्त्सना की गयी, कठोर से कठोर शब्दों में। यह दीगर है कि इन्हीं समीक्षकों में से एक ने करीब 20-22 साल बाद उससे कहा "तुमने जो हेमलेट में बदलाव किया था उसे मैंने तब नहीं समझा था, लेकिन अब मुझे वह बदलाव बिल्कुल ठीक लगता है।"

यह प्रस्तुति 1974 में जून में अजीबोगरीब परिस्थितियों में खेती गयी। उसने रंगमंडल छोड़ दिया था तो हॉस्टल का उसका ठिकाना भी छूटना ही था, परंतु उसके साथ इस प्रस्तुति में कई ऐसे भी लोग जुड़े थे जो अभी भी विद्यालय में अध्ययनरत थे। जैसेकि राज बब्बर, नीलम मानसिंह (अब चौधरी भी), सिद्धू आदि और भी। इसी के साथ कुछ वे भी थे जो विद्यालय में प्रवेश की प्रतीक्षा में थे, जैसेकि पंकज कपूर, अन्नू कपूर आदि। और भी लोग थे। विद्यालय में ग्रीष्म अवकाश हो गया तो सभी से हॉस्टल खाली करवा लिया गया। ज्यादातर ने तो अपना ठिकाना कहीं न कहीं कर लिया, पर उसके साथ चार पांच और भी थे जिनके पास कोई ठिकाना न था। ऐसे में रबीन्द्र भवन के साइकिल स्टैंड (जी हां, तब साइकिल स्टैंड होते थे क्योंकि ज्यादातर लोग उस समय साइकिलों से ही आते जाते थे) पर ठिकाना खोजा गया। दिन भर नाटक पर काम होता और रात में रिफ्यूजी मार्केट के लाला के यहां उधार खाना खाकर साइकिल स्टैंड पर सो जाते। इनमें उसके साथ राज बब्बर, अन्नू कपूर के अलावा और भी दो तीन लोग थे जिनके नाम अभी नहीं याद आ रहे।

लेकिन बात सोने के ठिकाने तक की ही न थी। प्रस्तुति काफी खर्चीली थी, और वह किसी भी कीमत पर प्रस्तुति की आवश्यकताओं से समझौता नहीं चाहता था। प्रस्तुति हर लिहाज से प्रोफेशनल स्तर की होनी चाहिए उसकी जिद थी। पर पैसे की समस्या कैसे हल होगी इसका समाधान भी उसके पास नहीं था। बस एक नितांत निराधार विश्वास कि कहीं से कुछ तो होगा। और उसके इस निराधार विश्वास के सहारे दूसरे भी प्राणपण से जुटे थे। इनमें ओमपुरी थे जो कि हेमलेट कर रहे थे, राजेन्द्र जसपाल थे जो क्लाडियस कर रहे थे, ज्योति देशपांडे ओफेलिया की भूमिका में थीं। नीलम मानसिंह गर्ट्यूड (हेमलेट की मां) थीं, राज बब्बर होरेशियो थे, पंकज कपूर और अन्नू कपूर कब्र खोदने वाले थे। इस तरह कुल 25-26 लोगों का जमावड़ा था। सबा जैदी कोस्ट्यूम कर रही थीं।

बिना पैसे, या शायद बहुत ही थोड़ा सा टोकन एडवांस देकर उस वक्त का सबसे कामयाब प्रेक्षागृह आई फैक्स बुक कर लिया गया था। लेकिन मसअला इंटरटेनमेण्ट एक्जम्पशन और पुलिस परमीशन का भी था। नया ग्रुप था और रजिस्ट्रेशन भी नहीं था। अतः टैक्स एक्जम्पशन सम्भव नहीं था। उसने श्रीकांत वर्मा से फरियाद की। वे उसे लेकर तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवर्नर राधारमण के यहां गये। उन्होंने कुछ सिफारिश भी की। पर हासिल कुछ न हुआ। प्रदर्शन में दो दिन बाकी थे। सैट में काफी लकड़ी दरकार थी बड़े बड़े प्लेटफार्म, सीढ़ियां, खम्भे सभी कुछ था। नाट्य विद्यालय की वर्कशाप के सुपरवाइजर तरसीम लाल, जिन्हें सब गुरुजी कहते थे अपने नाम पर उधार लकड़ी लाये और सैट बना कर खड़ा कर दिया। नाटक के प्रदर्शन में एक दिन शेष। आई फैक्स वालों ने अल्टीमेटम दे दिया, शो से पहले सारे पैसे जमा करवाने होंगे और परमीशन भी। नहीं तो शो नहीं होगा। आई फैक्स आकाशवाणी भवन के पास है सो लंच में मुद्राराक्षस आ पहुंचे। पूछा सब कुछ ठीक चल रहा है न? उन्हें पता लगा परमीशन नहीं मिली है तो उल्टे पैर भागे।

इस सबके बीच 'ड्रेस रिहर्सल' का समय हो गया। सब कास्ट्यूम, मेकअप में तैयार। दूसरी घंटी बज चुकी है, तीसरी और आखिरी घंटी का इंतजार है। नीलम भागती हुई उसके पास आती हैं में एक मिनट में आयी, कोई मिलने आया है। वह तुनक जाता है। नीलम तुरंत ही लौटती हैं उनके हाथ में मोटा सा एक लिफाफा है। वे हांफ रही हैं कुछ तो भाग दौड़ से और कुछ रोमांच से। ये दस हजार रुपये। उसे जैसे कोई फर्क ही नहीं "ठीक है रति को दे दो, और तुम एंट्री पर चलो।"

दरअसल हुआ यह था, कि जो साहब यह पैसा (1974 में दस हजार रुपया बहुत होता था) नीलम को दे गये थे वे उनसे विवाह के इच्छुक थे और कोई फैक्ट्री चलाते थे। नीलम ने उन्हें नाटक के लिए पैसे की आवश्यकता बतायी तो वे खुद से और अपने कुछ मित्रों से जुटा कर यह पैसा नीलम को पहुंचा गये थे। दूसरे दिन (प्रदर्शन वाले दिन) मुद्राराक्षस भी पसीना पसीना आन पहुंचे, और सारी 'परमीशन' उसे थमा दी। शाम को शो हुआ, पूरी शान से।

लखनऊ में भुवनेश्वर के नाटकों से आकस्मिक परिचय के विषय में वह अन्यत्र काफी कुछ लिख चुका है लेकिन 'तांबे के कीड़े' की प्रस्तुति में प्रयुक्त रंग अन्वेषण पर अभी तक उसने ज्यादा कुछ नहीं कहा। यह नाटक अपने शिल्प में अनूठा है और इसीलिए इसे किसी रंग मुहावरे में अंटा देना असम्भव है। इसमें जो अनाउंसर है वह अपने में एक ऐसा कोरस भी समेटे है जिसे कोरस सिर्फ इसलिए कह सकते हैं क्योंकि उसके लिए कोई दूसरा उपयुक्त शब्द आपके पास नहीं है। शायद स्वयं नाटककार भी इसके प्रति सचेत नहीं था, फिर भी स्क्रीन के पीछे से कुछ गम्भीर मर्दानी आवाजें उसे सुनायी पड़ रही थीं। लेकिन ये गम्भीर मर्दानी आवाजें क्या सच में गम्भीर हैं या उनमें एक गहरा विद्रूप छिपा है? तो उसने बोरा पहने सिर पर कागज की ऊंची गोल टोपियां, जैसे किसी का 'हैपी बर्थडे, सेलिब्रेट' करते हुए पहनी जाती हैं, पहने गोलाकार खड़े सात आठ अभिनेताओं का एक ऐसे कोरस का विद्रूप तैयार किया जिसकी मिसाल वह आप ही था। अगर आपस में असम्बद्ध चरित्रों की टकराहट अनाउंसर के बड़े से तिब्बती लामाओं जैसे झुनझुने से ध्वनित होती थी तो उसकी टकराहट की अनुगूँजें इस गोलाकार विचित्र कोरस के माध्यम से सुनायी देती थीं मानों वे किसी कुएं में गूँज रही हों। इसी तरह नाटक में एक रिक्शावाला भी है और है मसरूफ पति और परेशान रमणी। अनाउंसर के झुनझुने की ही तरह रिक्शावाले की घंटी भी नाटक में एक 'पंकचुएशन' पैदा करती रहती है। इस तरह का 'एक्सट्रक्शन' रंगमंच में नितांत अद्भुत है और इसे मंच पर चरितार्थ करना असम्भव नहीं तो दुर्गम अवश्य है। और किसी भी मंचन की पहली शर्त होती है दर्शकों के लिए उसकी सुगमता, तो मंच पर रिक्शा का अवतरण किस प्रकार हो? मसरूफ पति और परेशान रमणी उसकी



सवारी कैसे गांठें? इसका कोई 'रेडीमेड' हल किसी भी रंग पद्धति और परिपाटी में कहीं ढूँढे नहीं मिलेगा। लेकिन तांबे के कीड़े की उसकी प्रस्तुति में रिवक्षा और रिवक्षेवाला एकमेक थे। पीठ के बल लेटा अभिनेता अपनी दोनों टांगों को ऊपर उठाये हवा में ऐसे पैडल मारता था मानों वह कोई बहुत ही भारी वजन अपने पैरों से धकेल रहा हो, उसके गले से एक साइकिल की घंटी लटकती थी जिसे वह रह रह कर बजाता था और उसके सिरहाने जब मसरूप पति और परेशान रमणी आकर बैठ जाते थे तो दर्शकों के लिए रिवक्षे का पूरा अनुभव अपनी सम्पूर्ण संश्लिष्टता और सघनता में एकदम स्पष्ट हो उठता था। उसकी यह प्रस्तुति आज भी आधुनिक रंगमंच में अपनी एक अलग पहचान और स्थान बनाये है। यहां यह भी याद करना प्रासंगिक होगा कि उसकी यह प्रस्तुति नितान्त ही अनगढ़ और नये लोगों के साथ थी जिन्हें अभी तक रंगकर्म का कोई खास अनुभव नहीं था। और यह भी, कि इतिहास से इस प्रस्तुति के प्रदर्शन में रघुवीर सहाय भी मौजूद थे जो तब 'दिनमान' के सम्पादक भी थे। उन्होंने इस प्रस्तुति को दिनमान की 'कवर स्टोरी' बनाया था। शायद यह पहला अवसर था जब हिन्दी की किसी समाचार पत्रिका ने किसी नाट्य प्रस्तुति को इस तरह की तवज्जो दी हो।

फिर, लगभग एक वर्ष की खानाबदोशी और दिल्ली में लगातार एक सप्ताह की फाकाकशी के बाद वह वापस जयपुर लौटा राजस्थान विश्वविद्यालय में नाट्य संस्थान की स्थापना के लिए। देश में तब आपातकाल लागू था और विश्वविद्यालय भी उसके काले डैनों के नीचे एक डरी सहमी चुहिया प्रतीत होता था। नाट्य विद्यालय जाने से पहले वह इसी विश्वविद्यालय का छात्र था और तब इसकी गणना देश के कुछ गिनेचुने शिक्षण संस्थानों में होती थी जिसकी अपनी एक गरिमा थी। लेकिन अब वही विश्वविद्यालय नंगे आतंक तले अपना ही ऐसा विद्रूप था जिससे वितृष्णा होती थी। उस समय के वहां के माहौल का खुला बयान न ही किया जाये तो अच्छा है। ऐसे में जब वह विश्वविद्यालय पहुंचा तो उसे पिछवाड़े के उजाड़ में दो छोटे छोटे कमरों वाला 'काटेज', जिसे हॉबी वर्कशॉप कहा जाता था, दे दिया गया और उसकी नियुक्ति हॉबी वर्कशॉप के सुपरिन्टेन्डेण्ट के रूप में की गयी। क्योंकि तब उसके लिए कोई और पद तो था नहीं। इस उजाड़ में बैठ कर उसे नाट्य विभाग की योजना बनानी थी और उसे यू.जी.सी. से स्वीकृत करवाना था।

हॉबी वर्कशॉप का सुपरिन्टेन्डेण्ट बने उसे अभी दो ही दिन बीते थे और वह अपने कक्ष में बैठा यू.जी.सी. के लिए प्रपोजल तैयार कर रहा था कि एक साहब कुछ निरीक्षण करने के अंदाज में टहलते हुए अंदर घुस आये, उसने पूछा कहिये तो उनका उत्तर था कुछ नहीं देख रहा हूं काला पानी कैसा है जिसकी मुझे सजा मिली है। ये श्रीमान चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के नेता थे और उन्हें उसके पास ट्रांसफर किया गया था लेकिन उसे स्वयं यह 'एकांतवास' बहुत रास आ रहा था। उस समय के विश्वविद्यालय के माहौल से अलगथलग वह पिछले गेट से सीधा इस कॉटेज में आता और अपना काम करता।

यू.जी.सी. के लिए उसने जो प्रपोजल तैयार किया वह नाट्य विभाग का नहीं अपितु विश्वविद्यालय नाट्य संस्थान (यूनिवर्सिटी इंस्टीच्यूट ऑफ ड्रैमेटिक आर्ट्स) के लिए था। इसके साथ ही उसने हॉबी वर्कशॉप का नया नामकरण किया सेण्टर फॉर क्रिएटिव आर्ट्स और स्वयं को सुपरिन्टेन्डेण्ट से परिवर्तित किया इस सेण्टर के डायरेक्टर के रूप में। यू.जी.सी. की स्वीकृति समय लेती अतः तब तक के लिए उसने नाट्य विद्या में एक वर्षीय पार्ट टाइम डिप्लोमा कोर्स शुरू किया और ऑपन एयर थियेटर पर कब्जा हासिल कर वहां अपनी कक्षा आरम्भ कर दी। कहने को यह पार्ट टाइम कोर्स था लेकिन छात्र दिन भर वहीं बने रहते। उनके सहयोग से बहुत जल्दी ही उस उजाड़ का कायाकल्प हो गया, फिर उसने छात्रों के साथ अंधायुग नाटक के पूर्वाभ्यास आरम्भ कर दिये।

अब रातों में भी वहां काम होने लगा। उस आपातकालीन सहमे डरे विश्वविद्यालय में अब अगर कोई गुलजार जगह थी तो वह था सेण्टर फॉर क्रिएटिव आर्ट्स जहां उस अंधेयुग में 'अंधायुग' का मंचन हुआ। इस नाट्य प्रस्तुति ने विश्वविद्यालय के तमाम छात्रों के बीच खासी ख्याति अर्जित की।

आपातकाल समाप्त हुआ और चुनाव हुए तो जैसे एक झटके में विश्वविद्यालय का सब कुछ बदल गया। तत्कालीन उपकुलपति को इस्तीफा देने पर विवश किया गया और आपातकाल के दौरान की गयी नियुक्तियों को भी एक एक कर निरस्त किया जाने लगा। उसकी अपनी नियुक्ति भी आपातकाल के दौरान हुई थी तो तलवार उस पर भी लटकी थी। लेकिन इस सबसे बेपरवाह वो अपने छात्रों के साथ चार नाटकों के अभ्यास में लगा था जिन्हें तीन दिवसीय नाट्य समारोह में प्रस्तुत करने की उसकी योजना थी। इस नाट्य समारोह के दौरान नाट्य प्रशिक्षण पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी भी आयोज्य थी। तीन दिवसीय इस समारोह में उसने जो चार नाटक प्रस्तुत किये थे वे थे भीष्म साहनी का हानूश; बलराज पंडित का पांचवां सवार और भुवनेश्वर के दो विकट लघु नाटक तांबे के कीड़े और आजादी की नींद। इस अवसर पर एक संगोष्ठी हुई उसमें शिरकत के लिए आये नेमिचंद्र जैन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण साही, भीष्म साहनी, कविता नागपाल, नंदकिशोर आचार्य, कन्हैयालाल नंदन आदि।

इस बीच आपातकाल के दौरान विश्वविद्यालय के कार्यकलाप पर जस्टिस बैरी के अधीन एक कमिशन भी नियुक्त हो गया था। वह स्वयं जस्टिस बेरी से कभी नहीं मिला; उनकी शक्ल भी उसे आज तक ज्ञात नहीं लेकिन उसे बताया गया कि जस्टिस बेरी अंधायुग की उसकी प्रस्तुति देखने आये थे। इस प्रस्तुति का आयोजन स्वाधीनता दिवस के अवसर पर राज्य सरकार ने किया था। इस प्रस्तुति से ठीक एक दिन पहले उसने अपनी मां को खो दिया था ऐसे में उस प्रस्तुति ने कुछ अलग ही प्रभाव ग्रहण कर लिया था। उसे पता चला कि बेरी कमिशन में अगर किसी ने भी उसकी नियुक्ति को लेकर कोई बात करनी चाही तो जस्टिस बेरी ने कुछ भी सुनने से इन्कार कर दिया और वह विश्वविद्यालय में बरकरार रहा।

इस दौरान यू.जी.सी. से नाट्य संस्थान की स्वीकृति और आरम्भिक बजट एलोकेशंस भी आ गये थे। लेकिन उसने मन बना लिया था कि वह अब विश्वविद्यालय में नहीं रहेगा। क्योंकि वह एक नाट्य प्रशिक्षक नहीं अपितु स्वतंत्र रंगकर्मी के रूप में अपने को देखता था और उसे लगा अगर उसने विश्वविद्यालय नहीं छोड़ा तो फिर वह वहीं बंध कर रह जायेगा और अपने से कुछ नहीं कर पायेगा। उसने तुरतफुरत में एक सेलेक्शन कमेटी बनावायी और वृजमोहन शाह का सेलेक्शन प्रोफेसर की पोस्ट के लिए करवा कर उसी रात वह दो साल की फेलोशिप पर जापानी क्लासिकल नाट्य विधाओं के अध्ययन के लिए कोसाका रवाना हो गया।

ये तो उसे बाद में लौटने पर पता चला कि उसके जाने के बाद क्लर्कों से मिल कर सेलेक्शन कमेटी की वह सिफारिश कहीं गुम कर दी गयी और नाट्य संस्थान की सारी योजना बलाए ताक रख कर वही एक वर्षीय पार्ट टाइम डिप्लोमा कोर्स अभी भी चल रहा था।

### अंक-3

जब वह वहां पहुंचा तब उसका जापान से परिचय बहुत ही सीमित था। नाट्य विद्यालय में उसने 'नोह' रंगमंच का एक मॉडल देखा था, अमरीका से आये जापानी मूल के सोजो सातों द्वारा विद्यालय के छात्रों के साथ तैयार किया काबुकी शैली का नाटक 'इबारागी' देखा था और कुरोसावा की मेकबैथ पर आधारित

फिल्म 'थ्रोन ऑफ ब्लड' देखी थी। लेकिन, वहां के समाज और जापानी मानस की बुनावट आदि से वह नितांत अपरिचित था। शुरू के छः महीने उसे ओसाका में यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरन स्टडीज में जापानी भाषा का अध्ययन करने में बिताने थे। पहले ही दिन जब वह यूनिवर्सिटी पहुंचा तो एक के बाद एक, कई जापानी लड़कियां उसके पास आर्यीं और उन सबसे उन्हीं तीन वाक्यों का संवाद हुआ

पहला वाक्य : हैलो व्हाट इज योर नेम?

दूसरा वाक्य : यू आर फ्रॉम व्हिच कंट्री?

तीसरा वाक्य : आर यू मैरिड?

फिर दूसरे, तीसरे, चौथे दिन भी यही तीन वाक्य, उसे उलझन हुई। लगा शायद अंग्रेजी बोलने में झिझक के चलते वे सब ये रटे रटाये तीन वाक्य बोलती हैं और फिर संकोच में आगे कोई और बात नहीं करतीं। उसने जापानी भाषा की अपनी अध्यापिका से इस बारे में पूछा तो वे मुस्करा दीं, बोलीं "दे आर लुकिंग फॉर प्रोस्पैक्टिव हसबैंड्स।" में और भी चकरा गया, पूछा सबकी सब विदेशी जीवनसाथी ही क्यों चाहती हैं? उत्तर था "जापानी समाज में महिलाओं का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं है अतः अधिकतर अपने लिए विदेशी जीवन साथी ढूँढना चाहती हैं।"

तो ये था उसका जापानी समाज से प्रथम साक्षात्कार। दूसरा साक्षात्कार था जापानी भाषा से। वह चाहता था इस अवसर का पूरा लाभ उठाये और जापानी भाषा ठीक से सीख ले। लेकिन जल्दी ही उसे समझ आया कि छः महीने तो क्या वह छः साल लगाये तो भी जापानी भाषा से पार नहीं पायेगा। जापान एक ऐसा देश है जहां सौ प्रतिशत साक्षरता है लेकिन एक भी व्यक्ति आपको ऐसा नहीं मिलेगा जो सौ प्रतिशत साक्षर है। जापानी भाषा तीन लिपियों को मिला कर लिखी जाती है कांजी (चीन की चाक्षुष लिपि), हिरागाना तथा कटाकाना जो कि ध्वनि आधारित लिपियां हैं। कांजी में लाखों की संख्या में चाक्षुष चिह्न (characters) हैं और हर चिह्न के कम से कम दो पाठ अवश्य हैं कुन और ओन। चीनी और जापानी भाषा कांजी और हिरागाना को मिला कर लिखी जाती है। कटाकाना का प्रयोग विदेशी शब्दों के लिए होता है। अगर किसी विदेशी का नाम लिखना हो तो भी उसे कटाकाना में लिखा जायेगा। भाषा लिपियों की इस कठिन संरचना के कारण जापानी बच्चों को अपना काफी समय लिपि सीखने में लगाना पड़ता है, फिर भी वे पूरी जिन्दगी आश्वस्त नहीं होते कि सही पढ़ रहे हैं। अखबारों और दूसरे संचार माध्यमों के लिए कुछ हजार कांजी चिह्नों का मानकीकरण कर दिया गया है। नौबत यहां तक है कि दो जापानी जब आपस में मिलते हैं और सबसे पहले जब नेमकार्ड एक दूसरे को थमाते हैं तो वह कुलनामों (सरनेम) के प्रति ही आश्वस्त हो पाते हैं, प्रथम नाम के प्रति कभी नहीं क्योंकि, उसे कई अलग अलग तरह से पढ़ा जा सकता है।

उसने पाया कि अपनी तमाम तकनीकी और आर्थिक प्रगति के बाद भी जापानी समाज की मूल संरचना उतनी ही फ्यूडल है जितनी की समोराई काल में थी। जिस कम्पनी में आप नौकरी करते हैं वह आपके जीवन की प्राथमिकता हो जाती है, जिसके प्रति आपका सम्पूर्ण समर्पण अनिवार्य शर्त है। ऐसे में अजब नहीं कि रुढ़िबद्ध जापानी समाज में आत्महत्याओं का प्रतिशत बहुत अधिक है। उसे याद है, वह चौंक गया था जब उसने अखबार में पढ़ा कि छः या आठ साल के बच्चे भी आत्महत्या कर रहे हैं।

एक और बात जो उसने नोट की वह यह कि जापानी लोग वाचिक की जगह चाक्षुष के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। शायद भाषा के साथ उनकी कठिनाई इसका कारण हो। आम जीवन में भी जो कहा जा रहा है उससे अधिक महत्व कहने वाले के हावभाव और उसकी बॉडी लैंग्वेज को दिया जाता है। चाक्षुष के प्रति अधिक संवेदनशीलता के चलते ही उनकी चाक्षुष कलाएं बहुत उन्नत हैं।

उनकी पारम्परिक चित्रकला, आइकनग्राफी, वेशभूषा आदि सबमें चाक्षुष के प्रति अतिरिक्त सजगता देखने को मिलती है। उनके नाट्य भी स्पैक्टिक्युलर की हद तक चाक्षुष सम्पन्नता लिए होते हैं।

विरोधाभासों का जो सामंजस्य जापानी समाज में है उसने उनकी नाट्यकला को अवश्य बहुत सम्पन्न बनाया है। अभिनेता एवं पात्र के बीच के द्वैत को जापानी पारम्परिक रंगमंच जिस तरह साधता है वह अद्भुत है। नोह में जहां चरम मितव्ययता है वहीं काबुकी में चरम का अतिरेक। लेकिन दोनों ही नाट्य शैलियों में अभिनेता अपनी कायिक वास्तविकता को लांघ कर एक ऐसी काया का सृजन करता है जो पूरी तरह से अवास्तविक सौन्दर्य से सम्पन्न, नितांत कलात्मक उपस्थिति होती है। नोह में प्रयुक्त होने वाले मास्क तथा पहने जाने वाले वस्त्र (किमानों आदि) अपने आपमें ही स्वतंत्र कलाकृतियां होती हैं, और जब नोह अभिनेता इन्हें पहन कर नये सधे कदमों से मंथर गति में मंच पर प्रवेश करता है तो वह नितांत अतिमानवीय लगता है। उसके अभिनय में गति और स्थिरता दोनों जैसे एक साथ मौजूद रहते हैं, कुछ वैसे ही जैसे भारतीय शास्त्रीय संगीत में नाद और मौन साथ होते हैं। नोह में पहने जाने वाले मुखौटे लगभग कोरे और भावहीन होते हैं जिन्हें अभिनेता को अपने चेहरे और ग्रीवा के संतुलित संचालन से भाव भाषित करना होता है। इसके लिए उसे जीवन भर कठिन साधना करती होती है।

नोह से एकदम विपरीत, काबुकी में अभिनेताओं के चेहरे पर अतिरिक्त मेकअप होता है, जिसमें उनके चरित्र का स्थायी भाव लगभग एक मास्क की तरह रूपायित रहता है, लेकिन वस्त्र विन्यास चरित्रों के अनुकूल होता है। नोह का मंच समतल और सुनिश्चित होता है तो काबुकी का मंच बहुतलीय (मल्टी लेवल)। काबुकी के मंचन में आधुनिक तकनीक का प्रयोग भी वर्जित नहीं है, काबुकी मंच के किसी भी भाग को हाईड्रालिक लिफ्ट के जरिये किसी भी ऊंचाई तक उठाया जा सकता है। मुख्य पात्रों के प्रवेश हेतु नोह और काबुकी दोनों में गैलरी की तरह की हानामीची रहती है। नोह मंच में हानामीची दर्शकों से एक खास दूरी पर सामने की ओर होती है, और नाटक में चरित्र की यात्रा का प्रतीकात्मक निरूपण करती है। काबुकी में यह हानामीची दर्शकों के बीच से होकर गुजरती है, और इसका प्रयोग मुख्य चरित्र के प्रवेश के समय नाटकीय प्रभाव पैदा करने के लिए होता है। नोह में मंच सामग्री का प्रयोग न्यूनतम और प्रतीकात्मक है, वहीं काबुकी में विपुल। स्त्री चरित्र नोह और काबुकी दोनों में पुरुष अभिनेता ही निभाते हैं, लेकिन काबुकी में इसके लिए अभिनेताओं को अलग से प्रशिक्षित किया जाता है, जिन्हें ओनागाता कहा जाता है। यह ओनागाता स्त्रियोचित कमनीयता एवम् व्यवहार को बचपन से ही, अतिरिक्त सजग प्रशिक्षण के कारण, कुछ इस तरह आत्मसात कर लेते हैं कि राजघराने की महिलाओं को स्त्रियोचित गुण और तहजीब सीखने के लिए उनके पास भेजा जाता है। इन ओनागाताओं की समाज में प्रतिष्ठा भी खूब है।

द्वैत की यह साधना, जिसमें नाटक के प्राण बसते हैं, उसे नोह और काबुकी से भी ज्यादा प्रभावशाली रूप में 'बुनराकु' में देखने को मिली 'बुनराकु' जापान का पुतली नाट्य है। इसमें दर्शकों के सामने दो मंच रहते हैं एक बड़ा और एक छोटा। बड़े मंच के एक कोने से दूसरे कोने तक ढाई फुट ऊंचा चबूतरा (प्लेटफार्म) होता है जिस पर पुतलियां होती हैं। इस चबूतरे के पीछे खड़े होते हैं पुतलियों के संचालक (पपेटियर)। यह पुतलियां या पुतले मनुष्य से आधे कद के होते हैं और इनकी बनावट जटिल होती है। इनकी आंखें, पलकें, भौहें सब हरकत करती हैं और इनके हाथ कुछ भी थाम ले सकते हैं। पुतलों की इस जटिलता के चलते एक पुतले को तीन लोग एक साथ मिल कर चलाते हैं। मुख्य संचालक पुतले का सिर और दायां हाथ संचालित करता है, दूसरा सहायक उसका बायां हाथ तथा मंच सामग्री तलवार, पंखा या कुछ और संचालित करता है और तीसरा सहायक पुतले के पैरों का संचालन करता है। ये तीनों पपेटियर पुतलों के चबूतरे के पीछे दर्शकों के सामने

होते हैं। मुख्य पपेटियर औपचारिक परिधान में होता है, जबकि उसके सहायक काले कपड़ों में। उनके चेहरे भी काले हुड में ढके रहते हैं। इन तीनों पपेटियर्स, या संचालकों का आपस में गहरा तालमेल आवश्यक होता है, जो आसान नहीं। इसके लिए उन्हें सांस भी एक साथ और एक ही रिदम में लेना होता है, जिसके लिए गहन प्रशिक्षण और रियाज की आवश्यकता होती है। पुतलों का अभिनय, काबुकी अभिनेताओं की तरह, भावातिरेक वाला होता है, लेकिन मुख्य पपेटियर का चेहरा उतना ही भावशून्य और निर्लिप्त। नाट्य साधना की यह परम अभिव्यक्ति और पराकाष्ठा है जिसे भारतीय दर्शन में लीला कहा गया है उसका प्रत्यक्ष अनुभव। उसने लाख कोशिश की कि वह किसी पपेटियर की आंख में ही सही, हल्की सी जुम्बिश तो देख ले लेकिन उसे सफलता नहीं मिली।

‘बुनराकु’ की एक और खासियत है। एक ही समय में मंच पर एक साथ पांच सात दस पुतले तक होते हैं और हर पुतले के साथ तीन तीन उसके संचालक। तो चलाने वालों की अच्छीखासी तादाद रहती है और शुरू में आपको उनकी उपस्थिति का भान अधिक होता है। लेकिन, शीघ्र ही पुतले आपके देखते आकार में बड़े लगने लगते हैं, और उन्हें चलाने वाले, सामने रहते हुए भी, तिरोहित हो जाते हैं।

यह तो हुई मुख्य मंच की बात, लेकिन ‘बुनराकु’ में एक और मंच भी तो रहता है अपेक्षाकृत छोटा और दर्शकों के दायें। इस पर स्थित होता है ‘बुनराकु’ का वाचिक जो कि नितांत शैलीकृत गायन शैली में होता है, जिसे जरूरी गायन कहते हैं। यह गायक भी औपचारिक परिधान में होता है और पारम्परिक जापानी वाद्यों (खोतो ओर शामीसेन) की संगत पर पूरे नाटकीय हावभाव के साथ कथा निरूपण करता है। यह गायन इतना भावप्रवण होता है कि इसे एक स्वतंत्र विधा के रूप में भी मान्यता है। लेकिन, ‘बुनराकु’ में गायकों की यह भावप्रवण उपस्थिति भी व्यवधान नहीं बनती। निर्जीव पुतलों का जीवंत अभिनय इनसे भी पार पा लेता है।

#### अंक-4

1979 के अंत में जब वह दिल्ली लौटा तो यहां का नाट्य परिदृश्य काफी बदला हुआ था। उसके जापान जाने से पहले ही, जनता दल के सत्तारूढ़ होने के साथ अल्काजी साहब को राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय छोड़ देना पड़ा था, और उनके स्थान पर ब.व. कारंत निर्देशक होकर आ गये थे। विद्यालय में सारे शिक्षक भी लगभग बदल चुके थे। अल्काजी के समय का ‘कठोर अनुशासन’ अब लगभग एक अराजकता में बदल गया था। आधिकारिक रूप से विद्यालय का पाठ्यक्रम हालांकि अभी भी वही था, लेकिन प्रशिक्षण पद्धति को लेकर कोई स्पष्टता नहीं थी। कारंत भारतीय रंगपद्धति के पक्षधर थे और चाहते थे कि विद्यालय रंग प्रशिक्षण का स्वरूप भारतीय हो और छात्रों का जुड़ाव हमारी पारम्परिक तथा लोकनाट्य पद्धतियों से बने। लेकिन यह होगा कैसे इसके जवाब में कारंत का कहना था मैं अभी समझ रहा हूँ।

दिल्ली लौट कर जो सबसे पहला नाटक उसे देखने को मिला वह था कारंत के निर्देशन में, रघुवीर सहाय द्वारा मैकबेथ का अनुवाद ‘बरनमवन’। कहा गया कि प्रस्तुति में यक्षगान शैली प्रयुक्त हुई है। पार्श्व संगीत में चंडे एवं यक्षगान में प्रयुक्त होने वाले अन्य वाद्य अवश्य थे किन्तु अभिनय एवं प्रस्तुतिकरण में यक्षगान का आस्वाद उसे नहीं मिला, उसे लगा कि यक्षगान के कुछ तत्व यहां वहां डाल दिये गये हैं जिनसे प्रस्तुति का रसभंग होता है और उसमें बिखराव भी आ गया है।

उसे याद आया कि जब वह छात्र था तो शिवराम कारंत ने विद्यालय छात्रों को यक्षगान का सघन प्रशिक्षण दिया था और उसी शैली में एक प्रस्तुति भी तैयार करवायी थी। शिवराम कारंत तब

लगभग पचहत्तर छियत्तर साल के रहे होंगे, लेकिन उनमें युवाओं की सी चुस्ती और फुर्ती थी। उन जैसे तेजस्वी व्यक्तित्व उसने कम ही देखे हैं। वे स्वयं नृत्य करके छात्रों को दिखाते थे और उनका प्रशिक्षण घंटों चलता था। उनकी तुलना में विद्यालय के छात्र बिल्कुल पस्त नजर आते थे, लेकिन शिवराम कारंत प्रशिक्षण के बाद भी उतने ही तरोताजा ओर प्रफुल्लित लगते थे। उस प्रस्तुति में यक्षगान का सम्पूर्ण अनुभव उसे जैसा सन्निहित लगा था वैसा 'बरनमवन' में कुछ नहीं था। यही वह समय था जब रंगमंच में भारतीयता और अपनी जड़ों से जुड़ने के नाम पर नाट्य प्रस्तुतियों में लोकनाट्यों के कुछ तत्व यहां वहां समाविष्ट दिखने लगे थे। जिनके बारे में सर्वेश्वर जी ने (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) दिनमान में टिप्पणी की थी कि यहां वहां फोक की झालरें टांग दी जाती हैं।

हबीब तनवीर शुरु से ही अपनी प्रस्तुतियों में भारतीय लोक नाट्य के प्रयोग करते आ रहे थे, और वह उनके 'आगरा बाजार' की प्रस्तुति से बहुत मुतास्सिर हुआ था। जन और कविता से रंगमंच का चोली दामन का साथ है। उसने हमेशा माना है कि नाट्यलेख और प्रस्तुति दोनों में काव्य की सी सघनता और संश्लिष्टता होनी चाहिए। भरत ने भी नाट्यशास्त्र में नाटक को 'चाक्षुष काव्य' ही कहा है। आगरा बाजार में हबीब भाई ने एक अनूठा काम किया। उन्होंने उर्दू के जनकवि नजीर अकबराबादी के काव्य में पियरो कर मंच पर जो साधारण जन की दुनिया रची वो एक बिल्कुल अलग तरह का नाट्य अनुभव बना। इस प्रस्तुति को देख कर उसे कुछ आभास हुआ था कि आधुनिक भारतीय रंगमंच की शक्लसूरत कैसी होनी चाहिए। लेकिन फिर हबीब भाई छत्तीसगढ़ के नाचा कलाकारों में ही रम गये।

इसी दौरान उसने दिल्ली में सर्वेश्वर जी के सक्रिय सहयोग से एक नाट्य दल का 'रंगपीठ' नाम से गठन किया। रंगपीठ की पहली प्रस्तुति थी सर्वेश्वर जी लिखित नाटक 'अब गरीबी हटाओ'। अपनी संरचना में ये नाटक बेहद ही सरलीकृत है। एक क्रूर एवं जनद्रोही सत्ता द्वारा ग्रामीण समाज का नंगा शोषण। लेकिन सर्वेश्वर जी ने इस नाटक में गीत भी जोड़े हैं जिनके कारण नाटक को एक अलग आयाम मिलता है। इस प्रस्तुति में उसने एक प्रयोग किया सत्ता से जुड़े जितने चरित्र थे उनके 'पपेट' बनवाये जिनकी डोरियां काले कपड़ों में ढकी छायाओं के हाथों में थमा दीं और जो आम जन थे वे सब हाड़ मांस के सीधे सच्चे लोग। एक और प्रयोग था, दो ढाई फुटे पुतले अपने पांव पर चलते थे जबकि हाड़ मांस के लोग रेंगते घिसटते थे। नाटक के नट नटी उसने कोरस में तब्दील कर दिये थे। गीतों का प्रभावी संगीत संयोजन ब.व. कारंत ने किया था। इस सबसे नाटक की प्रस्तुति अपने प्रभाव में सरलीकृत बिल्कुल नहीं रह गयी थी।

इसके बाद उसने रंगपीठ से दूसरा नाटक किया कथा कही एक जले पेड़ ने। जापान प्रवास के दौरान अंग्रेजी में अनुदित किजिमाहजिमे की छोटी सी कहानी इसी शीर्षक से उसे उपलब्ध हुई थी। ये कहानी एक दृष्टांत कथा जैसी है, जो बंदरों की दुनिया के बारे में है जिनकी रानी बला की खूबसूरत और परम बुद्धिमती थी और अमर होना चाहती थी। अमर होने की उसकी यह इच्छा पूरी वानर जाति के नाश का कारण बनती है। पूरी कहानी भूतकाल में घटित है जिसे एक जला पेड़ हमें सुनाता है। पहली बार पढ़ कर ही उसे लगा था कि ये कहानी तो अपने में एक सम्पूर्ण नाटक समेटे है। कहानी को आधार बना कर उसने खुद एक नाट्य आलेख तैयार किया और बहावलपुर हाउस के उस समय के अपेक्षाकृत अधिक खुले प्राकृतिक परिवेश में उसका मंचन किया। इस प्रस्तुति में एक सघन पेड़ पर अलग अलग ऊंचाइयों पर तीन मचान थे जिन्हें बांस की सीढ़ियां एक दूसरे से जोड़ती थीं। ये मचान रानी एवं उसके कंचुकी के लिए थे। सबसे नीचे का तल कंचुकी के लिए, बीच का मचान जहां रानी चित्रकार सुकीतोरी में और सोनोतोरीमें से भेंट करती हैं और जहां कंचुकी की भी रसाई

है। सबसे ऊपर वाला तल रानी का निजी तल था जिसकी ऊंचाई जमीन से लगभग तीस फुट थी। एक तालाब भी खोदा गया था, जिसके ऊपर एक बांस का पुल था। एक ऐसा पेड़ भी उसे वहीं मिल गया जो अपनी बनावट में झुलसा हुआ लगता था। जमीन में बांस गाड़ कर एक पूरे जंगल का आभास भी पैदा किया गया था। झुलसा सा दिखने वाले पेड़ पर भी एक छोटा सा मंचान था जिस पर दो अभिनेता बैठ कर बीच बीच में कहानी के कुछ अंश 'नरेट' करते थे। सारी प्रस्तुति आशु अभ्यासों के माध्यम से तैयार की गयी थी। अभिनेताओं में मध्यवर्गीय शौकिया रंगमंच से जुड़े युवक युवतियों के साथ पारम्परिक नट एवं अन्य लोककलाओं से जुड़े लोग भी थे।

इस नाटक के मंचन में सबसे बड़ी चुनौती थी कि अभिनेता वानरों का शैलीकृत अभिनय करते हुए भी कहानी के गम्भीर आशयों को उनकी समग्रता में दर्शकों को सम्प्रेषित करें। क्योंकि, अक्सर जैसे ही हम बंदर बनते हैं तो हम ख्यामखाह की उछलकूद शुरू कर देते हैं। उससे भी बड़ी चुनौती थी उन बांस की सीढ़ियों पर चढ़ती उतरती रानी बंदरों सी सहज दिखे और उसका सौन्दर्य तथा गरिमा भी नष्ट न हो। अंदाजा किया जा सकता है कि शौकिया रंगकर्म करने वाले या फिर नट अथवा लोककलाओं से जुड़े लोगों के साथ एक ऐसी कहानी का प्रामाणिक मंचन जिसके आशय बहुत गहरे और बहुआयामी हों, और उन पात्रों के माध्यम से घटित होते हों जो अपनी मूल प्रकृति में वानर हैं आसान तो नहीं रहा होगा।

'कथा कही एक जले पेड़ ने' के तुरंत बाद उसने 'चंदरिमा सिंह उर्फ चमकू' नाम से, चीन के प्रसिद्ध लेखक लू शुन की रचना 'आ क्यू की सच्ची कहानी' से प्रेरित, अपना नाटक, नाट्य विद्यालय के छात्रों के साथ किया। इस नाटक में बिहार के नक्सल प्रभावित क्षेत्र सोनपट्टी पर बसे छोटे से गांव 'इकबारी' की पृष्ठभूमि में, एक ऐसे समाज का चित्रण है जो देश की मुख्यधारा में आये तमाम सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों को नकारता, अभी भी सामंती मूल्यों से चिपटा है। गांव के पुराने जमींदार और ऊंची जाति के लोग अपने बच्चों को शहर में पढ़ा लिखा रहे हैं, लेकिन गांव के सामंती चरित्र को बनाये रखने के लिए पूरी तरह चौकस हैं। इनमें आपस में प्रतिस्पर्धा भी है लेकिन आपसी हिंता के लिए स्वार्थपरकता भी। इस गांव में 'चमकू' भी है, जो निपट अकेला मंदिर की छोटी सी कोठरी में हर तरह के अभाव और दुल्कार का जीवन जीते हुए भी अपने में अकड़फूँ बना सबके कुत्सित मनोरंजन का साधन है, क्योंकि वह भी ठाकुर साहब की बिरादरी का है, बुरे दिनों के चलते गुरबत में है तो क्या? जब जिसको जरूरत होती है चमकू से बेगार लेता है, इसके अलावा और कोई सरोकार किसी का उससे नहीं।

ऐसे में गांव के ठाकुर की हत्या हो जाती है और एक नक्सलवादी हस्तलिखित पोस्टर गांव में टांग दिया जाता है। गांव में सन्नाटा पसर जाता है, सब लोग डरे सहमे जाते हैं, खासकर जमींदार लोग। चमकू लेकिन खुश है, जिस गांव ने उसे हमेशा दुल्कारा, उसे इस तरह डरा पाकर वह एक अजीब सी मुक्ति का अनुभव कर रहा है। अपना सीना फुलाये वह जिधर से गुजरता है, लोग डर से और सिमट जाते हैं। सुकुल मेहराज उसकी खुशामद करना चाहते हैं तो वह उन्हें डपट देता है। जिस गांव में उसका अस्तित्व नाली के कीड़े जैसा था, आज वहां उसका आतंक है। इस सब से मगन वह अपनी कोठरी में; अपने जीवन की शायद सबसे मीठी नींद सो रहा होता है कि रात के सन्नाटे में भारी तादाद में आयी पुलिस उसे घेर लेती है। पुलिस का कप्तान भोंपू पर 'चंदरिमा सिंह उर्फ चमकू वल्द नामालूम' को बाहर आने की ताकीद करता है। सहमा हुआ चमकू बाहर आता है और अपने को चारों ओर से हथियारों से घिरा पाकर, डर कर भागता है तो फायर शुरू हो जाता है और वह वहीं ढेर हो जाता है। गांव से देसी कट्टा मंगा कर उसके हाथ में देकर फोटो उतारा जाता है। भले

लोगों की गवाही होती है, और समाज के दुश्मन चमकू को शिकार किये हुए शेर की तरह, बहादुरी से घसीट कर मंच से परे कर दिया जाता है।

इस नाटक का प्रदर्शन, नाट्य विद्यालय परिसर में खुले में किया गया। दर्शकों को बीच में जमीन पर गद्दियां लगा कर बैठाया गया। उनके चारों ओर गांव बसा था। गांव का कुआं था। अगर चाय तथा पान की दुकान थी तो गिरजाघर भी। मेला, नौटंकी आदि सभी कुछ था। इक्कीस दृश्यों का यह नाटक स्थान और काल के निरूपण में सिनेमा जैसा विस्तार और वैसी ही चुस्ती रखता है। एक जगह कार्य व्यापार सम्पन्न होता तो तुरंत दूसरी जगह शुरू हो जाता है। नाटक में संवाद भी बेहद कम हैं, सिनेमा की ही तरह। अंत तक आते आते तो संवाद बहुत ही कम रह जाते हैं। किसी किसी दृश्य में तो एक भी संवाद नहीं है। लेकिन दर्शकों के लिए यह अनुभव सिनेमा के अनुभव से बिल्कुल भिन्न था। नाटक के बीचोंबीच बैठे दर्शक स्वयं भी नाटकीय कार्य व्यापार का हिस्सा हो जाते थे, जो सिनेमा में सम्भव नहीं होता 3D के बाद भी नहीं।

अवधि भाषा में संवादों की चुटीली, धारदार लय, और गिरजाघर के पादरी और नन, मंदिर का पुजारी, शराब का ठेकेदार, बाबू साहब, सुकुल मेहराज, पालकी ढोते कहार और उस पर सवार शहर से लौटता बाबू साहेब का लड़का, सर पर धान की बोरियां ढोते चमकू और बुधवा, ओसारे में धान कूटता चमकू, विधवा फूला का तिरिया चरित्र, कुएं में कूद कर जान देने का नाट्य करती सुकुल मेहराज की बहू, मेले में जुआ खिलाने वाले, नौटंकी नाचने गाने वालियां, कुएं की मुंडेर पर बैठा अपनी बनियान से जुएं बीनता बुधवा यानि कि ढेर सारे अलग अलग चरित्र और उनका कार्य व्यापार, कथावस्तु के पार, एक सम्पूर्ण संस्कृति अनुभव भी बना जो उपन्यासों में तो फिर भी सम्भव हो पाता है, लेकिन नाटकों में उतना नहीं। इतने सब विस्तार को समेटने के बाद भी नाटक की प्रदर्शन अवधि दस मिनट के अंतराल के साथ केवल दो घंटा थी। ऐसा मंच के कौशलपूर्ण विधान और नाट्य गति के चुस्त होने के कारण सम्भव हुआ। यह प्रस्तुति एक और कारण से भी चर्चा का विषय बनीं, उसे यह नाटक नाट्य विद्यालय के द्वितीय वर्ष के छात्रों के साथ करना था, वह और कक्षा के तमाम छात्र मनोयोग से नाटक की तैयारी में लगे थे इसके लिए उन्होंने चार पांच दिन उन्नाव के पास एक गांव में भी बिताये थे ताकि वह ग्रामीण संस्कृति का प्रत्यक्ष अनुभव ले सकें। विद्यालय में नाट्याभ्यास आरम्भ होने के साथ ही उसे महसूस होने लगा था कि विद्यालय के भीतर और बाहर कुछ लोग कक्षा के पांच छः छात्रों के माध्यम से व्यवधान पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। यह सब तत्कालीन विद्यालय के निदेशक बृजमोहन शाह को अस्थिर करने के लिए था। या दिन ब दिन आकार लेती प्रस्तुति की सफलता उन्हें नहीं पच रही थी, यह सब जानने के फेर में न पड़ कर वह अपने काम में लगा रहा। लेकिन एक दिन स्थिति ने विस्फोटक रूप ले ही लिया। उस दिन अभ्यास के दौरान ये चार पांच छात्र अजीब व्यवहार कर रहे थे कोई उल्टियां कर रहा था, किसी की जबान लड़खड़ा रही थी। पूछने पर उन्होंने बताया कि उनकी तबियत ठीक नहीं है तो उसने उन्हें आराम करने के लिए कह कर भेज दिया और बचे हुए छात्रों के साथ काम जारी रखा। अभ्यास समाप्त हुआ तो दो चार छात्र बहुत गुस्से में उसके पास आये और उससे शिकायत की कि यह लोग शराब पीकर आये थे और कई दिनों से जानबूझ कर प्रस्तुति में बाधा डालने की कोशिश कर रहे हैं। उसने कहा उसका कार्यक्षेत्र नाट्य प्रस्तुति तक सीमित है, विद्यालय का अनुशासन देखना निदेशक का काम है वह इसमें नहीं पड़ेगा। दूसरे दिन निदेशक शाह ने तमाम छात्रों के साथ सभा की, जिसमें विद्यालय के दूसरे प्राध्यापकों के साथ वह भी आमंत्रित था। सभा में अजीब नजारा था विद्यालय के तमाम छात्र इन पांच छः छात्रों के आपत्तिजनक व्यवहार पर उनके विरुद्ध एकमत थे और उनके खिलाफ



अनुशासनात्मक कार्रवाई की मांग कर रहे थे। निदेशक ने सभी छः सात छात्र छात्राओं को तुरंत विद्यालय से निष्कासित करने का निर्णय किया इससे प्रस्तुति के लिए भी संकट पैदा हो गया। निष्कासित छात्र प्रस्तुति में अहम भूमिकाएं निभा रहे थे और नाटक का प्रदर्शन भी करीब आन पहुंचा था। ऐसे में विद्यालय के सभी छात्र प्रस्तुति से जुड़ गये और जो नाटक केवल द्वितीय वर्ष के छात्रों के साथ होना था वह पूरे विद्यालय के छात्रों की सामूहिक प्रस्तुति में बदल गया। स्वाभाविक ही छात्रों का यह निष्कासन अखबारों में बड़ी खबर बना और नाट्यजगत के बाहर भी इस खबर ने खासा हंगामा खड़ा कर दिया। इस सब हंगामे के बीच जब नाटक के प्रदर्शन आरम्भ हुए तो जहां एक ओर दर्शकों की भारी तादाद होती थी वहीं अखबार वालों का भरपूर जमावड़ा भी। जाहिर है वे लोग वहां नाटक से इतर किसी खबर की तलाश में होते थे। लेकिन 'खबर गर्म थी, गालिब के उड़ेंगे पुर्जे, देखने हम भी गये तमाशा न हुआ।' तमाशा तो न हुआ, पर नाटक हुआ और खूब जमा।

वह एक साल के लिए दिल्ली के श्रीराम सेण्टर फॉर परफॉर्मिंग आर्ट्स का डायरेक्टर भी रहा। और यहां अपनी पहली प्रस्तुति के लिए उसने जो नाटक चुना वह था ऑर्थर मिलर का विश्व प्रसिद्ध नाटक 'डैथ ऑफ ए सेल्समैन'। इस नाटक की पृष्ठभूमि अमरीका की प्रथम आर्थिक मंदी का काल है जिसने मध्यवर्गीय लोगों को तोड़ कर रख दिया था। लेकिन उसने इस नाटक को 30 के दशक की समसामयिक दिल्ली में रूपांतरित करने का निश्चय किया। जिसने भी इस बारे में सुना उसे हैरत हुई, क्योंकि विश्व प्रसिद्धि के बावजूद यह नाटक 'टिपिकल अमेरिकन नाटक' के रूप में जाना जाता है। लोगों के लिए भारतीय परिवेश में इसका रूपांतरण अकल्पित था। उसके रूपांतरण में मिलर का सेल्समैन देश के विभाजन के बाद विस्थापित होकर आया रामदास कपूर बन गया जो कि जगह जगह घूम कर ऑटोमोबाइल पार्ट्स बेचता है और समाज में अपनी एक हैसियत बनाना चाहता है। इस क्रम में वह कई झूठ भी जीता है जिनका प्रभाव उसके परिवार पर तो पड़ता ही है, वह स्वयं भी इन झूठों का शिकार बनता है और हर ओर की यह असफलता उसे तोड़ कर रख देती है। विभाजन के बाद पैदा हुए अपने दोनों बेटों से, जो अब जवान हो रहे हैं, उसको बड़ी बड़ी किन्तु अवास्तविक अपेक्षाएं हैं। यह बाप और बेटे आपस में हिन्दी में बात करते हैं, घर में केवल रामदास की पत्नी पंजाबी बोलती है। 'एक सपने की मौत' शीर्षक से खेले गये इस नाटक ने जैसा तादात्म्य अपने दर्शकों से स्थापित किया वैसा तादात्म्य किसी भी विदेशी क्लासिक की अनुदित कृति से कभी बनते कम से कम उसने तो नहीं देखा।

1982 में दिल्ली में एशियन गेम्स आयोजित किये गये और देखते ही देखते न केवल दिल्ली की सूरत बदली बल्कि उसका चरित्र भी बदला। अब तक जो दिल्ली अपने निरंतर विस्तार के बावजूद मानवीय संवेदनाओं से शून्य नहीं थी, और जिसकी सड़कें अभी भी पैदल चलने वालों के लिए सुगम और सुरक्षित थीं, अचानक हड़बड़ा गयी।

'दूरदर्शन' का भी इन्हीं दिनों तेजी से विस्तार हो रहा था, जिसके चलते कई नये कार्यक्रमों की आवश्यकता हुई। भारतीय टेलिविजन पर धारावाहिक अभी तक नहीं दिखाये जाते थे, अब उनका भी क्रम शुरू हुआ। 'हम लोग' धारावाहिक के लिए ऑडिशन शुरू हुए, तो रंगमंच से जुड़े तमाम छोटे बड़े लोग कतार में लग गये। उसको साफ समझ में आ रहा था कि अब कम से कम अगले दस वर्ष दिल्ली में रंगमंच सम्भव नहीं है। यह भी, कि यह सिलसिला सिर्फ दिल्ली में ही सीमित रहने वाला नहीं है, अन्य प्रांतों में भी इसका प्रसार होगा और जयपुर, लखनऊ जैसे केंद्रों पर भी रंगकर्म आसान नहीं रह जायेगा। तो उसके लिए भी सवाल पैदा हुआ कि वह क्या करे? कहां जाये?

**शेष अगले अंक में**

# उत्पीड़ित और अपमानित लोगों का संसार

मोहम्मद मसूद

साहित्य के गम्भीर और जुनूनी अध्येता हैं मोहम्मद मसूद। मित्रों के आग्रह और दबाव पर ही लिखते हैं लेकिन कलम के धनी। थोड़ा विलम्ब हुआ; फिर भी; मंटो की जन्मशती पर यह लेख।

“यह उस जमाने का वाक्या है जब उन्होंने अपनी जिन्दगी की बीस मंजिलें भी तय नहीं की थीं। उन दिनों हर जगह मास्टर खुदाबख्श के कारनामों की चर्चा थी जिन्होंने आंखों पर पट्टियां बंधी होने के बावजूद पिकेडली में कार चला कर लंदन में सनसनी फैला दी थी। उसके कुछ दिनों बाद अमृतसर में एक व्यक्ति आया जिसका नाम शायद अल्लाहरखा था। उसका दावा था कि वह मास्टर खुदाबख्श का उस्ताद था और दहकते हुए अंगारों पर चल सकता था। उसे आग पर सही सलामत देखने के लिए लोग टूट पड़े थे। एक रोज उसने एक नयी बात की। उसने ऐलान किया कि किसी शख्स को अगर खुदा और मेरे ऊपर एतमाद हो तो वह भी दहकते अंगारों पर चल सकता है; उसका बाल भी बांका नहीं होगा। वहां जमा भीड़ ने एक नजर अंगारों को देखा और फिर कुछ पीछे हट गयी जैसे हर व्यक्ति को यह डर था कि मास्टर अल्लाहरखा उसी को अपने साथ आग पर चलने को मजबूर करेगा। उसने एक बार फिर आवाज लगायी और पहले की तरह वह भी फिजा में खो गयी। मजमे पर बदस्तूर मुकम्मल खामोशी तारी थी हर शख्स दमबखुद बैठा था। अचानक एक नवजवान मजमे को चीरता हुआ आगे बढ़ा। शायद वह इस बात का यकीन कर लेना चाहता था कि कोई और तो आग पर चलने की हिम्मत नहीं करता और वह इसीलिए रुका हुआ था। हर शख्स मुंह ही मुंह अपनी सी कह रहा था। मास्टर अल्लाहरखा की हिदायत के मुताबिक दुबले पतले नौजवान ने अपने जूते और मोजे उतारे ओर पाजामे के पाइंचे चढ़ा लिए। फिर आवाज गूंजी कि अपने अंगूठे अंदर की तरफ

कर लो, कलमा पढ़ो और मेरे साथ आ जाओ। मजमा यह सोच भी नहीं पाया था कि यह सब क्या हो रहा है कि नौजवान मास्टर अल्लाहरखा के साथ अंगारों पर से गुजर भी चुका था। वह हक्काबक्का होकर अपने तलवे देख रहा था जिनमें आबलों या जलन का नामोनिशान तक न था। दूसरी तरफ मजमे ने तालियां बजा बजा कर आसमान सर पर उठा लिया।

“आम मजमे में सआदत हसन की प्रशंसा और उनके गुणगान का यह पहला अवसर था। सामूहिक जीवन में कदम रखने की यह कोई बहुत अच्छी शुरुआत नहीं थी क्योंकि मंटो मामू उसके बाद हमेशा अंगारों पर चलते रहे।” (मंटो मामू ले. हामिद जलाल)

यह एक बानगी है जिसमें भीड़ में शामिल युवा सआदत हसन ने अंगारों पर चल कर अपने को पहचानवाया और वाहवाही लूटी। आग पर चलने की यह घटना कोई असाधारण घटना नहीं है। इस तरह की करतबबाजियां आयेदिन हर शहर में होती रहती हैं और अक्सर नौजवान और बच्चे भीड़ की प्रशंसा बटोरते रहते हैं लेकिन उनमें से कितने हैं जो अपने पराक्रम के बल पर आगे चल कर किसी भी क्षेत्र में अपने को साबित कर पाते हों। इस घटना की जो बात विशेष महत्व रखती है वह है चुनौती स्वीकार करने का युवा सआदत हसन का अदम्य साहस। बाद में अपनी सृजनात्मक लेखन प्रक्रिया के दौरान सामाजिक बंधनों और दोमुंहे नैतिक मूल्यों और आदर्शों को चुनौतियां देते और चुनौतियां स्वीकार करते हुए उन्होंने न केवल उर्दू के सर्वाधिक चर्चित और महत्वपूर्ण कथाकार के रूप में अपने को सिद्ध किया बल्कि साहित्य जगत का भी एक बुनियादी हवाला बन गये। इसके लिए सआदत हसन को अंगारों पर से गुजरना ही था, सो वह गुजरते रहे।

सआदत हसन मंटो को कुल 42 वर्ष 8 महीने 9 दिन की जिन्दगी मिली (जन्म 11 मई 1912, निधन : 18 जनवरी 1955) इसमें उनका सक्रिय साहित्यिक जीवन मुश्किल से 20-21 वर्षों का है। इतना कम समय तो किसी रचनाकार को स्वयं अपने को समझने और दर्याप्त करने के लिए भी पर्याप्त नहीं होता। मंटो का इस संक्षिप्त जीवन लम्बी बीमारियों, तरह तरह के विवादों और उन पर मुकदमेबाजियों, बीच बीच में बेरोजगारी की यातनाओं और अर्धविक्षिप्तता के लम्बे अंतरालों से भरा हुआ है। इसके बावजूद उन्होंने साहित्य जगत को लगभग 230 कहानियों, 100 से अधिक ड्रामों (रेडियो नाटक/फीचर) बड़ी संख्या में लेखों, संस्मरणों और अलग अलग क्षेत्रों के विशिष्ट व्यक्तियों पर अत्यंत रोचक एवं जीवंत खाकों का विशाल रचनना संसार दिया। कई पुस्तकों व लेखों के अनुवाद किये और कई पत्र पत्रिकाओं में कालम और सम्पादकीय भी लिखे। अपनी कमजोरियों, आवारागर्दियों, दोस्तियों और दुश्मनियों के सम्बंध में लिखा और साहित्य, कला, नैतिकता और सामाजिक राजनीतिक प्रश्नों पर भी अपने विचार खुल कर व्यक्त किये।

मंटो का प्रारम्भिक जीवन अमृतसर में गुजरा। 1919 में जलियांवाला बाग की घटना के समय वह मात्र सात वर्ष के थे। इस लोमहर्षक घटना का उनके मन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी पहली कहानी ‘तमाशा’ और बाद की एक कहानी ‘1919 की एक बात’ इसी घटना पर आधारित है। भारत की स्वतंत्रता का राष्ट्रीय आंदोलन, आजादी के लिए भगत सिंह और दूसरे युवा क्रांतिकारियों की कुर्बानियां, विश्वयुद्ध, बंगाल में भयंकर अकाल, देश विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों का अचानक सिलसिला ये सारी घटनाएं मंटो के जीवन में हुईं और इन सबका प्रभाव, किसी का कम किसी का अधिक, उनकी रचनाओं में हमें नजर आता है। उनका प्रारम्भिक जीवन बहुत असंतोषजनक और बेचैनी भरा था। औपचारिक शिक्षा बस मैट्रिक तक हो पायी। एफ.ए. में दो बार फेल होने से पढ़ाई से दिल पूरी तरह उचाट हो गया और उस पर बुरी संगत और शराब व जूए की लत अलग से। अंग्रेजों से नफरत बचपन से थी। भगत सिंह की फांसी ने उसमें और शिद्दत पैदा कर दी। अपने उन दिनों

को याद करते हुए मंटो लिखते हैं “यह वह जमाना था जब मैंने आवारागर्दी शुरू कर रखी थी। तबियत हर वक्त उचाट उचाट सी रहती थी। एक अजीब किस्म की खुदबुद हर वक्त दिलोदिमाग में होती रहती थी। जी चाहता था कि जो चीज भी सामने आये उसे चखूं खाह वह इंतहा दरजे की कड़वी क्यों न हो। तकियों में जाता था। कब्रिस्तानों में घूमता था। जलियांवाला बाग में घंटों किसी सायेदार दरख्त के नीचे बैठ कर किसी ऐसे इंकालब के ख्वाब देखता जो चश्मोजदन (पलक झपकते) में अंग्रेजों की हुकूमत का तख्ता उलट दे।”

दुविधा भरे इन दिनों में मंटो की मुलाकात साम्यवादी विचार वाले विद्वान और पत्रकार बारी अलीग से होती है जिन्होंने युवा सआदत हसन को अध्ययन और लेखन का रास्ता दिखाया और उनमें राजनीतिक समझ पैदा की। मंटो ने बारी अलीग के इस उपकार का वर्णन इन शब्दों में किया है “आजकल मैं जो कुछ भी हूं उसको बनाने में सबसे पहला हाथ बारी साहब का है। अमृतसर में उनसे मुलाकात न होती और लगातार तीन महीने मैंने उनकी सोहबत में न गुजारे होते तो यकीनन मैं किसी और ही रास्ते पर गामजन होता।”

बारी अलीग ने ही मंटो को मार्क्स, लेनिन और हीगल आदि से परिचित कराया। उन्हीं के कहने पर मंटो ने विकटर ट्यूगो की एक पुस्तक का अनुवाद किया और फिल्मी कालम लिखने शुरू किये। यह बारी साहब ही थे जिन्होंने मंटो के अंदर छिपी लेखकीय सृजनात्मकता को पहचाना और उनके शुरुआती लेखन पर उनका उत्साह बढ़ाया। इस सम्बंध में बारी अलीग लिखते हैं “अप्रैल 1933 मसावात (बारी साहब के सम्पादन में अमृतसर से निकलने वाली पत्रिका) के फिल्मी कालम में मंटो नमूदार हुआ। मंटो की अदबी जिन्दगी का यह पहला कदम था जिस पर वह बहुत शादां था। मेरा खयाल है कि इन सतरों की आशाअत (प्रकाशन) ने ही सआदत के अंदर छुपे हुए अफसानानिगार को बेदार किया था।”

इस पहले कदम के साथ मंटो लेखन के क्षेत्र में आगे बढ़ते रहे। उन्हींने गोर्की, चेखोव, पुश्किन, गोगोल, मोपांसां जैसे साहित्यकारों को पढ़ा, आस्कर वाइल्ड के ड्रामे ‘वीरा’ का अनुवाद किया, गोर्की पर लम्बा लेख लिखा और एक साहित्यिक पत्रिका के रूसी साहित्य विशोशांक के सम्पादन में हिस्सेदारी की। अंग्रेजों से नफरत अब भी थी और क्रांति के रूमानी सपने भी थे लेकिन अध्ययन और लेखन की बढ़ती गति और दोस्तों के साथ आवारागर्दियों के बीच मंटो को सृजनात्मक लेखन का चस्का लग गया और वह पूरी तरह साहित्य की दुनिया में रचबस गये। अब उनकी विशेष रुचि मनुष्यों के स्वभाव, उनके मनोविज्ञान, उनकी मानसिक एवं शारीरिक जरूरतों और जीवन की परिस्थितियों पर केन्द्रित हो गयी। किताबी ज्ञान के अतिरिक्त उनके वास्तविक ज्ञान के स्रोत वे नर नारी बने जो अपनी बदचलनी, नशेबाजी, गैरकानूनी कामों और उद्दंडता के लिए बदनाम थे और जिन्हें नैतिकता की चादर ओढ़े कुलीनवर्गीय समाज अच्छी नजर से नहीं देखता। इन बदनाम लोगों के बीच बैठने और बिल्कुल बराबरी की सतह पर उनसे मेलमिलाप ने मंटो को जीवन के रहस्य समझने में मदद दी, एक नयी अनुभूति और दृष्टि दी। कहते हैं कि आल इंडिया रेडियो में नौकरी के लिए मंटो ने जब प्रार्थनापत्र दिया तो अपनी योग्यता के बारे में लिखा कि ‘उनके पास रेडियो और उनके ग्राहकों, भड़वों और उनके तौर तरीकों, देह व्यापार और उसके वातावरण के बारे में पूरा पूरा ज्ञान मौजूद है’। मजे की बात यह है कि इस अनोखे प्रार्थनापत्र के आधार पर एक सरकारी प्रतिष्ठान ने मंटो को नौकरी दे भी दी। मंटो ने अपनी अधिकतर कहानियों में ऐसे ही लोगों को अपने पात्र बनाये। मंटो किन लोगों के बीच उठते बैठते थे इस सम्बंध में उर्दू के प्रसिद्ध आलोचक और मंटो की कला के व्याख्याता मुहम्मद हसन अस्करी लिखते हैं “मंटो की दृष्टि में कोई भी मनुष्य मूल्यहीन नहीं था। वह हर मनुष्य से इस आशा

के साथ मिलता था कि उसके अस्तित्व में अवश्य कोई न कोई अर्थ छुपा होगा जो एक न एक दिन प्रकट हो जायेगा। मैंने उसे ऐसे अजीब आदमियों के साथ हफ्तों घूमते देखा है कि हैरत होती थी मंटो उन्हें बर्दाश्त कैसे करता है। लेकिन मंटो बोर होना जानता ही न था। उसके लिए तो हर मनुष्य जीवन और मानव प्रकृति का एक मूर्त रूप था; सो हर व्यक्ति दिलचस्प था। अच्छे और बुरे, बुद्धिमान और मूर्ख, सभ्य और असभ्य का प्रश्न मंटो के यहां जरा न था। उसमें तो इंसानों को कुबूल करने की क्षमता इतनी अजीब थी कि जैसा आदमी उसके साथ हो वह वैसा ही बन जाता था।”

मंटो ने अपने अफसानों में समाज के अत्यंत उत्पीड़ित और अपमानित वर्गों वेश्याओं, उनके दलालों, उनके गाहकों, चरित्रहीन मर्दों औरतों और अत्याचार एवं अभाव सहते सहते गुंडे और मवाली बन जाने वाले इंसानों को पात्र बनाये हैं। उनकी कहानियों की स्त्रियां ऐसी नारियां हैं जिनसे आमतौर पर समाज नफरत करता है। चोर, गिरहकट और धोखा देने वाले लोग भी उनकी कहानियों के नायक बनते हैं। ऐसा लगता है कि लकीर के फकीर और समाज के नैतिक नियमों के अनुसार सीधे रास्ते पर चलने वाले लोगों से उन्हें अधिक दिलचस्पी नहीं है इस विषय में स्वयं मंटो अपने लेख ‘अदबे जदीद’ में लिखते हैं ‘मेरे पड़ोस में अगर कोई औरत हर रोज खाविन्द से मार खाती है और फिर उसके जूते साफ करती है तो मेरे दिल में उसके लिए जर्ज बराबर हमदर्दी पैदा नहीं होती लेकिन जब मेरे पड़ोस में कोई औरत अपने खाविन्द से लड़ कर और खुदकुशी की धमकी देकर सिनेमा देखने चली जाती है और मैं खाविन्द को दो घंटे तक सख्त परेशानी की हालत में देखता हूं तो मुझे दोनों से एक अजीबोगरीब किस्म की हमदर्दी पैदा हो जाती है। किसी लड़के को लड़की से इश्क हो जाये तो मैं उसे जुकाम के बराबर भी अहमियत नहीं देता मगर वह लड़का मेरी तवज्जोह को जरूर खींचेगा जो जाहिर करे कि उस पर सैकड़ों लड़कियां जान देती हैं लेकिन दर हकीकत वह मुहब्बत का उतना ही भूखा है जितना बंगाल का फाकाजदा बाशिन्दा। इस बजाहिर कामयाब आशिक की रंगीन बातों में जो ट्रेजडी सिसकियां भरती होगी, उसको मैं अपने दिल के कानों से सुनूंगा और दूसरों को सुनाऊंगा। चक्की पीसने वाली औरत जो दिन भर काम करती है और रात को इत्मीनान से सो जाती है मेरे अफसानों की हीरोइन नहीं हो सकती। मेरी हीरोइन चकले की एक टखियाई रंडी हो सकती है जो रात को जागती है और दिन को सोते में भी कभी कभी यह डरावना ख्वाब देख कर उठ बैठती है कि बुढ़ापा उसके दरवाजे पर दस्तक देने आया है। उसके भारी भारी पपोटे जिन पर बरसों की उचटती हुई नीडें मुंजमिद (जम गयी) हो गयी हैं, मेरे अफसानों का मौजू बन सकते हैं। उसकी गलाजत, उसकी बीमारियां, उसका चिड़चिड़ापन, उसकी गालियां, यह सब मुझे भाती हैं। मैं उनके मुताल्लिक लिखता हूं और घरेलू औरतों की शुस्ताकलामियों (शिष्ट बातचीत), उनकी सेहत और उनकी नफासतपसंदी को नजरअंदाज कर जाता हूं।”

मंटो ने अपने अनुभवों और एक कल्पनाशील रचनाकार की दृष्टि से समाज में बिल्कुल निचले स्तर पर धिनौने काम करने वालों को अपनी कहानियों में जगह दी। बड़े शहरों की गंदी, बदबूदार गलियों की खोलियों में रहने वाली लड़कियों के बारे में लिखा जो पेट की आग और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए अपना शरीर बेचने पर अभिशप्त थीं। परिस्थितियों के दबाव में जिस दाम भी सौदा पट जाये; अपने गाहकों की यौन इच्छाओं को पूरा करने पर मजबूर थीं। उनकी यह हैसियत ही नहीं थी कि वह गंदे से गंदे, कुरूप से कुरूप व्यक्ति से यौन सम्बंध से इन्कार कर दें। मंटो ने उनके जीवन की घटनाओं और उनके आसपास के वातावरण का चित्रण बहुत बेबाकी और निर्मम ढंग से किया। वेश्यावृत्ति और यौन प्रकरणों को विषयवस्तु बनाने के लिए मंटो को आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। उन पर अश्लीलता के आरोप लगे। उनके अफसानों काली शलवार, धुआं, बू,

खोल दो, ठंडा गोश्त, ऊपर नीचे और दरम्यां और उनके लेख अदबे जदीद के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई हुई। सबसे यातनापूर्ण मुकदमा उन्हें ठंडा गोश्त के सिलसिले में भुगतना पड़ा जो पाकिस्तान में उनका पहला अफसाना था। लाहौर की निचली अदालत ने उन्हें सजा सुनायी। सेशन कोर्ट से वह बरी हो गये लेकिन हुकूमत ने हाई कोर्ट में अपील कर दी और हाई कोर्ट ने तीन सौ रुपये जुर्माने या एक महीने के कठोर कारावास की सजा सुनायी। मंटो ने अपने ऊपर चले मुकदमों पर विस्तार से लिखा है और यौन संदर्भों एवं अश्लीलता आदि के विषय में अपने विचार स्पष्ट किये हैं। न्यायिक प्रणाली और मुकदमे की लम्बी प्रक्रिया के दौरान पल पल किन यातनाओं से गुजरना पड़ा, इन सबका सजीव चित्रण उनकी आपबीतियों में मौजूद है। मंटो ने वेश्यावृत्ति, चरित्रहीनता और यौन विषयों पर कुछ कहानियां अवश्य लिखीं लेकिन इन विषयों पर लिखने वाले वह कोई पहले लेखक नहीं हैं। उर्दू साहित्य की काव्य परम्परा तो इन विषयों से भरी पड़ी है। स्वयं उर्दू कथा साहित्य में मिर्जा हादी रुसवा की 'उमराव जान' से लेकर अब तक वेश्यावृत्ति, तवायफों और यौन संदर्भों पर अनेक उपन्यास और कहानियां मौजूद हैं। वास्तविकता तो यह है जैसाकि एक आलोचक का विचार है कि यौन विषयों पर लिखने वाले तमाम साहित्यकारों में मंटो की रचनाएं सबसे अधिक साफ सुथरी हैं। मंटो जिस समय/काल में लिख रहे थे उन्हीं दिनों कुलीन वर्ग के कुछ शिष्ट और उच्च नैतिक मूल्यों के पैराकार छद्म नामों से यौन कामुकता से भरपूर अत्यधिक अश्लील उपन्यास लिख रहे थे जिन्हें कुलीन और मध्यवर्ग के चरित्रवान लड़के और लड़कियां बड़े चाव से पढ़ रहे थे लेकिन छिपा कर। इन उपन्यासों के पात्र मंटो के विपदा के मारे पात्रों की तरह नहीं थे। ये विशुद्ध रूप से कामोत्तेजना भड़काने वाले और शरीर के पूरे भूगोल को खोल खोल कर बयान करने वाले किरदार थे। छद्म नामों से लिखे गये उपन्यासों को नजरअंदाज कर दें तब भी कम से उर्दू साहित्य में (शायद दूसरी भाषाओं के साहित्य में भी) वेश्याओं और दलालों सहित यौन संदर्भों पर प्रचुर मात्रा में साहित्य मौजूद है। सवाल उठता है कि इन विषयों पर लिख कर आखिर मंटो ही निशाना क्यों बने। इसकी वजह बहुत साफ है। अभी तक डेरेदार तवायफें, उनके मुजरे और उनके कोठे कुलीन घरानों के शरीफजादों को भाषाज्ञान और तहजीब सिखाने के केन्द्र के रूप में जाने जाते थे। कहानियों और उपन्यासों में इनका चित्रण सुंदरता और रोमांस के प्रतीक के तौर पर होता था। बताया जाता था कि किस सुंदर तवायफ के तीरेनजर से घायल किस नवाब ने उसके प्रेम में अपनी सारी सम्पत्ति गंवा दी और उसके कोठे का एक जोगी बन कर रह गया। यह तवायफों के कोठों पर होने वाली रंगीनियों की सुंदरता और प्रेम में अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने की रूमानी गाथा को प्रदर्शित करता था। सुसंस्कृत और सुंदर तवायफों की तुलना में मंटो की वेश्याएं समाज में व्याप्त गंदगी, उसकी कुरूपता और दोगलेपन को सामने लाती हैं। मंटो ने अपनी कहानियों और अन्य रचनाओं में यौन इच्छा को मनुष्य की मूलभूत प्राकृतिक इच्छा के रूप में लिया है। यह उतनी ही प्राकृतिक है जितनी पेट की भूख। जिस तरह खाना खाये और पानी पिये बिना रहा नहीं जा सकता ठीक उसी तरह नार्मल पुरुष और स्त्री चाहे वह राजे महाराजे हों, कुलीनवर्ग के धर्मभीरु सुसंस्कृत लोग हों या अत्यंत निचले स्तर पर जीवन गुजारने वाले श्रमजीवी; यौन इच्छाओं से मुक्त नहीं हैं। मंटो की कहानियों के चकले और उनमें रहने वाली वेश्याएं सुसंस्कृत बनाने के केन्द्र नहीं बल्कि मनुष्य की प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति के केन्द्र है। समाज के कुलीनवर्गीय तत्वों और मर्यादा एवं नैतिकता के प्रबंधकों को मंटो द्वारा प्रस्तुत कुरूपता और गंदगी की यह दुनिया अस्वीकार्य थी। उनका जुर्म यहीं पर खत्म नहीं होता। वह तो टखियाई रंडियों के दिलों को भी टटोलते हैं और उनमें नैतिक मूल्य, मानवता, धर्मभीरुता और उन संस्कारों को तलाश करते हैं जो समाज की दृष्टि में इन चरित्रहीन और गंदी नाली के कीड़ों में हो ही नहीं सकते। उदाहरण के लिए मंटो की

कहानी 'काली शलवार' देखिये। इस पूरी कहानी में यौन सम्बंधों का शब्दों में कहीं वर्णन नहीं है। केवल इशारे हैं। काली शलवार की वेश्या सुल्ताना सम्भ्रांत वर्ग के सौन्दर्यबोध के पैमाने पर खरी उतरने वाली कोई डेरदार तवायफ नहीं है। वह रोजी रोटी की समस्या से दिन रात जूझने वाली निचले दरजे की एक गरीब टखियाई है। लेकिन मंटो ने इस कहानी में एक अतिसाधारण और संस्काररहित स्त्री के रूप में उसके जीवन, उसकी आस्थाओं और उसकी प्राथमिकताओं को इस तरह पेश किया है कि कुलीन वर्ग की एक सभ्य घरेलू महिला और शरीर बेचने वाली एक रंडी की मनःस्थितियों का अंतर समाप्त हो गया। अच्छे घरों की शरीफ बीवियों की तरह सुल्ताना भी मुहर्रम में काले वस्त्र पहनना चाहती है। काली कमीज और काले दुपट्टे की व्यवस्था वह कर चुकी है और दिन रात इस चिन्ता में है कि काली शलवार का किसी तरह बंदोस्त हो जाये। मंटो ने काली शलवार की इच्छा को जिस कौशल और संवेदना के साथ वर्णित किया है उससे शरीफ और बाजारू औरत के बीच की दीवार ढह जाती है। सुसंस्कृत और आदर्श परिवार के लोगों के लिए यह बात कल्पना से परे है कि एक मामूली दर्जे की रंडी में भी धर्म और संस्कृति से जुड़े मामले में इतनी तीव्र और सुसंस्कारी इच्छा हो सकती है। यहां तो एक धार्मिक घरेलू स्त्री और बाजारू औरत में कोई फर्क ही नहीं रह गया। एक रंडी में इस तरह के संस्कार कैसे। रात के अंधेरे में पाप करने वाली एक स्त्री दिन के उजाले में सभ्य परिवारों की शालीन महिलाओं की तरह का वस्त्र धारण करे और उन्हीं की तरह आस्थावान हो, इसको सुसंस्कृत लोग आखिर किस तरह सहन करते। इस कहानी के लिए मंटो पर अश्लीलता के आरोप लगे। शरीफ और बाजारू औरत को किसी एक संदर्भ में भी बराबरी की सतह पर ले आना सभ्य समाज की नजर में अश्लीलता ही समझी जायेगी और समझी गयी। इसी तरह मंटो की बहुत ही सफल और चर्चित कहानी है 'हतक'। इस कहानी की सौगंधी भी बिल्कुल निचले तबके की एक रंडी है वह आये दिन अपने गाहकों को निपटाती है लेकिन इसी सौगंधी को घृणा से 'उंह' करके एक सेठ जब ठुकरा देता है और अपनी मोटर से तुरंत वापस चला जाता है तो एक पल के इस व्यवहार और अपमान से उसके कोमल हृदय को असहनीय चोट पहुंचती है। अपने अपमान पर अत्यंत उत्तेजित और आक्रोशित सौगंधी के मनोभावों को जिन शब्दों में मंटो ने कागज पर उतारा है वह उनकी वर्णनात्मक शैली का कमाल है

मंटो की कहानियां तथा उनकी अन्य रचनाएं मानवता से उनकी प्रतिबद्धता के साथ मानव मन के रहस्यों को समझने और मनोविश्लेषण की उनकी अपार क्षमता को दर्शाती हैं। उन्होंने हर वर्ग के लोगों को अपनी कहानियों और खाकों के पात्र बनाये हैं। उनके पात्र वास्तविक हैं। उनमें भांति भांति की बुराइयां भी है और वह खूबियां भी जो मनुष्य की प्रकृति में होती हैं। अपनी सृजनात्मकता और जीवन के अनुभवों की बदौलत ही उन्होंने कथा साहित्य को सौगंधी, रामलाल दल्लाल (हतक); बिशन सिंह (टोबाटेक सिंह); भोली (नंगी आवाजें); ईशर सिंह, कुलवंत कौर (ठंडा गोशत); मोजेल (मोजेल); जानकी, नरायन (जानकी); सुल्ताना, शंकर, खुदाबख्श (काली शलवार); रुकमा बाई, अब्दुल (पढ़िये कलमा) और मंगू कोचवान (नया कानून) सहित अनेक जीवंत पात्र दिये। मंटो की सबसे बड़ी ताकत भाषा और वर्णनात्मक शैली पर उनकी अदभुत पकड़ है। उनकी भाषा अत्यंत सरल और उनके चरित्रों और परिवेश के अनुसार होती है। यहां तक कि गूढ़ विषयों को भी सीधीसादी भाषा और कम से कम शब्दों में व्यक्त कर देते हैं। समाज की कटु सचाइयों और विरोधाभासों को रचनात्मक आयाम देने, यथार्थ और कल्पना के बीच समन्वय और पात्रों की मनोवृत्तियों को सूक्ष्म रूप से चित्रित करने तथा उन्हीं के अनुसार सहज परिवेश निर्मित करने में उन्हें जो महारत हासिल थी वह कम दिखायी देती है। इसीलिए मंटो की कहानियों का यथार्थ, यथार्थ होते हुए भी एक कलात्मक रूपक बन कर

हमारे सामने आता है। उनकी कहानियां हमें द्रवित करती हैं और हमारे हृदयों को विचलित भी। उन्हें पढ़ते हुए हम विस्मय और यातना के बीच से गुजरते हैं। पढ़ने में आसान और सादा सी लगने वाली मंटो की कहानियां संवेदना की सतह पर केवल महसूस की जा सकती हैं। उनकी समीक्षा और व्याख्या करना बहुत आसान नहीं है। इन अर्थों में वह अपने प्रिय शायर मिर्जा गालिब की तरह हैं जिनके शेरों की अनगिनत व्याख्याओं पर किसी दिलजले की टिप्पणी है कि अगर यह शरहें (व्याख्याएं) न होतीं तो गालिब के मुश्किल शेरों को समझना और उनसे लुत्फ लेना इतना मुश्किल न होता (मंटो की रचनाओं के कई शीर्षक गालिब के मिसरों पर आधारित हैं। उनके खाकों का संकलन 'गंजे फरिश्ते' मिर्जा गालिब को समर्पित है)। मंटो की कई कहानियां आत्मकथात्मक शैली में हैं। उनके कई पात्र थोड़ा बदले हुए रूप में अलग अलग कहानियों में नजर आते हैं। अपने बम्बई के अभिनेता मित्र श्याम के मरने पर उन्होंने 'मुरली की धुन' शीर्षक से लाजवाब खाका लिखा जिसमें श्याम का चित्रण बहुत बेतकल्लुफ और हर समय खुश रहने वाले इन्सान के तौर पर किया है। इस खाका में मंटो एक जगह लिखते हैं "अरसा हुआ जब तकसीम पर हिन्दू मुसलमानों में खूरेज जंग जारी थी और दोनों तरफ के हजारों आदमी रोजाना मरते थे, श्याम और मैं रावलपिण्डी से भागे हुए एक सिख खानदान के पास बैठे थे। उसके लोग अपने ताजा जख्मों की रुदाद सुना रहे थे जो बहुत दर्दनाक थी। श्याम मुतास्सिर हुए बगैर न रह सका। वह हलचल जो उसके दिलोदिमाग में मच रही थी, उसको भी मैं बखूबी समझता था। जब हम वहां से रुखसत हुए तो मैंने श्याम से कहा 'मैं मुसलमान हूं। क्या तुम्हारा जी नहीं चाहता कि मुझे कत्ल कर दो।'

श्याम ने बड़ी संजीदगी से जवाब दिया, 'इस वक्त नहीं... लेकिन उस वक्त जबकि मैं मुसलमानों के ढाये हुए मजालिम की दास्तान सुन रहा था... मैं तुम्हें कत्ल कर सकता था।'

श्याम के मुंह से यह सुन कर मेरे दिल को जबर्दस्त धक्का लगा। उस वक्त शायद मैं भी उसे कत्ल कर सकता।"

इसी खाके में कई और घटनाओं का वर्णन करने के पश्चात मंटो बम्बई से पाकिस्तान जाने के अपने निर्णय के बारे में लिखते हैं "सुबह हुई तो श्याम शूटिंग से फारिग होकर आया। उसने मेरा बंधा हुआ असबाब देखा तो सिर्फ इतना पूछा, 'चले' ?

उसके बाद मेरे और उसके दरम्यान 'हिजरत' के मुतल्लिक कोई बात नहीं हुई। सामान रखवाने में उसने मेरा हाथ बटाया। इस दौरान रात की शूटिंग के लतीफे बयान करता रहा और खूब हंसता रहा। जब मेरे रुखसत होने का वक्त आया तो उसने अल्मारी में से ब्रांडी की बोतल निकाली। दो पैग बनाये और मुझे देकर कहा, 'हिपटल्ला'।

"मैंने जवाब में हिपटल्ला कहा और उसने कहकहे लगाते हुए मुझे अपने चौड़े सीने के साथ भींच लिया, 'सुअर कहीं के।'

"मैंने अपने आंसू रोके, 'पाकिस्तान के।'

"श्याम ने पुरखुलूस नारा बुलंद किया, 'जिन्दाबाद पाकिस्तान' 'जिन्दाबाद भारत' और मैं नीचे चला गया जहां ट्रक वाला मेरा इंतजार कर रहा था।"

अब जरा मंटो के चर्चित अफसाने 'सहाय' के इन वाक्यों को देखिये "जुगल को लाहौर से खत मिला कि फसादात में उसका चचा मारा गया है तो उसे बहुत सदमा हुआ, चुनांचे उसी सदमे के जेरे असर बातों बातों में एक दिन उसने मुस्ताज से कहा, "मैं सोच रहा हूं अगर हमारे मुहल्ले में फसाद शुरू हो जाये तो मैं क्या करूंगा...

मुस्ताज ने उससे पूछा 'क्या करोगे' ?



जुगल ने बड़ी संजीदगी के साथ जवाब दिया, 'मैं सोच रहा हूँ... बहुत मुमकिन है, मैं तुम्हें मार डालूँ...' यह सुन कर मुस्ताज बिल्कुल खामोश। उसकी यह खामोशी तकरीबन आठ रोज तक कायम रही और उस वक्त टूटी जब उसने अचानक हमें बताया कि वह पौने चार बजे समुंदरी जहाज से कराची जा रहा है।'

यहां जुगल में मंटो के वास्तविक मित्र श्याम और मुस्ताज में स्वयं मंटो की झलक देखी जा सकती है। हमें यह भी पता है कि मंटो ने बम्बई से कराची की यात्रा समुंद्री जहाज से की थी। मंटो का दोस्त श्याम हमें 'जानकी' में नरायन और मम्मी में चड्ढा के रूप में भी नजर आता है। रफीक गजनवी मंटो का फिल्म उद्योग का दोस्त था। मंटो ने उसके व्यक्तित्व पर अत्यंत रोचक खाका लिखा है जिसमें उसकी खूबियों के साथ उसकी तमाम बुराइयों का विस्तार से वर्णन है। मंटो के शब्दों में "नस्त वस्त के मुताल्लिक मैं कुछ नहीं जानता हूँ लेकिन इतना कह सकता हूँ कि रफीक गजनवी वाकई बहुत बड़ा कुता है, जिसकी दुम सिर्फ तवायफें ही हिला सकती हैं। कोई शरीफ खातून लाख पुचकारे चुमकारे, रफीक की दुम में खफीफ सी भी जुम्बिश पैदा नहीं होगी..."

'मैं यहां उसके किरदार का एक और पहलू वाजेह कर दूँ कि वह अव्वल दर्जे का कमीना, सिफला (बुरे चरित्र का) और खुदगर्ज (स्वार्थी)। अपनी जात उसके लिए सबसे मुकद्दम है। वह खाना जानता है खिलाना नहीं जानता। लेकिन मतलब होगा तो वह बड़ी पुश्तकल्लुफ दावतें भी करेगा मगर उन दावतों में भी वह मेहमानों का कुछ खयाल न करते हुए सबसे पहले मुर्ग के बेहतरीन हिस्से अपनी प्लेट में डाल लेगा..."

"जब रफीक का इश्क जोरों पर था, उस जमाने में लेडी जमशेद जी रोड माहिम के 'गुलशन महल' में लाहौर के एक लाला जी आकर ठहरे। आपके साथ एक खूबसूरत लड़की जैबुन्निसां थीं। लाला जी अजीबोगरीब आदमी थे। उनके पास आग लगाने को रुपया भी काफी मौजूद था। उनको इस बात की कोई परवाह नहीं थी कि उनकी जैबुन्निसां पसे पर्दा (पर्दे के पीछे गुप्त रूप से) क्या करती है क्या नहीं करती। वह अपने चुगदपने में मस्त रहना चाहते थे। रफीक दो एक मर्तबा लाला जी से मिलने आया तो उसकी आंखें जैबुन्निसां से लड़ गयीं। लड़की सादालोह (भोली) थी। गरीब ने घर की सब अच्छी चादरें, गिलाफ, दरियां वगैरह रफीक के हवाले कर दीं। उसको खिलाती पिलाती भी रही, लेकिन रफीक बहुत जल्द उससे उकता गया मैंने वजह पूछी तो कहने लगा : 'यार, बड़ी शरीफ औरत है... मुझे लुत्फ नहीं आता।'

उपरोक्त घटना के आधार पर ही लगता है कि मंटो ने अपनी बहुचर्चित कहानी 'बाबू गोपीनाथ' लिखी और बाबू गोपीनाथ जैसा पात्र निर्मित किया। उपरोक्त लाला जी को बाबू गोपीनाथ, जैबुन्निसां को जीनत बेगम और और रफीक गजनवी को मुहम्मद शफीक तूसी के रूप में आसानी से देखा जा सकता है। मंटो एक कहानी से कई दूसरी कहानियां तैयार करने और एक ही विषय पर बिल्कुल अलग अलग कहानियां लिखने की कला में भी पारंगत थे। वह अक्सर अपने पात्रों के साथ कहानी में शामिल हो जाते और ऐसा भी हुआ है कि पात्रों को पूरी छूट देते हुए दूर खड़े तमाशा भी देखते रहे। वह न तो अच्छे चरित्र के पात्रों को कोई बुरा कार्य करने से रोकते हैं और न ही नकारात्मक छवि के पात्रों को अच्छाई का उपदेश देते नजर आते हैं। उनके पात्र अपनी गति से चलते हैं और अपने स्वभाव, अपनी मनोवृत्तियों और मानसिक स्थितियों के साथ अमर्यादित, अनैतिक यहां तक की क्रूरतम कार्य भी कर जाते हैं और जब यही अमर्यादित और पतित लोग विशेष परिस्थितियों में मर्यादा, आदर्शवादिता और नैतिक मूल्यों की माला जपने वालों को बहुत पीछे छोड़ते हुए प्रेम, इन्सानियत, दोस्ती, बलिदान और मानवता के आश्चर्यजनक उदाहरण पेश करते हैं तो लगता है कि

उनका रचयिता/कथाकार दूर से मुस्कराते हुए उन्हें देख रहा हो और कह रहा हो 'देखो, इस तरह से कहते हैं सुखनवर सेहरा'। मंटो अपनी कहानियों में पात्रों के साथ उन परिस्थितियों और उस परिवेश को निर्मित करते हैं जिनके बीच वह पात्र रह रहे हैं या रहते आये हैं। वह अपनी तरफ से न तो पात्रों का मूल्यांकन करते हैं न मनोविश्लेषण। यह काम वह पूरी तरह पाठकों पर छोड़ देते हैं। इसीलिए ज्वलंत और तत्कालीन समस्याओं पर भी उनकी कहानियों में कोई नारेबाजी या कृत्रिम भावनाएं नहीं होतीं, कहानी की कलात्मकता बाकी रहती है। यह उनकी वर्णन शैली और कहानी बुनने की उनकी अदभुत कला है कि ईशर सिंह जैसे व्यक्ति से उसके क्रूरतम कृत्य के बावजूद हम नफरत नहीं कर पाते, खोल दो का अंत पढ़ते हुए अवसन्न रह जाते हैं और बाबू गोपीनाथ पर तरस खाने के बजाये उस पर फिदा हो जाने का मन होने लगता है।

देश विभाजन मंटो के जीवन की सबसे दुखद घटना है। विभाजन के दौरान आग और खून की होली के चक्रवात में लाखों लाख परिवार उखड़ गये। नफरत और हैवानियत ने ऐसा राक्षसी रूप धारण किया कि जो सुरक्षित बच गये थे वह भी सुरक्षित नहीं थे। जान सलामत रह गयी थी तो दिल रो रहे थे। सभी लोग अंतहीन मानवीय समस्याओं में उलझे हुए थे। बंटवारे से उपजे प्रश्नों ने मंटो को इतना विचलित, इतना उद्देलित और उनकी संवेदना पर इतने प्रहार किये कि नैतिकता, सामाजिक मर्यादा और साहित्यिक आदर्श के नाम पर थोपी गयी वर्जनाओं से उन्हें चिढ़ हो गयी। मंटो ने 1947 को कभी वतन की आजादी के हवाले से नहीं देखा। उन्होंने 1947 का जिक्र सदैव 'तकसीम' और बंटवारे के संदर्भ के साथ किया। देश विभाजन ने स्वयं मंटो के निजी और पारिवारिक जीवन को भी नासूर बना दिया था। उस समय उनका परिवार लाहौर में था। दिनोंदिन बदलती परिस्थितियों में उन्हें बम्बई छोड़ कर पाकिस्तान जाना पड़ा। बम्बई की यादों को वह मरते दम तक संजोये रहे। एक अवसर पर उन्होंने कहा था, 'मैं चलता फिरता बम्बई हूँ।' देश विभाजन एक प्रस्थानबिन्दु था जिसने मंटो की रचनात्मक सक्रियता की गति बहुत तेज कर दी। उन्होंने बेतहाशा लिखना शुरू कर दिया। 1934 से 1947 के चौदह वर्षों के बीच उन्होंने उनहत्तर (69) अफसाने लिखे थे। इसकी अपेक्षा 1948 से मृत्यु के दिन 18 जनवरी 1955 के मात्र सात वर्षों में उन्होंने 161 कहानियां लिखीं जबकि इन अंतिम वर्षों में वह निरंतर बीमारियों, आर्थिक समस्याओं, विभिन्न आरोपों और मुकदमों से भी जूझते रहे। इस संक्षिप्त काल में ही उन्होंने साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर बड़ी संख्या में लेख लिखे और बहुत बेबाक ढंग से अपने विचार व्यक्त किया। विभिन्न व्यक्तियों पर लिखे उनके खाके अपनी रोचकता और पठनीयता की वजह से किसी भी मायने में उनकी कहानियों से कम महत्व नहीं रखते। इसमत् चुगताई के खाके के सिवा जो बंटवारे से पहले उन्होंने बम्बई में लिखा था, उनके सभी खाके इन्हीं सात वर्षों में लिखे गये। उन पर चले मुकदमों की आपबीतियां भी इन्हीं दिनों की उनकी रचनाएं हैं। 'मुरली की धुन' की निम्न पंक्तियों में बंटवारे से उपजे मंटो के दर्द को महसूस किया जा सकता है "14 अगस्त का दिन मेरे सामने बम्बई में मनाया गया। पाकिस्तान और भारत दोनों आजाद मुल्क करार दिये गये थे। लोग बहुत मसरूर थे मगर कल्ल और आग की वारदातें बाकायदा जारी थीं। हिन्दुस्तान जिन्दाबाद के साथ पाकिस्तान जिन्दाबार के नारे भी लगते थे। कांग्रेस के तिरंगे के साथ इस्लामी परचम भी लहराता था। पंडित जवाहर लाल नेहरू, कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना दोनों के नारे बाजारों और सड़कों पर गूंजते थे। समझ में नहीं आता था कि हिन्दुस्तान अपना वतन है या पाकिस्तान और वह लहू किसका है जो हर रोज इतनी बेदर्दी से बहाया जा रहा है। वह हड्डियां कहां जलायी या दफन की जायेंगी जिन पर से मजहब का गोश्त पोस्त चीलें और गिद्ध नोच नोच कर खा गये हैं। अबकि हम आजाद हुए हैं हमारा गुलाम कौन होगा... जब गुलाम थे तो आजादी

का तसव्युर कर सकते थे। अब आजाद हुए हैं तो गुलामी का तसव्युर क्या होगा। लेकिन सवाल यह है कि हम आजाद भी हुए हैं या नहीं। हिन्दू और मुसलमान धड़ाधड़ मर रहे हैं, कैसे मर रहे थे क्यों मर रहे थे... इन सवालों के मुखलिफ जवाब थे। भारतीय जवाब, पाकिस्तानी जवाब, अंग्रेजी जवाब, हर सवाल का जवाब मौजूद था मगर इस जवाब में हकीकत तलाश करने का सवाल पैदा होता तो इसका कोई जवाब न मिलता। कोई कहता इसे गदर के खंडरात में तलाश करो, कोई कहता नहीं यह ईस्ट इंडिया कम्पनी की हुकूमत में मिलेगा। कोई और पीछे हट कर इसे मुगलिया खानदान की तारीख में टटोलने के लिए कहता। सब पीछे ही हटते जाते थे और कातिल और सपफाक आगे बढ़ते जा रहे थे और लहू और लोहे की ऐसी तारीख लिख रहे थे जिसका जवाब तारीखे आलम में कहीं भी नहीं मिलता।”

देश विभाजन और दंगों के संदर्भ में उर्दू ही नहीं दूसरी भाषाओं में भी काफी कुछ लिखा गया है। मानव इतिहास की इस भयंकर त्रासदी ने सभी को हिला कर रख दिया था। 1947 के बहुत बाद तक इस पर लिखा जाता रहा। कहानियों और उपन्यासों के रूप में कई महत्वपूर्ण रचनाएं भी सामने आयीं। मंटो ने भी इस महात्रासदी को अपनी रचनाओं का विषय बनाया लेकिन यहां भी मनुष्य के अंतर्मन को टटोलने की उनकी विशिष्ट शैली मौजूद है। उन्होंने इस सामूहिक त्रासदी को व्यक्ति की त्रासदी के साथ देखा और एक आर्टिस्ट की रचनात्मक दृष्टि से स्थितियों का आकलन किया। उन्होंने न्यायप्रियता, संतुलन और निष्पक्षता के नाम पर अपने मानवीय सरोकारों और अपनी दर्दमंदी से कोई समझौता नहीं किया। नैतिकता अनैतिकता का तो उनके शब्दकोश में कोई स्थान था ही नहीं और न ही उन्होंने समाजसुधारक या शांतिदूत बनने का कोई दावा किया। रक्तरंजित घटनाओं के बीच में वह मनुष्य के अंदर छिपी परतों को खोलते रहे और उसमें उस मानवता को तलाश करते रहे जो उसे प्रकृति से मिली थी जिसमें क्रूरता भी थी और करुणा भी। इसीलिए ‘टोबाटेक सिंह’, ‘ठंडा गोश्त’, ‘खुदा की कसम’, ‘सहाय’, मोजेल, टेटवाल का कुत्ता, ‘आखिरी सैल्यूट’, ‘गुरमुख सिंह की वसीयत’ और सियाह हाशिये की लघु कहानियां समय और काल की सीमाओं से आगे जाकर आज क्लासिक्स का दर्जा रखती हैं।

मंटो ने राजनीति को न अपने ऊपर हावी होने दिया और न ही अपने लिए निषिद्ध माना। उनकी लगभग दो दर्जन कहानियां विशुद्ध रूप से राजनीतिक प्रश्नों पर केन्द्रित हैं लेकिन इनमें भी उन्होंने अपनी रचनात्मक स्वतंत्रता बचाये रखी और अपनी अनुभूतियों को किसी लागलपेट के बिना व्यक्त किया। मंटो का समय अत्यधिक राजनीतिक सक्रियता का समय था। देश की आजादी का आंदोलन चरम पर था फिर देखते ही देखते भारत और पाकिस्तान के नाम से दो स्वतंत्र देश बन गये। इस काल में कोई भी राजनीतिक विमर्श से अछूता नहीं रह सकता था। मंटो भी नहीं थे लेकिन जहां तक दलीय या संगठन आधारित राजनीति का सवाल है मंटो व्यावहारिक स्तर पर राजनीतिक नहीं थे। युवा अवस्था में वह जरूर मार्क्सवादी विचारधारा के साथ कुछ वर्ष सक्रिय रहे और स्वयं उनके अनुसार ‘दसवीं जमात में दुनिया का नक्शा निकाल कर हम कई बार खुस्की के रास्ते रूस पहुंचने की स्कीमें बना चुके थे, हालांकि उन दिनों फिरोजुद्दीन मनसूर भी कामरेड एफ.डी. मनसूर नहीं बने थे और कामरेड सज्जाद जहीर शाद ‘बन्नेमियां’ ही थे।’ मंटो का एक चर्चित खाका ‘बारी साहब’ के शीर्षक से है जो उन्होंने बारी अलीग के मरने पर पाकिस्तान में लिखा था। इस खाके में मंटो अपनी युवा अवस्था के उन दिनों को याद करते हैं जब उन पर क्रांतिकारी बनने का भूत सवार था। खाके की शुरुआत ही साम्राज्य विरोधी नारों से होती है जो मंटो और उनके मित्र हसन अब्बास द्वारा उर्दू में अनूदिन आस्कर वाइल्ड के ड्रामे वीरा से लिये गये थे और अमृतसर की दीवारों पर चिपकाये गये

थे। आगे स्वयं मंटो के शब्दों में “किताब हमने खुद बर्की प्रेस में छपवायी थी और बारी साहब उसके तमाम फर्मे खुद अपने कंधों पर लाद लाद कर लाये थे ताकि महफूज रहें। उनको खतरा था कि पुलिस छापा मार कर प्रेस में से सारी किताब उठा ले जायेगी।

“मेरे और हसन अब्बास के लिए यह सब सिलसिला बड़ा दिलचस्प और हरातरबख्श (गर्मी पहुंचाने वाला) था जेल में क्या क्या सऊबतें (कष्ट) उठानी पड़ती हैं और थानों में क्या दुर्गत होती है, इसके मुताल्लिक हमारे पुरजोश और खिलंदड़े दिमाग कुछ सोचना ही नहीं चाहते थे। कुछ ऐसा महसूस होता था कि अगर कैद हो गये तो यह वतन के लिए बड़ी कुर्बानी होगी। रिहा होकर आयेंगे तो लोग हार पहनायेंगे और जुलूस निकालेंगे।”

लेकिन क्रांति और बगावत की डगर पर वह ज्यादा दिन चले नहीं। उन्होंने कलम को अपना हथियार बनाया लेकिन कलम से भी साम्राज्य विरोधी क्रांति का काम नहीं लिया। उनकी केवल दो कहानियां ऐसी हैं जिनमें सीधे सीधे अंग्रेज सरकार को निशाना बनाया गया है। एक उनकी सबसे पहली कहानी ‘तमाशा’ है जो उन्हीं ‘क्रांतिकारी दिनों’ में लिखी गयी थी और दूसरी है ‘1919 का एक दिन’ जो उन्होंने काफी बाद में लिखी। ये दोनों कहानियां जलियांवाला बाग की घटना पर आधारित हैं और किसी भी अर्थ में इनमें ऐसे क्रांतिकारी तत्व नहीं हैं जिनकी वजह से जेल जाने का मंटो का रूमान पूरा होता। अब मंटो की इन पंक्तियों को देखिये जो उन्होंने इस आलोचना के जवाब में कि युद्ध ने दुनिया का नक्शा बदल दिया है लेकिन आधुनिक साहित्यकार खामोश हैं; जनवरी 1944 में लिखा “दुनिया का नक्शा वाकई बदल रहा है... लेकिन अगर मैंने उसके मुताल्लिक कुछ लिख दिया तो मेरा भी हुलिया बदल जायेगा... डरपोक आदमी हूं, जेल से बहुत डर लगता है। यह जिन्दगी जो बसर कर रहा हूं जेल से कम तकलीफदेह नहीं है। अगर इस जेल के अंदर एक और जेल पैदा हो जाये और मुझे उसमें ठूस दिया जाये तो चुटकियों में मेरा दम निकल जाये। जिन्दगी से मुझे प्यार है, हरकत का दिलदादा हूं। चलते फिरते सीने पर गोली खा सकता हूं लेकिन जेल में खटमल की मौत नहीं मरना चाहता। यहां इस प्लेटफार्म पर यह मजमून सुनाते सुनाते आप सबसे मार खा लूंगा और उफ तक नहीं करूंगा लेकिन हिन्दू मुस्लिम फसाद में अगर कोई मेरा सर फोड़ दे तो मेरे खून की हर बूंद रोती रहेगी। मैं आर्टिस्ट हूं। ओछे जखम और भद्दे घाव मुझे पसंद नहीं।”

उपरोक्त वाक्यों के आधार क्या यह मान लिया जाये कि मंटो सचमुच डरपोक थे और इस कारण उन्होंने अंग्रेज सरकार के खिलाफ कोई मोर्चा नहीं खोला। लेकिन ऐसा सोचना वास्तव में जल्दबाजी होगी क्योंकि जंग और विनोद की मंटो की विशिष्ट शैली यहां भी नजर आती है। मंटो जैसा व्यक्ति यह बात 1944 में कह रहा जब देश के साधारण स्त्री पुरुष तक साफ देख रहे थे कि अंग्रेज सरकार के अब ज्यादा दिन नहीं हैं। भारत छोड़ो आंदोलन के कारण कांग्रेस के लीडर जरूर जेलों में थे लेकिन अंडरग्राउंड स्तर पर सरकार विरोधी सक्रियता जारी थी। हां मंटो के पुराने कम्युनिस्ट दोस्त जरूर जेल से बाहर आकर युद्ध में अंग्रेज सरकार का साथ दे रहे थे क्योंकि रूस के मित्र राष्ट्रों के समूह में आ जाने के पश्चात अब यह युद्ध ‘जनता की लड़ाई’ में परिवर्तित हो चुका था। इसलिए यह कहना तो कठिन है कि बात को अपनी तरफ मोड़ कर व्यंग्य के तीर वह किस पर चला रहे हैं। फिर इन्हीं वाक्यों में वह यह भी कहते हैं कि चलते फिरते वह गोली खा सकते हैं लेकिन आर्टिस्ट होने के नाते ओछे जखम और भद्दे घाव उन्हें पसंद नहीं हैं। यहां हम यह भी विचार करें कि राज्यसत्ता से कहीं अधिक दबाव समाज की सत्ता और समाज के सत्ताधारियों का होता है और जिस मंटो ने भयरहित होकर अपनी कहानियों में समाज की सड़ांध को बेनकाब किया हो और मर्यादा व नैतिकता से सम्बंधित समाज के स्थापित मूल्यों पर बेबाकी से निशाना साधा हो और आरोपों, बहिष्कार और

मुकदमों के रूपों में उनके परिणाम भुगते हों वह मंटो क्या राज्यसत्ता को निशाना बनाने से केवल इसलिए बचेगा कि कहीं उसे जेल न जाना पड़े। मंटो के उपरोक्त वाक्य जिस लेख से लिए गये हैं, उसी लेख में अपने पर लगे विभिन्न आरोपों का बहुत ही आक्रामक जवाब देते हुए मंटो यह भी कहते हैं “जमाने के जिस दौर से हम इस वक्त गुजर रहे हैं, अगर आप उससे नावाकिफ हैं तो मेरे अफसाने पढ़िये। अगर आप इन अफसानों को बर्दाश्त नहीं कर सकते तो इसका मतलब यह है कि यह जमाना नाकाबिले बर्दाश्त है। मुझमें जो बुराइयां हैं वे इस अहद (युग) की बुराइयां हैं। मेरी तहरीर में कोई नुक्स नहीं है। जिस नुक्स को मेरे नाम से मंसूब (सम्बंधित) किया जाता है, दरअस्तल मौजूदा निजाम का नुक्स है मैं हंगामापंसद नहीं। मैं लोगों के खयालातों, जजबात में हैजान (बेवैनी) पैदा करना नहीं चाहता। मैं तहजीबों तमद्दुन की (संस्कृति एवं सभ्यता) और सोसायटी की चोली क्या उतारूंगा, जो है ही नंगी। मैं उसे कपड़े पहनाने की कोशिश भी नहीं करता, इसलिए कि यह मेरा काम नहीं, दर्जियों का है लोग मुझे सियाह कलम कहते हैं लेकिन मैं तख्ता ए सियाह (ब्लैक बोर्ड) पर काली चाक से नहीं लिखता, सफेद चाक इस्तेमाल करता हूँ कि तख्ता ए सियाह की सियाही और भी ज्यादा नुमायां हो जाये। यह मेरा खास अंदाज है, मेरा खास तर्ज है जिसे फहशानिगा, तरक्की पसंदगी और खुद मालूम क्या क्या कुछ कहा जाता है लानत हो सआदत हसन मंटो पर, कम्बख्त को गाली भी सलीके से नहीं दी जाती।”

मंटो के उपरोक्त दोनों वक्तव्यों को पढ़ने के बाद यह अंदाजा हो जाना चाहिए कि बात इतनी सरल और आसान नहीं है कि हम राजनीति के सवाल पर उनके बारे में दो और दो चार की तरह कोई मन्तव्य कायम करें। इसका तो प्रश्न ही नहीं उठता कि अंग्रेज सरकार से किसी डर के कारण वह कोई जोखिम मोल लेना नहीं चाहते। मंटो जिस काल में रह रहे थे वह राजनीति के व्यावहारिक और वैचारिक दोनों स्तरों पर अतिसक्रियता का समय था। आप यदि अंग्रेज सरकार के खिलाफ हैं तो अपने आप राष्ट्रीय आंदोलन के विमर्श का हिस्सा हैं। कांग्रेस की नीतियों का विरोध कर रहे हैं तो मान लिया जायेगा कि मुस्लिम लीग के साथ हैं। मंटो की मुश्किल यह है कि वह अंग्रेजों की औपनिवेशिक सरकार के तो शुरू से विरोधी थे लेकिन महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश में चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन से उनकी गम्भीर असहमतियां भी थीं। गांधीजी के बहुत से सिद्धांतों को वह मानव प्रकृति के विरुद्ध समझते थे और उसका एक उदाहरण उनकी चर्चित कहानी ‘स्वराज के लिए’ में देखा जा सकता है। इस कहानी में एक पति पत्नी ने यह घोषणा तो कर दी कि जब तक देश आजाद नहीं हो जाता वे एक दूसरे से शरीरिक सम्बंध स्थापित नहीं करेंगे क्योंकि वह नहीं चाहते कि उनका बेटा गुलाम देश में पैदा हो। लेकिन बाद में जब आंदोलन समाप्त हो जाता है, जिन्दगी आम ढर्रे पर वापस आ जाती है और देश कब आजाद होगा इसका दूर दूर तक पता निशान दिखायी नहीं देता तो इन दोनों को किन यातनाओं से गुजरना पड़ता है इसका बहुत मार्मिक चित्रण इस कहानी में हुआ है। मंटो की कई दूसरी कहानियों और आलेखों में भी राष्ट्रीय आंदोलन से उनकी असहमतियां साफ झलकती हैं। वह बुनियादी तौर पर मनुष्य की आंतरिक आजादी के पक्षधर थे और उन पर किसी तरह की पाबंदी चाहे राजनीतिक स्तर पर हो या सामाजिक स्तर पर; उनके लिये असह्य थी। इसी तरह किसी के पदचिह्नों पर चलना उनके स्वभाव में ही नहीं था। वह रचनाकार के लिए पूरी आजादी चाहते थे और यह साहित्यिक और सांस्कृतिक संगठन भी नहीं देते थे। इसीलिए प्रगतिशील कहलाने के बावजूद प्रगतिशील लेखक संघ से उनका मोहभंग हो गया था और उन्होंने ‘घोषणापत्रिय संगठनों’ पर पूरे तेवर के साथ हमले किये। मंटो के मस्तिष्क के जाले बिल्कुल साफ थे। हर विषय पर उनके अपने मत थे। वह राजनीतिक चिन्तक नहीं एक कथाकार थे इसलिए उन्होंने अपने राजनीतिक विचारों

को सांकेतिक ढंग से अपनी कहानियों और कुछ खुले रूप से निबंधों और लेखों में व्यक्त किया। 'राष्ट्र' या 'राष्ट्रवाद' का सिद्धांत भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में आया और आगे चल कर राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उसे लोकप्रियता के साथ अतिपवित्रता का स्थान भी मिल गया। ऐसा माना जाने लगा कि राष्ट्रप्रेम से बढ़ कर कुछ नहीं है। राष्ट्र के सिद्धांत से ही दो राष्ट्र सिद्धांत पैदा हुआ और जिसकी परिणति हुई 1947 में देश विभाजन में। मंटो को अपने समय के सबसे चर्चित और लोकप्रिय राजनीतिक विमर्श राष्ट्र (Nation) के सिद्धांत से घोर आपत्ति थी। वह उसे मनुष्य की आजादी, उसकी सहनशीलता, सहिष्णुता, बराबरी और उसके मौलिक अधिकारों की राह में रुकावट मानते थे और उसे धार्मिक, नस्ली, जातीय और भाषाई असहिष्णुता की तरह एक रोग समझते थे। उनका विचार था कि जमीन आदिकाल से प्रकृति द्वारा मनुष्य को दी गयी ऐसी इकाई है जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता। कौमियत या राष्ट्रवाद के नाम पर सत्ताधारी वर्ग हर प्रकार के जुल्म और अत्याचार करते हैं। राष्ट्र राज्य आगे चल कर अवश्यम्भावी रूप से फासिज्म में परिवर्तित होता है जिसकी युद्ध की मानसिकता इनसानियत को तबाही की ओर ले जाती है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राष्ट्रवाद को ऐसी प्रमुखता, लोकप्रियता और पवित्रता प्राप्त थी कि उससे जरा भी असहमति व्यक्त करने वाले को राष्ट्रविरोधी या राष्ट्रद्रोही घोषित किये जाने में देर नहीं लगती थी। इस स्थिति से हम कम या अधिक आज भी, मंटो के मरने के 58 वर्ष बाद भी, गुजर रहे हैं। मंटो की अत्यंत सफल और चर्चित कहानी टोबाटेक सिंह का केन्द्रीय चरित्र बिशन सिंह जिसकी मौत अंत में NO MANS LAND पर होती है इस पूरे विमर्श का रूपक बन कर हमारे सामने आता है। बंटवारे के सवाल पर मंटो अपनी इस कहानी में पागलखाने के वातावरण और पागलों के संवादों के द्वारा जो संदेश देते हैं वह राष्ट्रीयता के पूरे स्वरूप को प्रश्नांकित करता है; इसकी कुछ झलकियां

1. "एक मुसलमान पागल जो बारह बरस, हर रोज बाकायगी के साथ 'जमींदार' पढ़ता था, उससे जब उसके एक दोस्त ने पूछा 'मोलवी साहब, यह पाकिस्तान क्या होता है...?' तो उसने बड़े गौरो फिरक के बाद जवाब दिया : 'हिन्दुस्तान में एक ऐसी जगह है जहां उस्तरे बनते हैं...' यह जवाब सुन कर उसका दोस्त मुतमइन (संतुष्ट) हो गया।"

2. "पागलखाने में एक ऐसा पागल भी था जो खुद को खुदा कहता था। इसलिए जब एक रोज बिशन सिंह ने पूछा कि टोबाटेक सिंह पाकिस्तान में है या हिन्दुस्तान में तो उसने हस्वे आदत कहकहा लगाया और कहा : 'वह पाकिस्तान में है न हिन्दुस्तान में, इसलिए कि हमने अभी तक हुकम ही नहीं दिया...'"

3. "इधर उधर से कई अफसर दौड़ आये और उन्होंने देखा कि वह आदमी जो पंद्रह बरस तक दिन रात अपनी टांगों पर खड़ा रहा था, आँधे मुंह लेता है उधर खारदार (कटिदार) तारों के पीछे हिन्दुस्तान था, इधर ऐसे ही तारों के पीछे पाकिस्तान; दरम्यान में जमीन के उस टुकड़े पर जिसका कोई नाम नहीं था, टोबाटेक सिंह पड़ा था।"

मंटो की कहानियों के पात्र अक्सर यह कहते हुए देखे जाते हैं कि सामूहिकता या राष्ट्रीयता के नाम पर व्यक्तियों को उनकी वैयक्तिक पहचान से सचेतन तौर पर वंचित कर दिया जाता है और उन्हें एक कृत्रिम सांस्कृतिक पहचान दे दी जाती है। राष्ट्रीय आंदोलन के अतिउत्साही नारों का ही परिणाम था कि मंटो की कहानी का मंगू कोचवान यह समझने लगा कि नया कानून लागू होते ही अंग्रेजों का प्रभुत्व समाप्त हो गया है और एक अंग्रेज से भिड़ जाने की वजह से उसे हवालात जाना पड़ता है। 'फोजा हराम दा' में यह दिखाने की कोशिश की गयी है कि राष्ट्र राज्य की बुनियाद फौज, पुलिस, गुप्तचर एजेंसियां और न्यायालय हैं जिनका मूल उद्देश्य आमजन का अपने हितों के लिए शोषण

करना है। पुलिस किस तरह निहत्थे और बेकसूर अवाम को गिरफ्तार करती है, उन्हें झूठे आरोपों में फंसा कर किस प्रकार जांच पड़ताल करती है और न्यायिक कार्रवाई के दौरान हर दिन उन्हें नारकीय यातनाओं से गुजरना पड़ता है इसका पूरा नजारा हमें न केवल मंटो की कहानी 'फोजा हराम दा' में दिखायी देता है बल्कि इन सबको आज आजादी के 65 वर्ष बाद भी हम अपनी खुली आंखों से देख रहे हैं। मंटो द्वारा उठाये गये राजनीतिक प्रश्नों को हम 'बदतमीज', 'आखिरी सल्यूट' 'यजीद', सहाय, 'टेटवाल का कुत्ता' सहित कई अन्य कहानियों, उनके लिखे खाकों, ड्रामों, चचा साम के नाम लिखे खतों, आपबीतियों और निबंधों में आसानी से पढ़ सकते हैं। यह ऐसा विषय है जिस पर मंटो की रचनाओं की रोशनी में अलग से लिखने की जरूरत है। उसके बाद ही हम किसी नतीजे पर पहुंच सकते हैं।

मंटो को समझने के लिए केवल कुछ विवादित कहानियों और लेखों को पढ़ने से काम नहीं चलेगा। उनका रचना संसार विशाल है। उन्होंने देश विभाजन से पहले 100 से अधिक ड्रामे और रेडियो फीचर लिखे। उनमें 'जेबकतरे' सहित कई नाटक अत्यधिक चर्चित और लोकप्रिय रहे। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने बहुत लिखा। सही है कि मंटो की मूल पहचान उनकी कहानियों की वजह से है लेकिन उन्हें समग्रता में देखने के लिए हमें उनकी रचनाएं भी पढ़नी होंगी। यह मुश्किल काम है लेकिन हमें करना होगा क्योंकि वह मात्र कथाकार नहीं बल्कि कथाजगत का एक प्रतीक, एक स्कूल बन चुके हैं। उनके समकालीन कथाकार इस्मत चुगताई, कृष्णचंद्र, राजेन्द्र सिंह बेदी, गुलाम अब्बास और अजीज अहमद भी कोई साधारण लिखने वाले नहीं थे। इन सबका अपना अपना योगदान है लेकिन मंटो के कद तक कोई नहीं पहुंचता। पूरे उपमहाद्वीप में मंटो की कहानियों की इतने लम्बे समय तक बरकरार लोकप्रियता इस बात का सबूत है कि देश विभाजन इस महाद्वीप की संस्कृति का बंटवारा नहीं कर पाया। उन्हें पाकिस्तान का कहानीकार कहने में हिचक होती है। वह पाकिस्तान के जितने थे उतने ही हिन्दुस्तान के भी। यहां तक कि वह भाषाई सीमाओं को भी तोड़ चुके हैं वह जितने बड़े उर्दू के साहित्यकार हैं उतने ही बड़े हिन्दी के भी। भारत की अन्य भाषाओं और अंग्रेजी साहित्य कई विदेशी भाषाओं में भी उनके अनुवाद चाव से पढ़े जा रहे हैं और उनकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती जा रही है। और अंत में मंटो के दोस्त कृष्णचंद्र के शब्द जो उन्होंने मंटो के मरने पर लिखे थे "मंटो 42 साल की उम्र में मर गया। अभी उसके कहने और सुनने के दिन थे। अभी अभी जिन्दगी के तल्ल तजबाँ (कटु अनुभवों) ने, समाज की बेरहमियों ने, मुरब्बजा निजामे जिन्दी (जीवन व्यवस्था के चलन) के तजाद (विरोधाभास) ने उसकी बेतहाशा इम्फ्रदियत (वैयक्तिकता) और नातरफदारी खत्म करके उससे टोबाटेक सिंह जैसी कहानी लिखवायी थी। गम मंटो की मौत का नहीं... मौत नागुजीर (अवश्यम्भावी) है, गम उन नातखलीक करदा शहपारों (ऐसी कृतियां जो अब रची नहीं जायेंगी) का है जो सिर्फ मंटो ही लिख सकता था। आल इंडिया रेडियो भी खुला है, मेडेन होटल का बार भी, उर्दू बाजार भी... क्योंकि मंटो एक बहुत मामूली आदमी था। वह एक गरीब अदीब था। वह वजीर न था कि कोई झंडा उसके लिए सरनिगूं होता। वह एक सतायी हुई जबान का सताया हुआ अदीब था। उर्दू अदब में अच्छे अच्छे अफसानानिगार पैदा हुए लेकिन मंटो दुबारा पैदा नहीं होगा और कोई उसकी जगह लेने नहीं आयेगा। यह बात मैं भी जानता हूं और राजेन्द्र सिंह बेदी भी, इस्मत चुगताई भी, ख्वाजा अहम्मद अब्बास भी और उपेन्द्र नाथ अशक भी।"

# प्राचीन भारत में शिल्पियों की स्थिति

रमानाथ मिश्र

**प्राचीन** भारतीय कला के अध्ययन में 'कला' और 'शिल्प' लगभग समानार्थी शब्द हैं। भारतवर्ष में इनका एक विशद इतिवृत है। पिछली लगभग दो शताब्दियों के अध्येताओं के प्रचार से अब यह इतिहास किन्चित सहज साध्य हो रहा है। तथापि इससे सम्बंधित अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह गये हैं इनमें से एक प्रश्न कलाकारों का है। विशेष रूप से इसलिए कि कलाकार विहीन कला की कल्पना ही निर्मूल है। पिछले कुछ दशकों में हुआ लेखन ऐसी सामग्री प्रस्तुत करता है, जिसमें 'शिल्प', 'कला' एवं शिल्पियों पर प्रकाश डाला गया है। इसने विदित होता है कि प्राचीन भारतीय कला, अनाम कलाकारों की सृष्टि नहीं है वरन् इस कलाजगत में अनेक शिल्पियों के हस्ताक्षर विद्यमान हैं। शिल्प परम्परा के साथ ही शिल्पी परम्परा भी इस प्रकार के अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग है। प्रस्तुत लेख में इन्हीं शिल्पियों से सम्बंधित परिचर्चा का प्रयास किया गया है। यद्यपि 'शिल्प' का सामान्य अर्थ बहुत व्यापक है किन्तु इस लेख में केवल चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला से सम्बंधित शिल्पियों का ही विवरण दिया गया है।

भारतीय शिल्पकला के अनाम होने की धारणा पाश्चात्य विद्वानों की वैचारिकतावश बहुत समय तक पनपती रही। इसका एक कारण यह भी रहा कि भारतीय कला का अनुशासनबद्ध अध्ययन सर्वप्रथम इन्हीं विद्वानों ने किया और इन अध्ययनों में उनके पूर्वाग्रह कम नहीं थे। इस तरह बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक भारतीय धार्मिक ग्रंथ तथा पुरातत्व विज्ञान की अध्ययन विधियाँ, दोनों ही के आधार पर, प्राचीन भारत में शिल्प या शिल्पियों के समुदाय का अवमूल्यन होता रहा। 'नित्यं शुद्धः कारुहस्तः' अर्थात् शिल्पकर्मियों के हाथ नित्य ही शुद्ध हैं, जैसे विश्वास होते हुए भी वर्णाश्रम व्यवस्था ने शिल्पियों को 'शूद्र' कोटि में रखा। यह एक विचित्र विरोधाभास है कि कला की गुणगाथा के विपरीत



कलाकार निम्नतम वर्ण 'शूद्र' की कोटि में रह कर उपेक्षित ही बना रहा। भारतीय कला के संदर्भ में आनंद के. कुमार स्वामी के अध्ययन की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है तथापि उनका भी यही विचार था कि प्राचीन भारतीय कलाकार आत्माभिव्यक्ति के प्रति उदासीन था अतः अपने अस्तित्व का कोई भी चिह्न उसने नहीं छोड़ा।

इस प्रचलित भ्रामक धारण के विपरीत आधुनिक, कतिपय नवीन अध्ययन, शिल्पी समुदाय तथा उनकी सामाजिक स्थिति पर अपेक्षाकृत अधिक सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उनकी ओर केन्द्रित हुए हैं। अस्तु एक विस्तृत काल परिवेश में वैदिकयुग से मध्ययुग पर्यंत प्राप्त अध्ययन सामग्री के आधार पर इनका एक संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास प्रस्तुत पंक्तियों में है।

वैदिक संदर्भों में कारीगर (Craftsman) और कलाकार (Artist) में कोई अंतर परिलक्षित नहीं होता, यद्यपि दोनों ही की क्षमताओं के विवरण में उनके हस्तलाघव या बुद्धिकौशल की सराहना की गयी है। वैदिक साहित्य तथा उस पर सायण, माधव आदि की टीका टिप्पणियों में शिल्प से सम्बंधित यथेष्ट विचार विमर्श हैं एवं इनमें शिल्पियों की आश्चर्यजनक क्षमताओं का भी विवरण है। मूर्तियों या मूर्तिकला के विषय में प्रारम्भिक वैदिककालीन साहित्य में यद्यपि संकेत मात्र हैं किन्तु 'रूप' जो स्वयमेव मूर्त या मूर्ति का आधार है, निरंतर भौतिक एवं वस्तुवादी आकार संरचना से ही सम्बंधित रहा। प्राचीन साहित्य के सामान्य या दार्शनिक चिन्तन में 'रूप' केवल सौन्दर्य ही नहीं वरन आकार की वस्तुवादी अथवा मानसिक कल्पना का आधार है। प्रारम्भिक संदर्भों में प्रतिभा के स्थान पर 'रूप' के ही अनेक विवरण हैं। इनके अनुसार 'रूप' की सत्ता भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु प्रत्येक साक्षात् स्थिति, विचार विमर्श, चिन्तन आदि में है। ऋग्वेद में 'रूप' एक सार्वभौम सिद्धांत है जिसमें अंतर्निहित भाव और साथ ही साथ उसका पुनरावर्तन, दोनों ही अद्वैत की भांति निहित हैं 'रूपम रूपम प्रतिरूपो बभूव, तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय...' यह 'रूप' अनेक ढंग से रंग और आकार लेता है तथा अमूर्त के मूर्त रूप ग्रहण करने की इस प्रक्रिया में कलाकार कला का निरूपण करता है। प्रारम्भिक संदर्भ में यह कलाकार 'देवी' है किन्तु प्रत्यावर्तन की स्थिति 'मानुषी' है। यह मानुषी प्रत्यावर्तन 'अनुकरण' द्वारा साध्य है। अनुकरण मात्र नकल नहीं, वरन कृति में लय सा तरंग स्थापित करने का उपक्रम कहा गया है। एक ऐसा उपक्रम जो संस्कारी है। इस भांति कलाकृति में देवी मूल के साथ मानुषी प्रत्यावर्तन की भी परम्परा को स्वीकार किया गया है। उदाहरणार्थ, वैदिक सृजनकर्ता त्वष्ट्र (त्वष्टा) रूप को काट छांट कर निर्मित करने का सर्जक है (ऋग्वेद 10.184.1) उषा सौन्दर्य स्वयमेव 'सुशिल्प' है। 'शिल्प' या 'कला' यहां देवनिर्मित है। ऐतरेय ब्राह्मण में (6.27) 'देवशिल्प' की व्याख्या है। यह शिल्प 'आत्मा को सुसंस्कृत करता है' 'आत्मानम् संस्कुरुते। ऋभु जिनका उल्लेख बहुवचन में है, ऐसे वैदिक कलाकार हैं जो अपने शिल्प कौशल से, मर्त्य से अमर्त्य या अमरत्व की स्थिति प्राप्त करते हैं। यह नोकदार उपकरण से अवयवों को निर्मित करने में समर्थ हैं। उन्हें 'सुहस्त' कहा गया है। ऋग्वेद में तदान का भी उल्लेख है जो काष्ठकर्म में सिद्धहस्त थे। ऐसा कलाकृति सर्जक व्यापार वैदिक धातुओं : 'पिश्', 'हन्', 'कृष्', त्वदा, मा, चि, सिच्, रूप आदि से उत्पन्न माना गया है। इन्हीं से चित्र, रूप, शिल्प आदि शब्दों का जन्म हुआ। 'तक्ष' (काष्ठकार) कार्य काष्ठनिर्मित वस्तुओं को नक्काशी से सजाने का था। एक संदर्भ में 'रूप' को 'जीव' में नापने का विधान है... नि मायिनो मामिरे रूपम् अस्मिन। काटने छांटने और आकार देने की प्रक्रिया को 'तक्ष' धातु रूप द्वारा स्पष्ट किया गया है। छेनी से आकार देना तथा पॉलिश करना, आदि इसी में सम्मिलित है। ऋग्वेद (5.2.11) में कहा गया है 'रथम न धीरः स्वयाम् अतक्षम्', अर्थात् एक कुशल मनस्वी ने रथ को काट छांट कर निर्मित किया, जैसे यह हस्तकौशल के साथ साथ एक मानसिक क्रिया थी अथवा 'अभितथेव दीधया

मनीषान्' (ऋग्वेद 3.32.1) जिसका तात्पर्य है संगीत को सजीव कर देना, उसी प्रकार जैसे काष्ठकार काष्ठ वस्तु को चमका देता है। इन संदर्भों में बौद्धिक उत्कृष्टता एवं हस्तकौशल दोनों का ही निर्माण कार्य में व्यवहार रेखांकित किया गया है। दैवी कलाकार विश्वकर्मा 'धातु' से निर्माण कार्य करते हैं और उनका यह कार्य 'संघमन' शब्द द्वारा वर्णित किया गया है। इन विचारों में सृजन की प्रक्रिया का स्पष्ट उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि वैदिक संदर्भों में निर्माण कार्य मात्र शारीरिक अध्यवसाय न होकर मानसिक शक्ति, प्रखर बुद्धि अथवा रहस्यपूर्ण रचनात्मक सामर्थ्य द्वारा साध्य है। अस्तु, ऋग्वेद (1.51.10) में उशना अपनी शक्ति द्वारा ही शक्ति को रूप देते हैं। तक्षद् यत् उशना सहसा सहः। यहां दोनों ही निराकार हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार; 'सरस्वती आंतरिक सौन्दर्य उत्पन्न करती है' सरस्वती वयति पेशो अंतरः। निपुणता वस्तुतः ऐसा गुण है जो व्यक्ति को कलाकार बना देता है। 'दंशन', 'शची', 'क्रतु', 'माया' और 'धीर' जैसे शब्दों का तात्पर्य किसी वस्तु के निर्माण अथवा आकार की कल्पना करने के कौशल से है। इन शब्दों में 'धीर' विशेष रूप से कलाकारों की निपुणता से सम्बद्ध है।

कलाकृतियों के सम्बंध में ये उद्धरण कलाकारी की तकनीक और कुशलता से सम्बंधित प्रारम्भिक मनीषियों के विचारों के परिचायक हैं तथा उन मान्यताओं की भी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं जिनके अंतर्गत कलाकार सृजन को अभिव्यक्ति प्रदान करते थे। इनसे स्पष्टतः शिल्प और शिल्पियों के सृजनात्मक आदर्शों और वैदिक समाज में उनकी स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। यह मान्यता कि कलाकारों के पास रहस्यमयी शक्तियां थीं, वैदिक युग के कलाकार को सामान्य व्यक्ति से भिन्न धरातल पर स्थापित करती है। इन शक्तियों के अनेक उपयोग भी थे, जैसे 'कारु' (एक सिद्धहस्त कर्मिक) कभी योद्धाओं के साथ रणक्षेत्र में जाता, तो कभी वह सम्पत्ति को शांतिपूर्ण ढंग से प्राप्त कराने में समर्थ होता; इस प्रकार वर्णित किया गया है। शिल्प एवं शिल्पियों से जुड़े ये विभिन्न संदर्भ तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हैं। एक ऐसा समाज जो पशुचारण पर निर्भर यायावर जीवन व्यतीत कर रहा था; विकासोन्मुख होकर, निवेश स्थापित करने की चेष्टा में रत था और विभिन्न बस्तियां बसा रहा था; वहां शिल्पियों को समुचित सम्मान मिलना स्वाभाविक है, विशेष रूप से इसलिए भी कि उनके कृषि कार्य में उपयोगी उपकरणों की व्यवस्था भी शिल्पी जन ही करते थे।

सामाजिक सम्बंध सदैव अन्योन्याश्रित रहे हैं। अतः शिल्पियों का 'कारु', 'वर्धकी' या 'तक्षा' के रूप में समाज के क्रियात्मक पक्ष में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेना रंचमात्र आश्चर्य का विषय नहीं है। दैनिक उपयोग के उपकरण बनाते बनाते ये कलाकार प्रायः सौन्दर्यपूर्ण सृजन भी करते थे। उपर्युक्त उद्धरण कला, शिल्प, हस्तकला आदि का वैदिक समाज में महत्वपूर्ण स्थान निःसंशय घोषित करते हैं। यही विचार आगे चल कर साहित्यिक रचनाओं में भलीभांति व्यक्त हुए हैं जो भारतीय कला के सौन्दर्यबोध की स्थिति सुस्पष्ट करते हैं।

उत्तरोत्तर प्रगतिशील समाज में, कार्यों की विभाजन रेखाएं गहन होती गयीं। फलस्वरूप पुरोहितों और योद्धाओं के स्थान अधिक महत्वपूर्ण होते गये और अन्य सामाजिक शक्तियों का अवमूल्यन हुआ। कालांतर में धर्मशास्त्रियों ने शिल्पियों के प्रति पक्षपातपूर्ण बंधन लगा दिये और उनका महत्व उत्तरोत्तर कम होने लगा। लगभग पांचवीं ईसा पूर्व शताब्दी के ग्रंथों में संकेत मिलता है कि समाज के विभिन्न वर्गों में अनेक अंतर गम्भीर रूप से व्याप्त हो गये थे। सनातन 'वर्णाश्रम' परम्परा में शिल्पियों का स्थान गौण हो गया और पतन के लक्षण स्पष्ट हुए। मैत्री उपनिषद (VII.8) के अनुसार शिल्प से जीवनयापन करने वाले कर्मी स्वर्ग के अधिकारी नहीं माने गये। आपतस्तम्ब और गौतम ने शिल्पी द्वारा दिया गया भोजन 'अखाद्य' घोषित किया। गौतम के अनुसार ब्राह्मण उस वैश्य द्वारा

दिया गया भोजन स्वीकार कर सकता है जो शिल्पी न हो। शिल्पियों में काष्ठकर्मी भी सम्मिलित थे। इस भाँति की वर्जनाएं सम्भवतः प्रदूषण या पवित्रता के तत्कालीन विचारों के आधार पर की गयी होंगी। परंतु उसी युग के बौद्ध ग्रंथों में शिल्प के अत्यंत महत्वपूर्ण अभ्युत्थान के भी विवरण हैं।

नगरीकरण के द्वितीय चरण में अनेक नगरों का अभ्युदय हुआ और शिल्पियों की गतिविधियों में परिवर्तन आये। भवन निर्माण कार्य में पत्थर का उपयोग होने से 'वर्धकी' और 'तक्षन्' को अधिक लाभ हुआ। पश्चिमी भारत में कार्ला, कोन्डाने, तथा अन्य स्थानों पर गुहा मंदिरों का कार्य करने वाले शिल्पी वर्धकी ही थे जो काष्ठ के स्थान पर पत्थर पर कार्य करने लगे थे और 'शैल वर्धकी' कहे गये। उनकी स्थिति शिल्प कार्यरत अन्य कलाकारों के समान हो गयी। मौर्य शासनकाल में बौद्ध स्मारकों के निरंतर निर्माण से तथा कलाकारों के संगठन से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि नगरीकरण की योजना में शिल्पियों और कारीगरों का अपने ही ग्राम में सीमित रह कर कार्य करने का चलन समाप्त होने लगा। कलाकृतियों को संरक्षण मिला जिससे शिल्पियों को अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। समाज में उनकी आवश्यकता की अनुभूति पुनः जाग्रत हुई और उनके महत्व में अभिवृद्धि हुई। पाणिनि के एक सूत्र 'इवे प्रतिकूलौ' में जीवनयापन के लिए बनायी गयी मूर्तियों तथा बाजार में बिकने वाली मूर्तियों में भेद दर्शाया गया है। स्पष्ट है कि मूर्तिनिर्माण अब ऐसा व्यवसाय हो रहा था जिसमें प्रतियोगिता का भाव भी निहित था। एक जातक कथा में एक स्वर्णकार के विषय में लिखा है कि राजा ने उसे एक निश्चित मात्रा में स्वर्ण देकर एक नारी मूर्ति गढ़ने का आदेश दिया। अलिनचित्त जातक में काष्ठकर्मियों का जंगलों से लकड़ी इकट्ठी करके अपने ग्राहक को संतुष्ट करने योग्य निर्माण कार्य करने का विवरण है। यह भी कहा गया है कि यदि एक नगर में निर्माण कार्य सम्पन्न हो जाये तो वहाँ का शिल्पी किसी अन्य स्थान पर भी जा सकता था; यह उल्लेख मिलिंदपञ्चों नामक ग्रंथ में है। एक अन्य जातक में एक ब्राह्मण का उल्लेख है जो बढई के कार्य में कुशल था। इन दृष्टांतों से विदित होता है कि धर्मशास्त्रों के प्रतिबंध सार्वभौमिक नहीं थे। अनेक शिल्पियों की आर्थिक स्थिति सुधर रही थी और साथ ही उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिल रही थी। 'अंगुत्तर निकाय' (111.363) में शिल्प से, पर्याप्त धन अर्जित करने की चर्चा है।

इन परिस्थितियों में शिल्पी वर्ग में कुछ विषमताएं भी आयीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अनेक कलाकारों से काम लेने वाले 'कारु शासितृ' तथा निजी कार्यशाला और पूंजी रखने वाले 'सवित्तकार' का उल्लेख है। अनेक कलाकारों के वर्ग बौद्ध धर्म के अंतर्गत कार्यरत हो गये थे। उनमें से कुछ शिल्पी 'भदंत', 'भानक', 'भिक्षु' या 'धेर' की पदवी तक पहुंचे। कारीगरों और कलाकारों को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त हुआ। उदाहरणार्थ एक बनवासी अभिलेख में स्कंदस्वाति नाम का मंत्री मंत्री होने के साथ ही 'कम्मतिक' भी था। अर्थात्, निर्माण कार्य का वह मुखिया था। इस प्रकार कलाकारों में पदसत्ता का समावेश हुआ, जिससे सामान्य कलाकार से भिन्न, विशेष योग्यता, निपुणता आदि के आधार पर शिल्पियों के एक 'वर्ग विशेष' की स्थिति अधिकारपूर्ण हो गयी। फलतः विशेष योग्यता और कार्यकुशलता प्राप्त करने का अभ्यास निरंतर बढ़ने लगा। अभिलेखों में शिल्पियों की पदवियां और उनके विशेष कार्यक्षेत्र आदि, उनके पारस्परिक वैभिन्य को रेखांकित किया गया है।

शिल्पियों की पदवियां, जैसे; 'आवेशनिन्; अर्थात् शिल्पी शालाओं के अधीक्षक, 'नवकर्मिक' अर्थात् कलाकारों का मुखिया जैसी उपाधियो उसके अधिकारबोध का परिचय देती हैं, विशेष रूप से यह उनके उच्चस्तर का आभास कराती हैं। 'आवेशनिन' शब्द का प्रयोग प्राचीन अभिलेखों में अनेक बार हुआ है। सांची में मुख्य स्तूप के दक्षिणी तोरण पर आनंद नाम के आवेशनिन् का उल्लेख है, जिसने तोरण का निर्माण कार्य सम्पन्न किया तथा करवाया। यह आनंद सातवाहन राजाओं का शिल्पी

था। अन्य 'आवेशनिन्' आंध्र के वेंगी क्षेत्र में कार्यरत थे। 'रूपकार', 'रूपदक्ष', 'शैलालक', 'मिठिक', 'कट्टिक', 'शैलवर्धकी' और 'दंतकार' जैसे अन्य विशेषण उन कलाकारों के थे जिन्होंने किसी विशेष कलाक्षेत्र में निपुणता प्राप्त कर ली थी। 'महावस्तु' नामक बौद्धग्रंथ में ऐसे ही अनेक विशिष्ट शिल्पियों की उपाधियां हैं, जैसे; 'चित्रकार', 'वर्धकी', 'रूपकार', 'कारुपत्रिक', 'पुस्तकारक', 'पुस्तकर्मकारक', 'लेपक', 'स्थपति' और 'सूत्रकार' जिनका तात्पर्य चित्रकार, काष्ठकार, मिट्टी से आकृतियां बनाने में समर्थ, लेप करने वाले और स्थापत्य के ज्ञानी से है। इतना विकास अकस्मात नहीं हुआ, वरन इनमें एक सुनिश्चित व्यवस्था से विकास की धारा प्रवाहित होती रही।

प्राचीन ग्रंथों में 'शिल्पीशाला' के भी उल्लेख हैं। इनका योगदान शिल्प तथा शिल्पियों के उत्तरोत्तर विकास में सहायक रहा होगा। 'शिल्पीशाला' ऐसी संस्थाएं थीं जिनमें दूरस्थ क्षेत्र से आने वाले 'अंतेवासी' कला का प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। ऐसे अंतेवासी शिल्पशाला के शिल्पाचार्य के ही निवास स्थान में रहते थे। उनका भरण पोषण शिल्पाचार्य ही करते थे और उनकी योग्यतानुसार उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता था। मथुरा की परवर्ती मौर्ययुगीन प्रतिमाओं पर अभिलेख मिले हैं जिनमें इस व्यवस्था का संकेत है। दो प्रतिमाओं पर गोमितक और नक (नाग) नाम के दो अंतेवासियों का उल्लेख है। दोनों ने शिल्पाचार्य कुणिक के आश्रय में क्रमशः यक्ष तथा यक्षिणी की प्रतिमाएं बनायी थीं, जो आज विश्वविख्यात हैं।

शिल्पीशालाओं के उद्भव और शिल्पाचार्य के पास प्रशिक्षण हेतु आने वाले अंतेवासी से ही सम्भवतः 'घराना' की परम्परा का विकास हुआ होगा 'घराने' के कलाकार कुछ तो शिल्पाचार्य के ही परिवार के सदस्य थे; कुछ वे अंतेवासी कलाकार भी थे जो कला प्रशिक्षण हेतु शिल्पाचार्य के ही साथ रहे, फिर प्रशिक्षित हो जाने के बाद वापस चले गये। अंतेवासी के निर्वाह का पूरा उत्तरदायित्व शिल्पाचार्य का ही होता था। इसके प्रमाण प्राचीन ग्रंथों में मिलते हैं, जिनमें कहा गया है कि यदि शिल्पाचार्य अंतेवासी को उचित प्रशिक्षण नहीं देता या प्रमाद करता है तो वह दंड का भागी है। इस प्रशिक्षण के समय अंतेवासी शिल्पाचार्य के निरीक्षण में कार्यरत रहता था और शिक्षा पूरी हो जाने के बाद अपनी आय का कुछ भाग शिल्पाचार्य को गुरुदक्षिणा स्वरूप भेंट करता था। शिष्य तथा आचार्य दोनों के ही कार्यों का नियम मान्य था; यदि अंतेवासी अपने कार्य की अवहेलना करे तो वह भी दंड का भागी होता था।

इस विवरण का यह अर्थ नहीं है कि मनस्वी एवं कुशल कलाकार अपने मूल निवासस्थान पर ही स्थापित रहें। अभिलेखों से ऐसे शिल्पाचार्यों के विषय में भी ज्ञात होता है जो निर्माण कार्य की आवश्यकतावश निरंतर स्थानापन्न होते रहे।

अस्तु, शिल्पाचार्य अपने मूल निवासस्थान पर अधिक समय तक नहीं रह पाते थे। उनकी प्रशंसा दूरस्थ क्षेत्रों तक व्याप्त होने से उनके लिए विभिन्न स्थानों से निमंत्रण आने लगे थे। वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक अपने कार्यों के सम्बंध में आने जाने लगे थे। ऐसे यायावर शिल्पियों के सम्बंध में अनेक अभिलेख प्राप्त होते हैं, जैसे; प्रारम्भिक ईसवी शताब्दी के अभिलेखों के अनुसार, सिद्धार्थ नामक आवेशनिन् अमरावती में कार्यरत था जबकि उसके पिता आंध्र प्रदेश के कम्मक क्षेत्र में नदतुर नामक स्थान के निवासी थे। सिद्धार्थ ने अमरावती के अतिरिक्त जगगव्यवेट्ट में भी कार्य किया। अमरावती के एक अभिलेख में वीरपुर निवासी एक अन्य कलाकार का भी उल्लेख है।

कुछ ऐसे भी शिल्पी थे जो अपना मूल निवासस्थान छोड़ कर नहीं गये। उदाहरणार्थ; प्राचीन मथुरा निवासी 'छांदक भ्राताओं' ने मथुरा को ही अपनी कार्यस्थली बनाये रखा। इनका मुखिया नदिबल नामक शिल्पी था। सांची के तोरण पर भी हाथी दांत का काम करने वाले मूर्तिकार अपने को निकटस्थ

विदिशा का निवासी घोषित करते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'शिल्पी', 'कारु' आदि अन्य कलाकारों की चर्चा है जो वेतनभोगी थे। वर्धकी को दो सौ पण वेतन मिलता था, जबकि कारु को केवल डेढ़ सौ पण मिलते थे। स्पष्ट साक्ष्य के अभाव में 'विष्टि' (वेगार) के नियमों का आरोपण कलाकारों पर करना कठिन है। जूनागढ़ से प्राप्त एक अभिलेख (प्रथम ईसवी शताब्दी) के अनुसार सुदर्शन झील का पुनरुद्धार करने में शक छत्रप राज रुद्रदामा ने कर्मिकों पर 'विष्टि' (वेगैर) नहीं थोपी।

कलाकारों के बीच पद एवं श्रेणी विभाजन के प्रमाण प्राचीन स्रोतों से ज्ञात होते हैं। ये विभाजन इनकी कार्यकुशलता और महत्ता के सूचक थे तथा इनकी सत्ता और इनके प्रति व्यवहार को सुनिश्चित करते थे। सम्भवतः पदसत्ता के आधार पर राजाओं के संरक्षण में कार्य करने वाले शिल्पियों को अधिक स्वतंत्रता थी तथा उन्हें अपेक्षाकृत अधिक वेतन मिलता था। पतंजलि (दूसरी ईसा पूर्व शताब्दी) के अनुसार राजा के संरक्षण में कार्यरत शिल्पी किसी अन्य व्यक्ति का कार्य नहीं कर सकता था। स्कंद स्वाति 'कर्मतिक' था और साथ ही साथ मंत्री भी। इससे स्पष्ट है कि राजा से प्राप्त संरक्षण के कारण शिल्पियों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति भलीभांति सुदृढ़ हो गयी। जिन कलाकारों की निजी शालाएं थीं अथवा जो बौद्ध संघ के सदस्य थे उनकी भी सत्ता या समृद्धि अवश्य बढ़ी होगी। बौद्ध संघ में सम्मिलित होने के बाद कलाकार, 'थेर', 'भदंत' आदि पदवियां भी प्राप्त कर सके। सनातन वर्णव्यवस्था से इन्होंने अपने को मुक्त कर लिया, किन्तु ब्राह्मण ग्रंथों में वे शूद्र ही बने रहे।

गुप्तकाल के अभिलेखों में कलाकारों का उल्लेख नहीं है, किन्तु मथुरा और कुशीनगर (कसिया) की बुद्धमूर्तियां बनाने वाले 'यश' ने मूर्ति पर अभिलेख लिख कर अपनी वैयक्तिकता का परिचय दिया है। मूर्तियों से प्राप्त अभिलेख में उसके नामांकित हस्ताक्षर हैं। सारनाथ के धमेक स्तूप पर कलाकारों की आत्माभिव्यक्ति किन्चित् भिन्न ढंग से परिलक्षित होती है। इस स्मारक पर अनेक शिल्पी चिह्न तत्कालीन कलाकारों के विशेष हस्ताक्षर के समान हैं, जिनका बाद के कुछ ग्रंथ, जैसे शुक्रनीति में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। इन शिल्पी चिह्नों से उनके संगठन, वंश या घराना आदि का अनुमान सम्भव है।

कला इतिहास के प्रारम्भिक मध्ययुग में कला तथा शिल्प का अभूतपूर्व विकास हुआ। मंदिर निर्माण एक महान धार्मिक सामाजिक विधान हो गया, जिसके लिए समाज के सभी वर्गों ने भरपूर दान दिये। शिल्पी श्रेणियों का प्रादुर्भाव इस विकास का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। शिल्प व्यवसाय से सम्बंधित संगठन यद्यपि प्रारम्भ में अज्ञात रहे, किन्तु मध्यकाल में इसके प्रचलन के कुछ संकेत मिलते हैं। संख्या में कम होते हुए भी ये संदर्भ महत्वपूर्ण हैं। अभिलेखों से प्राप्त 'गोष्ठी' और 'गण' जैसे शब्द इस युग में शिल्पियों के 'श्रेणियों' में व्यवस्थात्मक ढंग से संगठित होने का संकेत देते हैं। बरेन्द्र (उत्तरी बंगाल) में शिल्पियों की गोष्ठी से सम्बंधित एक अभिलेख में 'शणक' शूलपाणि को उस 'गोष्ठी का चूड़ामणि' कहा गया है। 'शणक' स्वयं एक सामंती उपाधि है, जिससे शूलपाणि की महत्ता सिद्ध होती है। एक चालुक्य अभिलेख में 'सर्वसिद्ध आचार्यों' के विवरण हैं, ये शिल्पी संगठन के सदस्य थे। अभिलेख में 'श्रेणी' के नियमों और अनुशासन का उल्लेख है जिसके अनुसार दंडनीय शिल्पी को संगठन से निष्कासित किया जा सकता था। यदि वह फिर से अनुशासन मानने लगे तो उसे पुनः वापस भी लिया जा सकता था। अर्थात् श्रेणी में रहने के लिए शिल्पियों को श्रेणी के नियम और अनुशासन का सम्मान करना अनिवार्य था। कर्नाटक के अन्य अभिलेखों में 'देसीगण' तथा 'सरस्वतीगण' के कलाकारों का उल्लेख है। बल्लिग्राम (जिला शिमोगा, कर्नाटक) के एक कलाकार दासोजा के सम्बंध में कुछ विकीर्ण छिटपुट वर्णन हैं, जिनके अनुसार वह 'सरस्वतीगण' का सदस्य था, और उसके (कर्नाटक के) अनेक मंदिरों में कार्य किया था। 'पथुरिया पर्यग नायक', 'शिल्पी नायक' और 'कुलपत सामंत' जैसी उपाधियां पूर्वी भारत के शिल्पियों और सूत्रधारों की हैं जिनसे विदित होता है कि इस क्षेत्र में

भी शिल्पी संगठन रहे होंगे जिनके प्रमुख इन उपाधियों से विभूषित थे। यह भी सम्भव है किसी एक विशिष्ट नगरग्राम में अपनी बहुल संख्या के आधार पर यह परस्पर संगठित हो गये हों। श्रेणियों के नाम से विख्यात अनेक कर्मकार संगठन मौर्यों के पूर्व ही स्थापित हो चुके थे, किन्तु मूर्तिकारों या स्थपतियों के ऐसे संगठन की सूचना अन्यत्र बहुत ही अल्प है। कर्नाटक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शिल्पियों का एक समूह शिमोगा में था। पूर्वी भारत के अभिलेखों में पोशलि ग्राम का उल्लेख है जहाँ अनेक सुविख्यात कलाकारों का सिलसिला बना रहा। इनमें विक्रमादित्य तथा उसके पुत्र महेन्द्र, शशिधर, चंद्रादित्य और उसके पुत्र पुष्यादित्य तथा हृद्देव के पुत्र शशिदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। पिता पुत्र की यह शृंखला पोशलि में विद्यमान रही और कार्यरत रही। नवनिर्मित मंदिरों के निकट ही शिल्पियों की बस्ती होने के प्रमाण मिलते हैं। यह परिस्थिति राजकीय संरक्षण के कारण हुई। मंदिर निर्मित हो जाने के बाद, राजा निकटस्थ क्षेत्र की भूमि कलाकारों को प्रदान करता था। मठों या मंदिरों के निर्माता; शिल्पियों को मठ या मंदिर के ही परिसर में रहने को प्रोत्साहन देते थे

कोणार्क मंदिर का निर्माण कार्य सम्पन्न हो जाने पर निर्माण कार्य में पहले से ही संलग्न दो सौ चौबीस 'पथुरियों' (पत्थर के कारीगर) को मंदिर के पास प्रत्येक को पर्याप्त भूमि देकर बसाया गया था। इसी प्रकार वासुदेव महापात्र नाम के शिल्पाचार्य को निकटवर्ती ग्राम में बसाया गया था। प्राचीन मठों में शिल्पियों की तो आवश्यकता थी ही, उन्हें भी इसी प्रकार भूमि दी जाती थी ताकि स्मारक की सुरक्षा तथा रखरखाव में किसी प्रकार की कमी न हो। यदि कोई क्षति हो तो तुरंत उसका सुधार हो सके और स्मारक अक्षुण्ण रहे।

शैव सिद्धांत सम्प्रदाय के मठों में स्वर्णकार, ताम्रकार, काष्ठकार और लौहकर्मियों के अतिरिक्त प्रस्तर कार्य में कुशल मूर्तिकार और स्थपति को भी साथ ही रखने के उल्लेख हैं। एक काकतीय रानी रुद्राम्बा के मलकापुरम अभिलेख में शैव आचार्य विश्वेश्वर द्वारा उपर्युक्त शिल्पियों को विश्वेश्वर गोलकी मठ के अंतर्गत निर्माण कार्य हेतु विविध उत्तरदायित्व सौंपने का उल्लेख है। कोरई रावी के तेली अभिलेख में एक मंदिर की प्रबंध समिति में चित्रकार और मूर्तिकार के सम्मिलित होने का वर्णन है।

जिस समय शिल्पी निर्माण कार्य में नहीं व्यस्त होते थे वे गांव के लोगों के लिए उपकरण आदि बनाते थे। कुछ शिल्पी योद्धाओं के साथ सेना में चले जाते थे, अन्य शिल्पी युद्ध के लिए आवश्यक अस्त्र शस्त्र आदि बनाते थे, कुछ अन्य शिल्पी कृषिकार्य के लिए आवश्यक उपकरण बनाते थे।

शिल्पाचार्य अपने मूल निवास के नगर या ग्राम से दूर उन धनिक संरक्षकों के निर्देशानुसार कार्य करने को तत्पर रहते थे जो भवन या मंदिर निर्माण के इच्छुक हों। उदाहरण स्वरूप मगध के सोमेश्वर नाम के प्रवीण शिल्पी ने आसाम के चंद्रवंशीय राजाओं के राज्य में कार्य सम्पादित किया। पूर्वी कांगड़ा के बैजनाथ अभिलेख में नगरकोट के नायक नामक सूत्रधार द्वारा एक अन्य शिल्पी के साथ 'छेनी की सहायता' से शिवमंदिर के निर्माण का वर्णन है। दोनों कलाकारों ने शास्त्रों के निर्देशानुसार यह कार्य सम्पन्न किया।

शिल्पियों ने वर्णव्यवस्था से स्वयं को मुक्त कर ही लिया था। ऐसे अनेक उदाहरण अभिलेखों में प्राप्त हैं जिनमें अन्य पदों या वर्ण के लोग इस व्यवसाय को सम्पन्न करने हेतु तत्पर थे। इससे स्पष्ट है कि शिल्पियों की मान मर्यादा तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में अब और अभिवृद्धि हो रही थी। इतनी वृद्धि कि अन्य पदों या वर्गों के समृद्ध व्यक्ति उनकी श्रेणी में शामिल होने लगे थे। राजस्थान (966.ए.डी.) के एक अभिलेख में एक क्षत्रिय द्वारा सूत्रधार का व्यवसाय अपना लेने का उल्लेख है। इसी भांति राजस्थान के कुशुमा नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख में क्षत्रिय स्थविर द्वारा अभिलेख उत्कीर्ण करने का उल्लेख है। शिल्पियों के विकास एवं उनकी विख्याति से प्रभावित होकर अनेक वर्ण,

क्षेत्र तथा व्यवसाय के लोग उनकी ओर प्रायः आकृष्ट हुए। पंडित उहिल के पुत्र नागपाल तथा एक 'भोगिक' पद पर आसीन अधिकारी के पुत्र जयत सिंह द्वारा भी उत्कीर्णक का कार्य करने के उल्लेख हैं। एक दंडनायक पद पर आसीन अधिकारी के पुत्र मल्ल विजय ने 'सूत्रधार' का कार्यभार संभाला, इसकी सूचना दक्षिण भारत से प्राप्त है।

छत्तीसगढ़ से प्राप्त एक अभिलेख में देवगण नामक एक कायस्थ को 'रूपकार शिरोमणि' की उपाधि से विभूषित किया गया है। अर्थात् देवगण कायस्थ मूर्ति निर्माण में 'सिद्धहस्त' था। कुशल शिल्पाचार्य 'राणक' या 'ठकर' जैसी सामंत की कोटि में आ गये, यह कोई आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है। ये सभी सामंत पद प्राचीन सामंत व्यवस्था के आधार स्तम्भ थे। उच्च वर्ण तथा वंशों के लोग समृद्ध थे किन्तु वे भी न केवल शिल्पकर्म करने के इच्छुक थे वरन् वे स्वयं इनके क्षेत्र में कार्यरत हुए। शिल्पियों का प्रमुख पदों पर पहुंचना और सामंती उपाधियां धारण करना एवं भूमिस्वामी होना उनकी ऊर्ध्वमुखी प्रगति के परिचायक हैं। सामाजिक एवं अर्थिक सीमाएं तोड़ते हुए मूर्ति एवं स्थापत्य कला से जुड़े शिल्पकार अब एक नवीन सामाजिक परिवर्तन प्रस्तुत कर रहे थे जो उनके सर्वसाध्य तथा विकासमान पक्ष का द्योतक है। इन कलाकारों के शिल्पशास्त्र सम्बंधी ज्ञान की भी प्रशंसा अभिलेखों में की गयी है। छत्तीसगढ़ के ही रतनपुर नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख में एक शिल्पी को 'शास्त्रजयी' कहा गया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में विश्वकर्मा के एक ब्राह्मण के रूप में जन्म लेने और घृताची नामक एक अप्सरा के एक ग्वालिन के रूप में जन्म लेने का वर्णन है। इस पुराण में विवरण है कि दोनों के वैवाहिक सम्बंध से शिल्पियों का जन्म हुआ। इन संदर्भों में उनके उत्तरोत्तर उत्कर्ष की साधिकार सूचना विद्यमान है। अतः स्पष्ट है कि वर्णव्यवस्था का उल्लंघन करते हुए अंततोगत्वा शिल्पी कलाकार वर्ग अपनी कुशलता से समाज में गौरवशाली प्रतिष्ठा प्राप्त करने में सफल हुआ।

शिल्पियों को उनके कार्यों के अनुसार विभिन्न ढंग से सम्मानित किया जाता रहा है। कभी उन्हें भूमि स्वामी बना कर और कभी यथेष्ट धनराशि देकर। रुद्राम्बा के मलकापुरम अभिलेख से ज्ञात होता है कि शिल्पी कलाकार भूमि स्वामी होते थे। अभिलेख के अनुसार शिल्पी, अधिकारीगण और मठ में नियुक्त अन्य व्यक्ति भूमि के स्वामी थे और उस भूमि से प्राप्त होने वाले लाभ पर उनका पूरा अधिकार था। जो शिल्पी कोणार्क में कलाकारों के लिए बनाये गये 'रूपास' शिविर में रहे, निर्माण कार्य सम्पादित करने के बाद, उन्हें वेतन या भूमि आदि के रूप में पारिश्रमिक दिया गया। कोणार्क मंदिर पूरा बन जाने के बाद जब 'रूपास' शिविर हटाया गया तब शिल्पियों को विविध उपहार भी दिये गये। तदनुसार सूत्रधार को तीन क्रोश भूमि उपहार में दक्षिणा स्वरूप दी गयी। सदानंद पट्टनायक नामक कलाकार को सदानंद ग्राम में भूमि दी गयी। स्वर्णकारों को अपने मकान बनाने के लिए सनालपुर में और वहीं एक सौ आठ मूर्तिकारों (पथुरिया) को भी निवास हेतु भूमि दी गयी। यह भूमि उनके समृद्ध और सुखी जीवनयापन के लिए पर्याप्त थी। इसका विस्तार लगभग एक सौ आठ एकड़ माना गया है। प्रस्तर कर्मियों को यह भूमि शिल्पी समाज स्थापित करने के लिए दी गयी होगी।

अन्य मंदिर या मूर्ति निर्माण के इच्छुक संरक्षकों ने भी अपने मनपसंद अन्य स्थानों पर निर्माण कार्य के उपलक्ष में शिल्पियों को भूमि या धन आदि देकर सम्मानित करने की परम्परा का निर्वाह किया होगा। कल्याणी के चालुक्यों के समय का एक अभिलेख जकूक नाम के चितारी (चित्रकार) को उसके कार्य के पारिश्रमिक स्वरूप भूमि प्राप्त करने का उल्लेख करता है। इसी भांति राजस्थान के एक अभिलेख में एक मंदिर के कुछ भागों का निर्माण करने का मूल्य तीन सौ 'द्रम्म' आंका गया है। यह धन पाहिनी नामक शिल्पी ने निर्माण कार्य में अन्य कलाकारों के साथ मिल कर अर्जित किया

था। शिल्प कार्य के साथ धनार्जन भी जुड़ जाने के कारण शिल्पियों में पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता भी आयी। इसका स्पष्ट आभास कनार्टक के अभिलेखों में मिलता है। एक अभिलेख में एक 'रूवारी' (रूपकार) को 'अपने प्रतिद्वंद्वियों का हंता' कहा गया है जिसका तात्पर्य है कि उसकी कला अन्य सभी शिल्पियों की कला से अत्यधिक श्रेष्ठ थी। अन्य अभिलेखों में कोई शिल्पी 'शरभ के लिए मेरुदंड' या कोई 'कामदेव के लिए शिव' कोई 'पर्वतों के लिए वज्र के समान' इत्यादि उपमाओं की सहायता से अपने प्रतिद्वंद्वियों को धराशयी कर देने का उद्घोष करता हुआ वर्णित है।

अभिलेखों से तो शिल्पी वर्ग की महत्ता प्रकट होती ही है, परंतु आनंदवर्धन ने ध्वन्यालोक में कवि कलाकारों को सर्वोच्च शिखर पर स्थापित कर दिया। यहां तक कि उन्हें 'प्रजापति' सृष्टा कहा गया। और यह भी उक्ति है, कि प्रजापति तो नियमों में बंध कर सृष्टि रचना करते हैं जबकि कलाकार स्वतंत्र रूप से स्वेच्छापूर्वक रचना करने में समर्थ है 'यथास्मै रोचते विश्वं तदैव परिवर्तते' अर्थात् वैश्विक रचना वह इच्छानुसार परिवर्तन द्वारा सम्पन्न करने में समर्थ है। यह पंक्ति शिल्पियों की समर्थ यथास्थिति को वास्तविक रूप से स्पष्ट करती प्रतीत होती है।

लेख को सुपाठ्य बनाने के लिए लेखक श्रीमती वीणा मिश्र का आभारी है।

### संदर्भ ग्रंथ

मिश्र, आर.एन. (1975) **एंशेन्ट आर्टिस्ट एंड आर्ट ऐक्टिविटी**, शिमला : भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान।  
मिश्र, आर.एन. (2009) **शिल्प इन इंडियन ट्रेडीशन : कांसेप्ट एंड इन्सट्रूमेण्टलिटीज** शिमला। नयी दिल्ली : भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान। आर्यन बुक इंटरनेशनल



# सामाजिक पदानुक्रम का प्रत्यंतरण

अवधेश मिश्र

1947 में तत्कालीन मद्रास राज्य के प्रथम मुख्यमंत्री टी. प्रकाशम ने 'राधिका सांत्वनम' पर ब्रिटिश शासकों द्वारा लगाये गये प्रतिबंध को हटाते हुए कहा 'यह तेलगु साहित्य की मुक्तामाला में सुंदर मोतियों की पुनर्स्थापना का संघर्ष था।' इसके साथ ही बंगलोर नागरत्नम्मा द्वारा सम्पादित संस्करण के प्रकाशन एवं वितरण पर वर्ष 1911 से चली आ रही रोक समाप्त हो गयी एवं तेलगु साहित्य के यशस्वी प्रकाशक वाविला रामास्वामी शास्त्रुल एंड संस ने 1952 ई. में इसे अविकल पुनर्प्रकाशित कर दिया।

'राधिका सांत्वनम' की रचयिता मुड्डुपलानी देवदासी समुदाय से आती थी। वह तंजाउर के मराठा राजा प्रताप सिंह (1739-1763) के दरबार की राजनर्तकी होने के साथ साथ महाराज की भोग पत्नी भी थी। गीत संगीत के साथ साथ वह संस्कृत तेलगु तमिल की अच्छी जानकार थी और एक अच्छी कवयित्री भी थी। उसने आंडाल के 'तिरुप्पावै' का तेलगु रूपांतरण करते हुए सात पंक्तियों वाले छंद 'सप्तपदी' की मौलिक अवतारणा की थी, जिसके लिए उसे दरबार में सम्मानित भी किया गया था।

'राधिका सांत्वनम' 'शृंगार प्रबंध श्रेणी' की एक रचना है। यह चार अध्यायों में विभाजित है। यह मूलतः राधा की कथा है। राधा कृष्ण के पालक पिता नंद की छोटी बहन है। राधा पूर्ण यौवना है एवं कृष्ण से प्रेम करती है। राधा 'इला देवी' का पालन पोषण करती है एवं कृष्ण से उसका विवाह करा देती है। इस काव्य में इला देवी के यौवनागम के उत्सव का बहुत सुंदर वर्णन है। राधा नववधू एवं कृष्ण दोनों को कामशास्त्रीय शिक्षा देती है, वह कृष्ण से अनुरोध करती है कि वे नववधू के प्रति कोमलता से पेश आयें। किन्तु राधा से कृष्ण का वियोग सहन नहीं होता, वह विरह में टूट जाती है। इस काव्य की विशेषता इस बात में भी है कि इसमें एक ऐसी स्त्री की पीड़ा का मार्मिक एवं संवेदनशील वर्णन है जिसने स्वयं अपने प्रेमी का विवाह अन्यत्र करा दिया है। पूरी तरह असंतुलित राधा कृष्ण को भला बुरा कहती है। कृष्ण उन्हें शांत करते हैं, आलिंगन में लेकर सांत्वना देते हैं। यहीं इस काव्य

का शीर्षक 'राधिका सांत्वनम' अर्थवान हो उठता है "मुड्डुपलानी ने यह काव्य 'शृंगार प्रबंध' विधा में लिखा, जो अपने समय की एक अत्यंत लोकप्रिय विधा थी। किन्तु वह एकमात्र स्त्री कवि थी जिसने शृंगार प्रबंध लिखा और यह भी सम्भव है कि एक शती के पश्चात यह काव्य इतना विवादित भी इसीलिए हुआ क्योंकि यह एक स्त्री द्वारा लिखा गया था।"<sup>2</sup>

राधिका सांत्वनम की अवतारिका (भूमिका) में मुड्डुपलानी अपना वंश परिचय देती है। इस वंश परिचय में वह अपनी पूर्वज स्त्रियों का सगर्व उल्लेख करती है। पितामही तंजनायकी एवं माता रामावधूटी का जिक्र वह महान कलावंतो के रूप में करती है। यहां वह काव्यशास्त्रीय परम्परा का अनुपालन करते हुए भी एक सार्थक हस्तक्षेप करती है।

मुड्डुपलानी स्वयं अपने बारे में कहती है

और कौन है मुझ जैसी  
जिसने रचा हो रामाकूटि  
मुझ जैसी किस अन्य को  
समर्पित है महाकाव्य  
अन्य कौन है सम्मानित विद्वानों द्वारा  
बहुमूल्य उपहारों से, मेरे अतिरिक्त।<sup>3</sup>

मुड्डुपलानी की यह गर्वोक्ति हमें दंडी (7वीं शती) की समकालीन कर्नाटक की कवयित्री विज्जका (विद्यका) का स्मरण कराती है जिसने आचार्य दंडी की 'सर्वशुक्ला सरस्वती' पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया था

नीलोत्पलदलश्यामाम् विद्यकाम माम अजानता।

दंडिनस्तु वृथा प्रोक्तम सर्वशुक्ला सरस्वती।।

(नीले कमल के सामान मुझ (विद्यका) से अपरिचित होने के कारण ही दंडी ने सरस्वती को श्वेत वर्ण वाली कहा है, अर्थात् सरस्वती तो मैं ही हूँ।)

**मुड्डुपलानी** की यह रचना अपने समय में ही तेलगु साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं में शामिल थी। किन्तु भाषिक भूगोल ही इसके प्रसार की सीमा भी बन गया था, बाहर के साहित्य समाज को इसकी जानकारी नहीं थी। प्रसिद्ध प्राच्यविद चार्ल्स फिलिप ब्राउन वापस जाते समय पांडुलिपियों का एक बड़ा संग्रह छोड़ गये थे, जो मद्रास ओरियंटल लाइब्रेरी में सुरक्षित था। इस संग्रह में 'राधिका सांत्वनम' की प्रति भी थी। ब्राउन के ही निकट सहयोगी श्री वेंकटनारासु ने 1887 ई. में इसे प्रकाशित कराया, इसका एक अन्य पुनर्मुद्रण 1907 में भी हुआ। इसी वर्ष कंदकूरि वीरेशलिंगम तेलगु कवियों की एक चरितमाला तैयार कर रहे थे। वेंकटनारासु द्वारा सम्पादित 'राधिका सांत्वनम' एवं उसकी रचयिता 'मुड्डुपलानी' उनकी निगाह में थे। 'एंटी नाच' आंदोलन के मुखर एवं प्रखर समर्थक श्री वीरेशलिंगम समाज की अधिसंख्य बुराइयों का मूल देवदासी समुदाय को ही मानते थे। एक राजनर्तकी/देवदासी मुड्डुपलानी द्वारा रचित शृंगार प्रबंध के प्रति उनकी यह प्रतिक्रिया अपेक्षित ही थी। वीरेशलिंगम ने लिखा "यह महिला अपने निजी दावे के अनुसार साहित्य संगीत एवं नृत्य में प्रवीण थी। इस महिला की कविता मधुर एवं सरल है और वह संस्कृत एवं तेलगु की जानकार है। कुछ प्रासंगिक गलतियां भी है किन्तु वे पुरुषों की रचनाओं में भी पायी जाती है।...

"इसमें स्त्रियोचित शील का अभाव है एवं कवयित्री ने सम्भोग के चित्रमय एवं अपक्व वर्णन किये हैं। कृति के कुछ भाग ऐसे जो किसी स्त्री द्वारा पढ़े या सुने नहीं जाने चाहिए।"<sup>4</sup>

वीरेशलिंगम की इन आपत्तियों का प्रतिउत्तर बंगलोर नागरत्नम्मा ने अपने संस्करण की भूमिका में दिया। किन्तु 'राधिका सांत्वनम' एवं उसकी रचयिता मुड्डुपलानी तक नागरत्नम्मा के पहुंचने का

प्रसंग भी बहुत दिलचस्प है। पहले उसी पर चर्चा करते हैं।

मुड्डुपलानी की देवदासी आनुवंशिकता तो सुधारकों के निशाने पर थी ही, साथ ही तेलगु साहित्य में उसके अप्रतिम योगदान 'सप्तपदी' के प्रति भी साहित्य के पुरुष संरक्षकों ने उपेक्षा पाल रखी थी।<sup>15</sup> राजमुंदरी में आयोजित एक समारोह में कविराजा सार्वभौम श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री ने 'सप्तपदी' का रचयिता एक पुरुष कवि मुत्थुपलानी को बताया। सभा में उपस्थित बंगलोर नागरलम्मा अपनी हंसी न रोक सकी। वह अपने समय की प्रसिद्ध कलावंत थी, उसे अपनी देवदासी विरासत पर गर्व था। उसने विद्वान वक्ता को लगभग चुनौती देते हुए सही किया 'तिरुप्पावै' के तेलगु रूपांतरण की रचयिता एक स्त्री कवि मुड्डुपलानी है जो स्वयं मेरी भांति देवदासी थी।'

बंगलोर नागरलम्मा (1878-1952) देवदासी समुदाय से ताल्लुक रखती थी। नृत्य संगीत, संस्कृत, तेलगु और अंग्रेजी सब पर उसका समान एवं स्वाभाविक अधिकार था। तिरुवय्यूर में आयोजित एक समारोह में उसने सर्गव घोषणा की थी 'हां मैं एक देवरादियाल (देवदासी) हूँ'।

'राधिका सांत्वनम' से उसका प्रथम साक्षात् उसके मित्र एवं प्रशंसक तिरुपति वेंकट कविद्वय की कृति पाणिगृहीता के माध्यम से हुआ। नागरलम्मा के लिए यह बहुत गर्व एवं संतोष का विषय था कि इतने सुंदर काव्य की रचयिता उसके अपने देवदासी समुदाय से सम्बंध रखती थी। वेंकटनारासु द्वारा सम्पादित संस्करण पढ़ कर वह मुग्ध हो गयी किन्तु उसे सम्पादन में कुछ खामियां भी नजर आयीं। बहुत प्रयास करने पर उसे राधिका सांत्वनम की एक सटीक पांडुलिपि प्राप्त हो गयी।

अब वेंकटनारासु के सम्पादन की सूक्ष्म राजनीति भी स्पष्ट हो रही थी। यह तो सर्वविदित है कि वेंकटनारासु प्राच्यविद ब्राउन के निकट सहयोगी थे। प्राच्यविद्या का जन्म भी उपनिवेशवाद की कोख से ही हुआ था, एवं ब्राह्मणवादी श्रेष्ठता से उसका एक सीधा एवं सरल समीकरण भी भारतीय परिदृश्य में दिखायी देता है। राधा कृष्ण प्रेम से सम्बंधित साहित्य अपनी आंतरिक संरचना में जाति एवं जेण्डर की शक्ति संरचना के विखंडन करने के कारण उपनिवेशी आधुनिकता की परियोजना के अनुकूल नहीं बैठ रहा था। इसीलिए प्राच्यविदों ने इस पर या तो बहुत कम ध्यान दिया और या वेंकटनारासु एवं चार्ल्स फिलिप ब्राउन की भांति कांट छांट कर प्रस्तुत किया। 'यह दिलचस्प है कि उन्होंने न केवल श्रृंगारिक (यौनिक) पदों को ही हटाया अपितु पीठिका के उन पदों को भी सम्मिलित नहीं किया जिसमें एक स्त्री कवयित्री अपने मातृवंश को रेखांकित करती है और बहैसियत कलाकार अपनी उपलब्धियों के बारे में आत्मविश्वास से बताती हैं, जो बाद के वर्षों में भी नहीं दिखा।'<sup>16</sup>

किन्तु नागरलम्मा ने दोनों प्रतियों की तुलना करने के बाद स्वयं ही पुस्तक को सम्पादित करने का निश्चय किया। नागरलम्मा ने एक प्रस्तावना भी लिखी जो वीरेशलिंगम एवं वेंकटनारासु का घोर प्रतिवाद थी। नागरलम्मा ने वीरेशलिंगम की इस मान्यता का सटीक एवं सप्रमाण खंडन किया कि मुड्डुपलानी दुष्चरित्र थी, व्यभिचारिणी थी। नागरलम्मा के अनुसार व्यभिचारिणी वह स्त्री होती है जिसने अग्नि की साक्षी में किसी पुरुष का वरण किया हो और किसी अन्य के साथ विलुप्त हो जाये, जबकि देवदासी के प्रसंग में यह विधान लागू ही नहीं होता है। 'शुचिता' की अवधारणा देवदासियों के लिए वही नहीं है जो विवाहित स्त्रियों के लिए है। यौनकर्म देवदासियों के लिए कर्तव्य की तरह है जिसके लिए उन्हें दैवी अनुज्ञा प्राप्त है। नागरलम्मा ने लिखा, 'राधिका सांत्वनम' की श्रृंगारिकता सिर्फ इसलिए 'त्याज्य एवं वर्ज्य नहीं हो जाती कि वह एक देवदासी द्वारा लिखा गया काव्य है। स्वयं वीरेशलिंगम ने ही ऐसी प्राचीन कृतियों का सम्पादन किया है जिसमें 'राधिका सांत्वनम' से कहीं अधिक चित्रमय श्रृंगारिकता है।' क्या वे सिर्फ इसलिए स्वीकार्य हैं कि वे पुरुषों द्वारा लिखी गयी हैं।

नागरलम्मा एवं वीरेशलिंगम की यह विवादी जुगलबंदी एक अन्य क्षेत्र में भी चल रही थी।

यही समय मद्रास प्रेसीडेंसी में 'एक सुधारवादी आंदोलन' के उभार का भी था। 'राधिका सांत्वनम' पर चल रहे विवाद में आंदोलन द्वारा बनाये जा रहे वातावरण की एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, प्रसंगवश इस आंदोलन पर भी विचार कर लेना उचित होगा। *"देवदासियों के विरुद्ध एक विषाक्त आंदोलन नागरलम्मा के चिर प्रतिद्वंद्वी वीरेशलिंगम पंतुलु के नेतृत्व में शुरू हुआ।"* बाद में इसी आंदोलन को 'एंटी नाच आंदोलन' कहा गया।

**देवदासियों** का सम्बंध मंदिरों के साथ साथ राजप्रासादों से भी होता था। तमिल भाषा में मंदिर के लिए प्रचलित शब्द 'कोविल' का मूल अर्थ राजप्रासाद ही है। मंदिरों एवं राजप्रासाद के दैनिक विधान भी लगभग समान थे। राजसिंहासन पर अपने आराध्य को बैठा कर स्वयं बहैसियत दीवान या मंत्री, राजकाज देखने का रणनीतिक निर्णय भी कई राजवंश ले लिया करते थे। देवदासियों के संदर्भ में बात करें तो उनकी कला प्रदर्शन एवं अन्य सेवाएं मंदिर एवं राजप्रासाद दोनों स्थानों पर अपेक्षित थीं।

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात एक भिन्न संस्कृति के कर्मचारी एवं अधिकारी राजपुरुषों के स्थानापन्न एवं सहयोगी होने लगे। कम्पनी अधिकारियों का यह वर्ग देसी आचारों व्यवहारों का अनुकरण/अनुसरण भी करने लगता था। उत्तर औपनिवेशिक विमर्श में इस प्रक्रिया को 'गोइंग नेटिव'<sup>8</sup> कहा जाता है। इन अधिकारियों के सम्मिलनों एवं उत्सवों में देवदासियों की नृत्य प्रस्तुतियों का एक भिन्न एवं भ्रष्ट रूपांतरण प्रचलन में आया जिसे 'नाच' कहा जाता था।

यहां देवदासियों की स्थानापन्न 'नाचगर्ल' थीं, इनके एवं यूरोपीय अधिकारियों, उनके भारतीय सहयोगियों के बीच सहृदय सामाजिक सा कोई सम्बंध नहीं था। 'नाचगर्ल' कई बार देवदासी समुदाय से भी आती थी, किन्तु यहां एक भिन्न सांस्कृतिक वातावरण था। यहां की प्रस्तुतियों का दैवी या सांस्कृतिक उदात्ताओं से कोई लेना देना नहीं था, यहां नृत्य प्रदर्शन दैहिक एवं यौनिक न्यूनताओं में ही महदूद होकर रह गया था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन में भी 'प्यूरिटी आंदोलन' चल रहा था। कुल मिला कर भारत में होने वाली ये नाच पार्टियां यूरोपीय नैतिकता के विरुद्ध मानी गयीं एवं इन पर सबसे पहले ईसाई मिशनरियों का ध्यान आकृष्ट हुआ : *"1893 में क्रिश्चियन लिटरेरी सोसायटी के जान मर्डॉक ने शिक्षित हिन्दुओं और अंग्रेज स्त्रियों से नाच पार्टियों के विनाशकारी आयोजनों को समाप्त करने की अपील की। उन्हें मिशनरियों के अतिरिक्त पाश्चात्य शिक्षित अभिजात हिन्दुओं के संगठन 'मद्रास हिन्दू सोशल रिफार्म आंदोलन' का समर्थन भी मिला। एंटी नाच आंदोलन की औपचारिक शुरुआत 1893 ई. में हुई।"*<sup>9</sup>

'एंटी नाच आंदोलन के प्रवर्तक एवं समर्थक औपनिवेशिक आधुनिकता की परियोजना का एक हिस्सा थे। 'देवदासी' शब्द भी इसी समय प्रचलन में आया एवं इसकी संगति जब औपनिवेशिक तार्किकता, ईसाई धर्म एवं नैतिकता से बैठायी गयी तो इसके भयानक दुष्परिणाम हुए। खासकर देवदासियों जैसे व्यावसायिक समुदाय के लिए। *"यह शब्द 20वीं शती से पहले तमिलनाडु या आंध्र में प्रचलित नहीं था। तमिलनाडु में मंदिरों को समर्पित स्त्रियों को देवरादियाल कहा जाता था, जिसका तद्भव 'देवदियाल' प्रचलित हुआ जो 19वीं शती के बाद अपमानजनक शब्द के रूप में प्रचलित रहा। आंध्र प्रदेश में ये स्त्रियां विलासिनी, कलावंत, भोगम पात्रा नर्तकी और स्वामिनी अभिधानों से जानी जाती रहीं, जो देवता को समर्पित उनकी सेवा के आधार पर थे। 'देवदासी' शब्द सम्भवतः 'देवरादियाल' शब्द का संस्कृत रूपांतर है क्योंकि दोनों के अर्थ समान है। ध्यान दें कि आंध्र अभिधानों में दासत्व का कहीं संकेत मात्र नहीं है।"*<sup>10</sup>

'देवदासी' शब्द के सर्वोपरि प्रचलन में आने से सबसे बड़ी गड़बड़ी यह हुई कि आरम्भिक ईसाई मिशनरियों ने इनकी तुलना ईसाई ननों (जीसस की वधुएं) से की। ननों के सुरक्षित कौमार्य के बरक्स

देवदासियों का समाज स्वीकृत यौनिक जीवन उन्हें समझ में नहीं आ रहा था। ईसाई मिशनरी वेस्टल कुमारिकाओं<sup>11</sup> एवं धार्मिक वेश्याओं<sup>12</sup> के द्विपद से ही परिचित थे और इन्हीं मानदंडों पर भारतीय देवदासियों को देखना चाहते थे जबकि वास्तविकता कई बार द्विपद बंधों के अतिरिक्त भी होती है।

देसदासियों को अपना संरक्षक चुनने का परम्परागत अधिकार था जो प्रायः उनके आजन्म यौन संगी भी होते थे। *‘देवदासियां मूलतः अनुष्ठान विशेषज्ञा (ritual specialist) थीं, जिनकी व्यावसायिक दक्षता उनकी शुभंकरी पात्रता, में निहित थी यह विश्वास किया जाता था कि वे सौभाग्य लाने वाली एवं दुर्दिन दूर करने की शक्ति रखती हैं।’*<sup>13</sup>

देवदासियों के विरुद्ध चल रहे उपरोक्त अभियान में ईसाई मिशनरियों के साथ नया नया उभरा भारतीय मध्यवर्ग कंधे से कंधा मिला कर शामिल था। यह ‘औपनिवेशिक मिमिक्री’<sup>14</sup> का भारतीय उदाहरण था।

कंदकूर वीरेशलिंगम एवं जान मर्डोक के नेतृत्व में चले ‘एंटी नाच आंदोलन’ का सबसे घातक दुष्परिणाम यह हुआ कि देवदासियों की सामाजिक स्थिति में अवनति होने लगी, जो अब तक एक प्रतिष्ठित समुदाय मानी जाती रही थीं। *‘देवदासियों की जीवनशैली उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं बहुजातीय पृष्ठभूमि भारत की नवसृजित नागर समाज (civil society) छवि तथा आधुनिक भारतीय महिला की भूमिका एवं छवि से बेमेल मान लिए गये। जब कि ‘देवदासी’ एक समय समाज स्वीकृत व्यावसायिक समूह था।’*<sup>15</sup>

इस सुधार आंदोलन के समानांतर ही देवदासियों के नृत्य के पुनरुद्धार के लिए भी एक आंदोलन चल रहा था, जिसका समर्थन ब्राह्मण बहुल थियोसाफी आंदोलन एवं कांग्रेस पार्टी कर रही थी। भरतनाट्यम अब तक देवदासियों की ‘सदीर’<sup>16</sup> प्रस्तुतियों के रूप में ही संरक्षित एवं पोषित था, किन्तु उसका भी शुद्धिकरण इस परियोजना के तहत हो रहा था। इसका खामियाजा भी देवदासियों को ही भुगतना था। *‘यह आंदोलन मौलिक एवं शुद्ध नृत्य रूप के पुनरुद्धार और उन अनैतिकताओं को दूर करने की बात करता था जो इनके प्रस्तोताओं की दोषपूर्ण जीवनशैली के कारण आ गयी थीं।’*<sup>17</sup>

देवदासियों द्वारा अब तक संरक्षित एवं विकसित नृत्य ‘दासीआर्टम’ पुनरुद्धार आंदोलन के फलस्वरूप एक नये रूप में अवतरित एवं स्वीकृत हो रहा था। ‘भरतनाट्यम’ के इस नये अमिधान में कलाकारों का जो नया वर्ग आ रहा था, उसमें रुक्मिणी देवी अरुंडेल आदि के उदाहरण से प्रेरित होकर ब्राह्मण एवं अन्य उच्च वर्णों की स्त्रियां काफी संख्या में थीं। किन्तु इस परिदृश्य में नृत्य की परम्परागत प्रस्तोताओं का क्या हाल हुआ इसको भी समझना आवश्यक है। एक उदाहरण मयलापुर गौरी अम्पाल का भी है *“मैंने सुना था, श्रीमती बाला सरस्वती ने अकादमी पुरस्कार लेते समय श्रद्धापूर्वक उनका नाम लिया था। भरतनाट्यम की मलिका, जिसने आशंसकों के हृदयों पर वर्षों तक राज किया था, अब मयलापुर में तिरुवल्लुवर कोविल (मंदिर) के पास एक झोपड़ी में गुमनाम जिन्दगी बसर कर रही थी। उसका परिवार मयलापुर मंदिर से सम्बद्ध था। मंदिर द्वारा दिये गये भूखंड पर उसने अपने लिए घर भी बनाया और शांति से रह रही थी। किन्तु देवदासी विधान खत्म हो जाने पर उसको परिवार सहित बेदखल कर दिया गया। अब वह बुढ़ापे और आंशिक अंधता के साथ भुखमरी की छाया में अंधेरी झोपड़ी में रहती है।”*<sup>18</sup>

बा.भ. बोरकर के मराठी उपन्यास देवदासी की पात्र फूलवंती के साक्ष्य पर हम उस आवाज को सुन सकते हैं जिसे तत्कालीन नागर समाज ने दबा दिया था *‘बालबच्चों के लिए काफी दौलत इकट्ठा कर लेने के बाद हमको ऐसा उपदेश देने में नेताओं का क्या बिगड़ता है? मुझ जैसी गरीब देवदासी की लड़की के साथ सेहरा बांधने के लिए क्या इन नेता कहे जाने वालों में कोई तैयार है?’*

आप कहते हैं कि दुर्गति एवं सत्यानाश रुक जायेगा। कुछ नहीं रुकेगा, वह तो उल्टा बढ़ेगा। जिसे हम आज तक धर्म मान कर कर रही थीं, उसे अधर्म मान कर करना पड़ेगा और अंत में हमारे कुल का नाश हो जायेगा। ये सब ब्राह्मणों की चालें हैं। हमारी यह पढ़ी लिखी छोकरी भी क्या है? यह भी ब्राह्मणों की संतान है। उतनी ही घमंडी उतनी ही चालाक।”<sup>9</sup>

एक अन्य उदाहरण अब तेलगु नाटक ‘कन्याशुल्कम’ के पात्र करटक शास्त्री का भी है। गुरुजाड़ा वेंकट अप्पा राव के इस नाटक का प्रकाशन 1909 में हुआ एवं इसे आधुनिक तेलगु के आदि काव्य का दर्जा प्राप्त है। करटक शास्त्री नर्तकी मधुरवाणी के उकसाने पर कहता है “एक कटहा कुत्ता है दूसरा दुधारू गाय। सौजन्या राव मन वचन कर्म तीनों से नाच विरोधी हैं। उसके सामने वेश्या शब्द का उच्चारण भी करो तो डाट देगा। बाकी सब लोग अपनी सुविधानुसार नाच विरोधी हैं। नाच विरोधी दल के लोग सिर्फ बातों के धनी हैं, गिरीशम उन्हीं में से एक है। कुछ लोग सुबह नाच विरोधी और रात्रि में नाच समर्थक हैं। कुछ अपने गृहनगर में नाच विरोधी, बाहर नाच समर्थक हैं। कुछ लोग जब तक समर्थ तंदरुस्त हैं तब तक नाच समर्थक हैं बूढ़े हो जाते ही नाच विरोधी हो जाते हैं। कुछ लोग जीवन भर नाच समर्थक रहते हैं मरने के बाद नाच विरोधी। कुछ भाग्यशाली लोग मृत्यु के बाद भी नाच समर्थक रहते हैं। इसका मतलब यह है, वे यह अनुष्ठान इसलिए कर रहे हैं जिससे दूसरी दुनिया में उन्हें मजा मारने का टिकट मिल सके। मुझ जैसी छोटी मछली तब तक नाच विरोधी है जब तक कोई नाचने वाली सुलभ नहीं है।”

प्रसंगवश यह जान लेना उचित होगा कि सौजन्या राव का चरित्र वीरेशलिंगम के अनुहार पर रचा गया था। नर्तकी मधुरवाणी तो इस संवाद की श्रोता है। नागरलम्मा ने वीरेशलिंगम के व्यक्तित्व की फांक दिखा दी थी। नागरलम्मा ने उनकी पुस्तक ‘रसिकजन मनोरंजनम’ को इंगित करते हुए कहा कि इसमें ‘राधिका सांत्वनम’ से कम चित्रमय यौनिकता नहीं है।

सम्पूर्ण औपनिवेशिक भारत में विक्टोरियन आदर्शों के अनुरूप भारतीय महिलाओं के रूपांतरण की परियोजना चल रही थी। जिसमें एक ओर तो नयी आधुनिक एवं भद्र महिला का जन्म हो रहा था, दूसरी ओर देसी, एकल एवं स्वतंत्र महिलाओं के समूहों को बदनाम एवं विनष्ट किया जा रहा था। चाहे वे बंगाल की वैष्णवियां हों जो एकल एवं विदुषी महिलाएं थीं एवं परम्परागत रूप से स्त्री शिक्षा की जिम्मेदारी निभाती थीं।<sup>10</sup> या उत्तर भारत की तवायफें जो अपने समय में महिलाओं का एकमात्र शिक्षित एवं आर्थिक रूप से स्वतंत्र समूह था। मयलापुर गौरी अम्माल जैसा ही हाल अपने समय की मशहूर ठुमरी गायिका रसूलनबाई का भी हुआ था। जिनकी दुश्वारियों पर सबा दीवान ने डाक्यूमेण्ट्री फिल्म ‘द अदर सांग’ बनायी है। यह ठुमरी गायिका अपने अंतिम दिनों में रेडियो स्टेशन के सामने चाय बेचती थी।

इस पूरे परिदृश्य में उस समुदाय की आवाज को एकदम अनसुना कर दिया गया, जो सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहा था। बंगलोर नागरलम्मा ने यद्यपि शक्ति भर अपनी आवाज सुनाने का प्रयास किया। देवदासी एसोसिएशन बनाने में उसकी प्रमुख भूमिका रही। इस दौरान शासन को भेजे गये ज्ञापनों एवं प्रतिवेदनों को प्रमुखतः नागरलम्मा ने ही लिखा। तेलगु भाषा में ऐसे ही एक ज्ञापन का शीर्षक नागरलम्मा ने ‘देवदासी प्रबोधचंद्रोदयम’ रखा। यह शीर्षक भी बहुत मानीखेज है। कृष्ण मिश्र ने 12वीं शताब्दी में एक संस्कृत नाटक लिखा था ‘प्रबोधचंद्रोदयम’। यह नाटक उन आरम्भिक कृतियों में है जो देवदासी प्रथा के प्रतिकूल हैं।

कुल मिला कर मद्रास प्रेसीडेंसी का नागरिक समाज (civil society) अपने प्रयास में सफल रहा। देवदासी प्रथा के उन्मूलन का अधिनियम तो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही पारित हो पाया,

किन्तु उससे बहुत पहले देवदासियां 'दासी आर्टम' से बेदखल हो चुकी थीं। 'भरतनाट्यम' राष्ट्रीय विरासत का दर्जा पा रहा था। आश्चर्य है राधा कृष्ण के प्रेम से पगी वही प्रस्तुतियां जब देवदासियों द्वारा होती थीं, अश्लील मान ली जाती थीं; उच्च सामाजिक वर्ग से आयी महिलाओं द्वारा प्रस्तुत होने पर समाज स्वीकृत एवं कलात्मक हो रही थीं।

**तो** ऐसे माहौल में एक देवदासी मुड्डुपलानी द्वारा लिखे गये काव्य को अपने समय की मशहूर कलावंत बंगलोर नागरत्नम्मा ने सम्पादित कर प्रकाशित कराया तो औपनिवेशिक आधुनिकता के अंतर्गत अस्तित्व में आये नागरिक समाज का विचलित होना स्वाभाविक ही था। पुस्तक 10 मार्च 1910 को प्रकाशित हुई और अगले वर्ष जनवरी तक सब कुछ ठीकठाक रहा। पुस्तक विद्वानों के मध्य चर्चित एवं प्रशंसित रही।

मद्रास से प्रकाशित होने वाली घोर नैतिकतावादी तेलगु पत्रिका 'शशिलेखा' के जनवरी अंक सम्पादकीय 'राधिका सांत्वनम' पर लिखा गया। पत्रिका के सम्पादकीय ने पुस्तक की घोर भर्त्सना की *"यह खेदजनक है कि असभ्य, दुराचार एवं अश्लील वर्णनों से भरी हुई पुस्तकों के अच्छे एवं आकर्षक संस्करण तेलगु साहित्य में आ रहे हैं।... 'एक वेश्या ने 'राधिका सांत्वनम' नामक पुस्तक लिखी एवं दूसरी वेश्या ने उसे दुरुस्त करके सम्पादित किया।'... 'मेसर्स वविल्ला रामास्वामी शास्त्री ने बिना किसी कानूनी भय के इसे अच्छे कागज पर छापा और बिक्री के लिए जारी भी कर दिया।'... 'पुस्तक अश्लील वर्णनों से भरी है और कोमल मस्तिष्क को भ्रष्ट कर सकती है।'"<sup>21</sup>*

**शशिलेखा** के सम्पादकों ने इस समीक्षा की अग्रिम प्रतियां सरकारी तेलगु अनुवादक (ट्रांसलेटर) गोतेति कनकराजू पंतुलु को भेज दी, जो उस समय के कानून के मुताबिक आवश्यक था। कनकराजू स्वयं वीरेशलिंगम के घोर समर्थक थे। जैसा कि उनसे अपेक्षा ही थी, उन्होंने 'राधिका सांत्वनम' के चुनिन्दा (अश्लील) पदों के अनुवाद के साथ एक पत्र मद्रास सरकार के चीफ सेक्रेटरी को लिखा जिसमें उन्होंने पुस्तक को पूर्णतः अश्लील बताया। कवयित्री एवं सम्पादिका दोनों के वेश्या होने पर इस पत्र में भी जोर दिया गया था। कनकराजू ने माना कि कविता में आये विवरण स्त्रियों एवं पुरुषों दोनों के मस्तिष्क में प्रदूषित एवं कामुक विचार भर देंगे। सम्पादिका एवं प्रकाशक दोनों को भारतीय दंड संहिता की धारा 292 के तहत दंडनीय बताते हुए कनकराजू ने शशिलेखा में छपी समीक्षा की प्रति भी अपने पत्र के साथ संलग्न कर दी। यहां ध्यान देने की बात यह है कि वीरेशलिंगम, शशिलेखा के सम्पादक एवं कनकराजू पंतुलु सभी 'राधिका सांत्वनम' की भर्त्सना करते हुए उसकी कवयित्री (मुड्डुपलानी) एवं सम्पादिका (नागरत्नम्मा) को वेश्या ठहराते हुए लगभग एकस्वर हैं। यही नहीं चीफ सेक्रेटरी भी सी.आई.डी. को भेजे गये मेमो में सम्पादिका को मद्रास की मशहूर वेश्या (a famous prostitute of Madras) लिखते हैं। यह मनोवृत्ति 'एंटी नाच आंदोलन' के भयावह दुष्परिणामों में से एक थी।

अंततः 'राधिका सांत्वनम' पर प्रतिबंध लगा दिया गया। प्रकाशक के यहां छापा मार कर पुस्तक की प्रतियां जब्त कर ली गयीं।

किन्तु प्रतिबंध के बावजूद 'राधिका सांत्वनम' प्रचलन एवं वितरण में रही। 3 मार्च 1927 को प्रकाशक एवं उसके अन्य बिक्री केन्द्रों पर पुनः पुलिस का छापा पड़ा। अबकी एक रोषपूर्ण पत्र में प्रकाशक वेंकटेश्वर शास्त्री ने स्वीकार किया कि पुस्तक वितरण में है, किन्तु वह इसका ध्यान रखते हैं कि अविकल संस्करण केवल विद्वानों को ही मिले। व्यावसायिक वितरण हेतु संस्करण को सरकारी

निर्देशों के मुताबिक सम्पादित कर दिया गया है। औपनिवेशिक सरकार ने प्रकाशक एवं अन्य तेलगु पंडितों की अपील को दरकिनार कर पुस्तक पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। अबकी इस प्रतिबंध के खिलाफ दायर अपील में प्रकाशक ने 'राधिका सांत्वनम' का उल्लेख तक नहीं किया।

**'राधिका सांत्वनम'** को इला देवियामु (इला की कथा) भी कहा जाता है। इला राधिका की भतीजी है, जिनका लालनपालन, शिक्षा इत्यादि राधा ही करती है एवं कृष्ण से उनका विवाह करा देती हैं। राधा कृष्ण प्रेमकथा में इला देवी की इस उपस्थिति पर कुछ विचार कर लेना चाहिए। 'राधिका सांत्वनम' में एवं अधिसंख्य परम्पराओं में भी राधिका कृष्ण की विवाहिता पत्नी नहीं है, वस्तुतः उत्तर भारतीय परम्परा में कृष्ण का विवाह किसी भी गोपी से नहीं हुआ, किन्तु दक्षिण भारतीय परम्परा में कृष्ण की एक विवाहिता गोपी है, जिसे पिन्नै या नापिन्नै कहा जाता है। कई बार भ्रमवश यह राधा का दक्षिण भारतीय रूपांतर मान ली जाती है। 'राधिका सांत्वनम' के अनुसार इला देवी के पिता का नाम कुम्भक<sup>22</sup> है, जो रिश्ते में नंद के श्यालक (साला) हैं। तीसरे अध्याय में श्रीदामा<sup>23</sup>, इसके भाई का भी उल्लेख होता है। ये सूत्र हमें इला देवी की मिथकीय पौराणिक पहचान कराने में सहायता करेंगे।

हम कृष्ण की एक विवाहित गोपी नापिन्नै का उल्लेख कर चुके हैं। हरिवंश पुराण में पिन्नै या नापिन्नै अपने संस्कृत नाम 'नीला' के रूप में उल्लिखित हैं। इसके अनुसार *'कृष्ण की : ग्वाली माता यशोदा का एक भाई कुम्भक था जो मिथिला में रहता था। उसकी पत्नी का नाम धर्मादा था। नीला उसकी पुत्री एवं श्रीदामन उसका पुत्र था। सात राक्षस बैलों का भेष बना कर उसके गोष्ठ में घुस आये एवं उत्पात करने लगे। उन पर नियंत्रण करने में असमर्थ कुम्भक ने प्रण किया कि वह नीला का विवाह उस व्यक्ति से करेगा जो इन सात वृषभों पर नियंत्रण कर सकेगा। इस बिन्दु पर कृष्ण के पिता नंद उसे एवं बलराम को लेकर मिथिला गये, कृष्ण ने सातों वृषभों को मार दिया और नीला को पत्नी के रूप में प्राप्त किया।'<sup>24</sup>*

इस प्रकरण के अनुसार नीला कृष्ण के मामा की पुत्री थी। तमिल परम्परा के अनुसार नीला कृष्ण सर्वथा विवाह योग्य युगल हैं। 'राधिका सांत्वनम' की इला देवी एवं हरिवंश पुराण की नीला देवी में अभेद सा दिखता है, अंतर सिर्फ विवाह विधियों में है। यहां हम तंजाउर युग की लोकप्रिय काव्य विधा शृंगार प्रबंधम के फलने फूलने की ऐतिहासिक परिस्थितियों पर भी गौर करें। साहित्य संगीत का यह स्वर्णकाल माना जाता है। इस काल में जितने भी शृंगार प्रबंध लिखे गये उनके पात्र तो पौराणिक धार्मिक रहे किन्तु वातावरण के अनुकूल कवियों ने उसमें परिवर्तन/परिवर्धन किया।

ऐसे में नीला का इला हो जाना सहज सम्भाव्य है। वृंदावन भी यहां बदला बदला है। यहां चंद्रमुखी गोपिकाएं वीणा बजाती हैं, साहित्य एवं संगीत का संगम है, एवं सांवली गजगामिनियां भरतनाट्यम करती हैं। वृंदावन तो यह कहा जा रहा है, लगता तो यह तंजाउर का राजदरबार है। तो कृष्ण कहीं राजा प्रताप सिंह तो नहीं और राधिका खुद मुड्डुपलानी। इसका जवाब तो 'माई आनमिण्ट' की लेखिका 'क्रिस्टीन गिलेस्पी' के पास है। हम तो राधिका कन्हाई को सुमिरते हुए कुछ बातें करेंगे।

मुड्डुपलानी ने एक प्राचीन काव्यग्रंथ 'राधा माधव सम्वादम' के आधार पर राधिका सांत्वनम की रचना की। तिरुवेंगाचार्य के पुत्र वेंकटपति द्वारा रचित 'राधा माधव सम्वादम' कृष्ण, राधा एवं रुक्मिणी के प्रेम त्रिकोण पर आधारित है। यह कथा शौनक ऋषि, राजा दशरथ से कह रहे हैं एवं राधा का प्रिय शुक यहां दूत की भूमिका निभाता है। मुड्डुपलानी इस कथा में थोड़ा परिवर्तन करती हैं रुक्मिणी का स्थान यहां इला ने ले लिया है, जो रिश्ते में राधा की भतीजी है। श्रोता वक्ता युग्म विदेह राज जनक एवं व्यास पुत्र शुकदेव का है। राधा का प्रिय शुक यहां भी दूत कर्म करता है।



हम राधा के शुक से भी परिचित हो लें। मध्यकालीन लघुचित्र शैली के अनेक चित्रों में राधा के हस्तकमल पर शुक विराजमान होता है। यक्षिणियों के साथ भी शुक मूर्तिमान हुआ है कभी हस्तकमल पर, और कभी नीवीबंध पर चंचुप्रहार करता हुआ। राधा शुक को रासलीला में भी साथ रखती है। शुक काम देवता का वाहन है ही साथ ही लोक परम्पराओं में भी विद्वान गुरु, पथ प्रदर्शक भी है। शुक रासलीला के रहस्य का ज्ञाता है। राधा का दूत बन कर कृष्ण के पास जाता है, इला के प्रेम में भूले कृष्ण पहले उसकी उपेक्षा करते हैं, किन्तु बाद में शुक का ध्यान आते ही राधा की स्मृतियों में खो जाते हैं। स्मृति का धातु रूप 'स्मर' काम का पर्यायवाची है। यहां एक अन्य स्तर पर शुक एवं काम एक दूसरे से सम्बंधित हैं। राधा की स्मृतियां कृष्ण को विरहाग्नि (कामाग्नि) में जलाने लगती हैं।

12वीं शताब्दी के 'गीत गोविन्द' से राधा का मुख्यधारा संस्कृत साहित्य में प्रभावी अवतरण हुआ। यहां राधा को कृष्ण के बराबर ही महत्व मिला है। राधिका सांत्वनम 19वीं शताब्दी की रचना है। किन्तु इन दोनों काव्यों में एक प्रमुख समानता है। स्मृतियों की तीव्रता एवं एन्द्रिकता दोनों ही काव्यों को विशिष्ट बनाती हैं। इस क्रीड़ा में राधा एवं कृष्ण समान रूप से भागीदारी करते हैं। यानि राधा और कृष्ण एक दूसरे को याद करते हैं और एक दूसरे को याद आते हैं।

हम यहां स्मृतियों के सौन्दर्यशास्त्र पर कुछ बातें कर लें। जयदेव 'हरि स्मरण' एवं 'विलास कला कुतूहल' दोनों को अपने काव्य की सिद्धि मानते हैं, किन्तु मुड्डुपलानी के यहां प्रेम एवं स्मरण दोनों एकमेक हैं। यहां बारबरा स्टोलर मिलर हमारी सहायता कर सकती हैं "विचार प्रक्रिया में स्मृति के महत्व को भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ज्ञान मीमांसा में मान्यता प्राप्त है। मैं धार्मिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय अनुभव को समझने की प्रक्रिया के अंतर्गत प्रेम से जुड़े स्मृति के सौन्दर्यशास्त्र पर बल दे रही हूं। प्रेम एवं स्मृति का सहमेल अथर्ववेद में भी मिला है, जहां एक स्त्री देवताओं से प्रार्थना करती है कि वे स्मृतियां भेजें जिससे उसका प्रेमी उसके विरह में जल उठे। स्मर एवं काम वस्तुतः प्रेम के पूर्व महाकाव्यकालीन अभिधान लगते हैं।"<sup>25</sup>

हम 'राधिका सांत्वनम' के संदर्भ को लेते हैं

क्या मैं देख पाऊंगी उन्हें  
 आंख भर अब कभी  
 दुबारा सुन पाऊंगी  
 दैत्यरिपु की बांसुरी  
 क्या उनके पांव धोने का भी  
 अवसर मिलेगा पुनः मुझे  
 मेरी देह ले पायेगी क्या  
 उनके आलिंगन का सुख  
 क्या है बदा मेरे भाग्य में  
 मैं नहीं जानती।<sup>6</sup>

राधिका स्वयं ही इला और कृष्ण के विवाह का आयोजन करती है किन्तु उसके पश्चात कृष्ण के विरह को सह नहीं पाती। कृष्ण भी कुछ इसी तरह राधिका का स्मरण करते हैं

एक बार भी छू पाऊंगा क्या  
 नव कलिका से वक्ष, उसके  
 उन अरुणाम कपोलों को चूमने

का कोई अवसर मिलेगा मुझे  
 उसकी कपूर जैसी सुगंधित देह  
 सुलभ हो पायेगी मुझे १७

यहां परस्पर दैहिक स्मृतियां हैं जो अनुभव के गहरे मधु आवरण में लिपटी हैं। आस्वाद्य सी लगती हैं। ये राधिका एवं कृष्ण के मानसिक जुड़ाव का एक भिन्न धरातल पर प्रकटीकरण है।

इला के साथ प्रेमलीला में मगन कृष्ण पहले तो राधिका के दूत 'शुक' की उपेक्षा करते हैं, किन्तु बाद में जब वे अर्जुन के साथ बैठे हुए हैं तब अचानक उन्हें शुक का स्मरण हो आता है और वे मौन हो जाते हैं। यह शुक उन्हें राधा की स्मृतियों में खींच ले जाता है। अभिनव गुप्त रससूत्र की व्याख्या करते समय 'अभिज्ञान शाकुंतलम' के पांचवें अंक के आरम्भिक दृश्य का जिक्र करते हैं। दुष्यंत महारानी हंसपदिका द्वारा गाये गये गीत को सुन कर विचलित हो उठते हैं। यहां दुष्यंत का विचलित हो उठना उनके विस्मृत प्रेम प्रसंग की ओर संकेत करता है। अभिनव गुप्त का बल स्मरण के सौन्दर्यशास्त्रीय निहितार्थ पर है। यद्यपि 'राधिका सांत्वनम' मूलतः एक धार्मिक काव्य नहीं है किन्तु जनक एवं शुकदेव के श्रोता वक्ता युग्म से कथा कहलवा कर पौराणिक व्याकरण का रणनीतिक निर्वाह किया गया है, ऐसे में वैष्णव भक्ति सूत्रों के माध्यम से समझने समझाने में कोई हर्ज नहीं। वैष्णव भक्ति में स्मरण का बड़ा महत्व है। यह ईश्वर का नैकट्य सुलभ करने का प्रमुख मार्ग है।

कहा जाता है गीत गोविन्द लिखते समय एक स्थान पर जयदेव दुविधाग्रस्त हो गये थे। कृष्ण राधा के सम्बंध को जिस धरातल पर उन्होंने समझा था, उसमें सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताएं बाधा बन रही थीं। राधा को मनाते हुए स्वयं कृष्ण उनके चरणों में महावर लगाने की अनुमति मांगे, उनके चरणों को अपने शीश पर धरने को कहे। जयदेव इसी दुविधा में अपनी लेखनी को रोक कर स्नान करने चले गये। कहते हैं स्वयं कृष्ण ने ही जयदेव का रूप धर कर अधूरी पंक्तियां पूरी कर दीं

स्थल कमलगन्जनम् मम हृदयरंजनम् जनितरतिरंग पदभागम

भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्विथ सरसदलक्त करागम् ।।

स्मरगलखंडनम् मम शिरसिमंडनम् देहि पदपल्लवमुदारम

ज्वलति मथि दारुणो कदनानलो हरतु तदुपाहित विकारम् ।।<sup>१८</sup>

(स्थल कमल का खंडन करने वाली, मेरे हृदय में प्रेम भरने वाली मधुर भाषिणी मैं तुम्हारे पांवों में महावर लगा दूं। मुझको कामाग्नि का विकार जला रहा है इस काम विष का शमन करने वाले अपने पद पल्लव मेरे सिर पर रख दो)

'राधिका सांत्वनम' में भी कृष्ण कुछ इसी तरह का मान मनौवल करते हैं, किन्तु यहां राधिका की प्रतिक्रिया अधिक उग्र है। कवयित्री मुड्डुपलानी राजनर्तकी है कृष्ण उसके भी सपने में आये हैं किन्तु किसी पंक्ति विशेष को पूरा करने के लिए नहीं अपितु 'राधिका सांत्वनम' लिखने का निर्देश देने। किन्तु यह घटना पाठ का हिस्सा है इसलिए एक कथानक रूढ़ि से अधिक कुछ भी नहीं। मुड्डुपलानी बिना किसी हिचकिचाहट के अपनी लेखनी चलाती हैं "यह और अन्य कटूक्तियां सुन कर मुरारी ने सादर कहा, 'प्रिये दास की गलतियां क्षमा कर दो, बिना प्रतिवाद के।' ऐसा कह कर प्रभु ने अपना मयूर पंखधारी शीश राधिका के चरणों में झुका दिया।

और जैसे ही वे झुके चरणों में

उसने उठाया अपना वामपद, झनझना उठे नुपुर

किया सबल प्रहार

मयूरपंख शोभित  
 ब्रह्मा विष्णु और संतों द्वारा  
 पूजित वंदित शीश पर  
 प्रशिक्षित किया मानो  
 सत्यभामा के रोष हेतु  
 भविष्य में 1<sup>9</sup>

प्रसंगवश हम यहां 'सत्यभामा के रोष' का कुछ खुलासा कर लें। रूपगोस्वामी के ग्रंथ 'ललितमाधव' के अनुसार राधा को सत्यभामा का अवतार माना जाता है। तेलगु में कामेश्वर कवि (1660C) का लिखा हुआ काव्य 'सत्यभामा सांत्वनम' भी उपलब्ध है। इसे सांत्वनम काव्यों की शृंगारिक परम्परा का गोमुख माना जाता है। इसकी कथा का मूल स्रोत महाभारत है। सत्यभामा के रोष का कारण नरकासुर के वध के पश्चात उसके बंदीगृह से मुक्त करायी गयी सोलह हजार स्त्रियों से कृष्ण का विवाह है।

सत्यभामा प्रसंग पर ही एक अन्य तेलगु काव्य 'पारिजात अपहरण' में सत्यभामा के पद प्रहार का स्पष्ट उल्लेख है। यह काव्य विजयनगर के सम्राट कृष्ण देव राय के समय में लिखा गया। यहां सत्यभामा एवं रुक्मिणी का सपत्नीभाव केन्द्र में है। रुक्मिणी के प्रति कृष्ण का विशेष अनुराग मान कर, सत्यभामा अपने को उपेक्षित महसूस करती है, किन्तु कृष्ण अपने शीश पर सत्यभामा के पद प्रहार के बावजूद शांत हैं, वे सत्यभामा को मनाते हैं 'हे वर्तुलकेशी प्रिया। तुम गुस्से में और अधिक सुंदर लगती हो। तुम्हारा यह सेवक कितना भाग्यशाली है जिसका तुमने सुंदर मनोरम पद के प्रहार से मान बढ़ाया है। मेरे रूखे केशों से तुम्हारे पद पल्लव चोटिल तो नहीं हुए।' <sup>30</sup>

पद शरीर का निम्नतम अंग है। शीश पर पग प्रहार धर्म एवं समाज दोनों के पदानुक्रम (hierarchy) पर प्रहार है। मुड्डुपलानी की अपनी स्थिति भी सामाजिक पदानुक्रम का प्रत्यंतरण (subversion) करती है। शूद्र कुल से सम्बंध, साहित्य, संगीत एवं नृत्य में प्रवीण, महाराजा प्रताप सिंह की प्रिया, जिसने उन पर मोती, सोना और आभूषणों की वर्षा की। तो मुड्डुपलानी बेहिचक इस इला उपकथा को लिखती है सचेत होकर। यहां कृष्ण और राधा का ऐहिक प्रेम ही पर्याप्त है समझने समझाने के लिए। प्रेम एवं मान दोनों साथ साथ नहीं रह सकते। सच्चा प्रेम मान को द्रवित कर लेता है।

इसी प्रसंग में एक उड़िया लोककथा पर भी ध्यान देते चलें "ज्ञानी नारद परकीया भाव (गोपी भाव)के बहुत विरुद्ध रहते थे। कृष्ण ने उन्हें गोपी भाव की श्रेष्ठता समझाने के लिए एक लीला की। कृष्ण को बहुत तेज ज्वर आ गया। वैद्य बुलाये गये। वैद्य ने कहा : कृष्ण का ज्वर तभी ठीक हो सकता है जब इनका उपचार किसी स्त्री की पगधूल से किया जाये। नारद को यह जिम्मेदारी दी गयी। नारद तुरंत औषधि लाने चल दिये। वे सबसे पहले अंतःपुर में गये आठों पटरानियों से उनके चरणों की धूल मांगी। पर सबने इन्कार कर दिया। रानियां बोलीं यह कैसे हो सकता है कृष्ण हमारे पति परमेश्वर हैं उन्हें अपने चरणों की धूल देकर हमें नरक में नहीं जाना है। नारद एक के बाद एक कई स्त्रियों के पास गये सभी ने एक सा जवाब दिया कृष्ण तो परमब्रह्म हैं उन्हें अपने पैरों की धूल देकर हम नरक के भागीदार नहीं होंगे। नारद निराश होकर लौट आये। कृष्ण ने पूछा क्या सारी धरती पर उन्हें एक भी स्त्री नहीं मिली जो पगधूल दे सके। नारद ने निराशा में सिर हिलाया। कृष्ण ने स्पष्ट पूछा क्या ब्रजमंडल गये थे? नारद गोपियों के पास जाते कैसे उन्हें तो वे निकृष्ट मानते थे। पर प्रभु बीमार थे, इस बार जाना पड़ा। गोपियों ने नारद को देखते ही पहचान लिया। उन्होंने समझा कि कृष्ण ने उनके लिए कोई संदेश भेजा है। नारद ने कृष्ण की बीमारी का हाल बताया। गोपियों ने बिना किसी

हिचकिचाहट के अपने पगधूल की पुटकी बना कर नारद को दे दी। नारद आश्चर्यचकित थे, उन्होंने गोपियों से पूछा गोपियों तुम तो जानती हो कि कृष्ण सर्वोच्च हैं, उन्हें पगधूल देकर पाप की भागीदार क्यों बन रही हो। गोपियों ने कहा हे नारद हम नहीं जानते कि कृष्ण क्या हैं। वे हमारे बाल सखा और ग्राम सखा हैं। हम बस इतना जानते हैं कि वे कष्ट में हैं और हम उनके लिए कुछ भी कर सकती हैं। कृष्ण के पास द्वारका लौटते समय नारद को गोपीभाव की सर्वोच्चता समझ में आ गयी।<sup>1</sup>

यह लोककथा हमें भागवत के भ्रमरगीत प्रसंग की याद दिलाती है। 'गीत गोविन्द' एवं राधिका सांत्वनम का प्रसंग और यह लोककथा सामाजिक/जेण्डर पदानुक्रम के प्रत्यंतरण के आख्यान हैं। लोककथा की तो अपनी स्वचायत गतिकी है, किन्तु गीत गोविन्द को मिथक विधान द्वारा एवं 'राधिका सांत्वनम' को दंडविधान द्वारा अनुकूलित एवं प्रतिबंधित करने के प्रयास होते रहे।

'राधिका सांत्वनम' में राधिका कृष्ण से बड़ी हैं, उनके पिता नंद की छोटी बहन हैं एवं अन्य विवाहिता भी हैं। 'गीत गोविन्द' में परकीया भाव का संकेत मात्र है जब कृष्ण की मार्गदर्शिका राधा उन्हें घर नहीं पहुंचाती अपितु दोनों वन में विलुप्त हो जाते हैं। बालकृष्ण अब प्रेमी पुरुष बन जाते हैं। विद्यापति के यहां राधा के अपने परिवार का स्पष्ट संकेत है। हम फिलहाल 'राधिका सांत्वनम' पर ही केन्द्रित हैं। राधिक परकीया होने के बावजूद कृष्ण से साधिकार प्रेम करती हैं। इला से कृष्ण के विवाह का स्वयं आयोजन करती हैं किन्तु कृष्ण के लिए कुछ भी कर सकती हैं

त्याग सकती हूं सभी रिश्ते नाते  
छोड़ सकती हूं पति, धन, धान्य  
महल और सुख  
प्राण और देह भी  
लेकिन हरि को नहीं  
और क्या कर सकती हूं मैं!<sup>1</sup>

बांग्ला कवि चंडीदास राधिका की पारिवारिक असंतुष्टियों को अधिक मुखर होकर वाणी देते हैं

मैं राख डालती हूं सभी विधानों पर  
ईश्वर या मनुष्य द्वारा बनाये गये  
मैं अकेली पैदा हुई  
कोई साथी नहीं मेरा  
क्या मूल्य  
तुम्हारे अधम विधानों का  
मैं असफल हुई  
प्रेम में  
और बांधी गयी मूर्ख  
मतिमंद के साथ  
मेरे भाग्य में ही  
बदा है  
वह है ही नहीं मेरे पास  
जिसको चाहती हूं मैं  
मैं जला दूंगी इस घर को  
और निकल जाऊंगी!<sup>2</sup>

घर तो कबीर भी जलाते हैं मीरा भी घर छोड़ती हैं। यहां राधा जिस घर को जलाने की बात करती हैं वह उनकी उस सामाजिक पहचान एवं दुर्भाग्य से वाबस्ता है जो उन्हें अपने प्रिय से दूर किये हुए है।

किन्तु 'राधिका सांत्वनम' की राधिका कृष्ण को उलाहना देते हुए अपनी पारिवारिक दुश्वारियों का तो जिक्र करती है किन्तु उनकी एकमात्र असंतुष्टि है कृष्ण से वियोग। वे कृष्ण पर सर्वोपरि दावा करती हैं, उनकी विवाहिता इला से भी ज्यादा। यौन चाहतों, संतुष्टियों/असंतुष्टियों की अकुंठ अभिव्यक्तियों में 'राधिका सांत्वनम' अद्वितीय है। कृष्ण राधिका को याद करते हैं

मुझे चूमो मत दूषित हो जाऊंगा  
वह जानबूझ कर दबाती अधरों से मेरे अधर  
मत छुओ अभी नहाया हूँ  
वह दबा देती मेरा शरीर  
कठोर वक्षों से  
मत गिरो मुझ पर कहता मैं रोषपूर्ण  
वह कूद पड़ती मुझ पर जोर से  
आज व्रत है मेरा  
नहीं सो सकता तुम्हारे साथ  
लेकिन वह करती प्यार बार बार  
नव नव शक्ति से।<sup>83</sup>

प्रेम का यह स्त्री पक्ष सहज कुछ चौंकाता भी है। इला देवी से कृष्ण के विवाह का आयोजन राधिका ने ही किया था। यही नहीं दोनों को प्रेम शिक्षा भी दी थी, उसके बाद भी कृष्ण से साधिकार उद्दाम प्रेम, कृष्ण की अनिच्छा के बावजूद। भक्ति इस प्रेम को 'मधुरभाव' कहती है, तो क्या 'राधिका सांत्वनम' को भक्ति काव्य मान लेना चाहिए। सुधीर कक्कड़ के अनुसार 'शास्त्र कविता से नायक नायिका के रूप में जुड़ने के बावजूद राधा कृष्ण की छवियां मुख्यतः भक्तिकाव्य की देन हैं जिनका मुख्य भाव शृंगार है।'<sup>84</sup> फिर जनक एवं शुकदेव का श्रोता वक्ता युग्म एवं अंत में फलश्रुति भी 'राधिका सांत्वनम' को भक्ति/पौराणिक काव्य की श्रेणी में स्थापित करने का सचेत प्रयास तो है ही। तो हम भी यहां रमेश कुंतल मेघ से अपनी सहमति दर्ज करा दें 'यहां नारी न तो नायिका है, और न ही कुलवधु; न एक पतिव्रता है न ही अबला; न ही विवाहिता है न ही अविवाहिता; न ही स्वेच्छाचारिणी है न बाँदिनी। वह है मात्र नारी प्रकृति!! वह मूलतः एक मानसी प्रिया है स्वच्छंद एवं बंधनहीन। वह शरीर से किसी दूसरे की वल्लभा होकर भी किसी अन्य (कृष्ण) की है।'<sup>85</sup>

जनक का एक विरुद्ध 'विदेह' भी है एवं शुकदेव व्यास पुत्र एवं ज्ञानी ऋषि तो है ही किन्तु शुक तो कामदेव का वाहन भी है। श्रोता एवं वक्ता का यह युग्म कहीं मुड्डुपलानी का एक सचेत आयोजन तो नहीं है। 'राधिका सांत्वनम' एक देह कथा यात्रा भी है। आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया विश्वविद्यालय में क्रिस्टीन गिलेस्पी 'राधिका सांत्वनम' पर आधारित शोध का शीर्षक 'writing womans moving and erotic bodies across time and space' रखती है तो बात और स्पष्ट हो जाती है। जरा इस श्रोता वक्ता युग्म को दूसरी तरह समझें : विदेह को शुक (कामदेव के वाहन) द्वारा देह कथा सुनाना, मुड्डुपलानी का यह गुणीभूत व्यंग्य आस्ट्रेलियाई महिला के उपन्यास एवं शोध के माध्यक से लगभग दो सदियों बाद खुलता है, तब तक कावेरी और गंगा में कितना पानी बह चुका होगा।

'राधिका सांत्वनम' एवं 'गीत गोविन्द' दोनों काव्यों के अंत में विपरीत रति है। यह अंत भी बहुत मानीखेज है। प्रेम का यह बंध उस पदानुक्रम के भी विपरीत है जिसके आधार पर समाज चल

रहा है या चलाया जा रहा है। 'राधिका सांत्वनम' के प्रणयन, प्रकाशन, पुनर्प्रकाशन एवं अनुवाद की महायात्रा सामाजिक पदानुक्रम के प्रत्यंतरण की एक रूपक कथा भी है। यह काव्य हिन्दी में तो उसका अनुवाद ही नहीं हुआ है। हमें यहां सूजी थारु का स्मरण हो आता है, 'साम्राज्य (Empire) एवं राष्ट्र (nation) के हित हमेशा विरोधाभासी नहीं होते।'<sup>96</sup> खासकर जब जेण्डर प्रश्न सामने होता है।

## संदर्भ :-

1. Sasie Tharu and K. Lalitha (Ed.) 'womens writing in India 1993 (Oxford University press) Delhi PP-5.
2. ibid PP-118
3. Sandhya Moolchandani 'The Appeasement of Radhika' 2011 Penguin Book Delhi PP-10.
4. V. Sri Ram, 'The Devdari and the saint' East West Chennai PP-40.
5. इसके लिए देखें नवनीता देवसेन का आलेख 'Women writing in India at a turn of century' जो साहित्य अकादमी नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'Growing up as women writer (सं) जसवीर जैन, में संकलित है।
6. Indira Menon 2005 'The Madras Quartet' Roli Books, New Delhi PP-11.
7. V Sri Ram PP-115
8. 'गोइंग नेटिव - औपनिवेशिक अधिकारी वर्ग देसी तौर तरीकों का अनुसरण करने लगा था। जिसे सांस्कृतिक प्रदूषण माना गया एवं उस पर रोक लगाने का प्रयास किया गया।
9. Indira Menon PP-45
10. ibid PP-40-41.
11. रोम की वेस्टा देवी की कुमारी पुजारिमें जो विवाह एवं संतति के बंधनों से मुक्त रखी गयीं।
12. प्राचीन ग्रीक इतिहासकार हिरोडोटस के अनुसार टिगरिस एवं यूफ्रेट्स नदियों के किनारे कई ऐसे मंदिर थे जहां पवित्र वेश्यावृत्ति होती थी। इसे 'उर्वरता का अनुष्ठान' माना जाता था।
13. Saskia c. Karsenboom 'The Traditional Repertoire of the Teruttani temple clancers'. Julia leslie' द्वारा सम्पादित 'Roles and Rituals for Hindu Women' 1992 Motilal Bansaridas New Delhi' में संकलित PP-131.
14. होमी भाभा द्वारा चिह्नित एक औपनिवेशिक प्रक्रिया जिसमें उपनिवेशकों का अनुकरण करते हुए अपनी पहचान परिभाषित करने की विरोधाभाषी कोशिश भी समाहित होती है।
15. Hanne M. de Bruin 'The Devdari debate and public sphere'. M.D. Mutthu Kumar Swami and Molly Kausal द्वारा सम्पादित 'Folklore public sphere and civil society 2004. ' Indira Gandhi National Centre for the arts' में संकलित PP-104.
16. एक शास्त्रीय नृत्य जिसे 1930 से पूर्व सदीराट्टम, दासी आर्टम नामों से जाना जाता था। बाद में यह भरतनाट्यम के रूप में लोकप्रिय हुआ।
17. Hanne M.de bruin PP-103.
18. Indira Menon PP-50.
19. बा.भ. बोरकर 'देवदासी' 2007 सस्ता साहित्य मंडल नयी दिल्ली पृ. 18.
20. इसके लिए देखें Sumanta Banerjee का आलेख Marginalization of womens popular culture in 19th centery Bengal. .... Sangari (et al) द्वारा सम्पादित 'Recasting women' 1997 Kali for women New Delhi में संकलित।
21. V. Sri Ram PP-42.
- 22, 23. Sandhya Moolchandi opcit 2nd chapter verse 16, 17, 18.
24. Dennis Hudson 'Pimmai. Krishna's cowherd wife'. John Stratton Hawley (etal) द्वारा सम्पादित 'The devine Consort' 1995 Motilal banarsidas New Delhi में संकलित। PP-241.
25. Barbara Stoler Miller 'The Devine duality of Radha and Krishna' - 'Devine consort में संकलित। PP-14.
- 26, 27. Sandhya Moolchandi '2nd chapter 24th verse and 3rd chapter 102nd verse.
28. जयदेव 'गीत गोविन्द' सम्पादिका डॉ. कपिला वात्स्यायन 1999 लोकभारती इलाहाबाद पृ.124.
29. Sandhya Moolchandi 4th chapter verse 91, 92.
30. G.N. Reddy 1960 'Shri Krishna in Telgu Litreture' Shri Venkateshwer in University Oriental Gournal Tirupati Vol. 3.
31. Sandhya Moolchandani.
32. David Kinsley 'Hindu Godesses' 2005 Motilal Bansaridas PP-88.
33. Sandhya Moolchandani 3rd chapter vese no 126.
34. Sudhir Kakkar (et al) Tales of Love sex and Denger 2011, Oxford University press New Delhi PP-79
35. रमेश कुंतल मेघ 'मनखंजन किनके' 1992 वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली पृ. 128.
36. Susie Tharu (et al) PP-11

# मिनाल पार्क और तीन बूढ़े

वंदना शुक्ला

इधर उभरी नयी पीढ़ी की कथाकार। कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में कहानियां छप चुकी हैं। तद्भव में पहली बार।

## दृश्यबंध

कहलाता तो वो 'शॉपिंग सेण्टर' ही था पर उस खूबसूरत विशाल वृत्ताकार शॉपिंग सेण्टर में ढेर सारी दुनिया भर की दुकानों के अलावा एटीएम, बैंक, मेडिकल स्टोर, लेडीज जिम, लेडीज जेण्ट्स ब्यूटी पार्लर, स्वीट हाउस, बुटीक, साइबर कैफे, और ना जाने क्या क्या था। उसी के ठीक सामने वो नन्हा मगर खूबसूरत हराभरा पार्क अपनी नन्हीं नन्हीं आंखें झपझपाता सा जागता रहता रात दिन। इलाके की खूबसूरती में चार चांद लगाना उसका काम था। सुबह सवेरे कुछ उत्साही युवक युवतियां सामने की सड़क पर जागिंग करते हुए आते, दो पल वहां खड़े हो सुस्ताते, अपनी हांफती हुई सांसों को लय में लाते और फिर दौड़ने लगते, जबकि कुछ उम्रदराज लोगों का वही पड़ाव होता। जैसे कि उन तीनों बूढ़ों का।

पार्क और शॉपिंग सेण्टर के बीच में वो लम्बी चौड़ी सड़क हमेशा चौकन्नी और गतिमान रहती। कभी कभी लगता जैसे शहर बह रहा है। वो तीनों बूढ़े उस छोटे पर हरेभरे पार्क में खूबसूरत लैम्प के नीचे हरी पुती बेंच पर कभी कभी चुपचाप यूं ही बैठे देखते रहते दृश्यों के इस सैलाब को जैसे ये बातचीत करने या सैर करने नहीं बल्कि रोशनी और रंगिनियों में नहायी रौनक को देखने ही यहां तक आते हैं। तीसरा बूढ़ा यानी जिसका घर सबसे बाद में पड़ता था वो ज्यादातर खोया सा रहता

कभी कभी वो एक किसी खास दृश्य को उसके ओझल होने तक देखता रहता। ये उसकी आदत थी। तब पहला बूढ़ा उसे छेड़ता “क्यूं बंधू, कुछ विशेष दृश्य दिखे क्या? हों तो भाई हमें भी दिखाओ। बूढ़े हो गये तो क्या चश्मा चढ़े ही सही दीदे तो सलामत हैं?”

“और दिल भी माशाल्लाह...” दूसरा बूढ़ा वाक्य पूरा कर देता और वो दोनों खिलखिला कर हंस देते।

उनकी खिलखिलाहट में एक आजादी का सुरूर तिरता होता जो उन्हें अपने घर परिवार में अपनी बुजुर्गियत के खोल (लिहाज) में दबोच कर रखना पड़ता था। तीसरा अगल बगल झांकता खिसियानी हंसी हंस देता। कभी कभी वो तीनों दुनिया जहान की बातें भी करते। अपने पुराने दिनों को याद करके हंसते, दीन दुनिया की बातें करते, उदास होते, नये जमाने पर नाराजगी और कभी दुःख जताते। यहां तक कि बेटे बहू की ज्यादतियों और समाज से नकार दिये जाने जैसी अफसोसजनक बातें तक बांटते, लेकिन ना जाने क्यूं वो रहस्य एक दूसरे से बचाते रहते जिसके लिए वो स्वस्थ ही नहीं बल्कि जीवित भी रहना चाहते थे।

## किरदार

श्री मधुसूदन खरे, रिटायर्ड हेड मास्टर/शौकिया कवि। इसरो रोड पर स्थित अपने प्रोवीडेण्ट फंड के पैसे से खरीदे घर से छड़ी लेकर प्रेस किया हुआ कुर्ता पाजामा जैकेट पहन निकल पड़ते थे ठीक शाम पांच बजे, अपने गन्तव्य यानी ‘मिनाल’(पार्क) तक की यात्रा पर। मुंह में इलायची के दो तीन दाने और निखालिस कन्नीजी इतर का फाहा कान में लगा कर, अपने जाने पहचाने शगल के मुताबिक।

यूं तो गुप्ता जी सड़क किनारे ही प्रतीक्षा करते मिल जाते पर कभी कभी नहीं मिलते तो खरे साब ‘सुखानी शू सेण्टर’ के बंद शटर के आगे खड़े होकर, जिसके पिछवाड़े से गुप्ता जी के पर्दा विहीन घर का अंधेरा अक्सर झांकता दिख जाता; गुप्ता जीईई... आवाज देते। गुप्ता जी घर में से धोती संभालते भागे भागे से निकलते। पीछे उनकी पत्नी सुषमा देवी हाथ में थैला या छतरी जो अक्सर गुप्ता जी छोड़ आते थे लेकर गठिया के बोझ से अघाई घिसटती हुई आतीं। खरे साब उनकी इस दिनचर्या के इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जिस दिन वो बाहर तक नहीं आतीं पूछ लेते “गुप्ता... भाभी ठीक तो हैं ना?”

बोटानिकल पार्क के चौराहे पर तीसरे मित्र शम्भुनाथ अवस्थी अवकाश प्राप्त व्याख्याता/लेखक, छरहरा बदन, आंखों पर चश्मा, खुला रंग, चेहरे पर ताजगी की ललाई, कभी सफेद धोती कुर्ता, कभी ढीली पैण्ट और कमीज, हाथ में छाता लिए (जिसके अन्यान्य प्रयोग थे, जैसे छड़ी के रूप में, धूप या बरसात यदि अचानक नमूदार हो जाये तो, या सड़क पर कुत्ते, गाय, बैल, सूअर जैसे प्राणी की हिमाकत को सबक सिखाने के लिए) खड़े या उस पुलिस चौकी के सामने वाली पुलिया पर बैठे मिल जाते। ‘टीम’ पूरी हो जाती और वो तीनों कभी कुछ हल्की फुल्की बातें करते या कभी चुपचाप चलते हुए वहीं पार्क की बेंच पर जाकर बैठ जाते।

सुबह तो नाती पोतों को स्कूल बस तक पहुंचाने, साग भाजी लाने, पूजा पाठ आदि में बीत जाती थी पर सीमा पर तैनात बख्तरबंद सिपाही की तरह आंधी हो पानी हो, लू के थपेड़े या बरसात; गर्म कपड़े/छाता/टोपी लगा लगू कर वो सायंकालीन सैर को जरूर जाते। बरसात की झड़ी लगी हो और वे छाता लेकर चल पड़ते। बच्चे मना करते लेकिन वो कहां मानने वाले। लोगबाग कहते बुड़्डे सनकी हो गये हैं पर वो तीनों एकनिष्ठ भाव से सैर को निकल पड़ते। परम संतुष्ट और सुखी बुढ़ापा



व्यतीत कर रहे थे। उनके लिए सैर के मायने क्या थे ये अलबत्ता खोज का विषय था, क्यों इतने व्याकुल रहते थे चौबीस घंटों में से इस एकाध घंटे के लिए वो? घर के झंझटों और ऊब से भागना चाहते थे, या परिवार समाज दोस्तों के बीच एक मिसाल पैदा करना चाहते थे पुष्टता और जिन्दादिली की? या बुढ़ापे की बेचारगी से बचने के लिए अपने देह की मशीन के कलपुर्जों को जंग ना लगने देने की मुहिम?... या कुछ और?... बुढ़ापा, जिससे पूरा संसार खौफ खाता है लेकिन सच तो ये था कि देह से ऊर्जा की बूँदें समय की रेतीली जमीन पर टप टप टपक रही थीं जो एक अंधेरे समुद्र में विलीन हुई जा रही थीं।... वो बूँदों के धागे में गांठ बांधना चाहते थे। हर व्यक्ति की अपनी एक निजता होती है, जिसके कुछ हिस्से वो ताजिन्दगी सबसे छिपा कर रखता है पर यकीनन खुद से नहीं छिपा पाता उसे, सो सालती रहती है वो गाहे ब गाहे, कसकती रहती है फांस सी, दिल से आत्मा तक। तीनों के अपने अपने तर्क थे अपनी अपनी वजहें थीं बुढ़ापे को रोके रखने की...। एक इंतजार...?

## अभिनय

### पहला बूढ़ा

खरे साब अस्सी के दशक के एक स्ट्रिक्ट हेड मास्टर रहे। घनघोर नैतिकतावादी, गांधी को अपना आदर्श पुरुष मानने वाले। स्कूल के बच्चों को भी वो यही शिक्षा देते। हालांकि उनके पूर्वज दुकानदारी करते रहे अनाज की मंडी में। पुश्तैनी दुकान अब भी है उनकी जिसे उनके भाई और उनकी संतानें चला रही हैं पर खरे साब को ये पेशा भाया नहीं, कहा कायस्थ का बच्चा दुकान पर सौदा नहीं तौलता बुद्धि के काम करता है। पर वही लिखना देखना वहीं सीखा था उन्होंने। जिसमें उनके परम पूज्य दादाजी लाल जिल्द की 'कापी' में सबसे पहले पन्ने पर 'ओम् लक्ष्मी जी सदा सहाय' लिखा करते थे।

हेड मास्टर की दौरान जब समय मिलता वो रजिस्टर जिस पर खूब सुंदर अक्षरों में पहले पृष्ठ पर ही 'ओम् श्री गणेशाय नमः' के ठीक नीचे 'व्यक्तिगत डायरी' लिखा हुआ था, उसे वो आफिस की लकड़ी की अलमारी में अलीगढ़ी ताले में बंद करके जाते थे और घर जाने से पहले लौट लौट कर ताले को खींच कर देखते थे। लट्टू अलबत्ता चस्ता रह जाता था आफिस का कई बार। उनकी उस डायरी में महीने के खर्चों, और जरूरी पत्तों जो रजिस्टर के अंतिम कुछ पृष्ठों पर स्थान पाते थे के अतिरिक्त शुरू के पृष्ठों पर कविता या नज्म की कुछ पंक्तियां लिखी होती थीं जो नाम न होने के एहतियात के बावजूद अक्सर गीता रानी आहूजा के लिए होतीं। गीता रानी आहूजा उन्हीं के स्कूल में मैथ्स की टीचर थीं। नाजुक, हंसमुख, होशियार, अविवाहित। वो ज्यादातर काम उसे ही देते और उन्हीं के बहाने वो गीता रानी को अपने आफिस में बार बार बुलाते। सीधे सीधे किसी स्त्री की आंखों में नहीं देखना चाहिए असभ्यता कहलाता है; यह सम्भवतः उन्ही के स्व निर्मित नैतिक नियमों की पुस्तक का एक सबक था लेकिन सच बात ये थी कि गीता रानी आहूजा से बात करते वक्त उन्हें लगता रहता कि वो ना सिर्फ उसके चेहरे पर ध्यान केन्द्रित कर बातें करें बल्कि उसकी खूबसूरत बड़ी बड़ी आंखों में गहरे तक झांकें और निकाल लायें वो मोती जो उन सीपियों में भी छिपे बैठे हैं कहीं... मगर कम्बखत संकोच और पद...। आज भी नहीं भूले हैं वो मनहूस सुबह जब वो रोज की तरह कन्नीजी इतर का फाहा कान में लगा कर सफारी सूट पर गुलाब का ताजा फूल, जो वहीं स्टेण्ड पर 'वेप्सा स्कूटर' खड़ा करके स्कूल के बगीचे से रोज तोड़ कर वो लगा लिया करते थे, टांक कर अपने

प्राचार्य कार्यालय पहुंचे थे। टेबल पर गीता रानी का इस्तीफा देखा जिस पर वजह उसकी शादी होना लिखा हुआ था। उन्हें याद है अब तक, उसी दिन उन्होंने 'देवदास' पिक्चर का रात का शो देखा था और शर्त लगा कर कह सकते हैं कि परदे पर दिलीप कुमार की जगह खुद को देखते रहे थे वो। सिनेमा देख कर लौटते वक्त उन्हें पहली बार ये महसूस हुआ था कि काश हमने भी शराब पीना सीख लिया होता। और तो कुछ नहीं, बस यही टीस उठती है अब तक कि जरा मिल कर चली जाती विदाई समारोह जैसा कुछ कर देते। एक कप चाय साथ पीने की इच्छा भी मन की मन में ही रह गयी।

कम्बखत पद वो भी हेड मास्टर जैसा, यानी मास्टर का भी हेड जो नयी पीढ़ी को नैतिकता का पाठ पढ़ाता है, नयी पीढ़ी जिसके कंधों पर देश का भविष्य बैठा है... देश जो महात्मा गांधी और आजाद जैसे वीरों का है... और वीर... चलो छोड़ो अब आगे की बात...। खरे साब के पेसमेकर लगे दिल के किसी कोने में आज पच्चीस तीस साल बाद भी एक हल्की सी उम्मीद की चिंगारी सुलग रही है कि गाहे ब गाहे किसी ना किसी सड़क, बगीचे, राह आते जाते गीता रानी आहूजा उन्हें जरूर मिलेगी, और कहेगी, "अरे सर, आप तो ज्यों के त्यों हैं... बिलकुल नहीं बदले?" वो मुस्करा कर कहेंगे, "हां पर तुम बहुत मोटी हो गयी हो।"

उस दिन जब रोज की तरह तीनों बूढ़े बैठे बतिया रहे थे पार्क में। मौसम खुशगवार था, चाय वाला लड़का अपने छोटे छोटे गिलासों में उन्हें चाय पकड़ा गया था, सड़क और दुकानें भरी हुई थीं लोगों से। अचानक खरे साब का चाय का गिलास पकड़ा हाथ वहीं का वहीं रुक गया, दिल तेजी से धड़कने लगा, आंखों पर यकीं नहीं हुआ, उन्होंने चश्मा ठीक किया गौर से देखा... एक बाईस तेईस साल की दुबली पतली गौरवर्ण युवती मोपेड से उतरी और किनारे रखी बाइक्स के बीच में अपनी मोपेड खड़ी करके सामने शॉपिंग काम्प्लेक्स में चली गयी। करीब आधे घंटे बाद वो दुकानों से निकली उसने हेलमेट पहना और चली गयी... हू ब हू गीता रानी आहूजा...। वो सोचते रहे। पर ऐसा कैसे हो सकता है? गीता रानी तो अरसा पहले...!

वो उस रात करवटें बदलते रहे... आज फिर उन्हें वोही शराब वाली बात याद आयी। कहीं गीता रानी की बेटी तो नहीं ये लड़की? उसी वक्त क्यूं नहीं पूछा उस लड़की से कि 'कहीं तुम?' लेकिन कैसे पूछता वो तो सड़क के उस तरफ थी? उन्हें कोफ्त होने लगी खुद पर अपने आदर्शों से होते हुए अपने नैतिकतावादी पुरखों तक पर, जिनके कीटाणु रक्त के साथ उनकी देह में प्रवाहित हो रहे थे, और ऐसे मौकों पर हमेशा ही उन्हें घूर कर देखने लगते थे। लेकिन उन्हें अवर्णनीय खुशी हुई तब, जब दूसरे दिन उन्होंने उस लड़की को ठीक उसी वक्त फिर वहीं अपनी मोपेड खड़ा करते और दुकानों में जाते हुए देखा। एक ठंडक पहुंची दिल में। अब वो लड़की रोज इसी वक्त आती और हेलमेट उतार कर दुकानों की भीड़ में खो जाती और आधा पौन घंटे बाद निकल कर चली जाती इस बात से अनभिज्ञ कि उसके इस आने जाने को रोज कोई ना सिर्फ देखता है बल्कि उसका इंतजार भी करता है।

उस दिन जब वो आयी तो वो जगह जहां वो अपनी मोपेड खड़ी करती थी वाहनों से भर गयी थी। वो परेशान होकर इधर उधर देखने लगी। खरे साब के इकसठ साला दिल में अचानक सुरसुरी सी हुई। वो उठ खड़े हुए, वाहनों से भरी सड़क को पार करते हुए वहां पहुंच गये।

"अरे इधर आओ बिटिया यहां रख दो अपनी गाड़ी हम तो यहीं बैठे हैं ना पार्क में?" और वो लड़की 'थैंक्स' कह कर मोपेड वहीं पार्क के बगल में रख गयी।

अब वो रोज मुस्कराती हुई आती और सिर हिला कर अभिवादन करके गाड़ी वहीं पार्क के पास खड़ी कर जाती, जाते समय भी वो थैंक्स कहना और मुस्कराना नहीं भूलती। उस दिन काली

घटाएं घिर आयी थीं दोपहर से ही। तीनों बूढ़े नियत समय पर आकर बेंच पर बैठ गये थे। लड़की आयी उसने मोपेड पार्क के पास रखी, रोज की तरह ही मुस्करा कर नमस्ते किया और दुकानों में गायब हो गयी। हल्की बरसात होने लगी पर वो लड़की अभी शॉपिंग सेण्टर में ही थी। जब भागती हुई वो दुकानों में से वहां आयी तब तीनों बूढ़े लैम्प की रोशनी में एक छाने के नीचे सिमटे से बैठे उसका इंतजार कर रहे थे, मोपेड पास में खड़ी थी। लड़की ने उस दिन थैंक्स के साथ सॉरी भी कहा था।

## दूसरा बूढ़ा

लगभग पैंसठ वर्षीय श्री रास बिहारी गुप्ता की दूकान 'गुप्ता किराना स्टोर' जो अब 'ब्ल्यू स्काय साइबर कैफे' हो गयी थी, पुश्तैनी थी। पुश्तैनी होने से पहले वहां गोली बिस्कुट, पान पराग, लाइ के लड्डू, चमचम, गदा छाप बीड़ी, चार मीनार सिगरेट, चाबी छाप माचिस जैसी चीजें जो मटमैली कांच की शीशियों में से उर्नीदी सी झांकतीं अपने बिके जाने का इंतजार करती रहती थीं और जिन्हें उनके दादा श्री मुकुट बिहारी गुप्ता खड़े होकर, एक कपड़े से मक्खियां भगाते हुए बेचा करते थे। बाकी समय वो लकड़ी की एक हत्ये वाली कुर्सी पर बैठे हाथ का पंखा झलते ऊंधते हुए से ग्राहकों का रास्ता तकते। जब सामान कम था तब दूकान बड़ी थी पर पुश्तैनी होते होते गुंजाइश इतनी चौड़ी होती गयी कि दूकान छोटी हो गयी लिहाजा गेहूं, चावल, बाजरा, लहसुन प्याज के बोरे दूकान के बाहर पैदलियों का रास्ता रोके घमंड से बैठे दिखने लगे। तब तक दादा जी की काली टोपी पहने हार चढ़ी मुस्कराती हुई संतुप्त तस्वीर आलेनुमा मंदिर के एन ऊपर सज चुकी थी। उन्हीं के नीचे कुछ वणिकप्रिय देवी देवताओं और कुछ ऐसे 'अनदेखे' बाबाओं की तस्वीरें आले में विराजमान थीं जो लगता था जैसे अभी सीधे कैलाश पर्वत से खिंचवा कर मंगवायी गयी हों। नियमित अगरबत्ती के धुएं में दादाजी की तस्वीर कुछ अधिक गर्व और संतुष्टि से मुस्कराती प्रतीत होती।

श्री रास बिहारी गुप्ता जी की किस्मत का छप्पर तो तब फटा जब मछलियों को आटा खिलाने, शनीचर को पीपल की जड़ में दूध डालने और घोड़े की घिसी घिसाई नाल दरवाजे पर लटकाने के बावजूद देवी देवता नहीं पसीजे, और रास बिहारी गुप्ता इकलौते पोते और बेटे रह गये। लिहाजा कुल दीये की तमाम सम्भावनाओं और आशाओं की रोशनी उन्हीं के इर्दगिर्द पसर गयी। बगैर किसी एडमिशन, किताबों, नतीजों जैसे 'फालतू' के टेंशन और झंझटों के वो सौदा लिखने लायक हिन्दी और बही बनाने/बांचने लायक हिसाब पढ़ गये। उसके बाद वो एकनिष्ठ भक्ति भाव से दूकान पर बैठा करते थे। 'बैठने' के पहले पिताजी श्री ब्रज बिहारी गुप्ता की साइकिल के डंडे पे बैठ कर दुकान आने लगे 'देखने', फिर बकायदा व्यापार शिक्षा दीक्षा शुरू हो गयी। पिताजी को सौदा देते, ग्राहक को चिकनी चुपड़ी बातों में लगा कर सामान कम तोलते, डंडी मारते, पुड़िया बांधते ध्यान से देखा करते। ग्राहक से जिरह करते वक्त पिताजी कनखियों से अपने बेटे गुड्डू (गुप्ता जी) की ओर देखते रहते 'सीख लो' के भाव से, और वो सीख लिए। अब उनके अधबूढ़े पिता निश्चिन्त हो पूरा दायित्व इकलौते कुलदीपक गुड्डू यानी गुप्ताजी को सौंपने की मंशा से दूकान के बाहर टीन की कुर्सी पर बैठ जाते निहायत संतुष्ट भाव से टांग पर टांग रखके और कभी अखबार लेकर कभी यूं ही किसी से गपियाते। और अखबार पढ़ने या रास्ता चलते लोगों को देखने/गपियाने के बहाने बीच बीच में कनखियों से 'लौंडे' को तराजू के पीछे से सौदा तौलते देखते निहाल होते रहते। बेटे को अगाध निष्ठा और कर्तव्य परायणता के साथ सौदा बिक्री में तल्लीन देख कर ब्रज बिहारी गुप्ता जी के कलेजे में अपार ठंडक पहुंचती, परम संतुष्टि जैसा कुछ बाहर निकलने को कुलांचे मारता रहता। अब तो दूकान में 'बिका

हुआ माल वापस नहीं होगा' या 'बिक जाने के बाद हमारी कोई गारंटी नहीं', या 'आज नगद कल उधार' जैसे टेढ़ीमेढ़ी लिखावट में लिखे व्यापार के महामंत्र दूकान रूपी देह पर आभूषण की तरह चमकने लगे। एक खाते पीते वनिक परिवार की संस्कारी कन्या सुषमा देवी से उनका ब्याह कर दिया गया। तब तक पिताजी की हार चढ़ी मुस्कराती तस्वीर दादाजी के बगल में बड़े ही आत्मीय व श्रद्धा भाव से बैठ चुकी थी। गुप्ता जी को ना जाने क्यूं दूकानदारी करते वक्त हमेशा ये लगता रहता कि श्रद्धेय दादाजी और परम पूज्य पिताजी की दो जोड़ी आंखें उन्हें तस्वीर के चौखटे में से निरंतर घूर रही हैं। कभी अनजाने में कोई 'ज्यादा ईमानदारी बरत लेने' जैसी किसी गलती पर उन्हें वो डांटती सी भी लगतीं। शाम दुकान बंदाने के पहले वो आदर भाव से दादाजी व पिताजी की तस्वीरों के चरण स्पर्श करके 'भूल चूक की माफी' मांगना नहीं भूलते थे।

रास बिहारी गुप्ता जी के तीन बेटे हुए। और तीनों बार ही बगैर किसी हिमाकत के गुप्ता जी, दादाश्री व पिताश्री के हार चढ़े फोटों वाले चरणों में 'तीर मारने वाले' भाव से लोटपोट हो गये, जैसे बेटा पुराने ऋषि मुनियों की तरह उन्हीं के आशीर्वाद से पैदा हुआ हो (आस्था भाव का ये आलम था कि गुप्ता जी इसमें भी पीछे रहते हुए कोई क्रेडिट लेना नहीं चाहते थे)। दिवंगतों का चेहरा गुप्ता जी के इस अति श्रद्धाभाव से कुछ और दमकने लगता।

गुप्ता जी के तीनों बेटों के जवान होने तक वक्त करवट बदल चुका था। जैसेकि बेटों ने बीए पार्ट टू तक शिक्षा पायी। रेखांकित करने योग्य मसला ये है कि बी ए पार्ट टू के आगे उन नौनिहाल त्रय के आगे कालेज ने हाथ जोड़ लिए। दस बजे वो सोकर उठते, जिसे उनकी पुत्रभक्त मां अहसान की तरह लेतीं और तुरत चाय चढ़ जाती चूल्हे पर। वो बसाए मुंह से चाय पीते, फिर माता पिता को इज्जत बख्शते हुए पलंग पर बैठे बैठे ही उनसे पीठ करके सिगरेट के दो चार सुट्टे लगा लेते। तब तक उनके माता पिता इस मुद्रा से कि उन्होंने पुत्रों को धूपपान करते नहीं देखा है बेवजह इधर उधर मुंह फेरे घूमते रहते।

दस साढ़े दस बजे हीरो होंडा पर जींस कमीज पहन, मुंह में गुटका दबाये, कांख में कोई सस्ता सा डीयो छिड़क घर से प्रस्थान करते और ग्यारह बजे दूकान खुलती। बेटों ने जैसे ही दूकान पर बैठना शुरू किया, जो आप्तवाक्य गुप्ता जी ने रात रात को जाग कर लिखे थे दूकान सजायी थी उस पर पिता जी की शाबाशी भी पायी थी उसे बेटों ने बेदर्दी से उखाड़ फेंका और उसकी जगह एस.टी.डी फोन के ठीक ऊपर शाहरुख खान और करिश्मा कपूर की तस्वीरें चिपका दीं, ताकि फोन लीन ग्राहक की नजरें गाहे ब गाहे उस पर पड़ती रहें; माहौल की गर्मी में टंडक पाती रहें। (पाठकगण ध्यान दें, ये उस जमाने का किस्सा है जब हिन्दुस्तानी चैनल्स टी आर पी, टी आर पी खेलने लगे थे।) गुप्ता जी भी अपने पिताजी श्री ब्रज बिहारी गुप्ता जी की तरह दूकान के बाहर बैठ कर अपने बच्चों को काम करते देखना चाहते थे पर बच्चों ने साफ इनकार कर दिया 'अब आप आराम करो हम देख लेंगे सब।' अब किराने की जगह उसमें साइबर कैफे, जीरोक्स, एस टी डी, नयी फिल्मों की सी डी जैसे आधुनिक उपकरण दिखायी देने लगे, और उन आलों में जहां हनुमान जी अपने अन्य इष्ट देव मित्रों के साथ एक कदम आगे बढ़ाते हुए गर्व से पहाड़ लेकर खड़े थे, पर्दा खींच दिया गया। एक पंथ दो काज हो गये। एक तो परदे से दूकान अच्छी दिखने लगी दूसरे उसके पीछे रखी 'द ब्लेक होर्स' बीयर या 'बकार्डी' या मेकडोवेल्स विस्की की बोतलें अदृश्यमान हो गयीं।

गुप्ता जी बहुत दिनों तक शाम को मार्केट तक आते और अपनी दूकान से कुछ फासले पर खड़े हो दुलार से उसे निहारते। नियोन लाइट के नीचे ठसक से जमे 'ब्ल्यू स्काई साइबर कैफे' के अंग्रेजी लिखित बोर्ड और नीचे दूकान के शीशे लगे किवाड़ के बगल में रखे 'आई एस डी सुविधा

उपलब्ध देश विदेश में बात कीजिये दो पैसे में एक मिनट' जो 'गुप्ता किराना स्टोर' के बोर्ड पर ही पेण्ट करके लिखा गया था को ध्यान से देखा करते। उनका मन बस एक बार 'गुप्ता किराना स्टोर' के उस खानदानी बोर्ड को छूने का होता पर वो बच्चों का गुस्सा जानते थे और वहीं से लौट जाते। बाकी का दिन पुरानी बातें याद करते बीतता उनका। खरे साब जो जवानी में उनके ग्राहक भी रह चुके थे, को रोज मकान के सामने से 'मार्निंग वाक' के लिए निकलता देख एक दिन 'बच्चों के भरोसे धंधा छोड़ अब फ्री हुए हैं' कह कर उनके साथ हो लिए। अब वो रोज जाते थे सैर को।

इस दौरान दादाजी और पिताजी की तस्वीरें दूकान के 'रिन्चुवेशन' की शिकार हो गयी थीं, लिहाजा घर दुकान दोनों जगह 'उनके लायक' कोई स्थान नहीं बचा था सो दुकान के पीछे की अंधेरी कोठरी में जिसमें तमाम अटरम शटरम काठकबाड़ा भरा रहता था उसमें एक टूटे टीन के बक्से के ऊपर अब दादाजी पिताजी बिना माला के उलटे सीधे विराजमान थे। जबकि अरसे से गुप्ता जी की ये दिली तमन्ना रही, कि उनके जाने के बाद उनकी तस्वीर भी इज्जत से दादाजी पिताजी के आगे लग कर दुकान की शोभा बढ़ाये। इसके लिए उन्होंने बहुत भागदौड़ करके एक पारिवारिक फोटो में से अपनी जवानी की हंसती हुई फोटो निकलवा ली थी जिसे उन्होंने बच्चों को दिखाया भी पर बच्चों ने 'हूँ अच्छी है' कह कर लौटा दी और भूल गये। बस मन में कहीं यही एक इच्छा रही कि दूकान के किसी कोने में अदद एक तस्वीर किसी दीवार पर लटका दी जाये उनकी।

## तीसरा बूढ़ा

शम्भुनाथ अवस्थी सीधे सादे, आदर्शवादी, अवकाशप्राप्त व्याख्याता व प्रतिष्ठित कथाकार/ उपन्यासकार। पाठ्यक्रम में भी उनका लिखा निबंध पढ़ाया जाता था पर सरकार बदलते ही उसे हटा दिया गया। साफ रंग, चौड़ा माथा, चश्मा, हाथ में छाता, कंधे पर बस्ता, जिसमें लौटते वक्त सब्जी या कोई और घर की चीज जो लगभग रोज ही बहू या नाती पोतों के द्वारा आदेशित कर दी जाती लेकर आते। मिठाई के बेहद शौकीन अवस्थी साब डाक्टर और घरवालों के मना करने के बावजूद बस्ते में सब्जियों के नीचे दबा कर ले आते मनपसंद मोतीचूर के लड्डू या कोई नमकीन अपने लिए। दिल का एक चुप्पा दौरा (साइलेंट अटेक) पड़ चुका था पर 'दो घूंट' पीने की आदत तो भी नहीं जाती कम्बखत। पीते हैं तो लिखते हैं लिखते हैं तो पीते हैं।

वो कहते एक सच्चा कवि/लेखक वो होता है जो 'खेमों' में यकीं नहीं करता, बल्कि लोग उसके लेखन पर अटूट विश्वास करते हैं। वो स्वयं बगैर किसी आशा लालसा के रचना करता है और उसका लोकार्पण कर समाज को उठाने में अपना अमूल्य योगदान देता है। उनके दो कहानी संग्रह चर्चित रहे। उनका लिखा उपन्यास 'ना भूतो ना भविष्यति' साहित्य जगत में खासा चर्चित रहा। महीनों तक उसकी समीक्षाएं अनेक पत्रिकाओं में छपती रहीं। अफवाह ये भी थी कि अगला हिन्दी साहित्य का प्रतिष्ठित पुरस्कार इसी उपन्यास को मिलने वाला है। वे खुली आंखों सपना देखने लगे जब हर पत्र पत्रिका में उनके चित्र के साथ ये खबर चस्पा होगी कि 'डाक्टर शम्भुनाथ अवस्थी' को उनके उपन्यास 'ना भूतो ना भविष्यति' के लिए उक्त प्रतिष्ठित पुरस्कार मिला। पर अचानक समय ने पलटा खाया और वो ना सिर्फ उस पुरस्कार से वंचित रह गये, बल्कि नये कवि/कवयित्रियों से निचले पायदान पर पहुंच गये। बहुत तेजी से उनका नाम साहित्य जगत के केनवास से धूमिल होने लगा और वो 'बीते हुए' की श्रेणी में गिने जाने लगे। वो सम्पादक जो उन्हें अपनी पत्रिकाओं में ना सिर्फ स्थान देने को लालायित रहा करते थे, बल्कि उनसे अनुरोध करते थे अब रचनाएं भेजने पर भी प्रकाशित करने से

कतराने लगे। विरोधी उनके साहित्य को 'आउट डेटेड' कहते। बढ़ती उम्र और घटती प्रतिष्ठा का असर वो बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। उन्हें अक्सर स्वप्न में दिखता कि वो किसी ऊँचे पहाड़ से नीचे गिर रहे हैं या वो किसी सड़क पर भीड़ से घिर गये हैं। लोग उन्हें धकेल रहे हैं और उन्हें लग रहा है कि भीड़ उन्हें कुचल देगी...। वो नींद में ही जोरों से हाँफने लगते फिर उठ कर पानी पीते और घंटों तक लेटे छत की ओर ताका करते। उनके कुछ प्रसशकों का कहना था कि उन्हें जानबूझ कर नजरंदाज कर पुरस्कार हल्के रचनाकारों को दिया जा रहा है जिसकी वजह 'गुटबंदी और साठगांठ' होना बताया गया। हितैषियों ने उन्हें 'नये जमाने का हवाला देते हुए' असरदार लोगों 'से मिलते जुलते रहने और अपनी बात वहाँ तक पहुँचाने' का मशविरा भी दिया पर वो कहते 'मैं बिना किसी बोझ के मरना चाहता हूँ'। उनके गिनेचुने मित्रों की संख्या दिनोदिन कम हो रही थी और घरवालों का उन्हें भोजन और छत उपलब्ध कराने के अलावा उनसे कोई खास सरोकार नहीं रह गया था। ईश्वर के घर देर है पर अंधेर नहीं... या पाप का घड़ा भरेगा कभी ना कभी जैसी उक्तियाँ इन्हीं उदाहरण और हारे हुए लोगों के मरे हुए उत्साहों में ही तो सांस लेती हैं! पिछली बार जिस कवयित्री को ये सम्मान मिला था उसके पुरस्कार समारोह में वो आमंत्रित ही नहीं बल्कि वक्ता भी थे और पूरे समय उन्हें लगता रहा था कि उनके साथ वाकई अन्याय हुआ है। इस महिला की जगह उन्हें खड़ा होना चाहिए था। अब अगला उपन्यास जो वो लिख रहे हैं उसे पुरस्कार भले ही ना मिले पर उसे सराहा जरूर जायेगा ऐसा उन्हें लग रहा है। ...हालांकि ये वो जानते थे कि ये उनका अंतिम उपन्यास होगा, पर वो इस अन्याय की धुंध में जीवन का पटाक्षेप नहीं चाहते थे। एक बार फिर उसी जगह को हासिल करके जीवन से विदा होना चाहते थे जिसके वो हकदार थे ...इसके लिए जीवन की संध्या में डूबते सूरज के आगे हथेली रखना जरूरी था ...बस इसी की प्रतीक्षा।

## मध्यांतर

गर्मियाँ जोर पकड़ने लगी थीं। ये वही मौसम होता है जब उनींदी थकान चेहरों पर धूप की पीली रोशनी सी जम कर बैठने लगती है। शाम छः बजे तक गर्मी अपने तेवर ढीले नहीं करती लिहाजा वीरान धूप में कुम्हलाए पत्तों से सन्नाटे टप टप गिरते रहते हैं तबे सी तपती जमीन पर। लोगबाग गर्मियों से राहत पाने सरसरते कूलरों के आगे पसीना सुखाते अलसाए पड़े रहते हैं या फिर छुट्टियों का लुत्फ उठाने के लिए पहाड़ों की ओर निकल पड़ते हैं। इन परिवारों में भी गर्मियों के कार्यक्रम की सुगबुगाहट शुरू हो गयी थी; स्कूलों की छुट्टियाँ जो हो चुकी थीं। खरे साब का कार्यक्रम तो पहले ही तयशुदा था। उन्हें सपरिवार यानी बड़े बेटे बहू और पोते के साथ अपने छोटे बेटे के यहाँ जबलपुर जाना था, बेटे के नये घर के 'गृहप्रवेश' के आयोजन में।

'पापा, मां तो अब हैं नहीं, अब तो आप ही हैं उनकी जगह भी, तो प्लीज जैसे भी हो आ जाइयेगा इसीलिए पहले ही से राजधानी के टिकिट भेज दिये थे, क्यूँ कि छुट्टियों में ट्रेन के टिकिट मिलना थोड़ा मुश्किल होता है' जबलपुर से 'छोटे' ने फोन पर गुजारिश की थी तो खरे साब द्रवित हो उठे। अपने बेटे के इस अनुरोध को टाल नहीं पाये "अरे नहीं बेटा कैसी बात करते हो, जरूर आयेंगे। ये तो मौका है तुम्हारी खुशियों में शामिल होने का। वैसे भी तुम्हारी मां के जाने के बाद कहीं जा नहीं सके हैं। थोड़ा चेंज भी हो जायेगा हम सबका।" भावाकुल होते हुए बोले खरे साब।

बेटे का मन रखने को कह तो दिया पर क्या वो इस दिनचर्या; अपने दोस्तों, मिनाल पार्क के लान की गाढ़ी हरी पुती उस बेंच, चाय वाले लड़के या उस मोपेड वाली बच्ची को छोड़ कर जा

पायेंगे? स्मृतियों पर कोई वश है क्या कि बच्चों की तरह डाट दिया और वो सहम कर बैठ गयीं? और फिर उस 'बच्ची' को भी तो नहीं बता पाये हैं जाने का! कैसे खबर भेजें उसे? अब तो तैयारी करनी है आज वो मना भी कर आये हैं सैर पर जाने को गुप्ता जी और अवस्थी जी से। मन थोड़ा विचलित सा हो रहा था।

छुट्टियों में, गुप्ता जी का भी ग्वालियर और फिर वहां से शिरडी जाने का कार्यक्रम बन गया था। दरअसल गुप्ता जी के सास श्वसुर और दो साले यानी उनकी पत्नी के भाई ग्वालियर में रहते हैं। वहां दाल बाजार गल्ला मंडी में उनकी गल्ले की दूकान है। आढ़तिया हैं वो, किसानों से सीधा गल्ला खरीदते हैं और दुकानदारों व्यापारियों को बेचते हैं। अच्छा जमा हुआ धंधा है। साल भर तो वहीं पसीने से गंधाते बदन से गद्दी पर बैठे बहीखाता लिखते रहते हैं। किसानों पटवारियों से उलझा उलझी चलती है। बस ये छुट्टियां ही होती हैं जब कहीं जा आ सकते हैं। बच्चों के स्कूल बंद रहते हैं और इधर धंधा भी थोड़ा मंदा होता है। सो उनके संयुक्त परिवार ने अपनी इकलौती बहन सुषमा देवी और दामाद गुप्ता जी के साथ शिरडी जाने का कार्यक्रम बनाया था। हालांकि गुप्ता जी की इच्छा है या नहीं ये पूछने की जरूरत नहीं समझी गयी ना ही सलाह मशविरे की। 'उपकृत' की तरह वो चले गये थे पत्नी के साथ।

अवस्थी जी का हालांकि ऐसा कोई बंधा बंधाया योजनाबद्ध कार्यक्रम तो नहीं था छुट्टियों का पर बेटे की ससुराल कटनी में कोई आयोजन था सो वो लोग जा रहे थे। अवस्थी जी अकेले कहां रहेंगे इसलिए उनको बहन यानी अवस्थी जी की बेटी कामिनी के पास इंदौर छोड़ दिया गया। इस तरह तीनों बूढ़े अपनी अपनी योजनानुसार चले गये।

जबलपुर में खरे साब के छोटे बेटे बहू ने जी खोल कर स्वागत किया उनका। भव्य आयोजन, शानदार घर, खूब सेवा सुश्रुषा हंसी ठिठोली, फिर भी ना जाने ऐसी कौन सी कसक थी जो गाहे ब गाहे लौकती सी रहती जेहन में कि वो चाहते हुए भी पूरे मन से 'छोटे' की खुशियों में शामिल नहीं हो पाये। देह यहां हंसती मुस्कराती, लोगों से मिलती जुलती रही पर मन तो आधा अधूरा सा कभी यहां; कभी दौड़ा छूटा पहुंच जाता उन्हीं सड़कों, सुंदर हरेभरे पार्क, सतरंगी रौनक, दुनिया भर की उन गण्णों में विशेषतः शाम पांच से सात। वो मन के इस हाहाकार को दबाये घूमते रहते इधर उधर मुंह छिपाये से। लगता था जैसे मां अपने बच्चे को छोड़ कर दूसरी जगह आयी हो और अब उसके पास जाने को तड़प रही हो।

गुप्ता जी भी व्यस्त यात्राओं और तमाम सुविधाओं की भीड़ के बीच जब भी कुछ खाली होते उनका दिल भी शहर, गलियां पेड़ पौधे नदी नाले सब पार करता हुआ वहीं पहुंच जाता मिनाल पार्क। ना जाने क्यूं उन्हें ससुराल का ये सब स्वागत सत्कार, खाना पीना एक आडम्बर सा लग रहा था एक बंदिश। उनका मन हो रहा था कि सब कुछ छोड़छाड़ वो भोपाल भाग जायें। पत्नी सुषमा देवी कई बार नाराज भी हो जातीं, 'इतने दिन बाद निकले हैं घर के बाहर धंधों से दूर, पर इनके थोबड़े पर बारह ही बजे रहते हैं, घरवाले हथेली पे धरे हैं तो भी।'

और उधर... अवस्थी जी को पहली बार ये लगा कि वो कितने विवश और अभ्यस्त हो गये हैं उस शहर के... नोस्टेलजिया। यद्यपि तीस वर्ष हो गये रहते उन्हें भोपाल में लेकिन रिटायरमेंट के बाद के इन तीन वर्षों में शहर ने उन्हें ऐसे लपेट लिया है अपने सीने से जैसे बाप लपेट लेता है बच्चे को। ऐसा एक दिन नहीं गुजरा कि उन्हें अपने शहर की याद ना आयी हो। उन सड़कों, भीड़, शॉपिंग सेंटर, चुहलबाजियों की स्मृति से वो व्यथित ना हुए हों। उनका मन बेटी के यहां इंदौर आने का रती भर नहीं था, पर क्या करते? मिश्रा भी तो चले गये थे।

बेटी दामाद दोनों नौकरीपेशा हैं। सुबह नौ बजे के लगभग अवस्थी जी के लिए टेबल पर चाय और कुछ हल्का फुल्का नाश्ता रख बेटी कामिनी 'पापा नाश्ता कर लीजियेगा मैं जाती हूँ' कह कर भागती दौड़ती चली जाती आफिस। पर अवस्थी जी की सुबह अखबार के बिना नहीं होती। चाय सुड़कते हुए वो मैगनीफाइंग ग्लास से पढ़ते रहते आंखें गड़ाये अखबार को झुके हुए। 'भारत का सबसे बड़ा समाचारपत्र' से लेकर आखिरी पृष्ठ 'मुद्रक एवं प्रकाशक' तक चाट जाते और अंत में 'कुछ नहीं सब बकवास...' कह कर तह करके रख देते, बाकी दिन वो दिन भर दीवारों से बातें करते रहते जिन्हें वो मन ही मन सर फोड़ना कहते। टीवी ही एक सहारा था पर कम्बखत इतना ऊंचा सुनायी देने लगा था कि जिस वोल्यूम पर कुछ सुनायी देता उस पर घर की दीवारें कांपने लगतीं। इसका अहसास भी उन्हें तब होता जब बेटी झुंझला कर बंद कर देती टीवी, और वो उसकी जाती हुई पीठ को धूरते रह जाते। उन्हें तो महीनों से इतना ही ऊंचा सुनायी दे रहा है पर वो कितने 'नाकाबिलेबर्दाश्त' हो चुके हैं ये तो बेटी के घर जाकर ही पता लगा! क्या मित्रों को उनकी इस कमी इस लाचारी पर कभी खीझ नहीं आयी? नहीं... आयी तो होगी पर आज तक उन्होंने ये अहसास ही ना होने दिया कि वो बहरे हो चुके हैं बल्कि हर बात का बहुत सहज तरीके से जवाब देते रहे। कभी कभी हंसी उड़ा देते बस।

बुढ़ापा एक डरी हुई उम्र होती है कोई जोखिम उठाना नहीं चाहती। तनिक सी आहत मौत का खटका लगती है। जरा से विचलन से आत्मा तक में सिहरन महसूस होती है। एक एक दिन करके कैसे बीते पंद्रह दिन वो तीनों ही जानते हैं...।

खरे साब सबसे बाद में लौटे थे भोपाल और आते ही उन्होंने गुप्ता जी को फोन लगाया, "अरे भाई गुप्ता... लौट आये क्या?"

"अरे राम राम भाई साब!" गुप्ता जी की खुशी छिपाये नहीं छिप रही थी, "...हां हम तो परसों ही पहुंच गये थे यहां! आपको फोन लगाया था पर सोचा शायद व्यस्त हैं बाल बच्चों के संग..."

"और अवस्थी साब की कोई खबर?" खरे साब ने टोह ली

"वो तो इंदौर थे बेटी के यहां। रात को ही लौटे हैं यहां इसरो रोड वाले घर में बेटे के पास। आते ही उन्होंने फोन लगाया था मुझे, आपकी खैर खबर भी पूछ रहे थे।"

"तो फिर कल सुबह का कार्यक्रम बना लें सैर का?" इस प्रश्न के लिए जैसे व्याकुल ही बैठे थे गुप्ता जी भी, "हां हां भाई साब क्यूं नहीं।" ...बात उन्होंने लपक ली थी बोले, "हाथ पैरों में जंग सी लग गयी है कम्बखत ...उधर ससुराल में अलग खिला खिला कर मार डाला ...वजन इक्यासी किलो हो गया है। ...तो ठीक है भाई साब कल यहीं मिलेंगे सुबह ठीक छः बजे। अवस्थी जी को मैं फोन करे देता हूं।"

ये सुनते ही कि कल सुबह सैर को जाना है अवस्थी जी की झुर्रियाती आंखों में चमक आ गयी। हालांकि बेटे बहू ने खूब मना किया कि अभी थके हुए हैं परसों से चले जाना पर वो भी जानते थे अवस्थी जी की जिद "ठीक है भाई कल वहीं पुलिया पर मिलते हैं।" उन्होंने गुप्ता जी से कहा फोन पर।

अब उन तीनों को अहसास हो रहा था कि इतने दिनों उन्होंने क्या खोया था और अब क्या पा लिया है। लगा कि जिन्दगी में सैर के वो दो घंटे कितनी बड़ी राहत हैं। वही घंटे तो बचे हैं निखालिस उनके अपने जहां वो खुल कर हंस बोल लिया करते हैं, एक दूसरे का दुःख दर्द समझते हैं। बाकी सब तो खेल हैं जीवन के।

कल सुबह सैर को जाना है... तीनों अपने अपने घर में लेटते उठते बैठते, पेपर पढ़ते खाते पीते यही सोच रहे थे।



खरे साब ने अपनी छड़ी, कुर्ता पाजामा रात में ही सिरहाने रख लिया। सोचते जा रहे थे, कल तो भाई पूछ ही लेंगे 'बच्ची' से कि गीता रानी आहूजा तुम्हारी कोई सगी सम्बन्धी हैं क्या? उसमें भला क्या हर्ज है? गुप्ता जी पड़े पड़े सोच रहे थे अपनी दूकान है... और अभी कोई मर थोड़े ही गये हैं कि इतना भी नहीं कर सकते? कल जाकर अपनी जो तस्वीर निकलवायी है उसे दीवार पर टांग कर आयेंगे। अपने पैदा कियों से क्या डरना? पत्नी से जल्दी जगाने को कह दिया उन्होंने और सो गये। अवस्थी जी कुछ ज्यादा ही संवेदनशील थे सो रात में नींद ही नहीं आ रही थी। एक पैग बना खिड़की पर खड़े हुए सोच रहे थे, "पुरस्कार कोई श्रेष्ठता का मापदंड है क्या? कितने उत्कृष्ट लेखक हैं जिन्हें जीवन भर कोई पुरस्कार नहीं मिला तो क्या वो लेखक नहीं माने जाते? अब इस उपन्यास को ऐसे लिखना है कि लोग मरणोपरांत भी याद करें।"

अवस्थी जी ने इंदौर जाते बखत टांड पर रख दिये गये छाते की धूल झाड़ी। उसे दो तीन बार खोल कर बंद किया ताकि जांच लें कि कहीं जंग ना लग गयी हो। और बाहर के द्वार के पास की कील पर टांग दिया। इस बार सैर सुबह करना तय हुआ। वजह तो ये बतायी गयी कि बहुत दिनों से छूटी है, दो एक दिन पैरों को आदत में आने में लग जायेंगे, पर सच बात कुछ और ही थी। वो तीनों मित्र परस्पर मिलने और उससे भी ज्यादा अपनी प्रिय जगह मिनाल पार्क तक सैर के लिए जाने को बैचने थे।

कार्यक्रम के अनुसार मुंहअंधेरे ही तीनों अपने अपने तयशुदा ठिकानों पर मिल गये। खूब खुश हुए, गले मिले, हालचाल पूछे। तीनों की आंखें अपने अपने सपनों से भरी हुई थीं। आज तीनों बूढ़े कुछ ज्यादा ही खुश, ऊर्जावान और तरोताजा लग रहे थे। मिनाल पार्क की ओर चलते चलते कभी बातचीत करने लगते कभी यूँ ही स्वप्न में खोये से चलते जाते। लग रहा था ना जाने कितने अरसे बाद लौटे हैं अपने शहर अपनों के पास, अपनी जगह।

"कैसे काटते होंगे वो लोग बुढ़ापा, जिनकी जिन्दगी में सैर नहीं होती होगी...? खरे साब यही सोचते जा रहे थे। 'बच्ची' तो शाम को ही आती होगी इस वक्त कभी आये नहीं ना? उन्होंने ये भी सोचा।

उधर गुप्ता जी के मन में चल रहा था कि 'मोटापा बहुत बढ़ गया है भाई, अभी से हांफ गये हैं... आज तो पार्क से आगे तक जायेंगे भले ही ये लोग मना कर दें।'

और अवस्थी जी झुके हुए सिर नीचे किये सोचते जा रहे थे 'वाइन शॉप तो इस बखत बंद ही होगी। लंगड़ा हलवाई भी ना जाने इस समय दूकान खोलता है कि नहीं। ना खोली तो भाई बड़ी दिक्कत हो जायेगी। सड़क पार करके मिनाल शॉपिंग कॉम्प्लेक्स तक जाना पड़ेगा।' फिर अचानक खयाल आया कि बच्ची मोपेड रखने आयेगी पार्क में तो उसी से कह देंगे बेटा जरा थोड़े लड्डू भी लेते आना मोतीचूर के। लंगड़े हलवाई की दूकान से।

पार्क को जाती सड़क कुछ टूटीफूटी सी पड़ी थी। कुछ काम चल रहा था। मजदूर लगे हुए थे।

"नगर निगम का काम चल रहा है।" खरे साब ने अवस्थी जी से सिर झुकाये चलते चलते कहा।

"हां कुछ ना कुछ चलता ही रहता है यहां। देखते देखते कितनी इमारतें खड़ी हो गयीं। पहले जंगल पड़ा था... सन्नाटे डोलते थे। इस रास्ते से निकलने में डर लगता था...।" अवस्थी जी स्मृति में डूबते हुए बोले।

गुप्ता जी जो उनकी बात सुन रहे थे बोले, "भैया, मुझे तो ये शहर इतना खूबसूरत लगता है कि इसे छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकता मैं।"

सामने सड़क मार्ग, वाहनों के लिए लकड़ी की बड़ी बल्लियां लगा कर अवरुद्ध कर दिया गया था, सिर्फ थोड़ी सी जगह थी पैदल यात्रियों के लिए। सड़क किनारे बोर्ड लगा था। लिखा था : 'कार्य

प्रगति पर है'। उसी के थोड़ी दूर पर 'मिनाल पार्क' का वो बोर्ड जो पार्क के 'आ जाने' की सूचना दस कदम पहले ही दे दिया करता था और जिसे देखते ही खरे साब अकसर 'लो भाई आ गया अपना ठिकाना' कह कर आश्वस्त की सांस भर लिया करते थे, जमीन पर औंधा पड़ा धूल चाट रहा था। वो खूबसूरत हराभरा पार्क गायब था। उसकी जगह खुदे हुए गड्ढे और ईंट पत्थर तथा लकड़ी की हरी पुती हुई बेंच के अलग अलग हिस्से ध्वस्त अंगों की तरह आड़े तिरछे गिरे पड़े थे। पार्क में लगे अशोक के पेड़ का वो घोंसला जिन्हें चिड़िया को बुनते हुए वो रोज देखा करते थे और इंतजार करते थे उसके आबाद होने चहचहाने का वो अनाथ सा जमीन पर पड़ा था। 'अशोक' की मुरझाई पत्तियां मानो आंसू भरे अपनी आपबीती बयां कर रही थीं। निकट ही दो आदमी ट्रैक्टर में से ईंटें उतार कर जमीन पर जमा रहे थे

“भैया ये पार्क कहां गया।” गुप्ता जी ने सहमते हुए से पूछा।

“यहां दुकानें बनायी जा रही हैं।” आदमी ने पसीना पोंछते हुए कहा, “चार दुकानें बनेंगी। एक वो सांची दूध की जो वहां कोलोनी के कोने पर थी यहीं आ जायेगी।” कह कर वो फिर काम में लग गया।

उन तीनों को भौचक्का सा देख वही आदमी ट्रैक्टर से ईंटें उतारता हुआ बोला, “पार्क तो साब बेमतलब ही था यहां। लोगबाग बैठ कर अपना टाइम पास करते थे और क्या! अब दुकानें आ जायेंगी तो आसपास रहने वालों को सुभीता हो जायेगा। और जमीन के मालिक को भी चार पैसे मिलेंगे भाड़े के।”

वृद्ध त्रय खड़े थे उस उजाड़ के बीचोंबीच जो अब से कुछ दिनों पहले तक खूबसूरत हराभरा पार्क हुआ करता था पर अब पार्क की स्मृति भर था। आंखें बहराई सी चारों ओर के टूटे फूटे दृश्यों को देख रही थीं। तीनों सन्निपात की स्थिति में थे जैसे। जब होश आया तो एक दूसरे की तरफ देखने लगे। निरीह से... मानों पूछ रहे हों, “क्षणभंगुर का मतलब यही होता है क्या?”

‘जीवत्सु तातपादेशु ते हि नो दिवसा गतः’ (उनके जीवित रहते हुए जो दिन बीते, समय बीते वे अब चले गये।)

## कुछ दिनों बाद

तीनों के परिवार खुश थे कि बूढ़े बिना किसी हारी बीमारी और मलाल के एक भरापूरा परिवार पीछे छोड़ संतुष्ट परलोक धाम सिधार गये।

## पटाक्षेप

# ए घुटरू ! ए घुटरू ! कहनी कहो न...

शिवेन्द्र

6 अप्रैल 1982 को जन्मे शिवेन्द्र की पहली बार कहीं कोई कहानी छप रही है। हम कहानी की इस नयी उम्मीद का स्वागत करते हैं।

जउने अंगन मोर पंडवां पुजाइल  
ओही अंगनवां पियत बानी माइ  
मइवा पियत मोर बोलनी नटइया  
धईनि घुटरुवा मोर नाम जी...

(जिस आंगन में मेरे पावों की पूजा हुई अर्थात् मेरी शादी हुई आज उसी आंगन में मैं नौकर हूँ और माइ पी रहा हूँ। माइ पीते हुए मेरी नटई से (गले से) घट घट की आवाज आती है जिसे सुन कर उन्होंने (मेरी पत्नी ने) मेरा नाम घुटरू रख दिया है)

जब रात की हवा आम के बगीचे से गुजरी उसका जी ललचा उठा। गर्मी की रात, खट्टे टिकोरों से लदे पेड़। रखवाला नींद में था और हवा मन से मजबूर। नहर किनारे बैठ कर उसने बाग से चुराए टिकोरे चखे और खटास की खुशी से शर्माती, आहिस्ता आहिस्ता गांव की तरफ चली। उसके पांव भारी थे कि कहानी उसके पेट में थी...

सीवान में जहां गेहूं के खेत थे वहां यह कहानी पैदा हुई और कछुवे की पीठ पर बैठ कर गांव में आयी। मेरी दादी ने इसे पाला और अपनी उम्र देकर हर कहानी की तरह इसे भी अमर बना दिया...

तो आंखों की देखी नहीं कहता, कानों की सुनी कहता हूँ कि एक था राजकुमार...

“हाय रे ! बिपद...।” दादी के गले में उदासी उतर आयी और सोनू ने देखा परजाता के

फूलों से सजा हुआ रथ, हवा से बात करने वाले दो दुनिया के सबसे खूबसूरत सफेद घोड़े और एक हाथ में तलवार की मूठ पकड़े सपनों सा सलोना राजकुमार...

सोनू ने राजकुमार को पहले मूँछ लगायी फिर हटा दी। वह बिना मूँछों के ज्यादा राजकुमार लग रहा था।

“बोला बोला खुशीवीर बबा की...”

“जै...” एक साथ जैकार उठी और बारात चल पड़ी हजार हाथी रथ से आगे, हजार घोड़े रथ के पीछे। माथे मऊर, आंखों में सपने। सात दिन लम्बा सफर और उबड़खाबड़.. इंतजार।

दादी की आंखों से गीत बहने लगा

*हथिया त मरनी ओही हथिसार*

*घोड़वा मरने घुड़सार जी*

*बाबा त मरने पोखरा के भीटे*

*अम्मा मरनी गजओबर जी...*

“दादी, यह बिपद क्या होती है?” सोनू दादी के कलेजे से चिपटे हुए पूछता है।

दादी की उम्र ही बिपद से लड़ते और उसे खदेड़ते हुए (दीवाली की सुबह) गुजरी है। पर वह सोनू को क्या बताएं “भारी भरकम हाथी और तेज तर्रार घोड़े जहां के तहां पटापट मरने लगे... पिता ने पोखर किनारे अंतिम सांस ली और अम्मा ने कोठरी के भीतर।”

सोनू को लगा की बिपद सुरसा की तरह किसी राक्षसी का नाम है रथ चकनाचूर हो गया... खजाना लुट गया और राज्य मिट गया। एक पल पहले जो राजकुमार गौना लेने जा रहा था अब वह चीथड़ों में लिपटा हुआ जमीन पर पड़ा हुआ है।

“अरे! भाई यह आदमी कौन है?”

“इस गांव का तो नहीं लगता।”

“चलो चलो अभी मुझे निपटान जाना है...” हल्की सी हंसी और भीड़ अपने अपने काम पर चली गयी।

जब राजकुमार उठा वह दहशत में था। एक चरवाहा खैनी मलते हुए उसे घूर रहा था “खैनी लोगे?” राजकुमार को समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या बोले। वह चरवाहे को चुपचाप देखता रहा।

“घर जाओ घर... यह पौवा का नशा बीवी के बेलन से ही उतरता है।” उसने खैनी मुंह में दबायी और अपनी भैस को डंडा मारते हुए आगे बढ़गया।

“घर?” राजकुमार ने मन ही मन सोचा “यह घर किधर से जाते हैं?”

“बस अपनी नाक की दिशा में चलते चले जाओ।” चरवाहा भैस से बोला “रास्ता तक भूल गया है...!”

पिछले चुनाव में परधान ने सड़क किनारे एक सरकारी कल लगवाया था। राजकुमार ने वहां हाथ मुंह धोया और अशोक के पेड़ के नीचे बैठ गया। (कहते हैं अशोक ने यात्रियों की सुविधा के लिए सड़क के दोनों तरफ छायादार पेड़ लगवाए थे) पास ही चाय की एक गुमटी थी। चायवाला राजकुमार को एक कुल्हड़ चाय पकड़ा गया “कौन गांव के हो भाई?”

“गांव? मैं यहां का राजकुमार हूं।” राजकुमार ने गम्भीरता से कहा।

“अच्छा! तब एक कुल्हड़ चाय और ले लेना।” चायवाला उतनी ही गम्भीरता से बोला और अपनी गुमटी में वापस चला गया।

“कौन है?” एक आदमी ने चायवाले से पूछा।

“कोई नहीं!” चायवाले ने कहा।

“कोई नहीं!” राजकुमार सिंह उठा। अब वह राजकुमार से कोई नहीं हो गया था।

सड़क किनारे बैठे हुए वह बसों और लोगों का आना जाना देखता रहा। यह अजीब बात है पर इस थोड़े ही समय में उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे वह जन्मों से यहीं बैठा है किनारे! (बैठना एक खतरनाक शब्द है)

“अच्छा सुनो!” वह चायवाले से बोला “यह बंशी के राजा के यहां कौन सी बस जाती है?”

“बहिनी के लेई गयीनऽ बंशी के राजा...” हवा गा उठी।

“लड़ो मत!” दादी ने कहा “जब इसकी शादी हो जायेगी और तुम इसके ससुराल जाओगे तब नमक पानी को भी नहीं पूछेगी तुम्हें!”

“मैं जाऊंगा ही नहीं इसकी ससुराल!” सोनू ने गुस्से में कहा।

“आना न भैया... मैं तुम्हें गुड़ पानी दूंगी।”

बहन की शादी तो पहले ही बंशी के राजा से हो गयी थी।

“वहां कोई बस नहीं जाती!” चायवाले ने कहा “आपको एक्का लेना होगा।”

राजकुमार को पैदल जाना पड़ा। जीवन में पहली बार उसे यह बात पता चली की सुविधा के सभी साधन पैसे के गुलाम हैं। भूखा प्यासा, नंगे पांव वह चलता रहा। यहां तक कि उसके पैरों में छाले पड़ गये और देह की ‘तागद’ जवाब देने लगी। तीन दिन बाद किसी तरह वह अपनी बहन के राज्य में पहुंचा और एक कुएं की जगत पर निढाल हो गया। एक सैनिक वहां से गुजर रहा था। राजकुमार ने उसे रोका... “मेरा संदेश जरा अपनी रानी से कह दोगे...?”

“वह कुएं पर बैठा आदमी, रानी साहिबा...” सैनिक बोला “वह कहता है कि आपका भाई है।”

रानी छत पर कपड़े पसार रही थीं। उन्होंने वहीं से राजकुमार को देखा और मुंह बिचुका कर बोलीं “जब मेरा भाई आयेगा तो हाथी घोड़े पर चढ़ कर आयेगा... हीरे जवाहरात जड़ी पोशाक होगी उसकी और साथ में लाखों का नजराना होगा...”

रिश्ते तक पोशाक से पहचाने जाते हैं। (और आजकल मोबाइल से)

राजकुमार की आंखों में आंसू आ गये “मेरी बहन ने नमक पानी तक को नहीं पूछा!”

“क्यों नहीं पूछा दादी?”

“क्योंकि राजकुमार का बुरा वक्त चल रहा था।”

हर किसी के जीवन में यह वक्त कभी न कभी जरूर आता है यह बुरा वक्त। इस समय वही साथ होता है जिसने यह वक्त झेला हो।

सैनिक घर गया और अपने हिस्से की रोटी एक कपड़े में लपेट कर राजकुमार के पास आया

“भाई आओ रोटी खा लो।”

सैनिक ने कपड़ा राजकुमार के सामने बिछा दिया दो रूखी रोटी और एक गांठ प्याज...

“मुझे क्या भिखारी समझ रखा है!” राजकुमार गुस्से में उठा और राज्य से बाहर निकल गया।

हम जिससे प्यार चाहते हैं उससे मिलता नहीं और जो देता है उसकी इज्जत नहीं करते।

तू वाली दोपहर थी। जब बचपन को घर में सोना जरूरी होता है। सोनू रोज की तरह आज भी घर की कैद से निकल भागा था और गली में सतखप्पड़ खेल रहा था। गर्मी राजकुमार की देह से इस बुरी तरह लिपटी थी कि वह सांस तक नहीं ले पा रहा था और बुरा वक्त उसे चिढ़ाता हुआ उसके आगे आगे नाच रहा था।

“ऐ ! बुरे वक्त !” सोनू राजकुमार और उस वक्त के बीच में आ गया “जरा अदब से पेश आ, क्योंकि वक्त नहीं लगता वक्त बदलने में...”

बुरा वक्त सहम कर थोड़ा दूर चला गया। सोनू ने राजकुमार को ऊपर से नीचे तक देखा और खुशी से चिल्ला उठा “तुम घुटरू हो ना?”

“घुटरू? ...मैं राजकुमार हूँ !”

“हां... हां वही...” खुशी से झूमता हुआ, सोनू अंदर की ओर भागा “दादी दादी उठो जल्दी !” बाहर राजकुमार उलझन में पड़ गया “घुटरू? यह कौन है?”

“अरे! उठो भी देखो कौन आया है !”

“कौन आया है?” दादी तुरंत उठ कर बैठ गयीं। (मेहमान के नाम पर उनकी देह में फुर्ती आ जाती है) सोनू उन्हें लगभग खींचते हुए दरवाजे तक ले आया “यह देखो...”

“कौन है यह ?” दादी ने फटे चिथड़े पहने उस आदमी को ऊपर से नीचे तक देखा।

“आपने पहचाना नहीं! यह घुटरू है !”

“कौन घुटरू?”

“अरे! आपकी कहानी वाला घुटरू...” सोनू फुसफुसाया “राजकुमार...”

दादी हंस पड़ीं “जा बचवा! कहीं कहानी का आदमी इस तरह दरवाजे पर खड़ा मिलता है !” और फिर से सोने चली गयीं। भीतर से उनकी आवाज आयी “ऊपर कनस्तर में पिसान (आटा) है दे देना...”

बुरा वक्त जोर से हंसा।

सोनू राजकुमार को जाते हुए देखता रहा अंतिम मोड़ तक।

**राजकुमारी** के गौने में आये रिश्तेदार लौट चुके थे, बारातियों के स्वागत के लिए मोहल्ले वालों से लिए गये बर्तन और बिस्तर उन्हें लौटा दिये गये थे और अब तो राजा रानी तक ने उम्मीद छोड़ दी थी। पर राजकुमारी? उन्हें अब तक उम्मीद थी। उन्होंने सुना था कि बिछुड़े हुए लोगों के डाकिये बादल होते हैं। गर्मी बीत गयी और डाकिये खेतों, खलिहानों और छतों के ऊपर खत लेकर दौड़ने लगे। राजकुमारी आते जाते बादलों से राजकुमार का हाल पूछती “ऐ ! सुनो... ऐ ! काले बादल... अरे ! लाल बादल... ओ! बादल भैया...”

पर बादल चुप्पे जहाज की तरह ऊपर ही ऊपर निकल जाते। राजकुमारी को नहीं पता था कि बादलों से बात कैसे करते हैं ! वह उदास हो गयी। तब एक बूढ़े बादल ने अपनी सायकिल की घंटी बजायी “क्या बात है बेटी?”

“मेरे राजकुमार की कुछ खबर नहीं?” राजकुमारी उदास सी बोली।

बादल ने अपनी पोटली देखी। राजकुमार का कोई खत उसकी पोटली में नहीं था। फिर भी उसने राजकुमारी को साहस बंधाया “चिन्ता मत करो अभी तो सावन शुरू ही हुआ है, तुम्हारा राजकुमार जरूर आयेगा।”

“उन्होंने कोई संदेश भेजा है?”

बूढ़े बादल ने सर झुका लिया।

जब बादल तुम्हारे घर आयें जरूरी नहीं कि उनके पास संदेश भी हो।

गांव में ढोलक बज उठी। डीह बाबा (ग्राम देवता) के पूजा का दिन। सावन की पूर्णिमा। “बेटी, आंगन में धार (जल, अक्षत और पूजा की सामग्री) रख देना।” मां ने कहा।

राजकुमारी देवताओं में अपनी आस्था खो रही थी।

पल्लिहार बाबा (कांटा गांव के डीह) को साल में दो बार पूजा चढ़ती, बैशाख और सावन की पूर्णिमा को। (या पूर्णिमा के समीप पड़ने वाले अतवार मंगर को) उनका जीवित वंशज घर घर जाता और वहां धार चढ़ाता। यही रिवाज था...

राजकुमारी ने न तो धार रखा और न ही किसी को रखने दिया... कि दुख आदमी को विद्रोही बना देता है।

गांधी की तरह दुबला पतला, काला आदमी। घुटने तक धोती और नंगा बदन, गले में पीले कनेर की सिर्फ एक माला। राजकुमारी ने छत से देखा बाबा लम्बे लम्बे डग भरते चले आ रहे हैं राजमहल की ओर... उनके पीछे पीछे वैसे ही नंगधड़ंग उनके कुछ चले, ढोलक पीटते और पल्लिहार बबा की जैकार लगाते हुए। लोग जहां के तहां हाथ जोड़े खड़े हो जा रहे हैं।

आज हर दरवाजा जो आंगन तक जाता है खुला रहता है, राजमहल तक का।

बाबा आंगन में पहुंचते हैं और सन्न रह जाते हैं धार की जगह राजकुमारी खड़ी है “बाबा हमें चढ़ा दो पल्लिहार बबा को।”

बाबा सिर्फ गुस्सा करना जानते हैं। वे दर्द नहीं समझते। उनकी आंखें बल्ब की तरह जल उठती हैं। पर राजकुमारी भस्म नहीं होती तो वे तनतनाये हुए राजमहल से बाहर निकल जाते हैं।

आंसू मासूम बच्चों सरीखे राजकुमारी की आंखों से झांकते हैं।

गांव में राजमहल एकमात्र ऐसा घर था जहां धार नहीं दी गयी थी और पूरा गांव इससे आतंकित था “देखना राजमहल में जरूर कोई अनर्थ होगा।”

“अरे ! अनर्थ तो हो ही रहा है, फूल सी राजकुमारी भरे सावन में सूख कर नरकट हो गयी है...”

**रात** मां ने दीया जलाया तो राजकुमारी ने बुझा दिया “नहीं! अंधेरा अच्छा लगता है।”

मां ने बेटी को सीने से लगा लिया “मेरी बच्ची... तू उसे भूल क्यों नहीं जाती।”

राजकुमार बचपन का खयाल। किसी खयाल के साथ रहते रहते मोह हो जाता है और वह मोह पक कर कब मुहब्बत बन गया राजकुमारी जान ही न सकी।

“वह अब नहीं आयेगा मेरी बेटी।” मां ने समझाने की कोशिश की।

राजकुमारी रो पड़ी “वह आयेगा मां...”

“हां! वह आयेगा।” मां ने बेटी का मन रख लिया।

सपने जुड़ते हैं फिर टूटते हैं पर उम्मीद बनी रहती है। राजकुमारी सब कुछ खो चुकी थी और उसके पास एक उम्मीद थी...

सुबह की धूप मेहरायी हुई थी। रात बादल डाढ़ पर उतरे थे और बारिश कोपर (पके आम) की तरह डालों से टूट रही थी।

“दाना भुजाने चलना है क्या?” राजकुमारी की सहेली ने नीचे से आवाज दी।

मिट्टी की भरसाय और सूखे पत्तों की आग। लाई, चाउर, चना और लावा। भुजते दानों की खुशबू सीधे जीभ पर लगती है। टोले की लड़कियां मुंह का पानी संभाले बैठी हैं।

“यह आदमी कौन है?” राजकुमारी की सहेली ने भरसाय की बूढ़ी से पूछा।

राजकुमार यहां भरसाय में पत्ते झोंक रहा है। (हाय रे! बिपद)

“चुप्पा है!” भरसाय की मालकिन लावा भुजते हुए बोली “कुछ बोलता ही नहीं... मुझे आम के बाग में मिला था बेहोश, मैं आम के सूखे पत्ते बटोर रही थी और कलेजा धक् से हो गया लाश!

यह गांव में मारकाट फिर से शुरू हो गयी क्या? नाड़ी देखी तो सांस चल रही थी। तालाब से लाकर पानी पिलाया तो इसे होश आया। कितना पूछा कि कौन हो? किस गांव के हो? पर कुछ बोलता ही नहीं! पर है बहुत मेहनती। जो भी कहो कर देता है। कभी नानुकुर नहीं करता...”

“तो तुमने इसे नौकर रख लिया?” गांव की एक लड़की ने जो राजकुमार की सुंदरता पर मोहित हो रही थी पूछा।

“अरे ! मर रे... नौकर क्यों रखेंगे भला... वो तो एक बेटी है मेरी उसके भी भाग फूटे है.. कोई लड़का ही नहीं जुड़ता सोचती हूं इससे ब्याह कर दूं... उसे दूल्हा मिल जायेगा और मुझे काम में हाथ बटाने वाला... और इस अनाथ बेसहारे लड़के के सर पर भी छत हो जायेगी...”

“बात तो तुम्हारी एक लाख की है...” राजकुमारी की सहेली ने कहा।

“और दामाद सवा लाख का...” उसी लड़की ने हंसते हुए जोड़ा। गुमसुम सी बैठी राजकुमारी भी इस बात पर मुस्कुरा उठी “इतने खूबसूरत तो राजकुमार भी नहीं जुड़ते...” बूढ़ी शर्माती हुई हंसी हंसी “आप तो ठट्ठा करती हैं राजकुमारी जी !”

“राजकुमारी!” राजकुमार के हाथ रुक गये। उसने पलट कर राजकुमारी को देखा।

दो बिछुड़े नयन मिले और वक्त ठहर गया।

भरसाय की आग मीठी हो गयी और फूटते दाने उचक उचक कर यह मिलन देखने लगे। यह गांव में पली बड़ी कहानी में ही हो सकता है कि दो बिछुड़े हुए लोग भरसाय में मिलें।

आंखें राजकुमारी की पता थीं। बचपन की वह कुमकुम लगी, बड़ी बड़ी उनीदीं आंखें राजकुमार के मन में अब तक बसी हैं, जब उनका ब्याह हुआ था। तब उन आंखों में हैरानी थी अब दर्द है “मेरी राजकुमारी!” राजकुमार ने मन ही मन पुकारा। और बदकिस्मती उसका मजाक उड़ाने लगी “नहीं ! नहीं ! राजकुमारी को कभी भी मेरी बातों का विश्वास नहीं होगा! किसी को नहीं होगा! मेरी बहन को नहीं हुआ !!!!!” और शब्द राजकुमार के मन में ही मर गये।

“ये दाने फूट क्यों नहीं रहे?” बूढ़ी बुदबुदायी। उसने राजकुमार के रुके हुए हाथ देखे। उसकी तयोरियां चढ़ गयीं “तुम पत्ते झोंकते रहो जी...”

राजकुमार के आंसू भरसाय की आग में सूख गये। राजकुमारी अपना दर्द भूल गयी।

“किसी भले घर का लगता है !” सहेली राजकुमारी के कान में फुसफुसायी।

“क्यों इसके साथ भागने का इरादा है क्या?” लड़कियां हंस पड़ीं।

“अरे! मर रे तुम लड़कियों को इतनी हंसी क्यों आती है...”

“तुम भी तो कभी लड़की रही होओगी दादी...”

“हमारे जमाने में शरम लिहाज नाम की एक चीज हुआ करती थी!” बूढ़ी राजकुमारी को उनका दाना देते हुए बोली। राजकुमारी ने अपना दाना लिया और सहेली के साथ बाहर निकल आयीं। पर न जाने क्यों बस एक बार और उस आदमी को देख लेने का उनका मन हुआ, राजकुमारी खुद हैरान थी।

“सुनो ! तुम अपने इस दामाद को राजमहल में नौकर रखना चाहोगी ?” राजकुमारी ने दरवाजे से लौट कर पूछा।

बूढ़ी की आंखें खुशी से भर आयीं “अपने परजा पुरिया का ख्याल राजा नहीं रखेंगे तो और कौन रखेगा!”

“तो ठीक है कल सुबह सुबह राजमहल भेज देना...”

“राजकुमारी का भी लार टपक गया तुम्हारे इस दामाद पर !” लड़कियों ने हंसी की।



“अरे ! मर रे ! चुप भी करो मुई ! नरक में जलोगी सब की सब!”

“मैं राजकुमारी होती तो तुम्हें रात में बुलाती।” एक शरारती लड़की ने राजकुमार को पीछे से छुआ। बूढ़ी ने उसका हाथ झटक दिया “अरे ! मर रे...”

और फूटते दानों के बीच लड़कियों की हंसी फूट पड़ी।

**रात** रसोई रातरानी सी गमक रही थी। भरसाय की बूढ़ी को लगा कि उसकी बेटी ने पकवान बना रखे हैं। वह खुशी खुशी रसोई में घुसी थाली में वही दो सूखी रोटी। (ये गरीब लोग रोटी सूखा कर क्यों खाते हैं ? सोनू के मन में मासूस सा सवाल उठा) उसका माथा ठनक गया “डिबरी में क्या इत्तर जल रहा है?” बूढ़ी चिल्लाने को हुई पर राजकुमार को देख कर चुप रह गयी। राजकुमार एक तरफ बैठा चुपचाप रोटी खा रहा था। बूढ़ी इंतजार करती रही। जब राजकुमार हाथ धोने बाहर चला गया; वह अपनी बेटी पर भड़क उठी “इतना इत्तर लगायेगी तो एक दिन हुड़ा उठा ले जायेगा... और घर गृहस्थी सीख... इस इत्तर फुलेल से मरद चार दिन में ऊब जाते हैं...”

**यह** राजकुमार के मुहब्बत की सुबह थी। सूरज तिकोन बनाते दो पहाड़ों के बीच से निकला और एक दोस्त की तरह राजकुमार को जगाने चला गया। हवा ने राजकुमारी का संदेश दुहराया और जब राजकुमार नहाने गया नदी मुस्कुरा उठी कि उसे भी पता था कि राजकुमार किससे मिलने जा रहा है! मैं नदी के नये पुल पर खड़ा पहाड़ों के पार देख रहा था। किसी दिन वहीं से हमारे पूर्वज आये थे। यहीं कहीं बीच में उन्होंने डेरा डाला था। एक गांव बसाया था हमारे बहादूर पूर्वज ! उस गांव का नाम बहदुरा था। पुल से पहाड़ तक की यह इतनी जगह बिल्कुल अलग लगती है। खासकर सुबह। वक्त इसकी खूबसूरती देखने को थम सा जाता है। राजमहल जाता राजकुमार भी पुल पर ठहर गया और नदी के ऊपर उड़ते एक नीलकंठ को देखने लगा।

“तुम्हें पता है नीलकंठ कभी जोड़े में नहीं उड़ते!” मैंने कहा।

“मतलब?”

“जब पत्नी बाहर दाना चुगने जाती है तब पति घोंसले में या पास के ही किसी पेड़ पर बैठ कर बच्चों की देखभाल करता है।”

“पर यह नीलकंठ नदी के ऊपर क्यों मंडरा रहा है?”

“इसे पुराना दिन याद आ रहा होगा जब यह नदी में घंटों मजा मारते हुए नहाता होगा।”

राजकुमार मुस्कुरा उठा “नीलकंठ नदी में नहीं नहाते !”

“मैं इसके पिछले जन्म की बात कर रहा हूँ, जब यह हमारी तुम्हारी तरह आदमी था ”

“तुम पिछला जन्म मानते हो ?”

“जब भी किसी ऐसी जगह को देखता हूँ जहां पैर खुद ब खुद थम जाते हैं तो लगता है कि जरूर इस जगह से कोई पुराना नाता है।” मैंने राजकुमार को देखा “तुम्हारा भी इस जगह से कोई नाता लगता है?”

हरे पहाड़ पर झुका हुआ नीला आसमान और उनके बीच डाल से लटका हुआ सूरज पके आम सा रसीला, सब कुछ को ढंकती और अनावृत्त करती सुबह की धुंध, नदी पे तैरती तितलियां और लय में उड़ते बगुले, गांव से उलट एक दूसरी दुनिया।

“यह इतनी जगह बिल्कुल अलग लगती है!” राजकुमार ने भी वही बात कही जो अभी कुछ देर पहले मैंने महसूस की थी।

“तुम्हें पता है यहां एक गांव था बहदुरा... ये जो हजारों की संख्या में चिड़िया चुनमुन यहां उड़ रहे हैं, ये हमारे पूर्वज हैं।”

“फिर उस गांव का क्या हुआ?”

“देखो कितनी बेचैनी है तुम्हें उस गांव के बारे में जानने की... मुझे लगता है कि वह तुम्हारा भी गांव था... इसलिए हे! मेरे पूर्वज मैं तुम्हें नमन करता हूं।”

राजकुमार मुस्कुरा उठा। अचानक से उसे याद आया कि उसे राजमहल जाना है “ओह! देखो मैं बिल्कुल भूल गया था मुझे राजमहल पहुंचना है; इस गांव की कहानी मैं तुमसे फिर कभी सुनूंगा।”

“ठीक है घुटरू... जब भी चाहो। मैं हर सुबह यहां आता हूं।”

“यह तुम मुझे बचपन से घुटरू घुटरू क्या कहते हो...?”

“राजमहल जाओ...। तुम्हें जल्दी ही पता चल जायेगा।” मैं मुस्कुरा दिया।

**राजमहल** बाहर से राजमहल जैसा था और भीतर से गांव के किसी पक्के मकान सा। सैनिकों ने राजकुमार को दरवाजे पर रोक लिया “कहां?”

यही वह दरवाजा था जहां बचपन में राजकुमार पर फूल बरसाए गये थे और गुलाबजल छिड़क कर उसका स्वागत किया गया था। पर तब वह राजकुमार था। आज उसे राजकुमार और भाड़ झोंकने वाले में अंतर समझ में आ रहा है “मुझे राजकुमारी जी ने बुलाया है।”

“आज राजकुमारी जी किसी से नहीं मिलेंगी, उनकी तबियत ठीक नहीं।”

राजकुमार कुछ पल खड़ा सोचता रहा “तो मैं जाऊं?”

**जाते** हुए राजकुमार को राजकुमारी ने रोशनदान से देखा। उनके पैर मेज से झूलने वाले थे और गले में साड़ी का फंदा था। पर राजकुमार को देख कर उन्होंने आत्महत्या कुछ समय के लिए टाल दी (इस आदमी में कोई बात है जो इसे देख कर मैं अपना दर्द भूल जाती हूँ)। मुनीम को भेज कर उन्होंने राजकुमार को ऊपर बुलाया “इसे कुछ काम सौंप दो।”

“पर हमें नौकर की कोई जरूरत नहीं!” मुनीम इस बात से खफा था कि इस उजड़ू से आदमी ने राजकुमारी को सलाम नहीं किया।

“राजमहल में पीछे की ओर जो खंडी (जमीन का छोटा बेकार टुकड़ा) है मुझे वहां फूल उगाने हैं... अब जाओ।”

“जी।” मुनीम ने झुक कर राजकुमारी को सलाम किया।

“कहां से आये हो जी? एकदम से बेसहूर ही हो क्या! न तो आते हुए राजकुमारी जी को सलाम किया और न ही जाते हुए... खुद को समझते क्या हो? एक दिन नहीं टिक पाओगे राजमहल में! कहे देता हूँ... बाद में न कहना मुनीम ने आगाह नहीं किया...”

जब राजकुमार के पास राज्य था कोई भी उसे इस तरह डांट नहीं सकता था।

“कैसा रहा तुम्हारा आज का दिन?” शाम को घर लौटते राजकुमार से मैंने पूछा। वह थका हारा था और ज्यादा बात करने लायक स्थिति में नहीं था। पर पुल पर नदी से आ रही हवा उसे राहत दे रही थी। इसलिए वह कुछ देर के लिए मेरे पास रुक गया। धीरे धीरे अंधेरा होने लगा। तब जाने से पहले उसने एक बात कही, जो आज के दिन ने उसे सिखाया था “एक नौकर को भी उतना ही प्यार मिलना चाहिए जितना कि एक राजकुमार को...”

“जब तुम फिर से राजा बन जाना यह बात याद रखना।” मैंने घुटरू से कहा और उसकी बात डायरी में नोट कर ली “एक आम आदमी को भी वैसे ही प्यार किया जाना चाहिए जैसे कि एक खास आदमी को।”

राजमहल में काम करते हुए राजकुमार को एक अरसा हो गया। वह राजमहल में अकेला नौकर नहीं था पर राजकुमारी के आसपास उसे बहुत सा अकेला वक्त मिल जाता। एक दिन दोपहर में राजकुमारी ने उसे राजमहल की चुहानी में बुलाया, जहां राजा बैठ कर खाते थे। राजकुमार दरवाजे पर खड़ा हिचकिचा रहा था।

“आ जाओ आ जाओ... मैं राजा और नौकर में अंतर नहीं मानती!”

उस दिन राजकुमार ने सोने की थाली में खाना खाया और खाने के बाद उसे राजकुमारी ने एक कटोरे में मट्ठा भी दिया। गोरस देखे राजकुमार को एक जमाना हो गया था। उसने मट्ठे को देखा और फिर राजकुमारी को। राजकुमारी मुस्कुरा दी “पीयो, इससे तागद मिलती है।” राजकुमार ने कटोरा मुंह से लगा लिया और घट् घट् मट्ठा पीने लगा।

“तुम्हारा नाम क्या है?” राजकुमारी ने पहली बार राजकुमार का नाम पूछा।

(राजकुमार अपना नाम कैसे बताये कहानी में हर कोई उसे राजकुमार ही कहता है। सोनू तक उसका नाम नहीं जानता!)

वह बिना कुछ बोले मट्ठा पीता रहा। मट्ठा पीते हुए उसके गले से जो घट् घट् की आवाज आ रही थी; वह राजकुमारी को बहुत सुहानी लगी।

राजकुमार का कोई नाम था ही नहीं।

“घुटरू... तुम्हारा नाम जो भी हो आज से मैं तुम्हें घुटरू ही कहूंगी।”

**तो** इसलिए तुम मुझे घुटरू कहते थे। मेरे बारे में और क्या जानते हो तुम?

“सब कुछ।” मैं एक कहानीकार की तरह मुस्कराया।

“मेरा अंत क्या होगा? क्या मेरे दुर्भाग्य से राजकुमारी के भाग का मेल होगा?” घुटरू को हर आदमी की तरह अपनी कहानी जान लेने की जल्दी थी।

“क्या तुमने राजकुमारी को अपनी कहानी सुनायी?” मैंने पूछा।

“मेरी कहानी?”

“**ए** घुटरू ! ए घुटरू ! कहनी कहो ना...” घुटरू के खा चुकने के बाद राजकुमारी एक छोटे बच्चे की तरह बोलीं मासूम, मीठी और दर्द पगी आवाज।

“क्या कहनी कहें राजकुमारी जी?”

“कुछ भी कहो... कोई अपनी ही बात सुनाओ...”

“क्या करियेगा... मेरी बात सुन कर...”

“थोड़ा समय ही कटेगा...”

घुटरू ने एक पल को सोचा फिर अंगोछा सर पर बांध लिया और कहने के लिए राजकुमारी की ओर देखने लगा “अच्छा सुनिए... यह एक ऐसे राजकुमार की कहानी है जो किस्मत से बदकिस्मत था...” और घुटरू ने अपनी कहानी को गीत में ढाल दिया।

और राजकुमारी के आंसू थे कि थम ही नहीं रहे थे।

अचानक से घुटरू चुप हो गया।

“क्या हुआ... आगे कहो ना !”

“आप इस तरह रोइयेगा तो हम नहीं कहेंगे!”

“नहीं ! नहीं ! यह रोना बहुत सुकून दे रहा है घुटरू !” और राजकुमारी के आंसू मुस्करा उठे। उस रोज पुल पर आकर घुटरू खूब रोया “वह मेरी पत्नी है और राजकुमार से प्रेम करती है... मैं उसका राजकुमार हूँ और मैं भी उससे प्रेम करता हूँ... पर वह मुझे पहचान नहीं पा रही और मैं उससे कह नहीं पा रहा!! मेरे पूर्वजो! मुझे राह दिखाओ...”

रोने से दुख ठहर जाता है और मन शांत हो जाता है। सुबह राजकुमार के मन में वही शांति थी। मैं जानता हूँ इस शांति का मतलब। इसका मतलब यह नहीं है कि दुख खतम हो गया या कम हो गया। बल्कि दुख भावों के सबसे गहरे तल में जाकर बैठ जाता है और जिन्दगी उसके ऊपर तैरती रहती है।

“तुम यहां हर सुबह क्यों आते हो?” घुटरू ने पूछा।

“उगता हुआ सूरज देखने।” मैंने कहा।

“झूठ... मैं मानता हूँ कि सुबह का सूरज सुंदर लगता है पर उसे भी हर रोज नहीं देखा जा सकता.. सच सच बताओ क्या तुम किसी से प्रेम करते हो और यहां आकर उसका इंतजार करते हो?”

“समय क्या हुआ?” मैंने पूछा।

“सुबह है... बात मत टालो!” (यह भी कोई पूछने की बात है!)

“ओह ! हां , अभी तो तुम सिर्फ सुबह, दोपहर और रात ही जानते हो पर तुम देखना एक समय आयेगा जब हर घंटे का हिसाब रखा जायेगा, हर मिनट का नाम होगा।” मैंने अपनी घड़ी निकाली “बस दो मिनट बाद फिर वह यहां से गुजरेगी...”

“कौन आने वाला है?” घुटरू सड़क के दोनों ओर झांक आया “यहां तो दूर दूर तक कोई नजर नहीं आ रहा...!”

...और तभी हवाओं में परजाता खिलने लगा...मछलियां उसे देखने नदी से बाहर निकल आयीं और तितलियां बस उसे एक बार छू लेने को पुल पर मंडराने लगीं... और पक्षियों के रूप में पुरखे आशीर्वाद देने रेलिंग पर आ बैठे। घुटरू परेशान था कि यह सब क्या हो रहा है!

मैंने सूरज, पहाड़ों और पुरखों से मुंह मोड़ लिया और उस तरफ देखने लगा जिधर से वह आने वाली थी... हवा ने उसकी जुल्फें बिखरा दीं और सुबह का सूरज उसे केसरिया बना रहा था। हाथ बढ़ा कर मैंने वक्त की रफ्तार कम कर दी। पर उसकी स्कूटी की रफ्तार कम नहीं हुई।

और जब वह मेरे पास से गुजरी मैं राजा रत्नसेन की तरह गश खाकर गिर पड़ा... (जब रत्नसेन ने पद्मावती को पहली बार शिव मंदिर में देखा वह बेहोश हो गये थे)

“यह क्या था घोड़े से भी तेज चलने वाला वाहन...?” घुटरू दंग था।

“पहले इसे होश में तो लाओ।” पुरखों ने कहा। घुटरू को राजमहल जाना था। पर वह तब तक मेरे पास बैठा रहा जब तक कि मुझे होश नहीं आ गया। यहां तक कि उसे खोजते हुए राजकुमारी के सैनिक नदी तक आ गये “तुम यहां क्या कर रहे हो जी? यहां राजकुमारी जी परेशान हो रही हैं कि आज घुटरू क्यों नहीं आया!”

“मैं तुमसे शाम को मिलता हूँ।” घुटरू ने मुझसे कहा।

“शाम को नहीं अभी चलो... राजकुमारी जी का आदेश है...”

“मैं आपसे नहीं कह रहा सैनिक जी...”

“फिर किससे कह रहे हो?”

मैं मुस्कुराया “ये मुझे नहीं देख सकते...”

“क्यों?” घुटरू ने आश्चर्य से पूछा।

“क्या मतलब क्यों?” सैनिक गुस्से से बोला।

“कुछ नहीं... चलो...” घुटरू उनके साथ चला गया।

राजकुमारी हर रोज दोपहर होने का इंतजार करती। एक यही समय था जब खुशी उनके होठों पर आती और ठहरा हुआ दर्द पानी बन कर बह जाता। जिन्दगी में कभी कभी ऐसा शख्स मिल जाता है जिसके सामने सब अहम ढह जाते हैं और मन के सारे ताले खुल जाते हैं। राजकुमारी को एक ऐसा ही दोस्त मिल गया था... घुटरू के सामने वह बिलकुल बच्ची बन जाती “पता है जब मैं छोटी थी तो सोचती थी कि सांस में केवल मैं ही पढ़ सकती हूँ!”

“सांस में?” घुटरू को राजकुमारी की बात समझ नहीं आयी।

“मतलब मन में।” राजकुमारी मन ही मन मुस्करायी “तब मुझे मन नहीं पता था... पिताजी का कोई खत आता तो उसे जोर जोर से पढ़ कर सुनाया जाता, बाअदब...” वह हंसी “तुम जानते ही हो महल के कायदे... पर मैं उनके खत चुपचाप पढ़ लिया करती, मन में... इसीलिए मुझे लगने लगा था कि मन में केवल मैं ही पढ़ सकती हूँ... बाकी लोग अगर पढ़ेंगे तो सबको सुनायी देगा।” वह हंसी। खाते खाते घुटरू भी मुस्कुरा उठा।

“इसलिए मैंने कभी उन्हें खत नहीं भेजा!” राजकुमारी उदास हो गयी “कि मेरा खत राजमहल में सबके सामने जोर जोर से पढ़ा जायेगा या अगर वह भी पढ़ेंगे तो सबको सुनायी देगा!”

“क्या होता अगर सब लोग सुन भी लेते...!”

“तुम नहीं समझोगे घुटरू होता कुछ नहीं बस लगता है कि जो आपने उनसे कहा है वह उन तक ही रहे कोई और ना जाने...” अचानक से राजकुमारी रो पड़ी “आज उनकी बहुत याद आ रही है... एक बार और अपना गीत गाओ ना...”

घुटरू का मन हुआ कि वह अपना सच कह दे पर फिर, वह अपने सच को मट्टे के साथ पी गया।

**पहाड़ों** पर बारिश नहीं होती क्योंकि बादल वहीं से दो भागों में बंट जाते हैं आधे गांव की ओर चले जाते हैं और शेष आधे जंगल की तरफ। तभी तो पहाड़ पत्थर से सख्त हो जाते हैं। आज हम उस तिकोने पहाड़ पर आ गये थे जहां से हर रोज सूरज निकलता है। यहां से गांव और भी खूबसूरत लग रहा था।

“वह पुल कहां गया?” घुटरू ने आश्चर्य से पूछा।

“कौन सा पुल?”

“अरे! जहां हम दोनों रोज मिलते हैं।”

“इस नदी पर कोई पुल नहीं... जहां हम मिलते हैं वह समय का जोड़ है। वहां दो अलग अलग समय आकर मिलते हैं मेरा और तुम्हारा समय!”

घुटरू ने मुझे आश्चर्य से देखा “तो तुम मेरे समय में आते हो या मैं तुम्हारे समय में?”

“तुम कोई मुझसे अलग थोड़े ही हो घुटरू...” मैं मुस्कराया।

घुटरू तैश में आ गया “क्या मतलब मैं तुमसे अलग नहीं हूँ... तुम एक लेखक हो और मैं राजकुमार... बिलकुल तुमसे अलग हूँ मैं।”

“तुम राजकुमार मेरी कहानी में हो...” मैंने समझाने की कोशिश की।

“तुम्हारा मतलब है कि तुम्हारी कहानी से बाहर मेरा अस्तित्व ही नहीं है?”

“छोड़ो जाने दो इस बात को...। इस बहस का कोई अंत नहीं।”

“नहीं ! नहीं ! तुम बताओ मुझे...मैं कोई कहानी नहीं हो सकता... ! मैं एक जीता जागता इंसान हूँ... मैं वह सब कुछ महसूस कर सकता हूँ जो एक इंसान करता है... यह देखो मैं सांस ले रहा हूँ... भला कोई कहानी सांस लेती है?!!!”

“सच बात तुम सिर्फ एक कहानी नहीं हो... पर इंसान ही तो कहानी बनते हैं।” मैं घुटरू को और अधिक परेशान नहीं करना चाहता था। उसने राहत की सांस ली “ये कीट!” और चिल्ला उठा। पहाड़ों पर, बरसात के मौसम में सबसे ज्यादा परेशान यही करते हैं। धानी पत्तों के रंग से, रंग बदलने वाले, छोटे छोटे कीट “तुमने कहा था कि यहां बसने वाले ये चिड़िया चुनमुन सब तुम्हारे पूर्वज हैं... क्या ये कीट भी तुम्हारे पूर्वज हैं?”

मुझे हंसी आ गयी “ये तुम्हारे पूर्वज लगते हैं। तुमने गया जाकर पिण्डदान नहीं किया होगा इसी से तुम्हें लग रहे हैं!”

“फिर उस गांव का क्या हुआ?” अचानक से उसे बहदुरा गांव की बात याद हो आयी।

**यह** कहानी मुझे मेरे दादा ने सुनायी थी और उन्हें उनके दादा ने हमारे पूर्वज उत्तर से आये थे, इससे भी बड़े बड़े पहाड़ों को पार कर, बर्फ के जंगलों से गुजरते हुए वे इस नदी तक पहुंचे थे।

“समतल जमीन!” हमारे पूर्वज खुशी से चिल्लाये। पूर्वजों के मुखिया घुटनों के बल झुक गये और उन्होंने इस जमीन को चूमा “मां...!”

यह भूमि, नदी किनारे की यह इतनी जमीन उनकी मां हो गयी। मां के आंचल में हमारे पूर्वज पलने लगे। नदी उन्हें नीर देती और पेड़ छाया। आखेट उनका मनोरंजन भी था और भोजन भी। नदी किनारे फसलें उगतीं और पहाड़ पर पशुओं को चराया जाता। देखते ही देखते यहां एक गांव बस गया। पर उस गांव की हजारों मुशिकलें थीं हुड़ार उनके बच्चों को उठा ले जाते, लकड़बग्घे पशुओं को और बाढ़? उससे बड़ी कोई दुश्मन नहीं! वह बस्तियां उजाड़ देती और फसलों को खा जाती, निरीह पशुओं को खूंखार जंगल में बहा ले जाती। हमारे पूर्वज परेशान थे। वे खुशीबीर बबा से मिलने गये। आज जहां कांटा गांव बसा है तब वहां जंगल था और वे यहीं रहते थे। उन्होंने सलाह दी “नदी छोड़ो और यहां बस जाओ!”

“इस कांट झंखाड़ में?” हमारे पूर्वजों के मुखिया ने सवाल किया।

“रे! मुखिया!” खुशीबीर बबा बोले (सबके लिए उनका यही संबोधन था रे!) “यहां तेरा गांव बहुत उन्नति करेगा और बहुत नाम कमायेगा...”

और हमारे पूर्वज वहीं बस गये। कांट झंखाड़ की वजह से उस गांव का नाम पड़ा कांटा मेरे गांव का नाम।

“तो तुम लोग प्रवासी हो ! सुदूर उत्तर से आये हुए लोग!” घुटरू हंसा “ये कीट!” वह टखने खुजाते हुए बोला “चलो यहां से चलते हैं...” और उठ खड़ा हुआ “तुम्हारे पूर्वजों ने बाढ़ की वजह से नहीं बल्कि इन कीटों की वजह से यह जगह छोड़ी होगी।”

मैं मुस्कराया। जंगल से गुजरते हुए हम बिलकुल चुप रहे। बीच बीच में मुझे लगता रहा कि घुटरू मुझसे कुछ कहना चाहता है पर! अंत में जब वह घर (भरसाय) जाने के लिए मुड़ा, हिचकते हुए बोला “वह बूढ़ी, वह अपनी बेटी की शादी मुझसे करना चाहती है... और वह पागल लड़की वह भी मुझसे प्यार करने लगी है शायद... पर मैं कभी भी उससे प्यार नहीं कर पाऊंगा...”

“हां क्योंकि तुम राजकुमारी से प्रेम करते हो...” मैं बीच में ही बोल पड़ा।

“नहीं !” वह झपट कर बोला “मुझे पूरी बात बोलने दो, रोको मत... क्योंकि... क्योंकि

मैं एक राजकुमार हूँ और मैं किसी...”

“श! चुप चुप... एक शब्द नहीं!” मैंने झट से उसका मुँह बंद कर दिया “तुम मेरी कहानी हो घुटरू और मैं नहीं चाहता की मेरी कहानी में कोई ऐसी बात हो...”

“मैं राजकुमार हूँ और तुम्हारी कहानी से मेरा कोई लेना देना नहीं है...” वह झल्ला कर बोला “और इसलिए मैं जो चाहूँ कहने के लिए स्वतंत्र हूँ।”

“एक मिनट, मुझे चले जाने दो... फिर जो चाहे कहो... कोई तुम्हें सुनने वाला नहीं होगा... याद रखना घुटरू तुम्हें सिर्फ लोग मेरी वजह से सुन पाते हैं...” और मैं उसे अकेला जंगल में छोड़ कर चला आया। अकेले में वह पेड़ों, पहाड़ों और जंगल से ना जाने क्या क्या कहता रहा और कोई भी उसे सुन नहीं रहा था।

सुबह घुटरू बहुत परेशान था। वह मुझे खोजता हुआ पुल पर आया पर अब पुल वहाँ नहीं था। वह बड़े बेमन से राजमहल गया। (कि अगर वह सिर्फ एक कहानी है तो क्या कहानी का मन होता है?)

दोपहर चुहानी में राजकुमारी रोज की तरह उसका इंतजार कर रही थी। पर घुटरू को इसमें कोई खास बात नहीं लगी। सोने की थाली में खाना उसे बिलकुल बेमतलब लग रहा था। और मट्ठा? यह भी कोई पीने की चीज है! राजकुमारी खुद तो दूध दही खाती होगी और मुझे पकड़ा देती है यह मट्ठा! उसने सिर्फ एक घूंट पिया और मट्ठे का कटोरा दूर खिसका दिया। राजकुमारी को लगा कि आज घुटरू ने खाना कुछ ज्यादा खा लिया है। उन्होंने मुस्करा कर आदेश दिया “पी जाओ, इससे तागद मिलती है।”

घुटरू चुपचाप राजकुमारी को देखता रहा। उसकी आंखों में कुछ शब्द जल रहे थे।

“पी जाओ, कहा ना मैंने...” राजकुमारी ने सख्ती में प्रेम मिला कर आदेश दिया।

“तुम भी पीती हो, यह मट्ठा?” घुटरू के शब्द कठोर थे।

“मैं कोई तुम्हारी तरह दिन भर खंडी गोड़ा में थोड़ी ही खटती हूँ!” (गोड़ा शब्द शायद गोड़ने से बना है, सोनू को इसका ठीक ठीक मतलब नहीं पता)। राजकुमारी मुस्करायी।

“या यह सिर्फ नौकरों के लिए होता है!”

ढम... ढम... ढम... घुटरू को अपनी धड़कनों में नगाड़े बजते सुनायी दिये। ओह! यह क्या कह गया वह!!! काश कि धनुष से निकले ये कठोर शब्द वह वापस ले पाता!!! राजकुमारी लहलुहान हो गयी। शब्द सीधे उनके कलेजे पर लगे और वक्त उनकी आंखों में ठहर गया। उस घायल वक्त में उन्होंने घुटरू को देखा। घुटरू ने सर झुका लिया। राजकुमारी ने कटोरा उठाया और घुटरू का जूठा किया हुआ मट्ठा गटागट पी गयी।

“राजकुमारी जी...” घुटरू ने रोकने की कोशिश की।

राजकुमारी की एक आंख में प्रेम था और दूसरे में ठेस। होठों पर मट्ठे का सफेद फेन। वह उठी और चुहानी से बाहर चली गयी।

घुटरू शर्मिन्दा था। जिसने उसे सबसे ज्यादा प्रेम दिया आज उसी को उसने ठेस पहुंचायी! यह राजकुमारी का प्रेम ही था कि वह इतना बेपरवाह हो गया था। वरना क्या कोई नौकर एक राजकुमारी से इस तरह बात कर सकता है? वह समझ गया था कि राजमहल में उसका आना जाना बंद। राजकुमारी को अब वह एक झलक देख भी नहीं पायेगा! वह भागता भागता मेरे घर आया। वह बिलकुल बदहवास था और रुक रुक कर ऐसे सांस ले रहा था जैसे ये उसकी अंतिम चंद सांस हों... मैंने उसे ढांडस बंधाया। पर वह घर नहीं गया। रात मेरी ही खाट के पास बैठा रोता रहा। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ? मैं कर भी क्या सकता था! आखिर मैं कुछ कमजोर शब्दों

का चरवाहा भर हूँ ! मैंने अपने हाथ जोड़े “इन्हें मिला दो खुशीबीर बवा... सभी बिछुड़े हुए लोगों को मिला दो कि अवधूत हो जब भी कहीं मुहब्बत कामयाब होगी तुमको गांजा चढ़ाऊंगा...”

**सावन** की बरसात भरी रात। राजकुमारी को घुटरू की याद आ रही थी। आंखों के महल में आंसुओं का कब्जा था और नींद ताखे पर बैठी ऊंध रही थी। ऊपर से गरजते बादल रह रह कर उसे डराते। वह घुटरू का गीत गुनगुनाने लगी “बहिनी के लेई गयीने बंशी के राजा... भइया मांगत बाइऽऽ भीख हो...” मां दरवाजे पर खड़ी राजकुमारी का गीत सुनती रही। बेटी का दर्द उन्हें रुलाता रहा “अब सो जा बेटी...” वह भरे गले से बोलीं।

“मां...” राजकुमारी ने अपने आंसू पोछे “तुमने घुटरू का गीत सुना है कभी...?”

“ऊहूँ।...” मां ने अंधेरे में सर हिलाया।

“मुझे उसके बोल समझ नहीं आते... पर उसका दर्द सीधे हृदय में उतर जाता है...” राजकुमारी बोली। मां ने कुछ नहीं कहा बस बेटी का हाथ अपने हाथों में थाम लिया। मां का साथ राजकुमारी को ताकत दे रहा था “अच्छा मां, क्या हो अगर मैं घुटरू से शादी कर लूँ?” दीवारों ने तुरंत अपने कान बंद कर लिये और हवाओं ने वादा किया कि यह बात कमरे के बाहर नहीं जायेगी। मां ने राजकुमारी के होठों पर ताला लगा दिया “यह बात दुबारा मत कहना मेरी बेटी!”

सुबह सैनिक घुटरू को गांव भर खोजते रहे। जब वह कहीं नहीं मिला तो नगाड़े बज उठे “सुनो... सुनो... सुनो...”

यह फरमान घुटरू ने भी सुना और दंग रह गया कि मट्ठा न पीना क्या इतना बड़ा गुनाह है? वह जैसे ही मेरे घर से बाहर निकला, सैनिकों ने उसे कैद कर लिया। हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ियां डाल कर उसे राजमहल लाया गया। राजा ने आंखों में अंगारे भर कर उसे घूरा “मेरी चुहानी में खाना खाते खाते अब तुम राजा बनने के सपने देखने लगे थे, नहीं!”

घुटरू को बात ठीक से समझ नहीं आयी। पर वह बिलकुल निडर राजा की आंखों में घूरता रहा।

“ले जाओ इसे...” राजा ने सैनिकों को आदेश दिया “और मार कर उसी खंडी में गाड़ देना जहां यह फूल उगाता था...”

“पिताजी...!” राजकुमारी दौड़ती हुई आयी “इसमें इसका क्या कसूर... जो भी सजा देना है मुझे दीजिये...”

मां ने राजकुमारी को पकड़ लिया। राजकुमारी मां की बांहों में मछली की तरह तड़पी “मां इसके गीत मुझे जीने की ताकत देते हैं!”

मां जानती थी की बात गीतों से बहुत आगे बढ़ चुकी है।

सैनिकों के साथ जाते हुए घुटरू ने एक पल ठहर कर राजकुमारी को देखा। (सिर्फ मैं जा रहा हूँ राजकुमारी जी, मेरे गीत हमेशा आप के साथ रहेंगे)

“नहीं!” राजकुमारी ने राजा से मनुहार की। राजा पहाड़ से अटल खड़े रहे। राजकुमारी रोती रही। पर उसके आंसू राजा तक नहीं पहुंच रहे थे। (पहाड़ों पर बारिश नहीं होती)

“अच्छा ठीक है।” राजकुमारी ने अपने आंसू पोछे “बस एक बार वह गीत मुझे सुन लेने दो... एक अंतिम बार...”

सैनिक घुटरू को लेकर दरवाजे तक पहुंच गये।

“पिताजी!” राजकुमारी राजा के सामने घुटनों के बल झुक गयी “यह मेरी आखिरी इच्छा है...”

“रुको...!” राजा ने सैनिकों को आदेश दिया “छोड़ दो इसे।”



सैनिकों ने घुट्रू की बेड़ियां खोल दीं।

“सुनाओ!” राजा ने आदेश दिया। घुट्रू ने राजकुमारी को देखा। राजकुमारी के आंसुओं ने स्वीकृति दी।

“थोड़ा मट्ठा मिलेगा?”

“मट्ठा?” रानी ने आश्चर्य से पूछा।

“ओ! मां तुम नहीं जानती, मट्ठा पीने से इसका गला साफ होता है।” राजकुमारी चुहानी की तरफ दौड़ी।

राजा तने बैठे रहे कि जरा हम भी देखें कि ऐसा क्या गाता है यह भड़भूजा! राजकुमारी दौड़ती हुई आयी “आज मट्ठा नहीं है... माड़ चलेगा?” राजकुमारी ने माड़ का कटोरा घुट्रू को दिया। घुट्रू ने जानबूझ कर राजकुमारी की उंगलियां छू लीं। यह छुवन वह अपने साथ ले जाना चाहता है आखिरी निशानी के तौर पर।

घट् घट् वह माड़ पीता है।

“मेरा घुट्रू!” राजकुमारी के होठ खुद से कहते हैं।

घुट्रू कटोरा जमीन पर रखता है खट्। राजा इसे भी उसकी बेहदगी में गिनते हैं। वह एक अंतिम बार राजकुमारी को देखता है और गाना शुरू करता है

*जउने अंगन मोर पंजवां पुजाइल  
ओही अंगनवां पियत बानी माड़  
मड़वा पियत मोर बोलनी नटइया  
धईनि घुटरुवा मोर नाम जी...*

आज पहली बार राजकुमारी घुट्रू के लिए रो रही है। (हमेशा तो वह अपने राजकुमार को याद कर रोती थी) गीत समाप्त हो गया पर गीत का दर्द सन्नाटे की तरह राजदरबार में छा गया। आखिरकार, राजसी पोशाकों और कठोर जिरहबख्तर के भीतर सब के सब इंसान ही थे... राजकुमारी ने अपने पास खड़े मंत्री की म्यान से तलवार खींच ली...

“रुको...!” राजा ने कहा।

“नहीं! पिताजी अब मैं भी जीवित नहीं रहूंगी... मैं जीवित थी तो बस घुट्रू की वजह से...” वह घुट्रू की ओर मुड़ी “मैंने तुममें अपना राजकुमार देखा...”

और राजकुमारी ने तलवार...

“नहींईईईई!!!!” घुट्रू राजकुमारी की ओर दौड़ा।

राजकुमारी के हाथ रुक गये। घुट्रू ने तलवार अपने हाथों में ले ली “हो सकता है आपका राजकुमार किसी बिपद में हो पर मेरा विश्वास रखिये... एक दिन वह जरूर आयेगा...”

“मुझे नहीं चाहिए राजकुमार...!”

सैनिकों ने घुट्रू को फिर से कैद कर लिया। राजा अपने राजसिंहासन से उठ कर घुट्रू के पास आ गये। उन्होंने घुट्रू को गौर से देखा “कौन हो तुम?”

घुट्रू मौन रहा।

“मैं पूछता हूं कौन हो तुम?”

“मैं घुट्रू हूं!”

“फिर तुमने यह क्यों कहा कि जिस आंगन में मेरे पांवों की पूजा हुई आज उसी आंगन में मैं नौकर हूं और माड़ पी रहा हूं।” राजा ने घुट्रू को परखते हुए उसका एक चक्कर लगाया।

राजकुमारों सा गठन और शरीर पर चिथड़े ।

घुटरू चुप रहा ।

“बोलो...बोलो...बोलो...”

राजदरबार कांप उठा । राजकुमारी ने घुटरू को हैरानी से देखा । घुटरू ने आंखें बंद कर लीं । आंखों में पुराना समय तैर गया जब वह राजकुमार था वह जीवन अब सपनों सा लगता है ।

“मैं मुरख... वह हर दोपहर कहता रहा कि मैं ही हूँ तुम्हारा वह बिछड़ा हुआ राजकुमार और मैं कभी समझ नहीं पायी ।” राजकुमारी की आंखों से आंसू बह चले “पर यह सीधे सीधे भी तो कह सकता था कविता में कहने की क्या जरूरत थी ।”

राजा ने आगे बढ़ कर घुटरू को गले से लगा लिया “हमें क्षमा करना राजकुमार कि हम तुम्हें पहचान नहीं पाये !”

रानी ने घूंघट काढ़ लिया । (सोनू ने दादी को अपने दामाद से लजाते देखा है)

दादी की आंखों से भी आंसू बहने लगे थे । उनके लिए यह कोई कहानी नहीं थी कि कहानी के आदमी भी तो आदमी होते हैं । वे वह सब कुछ महसूस करते हैं जो हम करते हैं । हमारी तरह ही वह सांस भी लेते हैं ।

दो बिछुड़े हुए लोग मिले और बुरा वक्त वहीं भस्म हो गया ।

दादी ने अपने आंसू पोंछे “कहनी गयील बन में, सोचा लईको मन में...” और सोनू को सीने से लगा लिया । थोड़ी देर बाद ही उनकी नाक बजने लगी ।

**अगले** दिन पुल पर खुशीबीर बाबा अपना गांजा लेने आये “आखिर तेरे राजकुमार और राजकुमारी मिल ही गये ! क्या रे ?” मैंने कागज में लपेटा हुआ गांजा उनके हाथ में धर दिया । वे उसे नाक तक ले गये “आहा ! बिलकुल देशी...” और चिलम में रख कर सुलगा लिया “ले तू भी मार... !”

मैं दूसरी तरफ देख रहा था जिधर से वह आने वाली थी । बाबा हंसे “रे ! शिवेन्द्रा घर जा, अब वह यहां नहीं आयेगी...”

मैंने आश्चर्य से बाबा को देखा । वो मुस्कराए और उड़ते हुए जंगल में गायब हो गये ।

अगले ही पल सुबह की धूप जलने लगी और अरमानों की नदी सूख गयी । मैं उस पुल पर खड़ा था जो था ही नहीं ! दूर जंगल में चिलम का धुंआ मुझे बुला रहा था ।

एक मां थी जिसे याद कर मैं घर लौटा । घर एक मंडप की तरह सजा था और रिश्तेदार बाराती की तरह हर कमरे में मौजूद थे । वह हर दरवाजा जो आंगन तक जाता है खुला था अपनी कांपती सांसें थाम कर मैंने आंगन में पांव रखे आंगन में एक स्कूटी खड़ी थी...

# अपनी अपनी आधुनिकता

हरबंस मुखिया

**लगभग** दो दशक पहले तक 'आधुनिकता' एक प्रदत्त वस्तुपरक यथार्थ (given objective reality) था। सी.ए. बेली के शब्दों में आधुनिकता 'वह रही' (out there)<sup>1</sup> सबको नजर आती थी, सबको मालूम था कि वह क्या है और किसी के मन में इस विषय में कोई संदेह नहीं था। आज किसी को मालूम नहीं कि वह क्या है। आज आधुनिकता की अनेक विधियों से संरचना की जाती है जिनमें से कोई भी इसे वस्तुपरक यथार्थ का दर्जा नहीं देता। और न कोई अब इसकी एकवचन में विवेचना करता है; आज 'आधुनिकता' की जगह 'आधुनिकताएं' प्रचलित हैं। इसलिए इस लेख का शीर्षक : अपनी अपनी आधुनिकता।

मेरी अपनी पृष्ठभूमि एक मध्यकालीन इतिहासकार की है। यह पृष्ठभूमि इस लेख में भी निहित है। मध्यकाल का स्वयं अपना कोई अस्तित्व नहीं है बल्कि यह आधुनिककाल का अन-आधुनिक रूप है, आधुनिकता का विरोधी, 'अन्य' (other) रूप है जिसका जन्म ही आधुनिककाल में हुआ। इसलिए मध्यकालीनता को जानने के लिए हमें आधुनिककाल को जान लेना अनिवार्य है। लेकिन यह अन्वेषण हमें आखिर में उस निष्कर्ष तक ले जाता है जहां समय की यह श्रेणियां मध्यकाल, आधुनिककाल आदि अपना अर्थ खो देती हैं।

मैं यहां आपको इस प्रश्न के दो आयामों पर गौर करने का आमंत्रण दूंगा : स्थल और समय। ये दोनों इतिहास के अध्ययन के आधार हैं।

'आधुनिक' शब्द का प्रयोग सबसे पहले यूरोप में पांचवीं शताब्दी में हुआ।<sup>2</sup> यह प्रयोग केवल वर्णन समय के लिए हुआ; इसमें कोई गुण या मूल्य छुपा हुआ नहीं था। 'आधुनिक' वर्तमान था; शेष सब अतीत था। इसमें मूल्य की स्थापना यूरोप में ही उत्तर प्रबोधन (Post - Enlightenment) के साथ हुई जब विवेक और विवेकशीलता और आधुनिकता में सम्बंध स्थापित हुआ।

उत्तर प्रबोधन की मानव जाति को बहुत सी देन हैं, उनमें एक है किसी विषयवस्तु या समाज या इतिहास के विश्लेषण की एक विशेष विधि जो परस्पर विरोधी द्विभाजन (binary opposites) पर आधारित है। इसने 'आधुनिकयुग' को विवेक और विवेकशीलता (reason and rationality) का पर्याय बना कर मध्ययुग को इसके विरोध में ला खड़ा किया जिसका चरित्र, इसके अनुसार, धर्म अथवा धार्मिकता से परिपूर्ण था जिसे इसने सम्पूर्ण अंधविश्वास की संज्ञा दी। आधुनिकता की विवेकशीलता के मुकाबले में मध्यकाल अब 'अंधकारयुग' बन गया। इसलिए मध्यकाल को अब केवल आधुनिककाल के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता था यह उसका 'अन्य' (other) था।

यहां यह नोट करना उचित है कि प्रबोधन से पूर्व का यूरोप भी विरोधी द्विभाजन की श्रेणी से अपरिचित नहीं था। एक बुनियादी ढंग से ईसाई धर्म के प्रादुर्भाव से यह श्रेणी प्रयोग में आ चुकी थी जब ईसाइयत ने ईश्वर के अपने पुत्र जीजस क्राइस्ट की जुबान से सच्चे धर्म अथवा अंतिम सत्य की घोषणा की और इस प्रकार बाकी सभी धर्मों और धार्मिक और आध्यात्मिक व्यवस्थाओं को असत्य करार दे दिया। इसमें ईसाइयत और बाकी सब धर्मों के दरम्यान अनंत संघर्ष और अंत में 'सत्य' की 'असत्य' पर विजय की अवधारणा अपरिहार्य रूप से निहित थी। विवेकशील आधुनिकता में भी अंत में हर प्रकार के अंधविश्वास पर विश्वविजय की अवधारणा जाहिर है। फिर भी द्विभाजन की श्रेणी का धार्मिक क्षेत्र से सामाजिक एवं ऐतिहासिक क्षेत्र तक का सफर एक लम्बा सफर रहा है।

'आधुनिकता' की विवेकशीलता में उसकी सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक वैधता की धारणा निहित थी जिस कारण उसकी अंततः विश्वविजय निश्चित थी। यह धारणा उसे एक वस्तुपरक स्वरूप प्रदान करती है। इसमें धर्म आदि से व्यक्तिगत प्रतीति द्वारा प्राप्त ज्ञान से भिन्न, यहां तक कि विरोध निहित है। यह एक विश्वव्यापी एवं सम्पूर्णता व्यापी (universalizing and totalizing) प्रयोजन है।<sup>3</sup>

निश्चयवाद (positivism), जिसका विकास और वर्चस्व अठारवीं, उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के अधिकतर भाग में प्रचलित रहा, ने वस्तुपरक (subjective perception) के दरम्यान विभाजन स्थापित करके आधुनिकता की वस्तुपरक छवि को बहुत शक्ति प्रदान की। वस्तुपरक यथार्थ प्रदत्त था और सार्वभौमिक था; व्यक्तिपरक समझ ज्ञान के क्रमशः विकास द्वारा अंततः उस वस्तुपरक यथार्थ तक पहुंच पायेगी और अपनी सार्वभौमिक वैधता को स्थापित कर पायेगी। उसकी अंततः सार्वभौमिक विजय अनिवार्य और अपरिहार्य है। रोजमर्रा के जीवन से एक उदाहरण लेकर इसकी व्याख्या की जा सकती है।

एक समय था जब यह आम धारणा थी कि पृथ्वी चपटी है और सूर्य उसके चारों ओर घूमता है। क्रमशः ज्ञान की प्रगति के साथ यह सत्य प्रकट हुआ कि पृथ्वी वास्तव में गोल है और वह ही अपनी धुरी पर और सूर्य के गिर्द घूमती है। यहां चलते चलते हम यह भी नोट कर लें कि गलायलियों, जिन्होंने कोपर्निकस के बाद यह घोषणा की थी कि पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमती है, ने पोप और असंख्य कैथोलिक ईसाइयों की धार्मिक भावना को बहुत ठेस लगायी थी और उनको पोप ने समुदाय से बहिष्कृत कर दिया था। यद्यपि गलायलियों ने अपने मत का खंडन भी किया और उसके लिए पोप से माफी भी मांगी। किन्तु अपने अंतर में वह इस मत से पलटे नहीं थे और अपने अंतिम क्षणों में उन्होंने फिर घोषणा की कि पृथ्वी ही घूमती है। 1990 के दशक में आकर पोप ने गलायलियों के सत्य को स्वीकार किया, उन्हें माफ किया और उनका बहिष्कार रद्द किया। धार्मिक भावना की ठेस को सुधारने में लगभग 400 वर्ष लग गये। यह एक ज्वलंत उदाहरण है कि धार्मिक भावना की ठेस ज्ञान विज्ञान के संसार पर कितना जुल्म डाल सकती है।

बहरहाल, वस्तुपरक यथार्थ और व्यक्तिपरक समझ का यह विभाजन 'आधुनिकता' की अवधारणा के केन्द्र में स्थित था। और इसका प्रादुर्भाव यूरोप, विशेषकर पश्चिमी यूरोप में उत्तर प्रबोधन काल

में हुआ। यहीं पर ऐतिहासिक समय का त्रिभागीय विभाजन प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक भी हुआ और तीनों इकाइयों, विशेषकर 'आधुनिक', में मूल्यों की स्थापना हुई। वस्तुपरक यथार्थ की अवधारणा प्राकृतिक विज्ञानों से सामाजिक विज्ञानों में समाहित हुई। इस क्रिया का सबसे रोचक साक्ष्य अठारवीं सदी के फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगस्त कौम्ट के इस वक्तव्य में है कि निर्भूलता अथवा कतई दुरुस्त होने की दृष्टि से समाजशास्त्र, जिसके वह संस्थापक थे, सर्वप्रथम है और गणित अंतिम। क्योंकि विज्ञान का बुनियादी उद्देश्य किसी भी विशिष्ट विषय (phenomenon) की प्रकृति को समझना और उसके भावी व्यवहार की रूपरेखा बना पाना होता है, समाजशास्त्र समाज के व्यवहार की निर्भूल रूपरेखा बनाने में समर्थ होगा।<sup>1</sup> मेरे अपने विषय की निश्चयवादी व्याख्या का सर्वोत्तम वक्तव्य उन्नीसवीं सदी के जर्मन इतिहासकार, त्रियोपोल्ड वॉन रान्के, के शब्दों में है : *'इतिहास बताता है कि वास्तव में क्या हुआ था।'* (History tells us as it really happened?) अंग्रेजी में व्यक्त इन सात शब्दों में तीन महत्वपूर्ण जोर निहित हैं। प्रथम, यह इतिहासकार नहीं बल्कि इतिहास हमें बताता है कि क्या हुआ था। इतिहासकार कई एक भूलें कर सकते हैं; उनकी सूचना अधूरी हो सकती है। इसलिए **इतिहास** हमें बताता है कि क्या हुआ था। कैसे?

इतिहासकारों का कर्तव्य है ऐतिहासिक तथ्यों को एकत्र करना न कि उन पर टिप्पणी करना। एक समय आयेगा जब इतिहास के समग्र तथ्य इकट्ठा हो जायेंगे। उस समय इतिहास हमें अपने समग्र रूप में अंतिम और संदेहरहित संदेश दे पायेगा कि अतीत में क्या हुआ था।

दूसरा जोर **बताने** पर है। जब यह कहा जाता है कि हम आपको 'बता' रहे हैं कि अमुक पुस्तक बहुत अच्छी है या अमुक व्यक्ति बहुत बेईमान है तो उस 'बताने' में संदेह की गुंजाइश नहीं होती। इस प्रकार जब इतिहास हमें बतायेगा कि क्या हुआ था तो उसमें संदेह करना सम्भव नहीं हो सकेगा।

अंतिम जोर **वास्तव** पर है। **इतिहास** जब अपनी समग्रता में **बतायेगा** कि **वास्तव** में क्या हुआ था तो वह मुकम्मल और निःसंदेह वर्णन होगा जिसके अर्थ के विषय में दो राय नहीं हो पायेगी। यह इतिहास का अंतिम वर्णन होगा।

दिलचस्प बात यह है कि इस वक्तव्य में इतिहास के आत्म विनाश की शर्त निहित है। यदि हम माने लें कि एक दिन आयेगा जब इतिहास के समग्र तथ्य हमें प्राप्त हो जायेंगे और इतिहास हमें अंतिम संदेश दे चुका होगा तो इतिहास के पास और कुछ बताने को रह नहीं जायेगा। वह दिन इतिहास अध्ययन का अंतिम दिन होगा। क्या यह सम्भव है? नहीं। क्योंकि इतिहास का एक बड़ा भाग तो लुप्त हो चुका है जिसे पुनः प्राप्त करना असम्भव है। दूसरा, इतिहास या अध्ययन का हर विषय स्वयं से नित नये प्रश्न कर स्वयं को नया जीवन प्रदान करता है और यह प्रक्रिया अनंत है।

आधुनिकता की स्थानीयता से भी उसके सार्वभौमिक प्रचलन के लिए यूरोप को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम, आधुनिकता के गुणों की परिभाषा पर 1960-70 यहां तक कि 80 के दशक तक यूरोप हावी रहा : विज्ञान और विवेकशीलता का विकास जिसके कारण तकनीकी प्रगति, औद्योगिक क्रांति, पूंजीवाद, राष्ट्रीय, राज्य, धर्मनिरपेक्षता, व्यक्तिवाद, स्वतंत्र मंडी का अर्थतंत्र... 1966 में एस.एन. आइजेनस्टाट ने इन गुणों का संक्षिप्त वर्णन इन शब्दों में किया : *'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिकीकरण सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं के परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में सत्रहवीं और उन्नीसवीं सदी के दरम्यान घटित हुई।'*<sup>5</sup> इन गुणों में से एक दो को कम या अधिक कर सकते हैं किन्तु उस समय तक आधुनिकता क्या है और इसका प्रादुर्भाव कहां और कब हुआ? इस पर सर्व सहमति थी। यदि हम सी.ए. बेली के शब्द दोहराएं तो आधुनिकता 'बढ़ रही' थी।<sup>6</sup>

वास्तव में यह सहमति सार्वभौमिक थी। जब आधुनिकता का एकांगी चरित्र और उसकी स्थानीयता स्थापित हो गयी और उसका अपरिहार्य सार्वभौमिक विस्तार स्वीकृत हो गया तो उसका एक अमूर्त स्वरूप (Abstraction) उभर कर आया जिसका स्रोत 'वस्तुपरक यथार्थ' था। गैर यूरोपी क्षेत्रों के इतिहासकार के पास केवल एक विकल्प रह गया था : इस अमूर्त स्वरूप से अपने क्षेत्र के इतिहास की नजदीकी या दूरी को मापना।

1940, 50, 60 के दशकों में चीन के इतिहासकार इस बहस में डूबे हुए थे कि क्या उपनिवेश पूर्व काल में उनके देश में 'पूँजीवाद के अंकुर' (Sprouts of Capitalism) फूल रहे थे या नहीं और सब लगभग सहमत थे कि इस प्रस्ताव की शक्तिशाली साक्षियाँ हैं। 'पूँजीवाद के अंकुर' की पहचान अधिकतर बढ़ते हुए वाणिज्य और फलती फूलती व्यापारी पूँजी के रूप में की जाती थी क्योंकि इसकी परिणति औद्योगिक पूँजीवाद में होना ही स्वीकृत अवधारणा थी और औद्योगिक पूँजीवाद को आधुनिकता का पर्याय माना जाता था। इस सम्पूर्ण वाद विवाद की श्रेणियाँ यूरोप के संदर्भ में उस बहस से ली गयी थीं जिसमें यूरोपी सामंतवाद के विघटन की स्थापना विकसित वाणिज्य में की गयी थी। जिससे पूँजीवाद का उदय और विकास हुआ। 1957 में बीजिंग से 'चीन में पूँजीवाद के अंकुर सम्बंधित निबंध' शीर्षक पुस्तक भी प्रकाशित हुई।<sup>7</sup> यद्यपि यूरोप में इतिहासकारों के बीच वाणिज्य की इस केन्द्रीय भूमिका पर कई प्रश्नचिह्न लग चुके थे लेकिन अभी तक 'पूँजीवाद के अंकुर' मुद्दे पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।

भारतीय इतिहास लेखन में इस मुद्दे का प्रवेश कई प्रमुख सोवियत इतिहासकारों के हाथों हुआ जिनमें पावलोव, चिचेरोव, अशरफयान आदि की अहम भूमिका है। भारत के संदर्भ में इस मुद्दे की रूपरेखा अक्सर चीनी बहस के समान थी। इसमें भी वाणिज्य का विकासशील आयाम, विनिमय में द्रव्य की बढ़ती हुई भूमिका आदि को पूर्ण विकसित पूँजीवाद का अग्रणी माना गया जिसकी प्रगतिशील प्रक्रिया पर उपनिवेशवाद ने अंकुश लगा दिया। कभी कभी इस बहस में अन्य आयामों का भी आगमन होता था और कभी कभी एक ही इतिहासकार के विचारों में परिवर्तन आ जाता था।<sup>8</sup> भारतीय इतिहासकारों में सतीश चंद्र ने 1966 में सत्रहवीं शताब्दी में भारत में एक द्रव्य अर्थ व्यवस्था का विकास' शीर्षक लेख प्रकाशित किया<sup>9</sup> जिसमें उसी दलील का समर्थन किया गया। यद्यपि कई विद्वान सत्रहवीं शताब्दी से बहुत पहले से वाणिज्य में द्रव्य की महत्वपूर्ण भूमिका की ओर ध्यान आकृष्ट कर चुके थे। इस पूरी बहस का अंत इरफान हबीब के अत्यंत प्रभावी लेख, 'मुगलकालीन भारत की अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी विकास की सम्भावनाएं', के साथ हुआ।<sup>10</sup> हबीब ने मुगलकाल में अति उन्नत वाणिज्य और उच्चस्तरीय व्यापारी पूँजी पर रोशनी डाली, उत्पादन के क्षेत्र में तकनीकी विकास पर जोर दिया और अर्थव्यवस्था में द्रव्य की गहरी पैठ को उजागर किया। ऐसा लगता था कि हबीब मुगलकालीन भारत में पूँजीवादी विकास की सम्भावनाओं का शक्तिशाली समर्थन करेंगे। किन्तु उनकी दलील ने बिल्कुल उल्टा मोड़ लिया और इस पर खत्म हुआ कि उपनिवेशवाद होता या न होता, मध्यकालीन भारत में पूँजीवाद के उदय की कोई सम्भावना नहीं थी। हबीब इस समस्या पर शास्त्रीय मार्क्सवादी दृष्टि से गौर कर रहे थे जिसमें वाणिज्य की भूमिका को किसी भी उत्पादन व्यवस्था (mode of production) में परिवर्तन का साधन नहीं माना गया है; परिवर्तन उत्पादन व्यवस्था के 'अंदरूनी अंतर्विरोधों' के प्रखर होने का नतीजा होता है। मौरिस डौब ने इस विचार को विकसित किया था<sup>11</sup> और हबीब पर डौब का बहुत प्रभाव था। लेकिन हम इस बहस को जिस तरफ से भी देखें, इसके विश्लेषण की श्रेणियाँ उसी अमूर्त स्वरूप में उपलब्ध नजर आती हैं जिसका जिक्र हम ऊपर कर आये हैं।

लगभग 1990 के दशक से उस अमूर्त स्वरूप, आधुनिकता के उस एकांगी रूप, बहस की उन श्रेणियों पर बहुत सारे प्रश्नचिह्न लगने लगे। आज यदि विद्वान एकमत हैं तो केवल इस बात पर कि अतीत में इस पर सहमति थी। 1998 आते आते उन्हीं एस.एन. आइजेनस्टाट ने घोषणा की कि 'यह धारणा कि आधुनिकता का केवल एक ही प्रकार है बिल्कुल भूल है।'<sup>12</sup>

'एकांगी आधुनिकता'<sup>13</sup>, अथवा जिसे रिचर्ड वोलिन 'सबके लिए एक साइज की आधुनिकता'<sup>14</sup> करार देते हैं, पर प्रश्नचिह्न कई दिशाओं से उठे हैं। विश्व के कई क्षेत्रों में विकसित 'पूर्व आधुनिकता' (early modernity) में ही यह इशारा मिल जाता है कि विभिन्न क्षेत्रों ने 'आधुनिकता' के वैकल्पिक रास्तों पर चलते 'आधुनिक विश्व' में प्रवेश किया है। इस प्रकार वांग हुयी ने 2004 में उच्च स्तर में उद्घोषणा की कि 'आधुनिक चीन का विकास पश्चिम के साथ सम्पर्क स्थापित होने से पहले ही हो चुका था।'<sup>15</sup> यह 'पूँजीवाद के अंकुर' की भीषण तलाश के बिल्कुल विपरीत था जिसमें पश्चिम की नकल की अनिवार्यता निहित थी; इक्कीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ होते होते विश्वस्त चीन स्वयं की आधुनिकता को पश्चिमी प्रक्रिया का अपवाद होने का दावा कर सकता था। इसमें कहीं यह धारणा भी निहित थी कि पश्चिम से चीन का अनुसरण अपेक्षित है।

गत कई वर्षों से विश्व के कई प्रतिष्ठित इतिहासज्ञों ने यह स्थापना की है कि लगभग अठारवीं शताब्दी के मध्य तक चीन और भारत पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था के संचालक थे, अर्थात् 'आधुनिकयुग' में प्रवेश होने के बाद तक।<sup>16</sup> चीन और भारत की यह स्थिति अर्थव्यवस्था के सभी गोशों में हावी थी कृषि, दस्तकारी एवं वाणिज्य में। यूरोप में अठारवीं सदी की 'कृषि क्रांति' से वहां हर खेत प्रत्येक वर्ष एक फसल पैदा करने में समर्थ हो गया; भारत में सदियों पहले से हर खेत से औसतन दो फसलें मिल जाती थीं।<sup>17</sup> चीन और भारत उन रेशमी और सूती कपड़ों के स्रोत थे जिनके लिए विभिन्न यूरोपी कम्पनियां एक दूसरे से होड़ में लगी रहती थीं।<sup>18</sup> और सत्रहवीं सदी में सूत के केवल एक व्यापारी, अब्दुल गम्फूर के पास सभी यूरोपी ईस्ट इंडिया कम्पनियों की कुल पूंजी से अधिक पूंजी थी; उनके अलावा अन्य कई भी थे जिनमें वीरजी बोरा का नाम अब्दुल गम्फूर के बाद ही लिया जाता है।

किन्तु उपनिवेशवाद पूर्व चीन और भारत में 'आधुनिकता' के आर्थिक तत्वों के अलावा कई अन्य तत्व भी मौजूद थे। हम सब चीन में विशाल नौकरशाही के लिए सार्वजनिक परीक्षाओं की व्यवस्था से परिचित हैं और इसके धर्मनिरपेक्ष चरित्र से भी परिचित हैं। हम कन्फ्यूशियस के दर्शन, विशेषकर उसके 'नव' संस्करण के धर्मनिरपेक्ष, धर्म उदासीन, चरित्र से भी परिचित हैं।

भारत में भी, जैसाकि जोनादान गैनेरी ने हाल में स्थापित किया है, हिन्दू दर्शन पुरानी रटें ही नहीं लगा रहा था।<sup>19</sup> सत्रहवीं, शताब्दी के मध्य में हिन्दू दर्शन में एक नयी धारा, नव न्याय का उद्भव और विकास हुआ जिसमें पूर्व दर्शन के नये अर्थ और विचार की नयी शाखाएं दोनों का सम्मिश्रण था। नवद्वीप (वर्तमान नोदिया जो पश्चिम बंगाल में स्थित है) और वाराणसी में इस विचार विधा की विशेष छाप थी। गैनेरी इस पर जोर देते हैं कि देकार्त (Descartes) और गैसेंडी (Gassendi) का अनुवाद भारत में फारसी में यूरोपी भाषाओं में अनुवाद से पहले हो चुका था जिससे स्पष्ट है कि मुगलवंश एवं मुगलशासन के कई अभिजातवर्गीय, बुद्धिजीवी यूरोपी दर्शन में गहरी रुचि रखते थे। गैनेरी फिर लगभग डंका बजा कर पूछते हैं: 'जब गैसेंडी का लेखन फारसी में फ्रेंच से पहले अनूदित हो चुका था और उपनिषदों एवं दाराशुकोह का अद्वैतवादी सर्वेश्वरवाद (monistic pantheism) फ्रांस और इंग्लैण्ड में स्पीनोजा की पुस्तक नैतिकता (Ethics) के प्रकाशन से पहले ही पहुंच चुका था, तो 1660 के दशक तक बौद्धिक विश्वीकरण (intellectual globalization) की इससे ज्यादा शक्तिशाली गवाही क्या हो सकती है?'<sup>20</sup>

लेकिन इससे बड़े पैमाने पर गौर करें तो यह जाहिर है कि मुगल राज्य एवं समाज हर दृष्टि से अत्यधिक गतिशील थे चाहे वह अर्थव्यवस्था हो अथवा तकनीकी, प्रशासन, सामाजिक सम्बंध और आदर्श, संस्कृति या सौन्दर्यबोध... और यद्यपि राज्य व समाज कहीं से धर्म से उदासीन नहीं थे, फिर भी उनकी नींव केवल धर्म पर टिकी हुई नहीं थी।<sup>21</sup> एक अत्यंत नवीन विचारधारा का जन्म जमीनी धरातल पर अशिक्षित व अर्धशिक्षित संत कवियों के पदों में हुआ जिससे ईश्वर की दो प्रतिस्पर्धी छवियों के बीच स्पर्धा, चुनौती और तनाव का स्थान सामंजस्य ने ले लिया। हिन्दू धर्म के असंख्य ईश्वर और अनेक पूजा विधियां और इस्लाम का एकेश्वरवाद और उसकी इबादत का एक ही तरीका इनके परस्पर टकराव और तनाव; संत कवियों द्वारा विकसित एक सार्वभौमिक ईश्वर (Universal God) की परिकल्पना में शिथिल हो गये। इसमें हर धर्म की एक ही ईश्वर तक पहुंचने के अलग अलग रास्तों के रूप में पहचान बनी रही किन्तु इन रास्तों पर चलने वालों में आपसी टकराव की सम्भावनाएं लगभग समाप्त हो गयीं। इस बात का सबसे ज्वलंत साक्ष्य यह है कि मध्यकालीन भारत में लगभग 550 वर्ष तक के 'मुस्लिम शासन' के बाद, जब राजनैतिक स्तर पर असंख्य तनाव बनते रहे और खूनखराबा होता रहा जिनकी दोनों ओर से अक्सर धार्मिक रूप दिया जाता रहा, समाज में शंति बनी रही। इस पूरे 'मुस्लिमकाल' में पहला साम्प्रदायिक फसाद 1713-14 में फरूखसियार के शासनकाल में हुआ। जिसका जिक्र हमें इतिहास ग्रंथों में मिलता है।<sup>22</sup> अर्थात् 'मुस्लिमकाल' के लगभग अंत में। पूरी अठारवीं सदी में 5 ऐसे साम्प्रदायिक दंगों का जिक्र मिलता है।<sup>23</sup> आज, धर्मनिरपेक्ष राज्य के तहत हर वर्ष लगभग कई सौ ऐसे छोटे बड़े दंगे हर वर्ष हुआ करते हैं। क्या यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण नहीं है कि आज भी भारतीय समाज में यह विचारधारा प्रचलित है कि हम सबका ईश्वर एक है और नाना धर्म उस तक पहुंचने के अलग अलग रास्ते हैं, यद्यपि कट्टर मौलवी एवं संघ परिवार मिल कर इस भावना में संध लगाने की निरंतर कोशिश कर रहे हैं?

विश्व के बड़े भाग का उपनिवेशीकरण और उनका औपनिवेशिक आधुनिकता से परिचय एक ऐतिहासिक तथ्य है। किन्तु इससे यह सिद्धांत स्थापित नहीं हो जाता कि उनके लिए यह रास्ता आधुनिकयुग तक पहुंचने का अकेला विकल्प था। कई वैकल्पिक रास्तों एवं वैकल्पिक आधुनिकताओं का अनुमान लगाना सम्भव है जिनकी ओर विश्व के कई बुद्धिजीवी अग्रसर हुए हैं। इनके अलावा अनेक आधुनिकताओं की अवधारणा ने भी बहुत से विद्वानों को आकर्षित किया है। अब हमारे पास एकांगी आधुनिकता के अनेक विकल्प हैं। 1990 के दशक से लेकर अब तक 'आधुनिकताओं' का बहुत विस्तार हुआ है।

वास्तव में हाल में आधुनिकता के कई अवतार उभर कर आये हैं। अलेग्जेण्डर वुडसाइड, 'गुमशुदा आधुनिकताओं' (lost modernities)<sup>24</sup> का विस्तार करते हैं तो हूरी इस्लामोगलू और पीटर सी. परद्यू 'सम्मिलित आधुनिकताओं' (shared modernities)<sup>25</sup> की ओर इशारा करते हैं; कैरोल ग्लुक्क 'मिश्रित आधुनिकताओं' (blended modernities)<sup>26</sup> की बात करते हैं तो निलूफर गोल 'इस्लामी आधुनिकताओं' (Islamic modernities)<sup>27</sup> की; पुरुषोत्तम अग्रवाल ने मध्यकालीन भारत के संदर्भ में 'देशज आधुनिकता' की अवधारणा को प्रचलित किया है।<sup>28</sup> वर्ष 2000 में सुप्रतिष्ठित अमेरिकन शोध पत्रिका डेएडलस (Daedalus) का विशेषांक, जिसे एस.एन. आइजेनस्टाट ने सम्पादित किया था, 'अनेक आधुनिकताओं' (multiple modernities) पर केन्द्रित था।<sup>29</sup> इससे दो वर्ष पहले 1998 में उसी पत्रिका का विशेषांक 'पूर्व आधुनिकताओं' (early modernities) पर केन्द्रित था,<sup>30</sup> यद्यपि 'पूर्व आधुनिकता' का प्रयोग विश्व के कई क्षेत्रों के इतिहास के लिए पहले से होता आया है। इसका पहला प्रयोग यूरोप के इतिहास के संदर्भ में ही हुआ था जहां 'आधुनिककाल'



की दीर्घ समय सीमाओं से असंतुष्ट होकर उसका विभाजन प्रयोजित किया गया। इसी प्रकार का विभाजन प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास का भी हुआ जब उनमें 'उत्तर प्राचीनकाल' (late Antiquity), 'पूर्व मध्यकाल' (early medieval) 'उत्तर मध्यकाल' (late medieval) आदि का प्रवेश हुआ।

आधुनिकता को केवल यूरोप के साथ संलग्न करने के विकल्प में आरिफ डर्लिक और जैक गुडी ने अलग अलग एक 'यूरोशियाई आधुनिकता' (Eurasian Modernity) की पेशकश की है।<sup>31</sup> उनकी दलील है कि जिस आधुनिक दुनिया के हम वासी हैं उसके निर्माण में यूरोपी एवं एशियाई सभ्यताओं का योगदान है किन्तु एशियाई योगदान को अब तक नजरअंदाज किया जाता रहा है। समय आ गया है कि संतुलन को सामान्य बनाया जाये। इस दलील में वास्तव में बहुत दम है। रोजान्न प्राजनिअक इसे और शक्ति प्रदान करती हैं; हमारा ध्यान उस विस्तृत मंगोल साम्राज्य की ओर आकर्षित करके जिसने वस्तुओं और विचारों का बहुत बड़े पैमाने पर आदान प्रदान सम्भव किया।<sup>32</sup> किन्तु क्षेत्र के विस्तार के बाद भी अन्य विशाल क्षेत्र हमारी दृष्टि से बाहर रह जाते हैं : अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका जिन्होंने विभिन्न तरीकों से आधुनिक मानवजाति के जीवन की समृद्धि में योगदान किया है। जे.एम. ब्लाउट ने यूरोप केन्द्रित इतिहास की तीव्र आलोचना करके संतुलन सही करने की कोशिश 'सार्वभौमिक आधुनिकता' (global modernity) की संकल्पना करके की है जिसमें विश्व के सभी क्षेत्रों ने बराबर का योगदान दिया है। इसके लिए उन्होंने 'एकरूपीकरण' (uniformatization) शब्द का गठन किया।<sup>33</sup>

इस बीच हम आधुनिकता के विकल्पों से भी रूबरू हो लें जो इतने महत्वहीन नहीं हैं कि उन्हें नजरअंदाज किया जाये। अपनी तरह से अफगानिस्तान में तालिबान शासन ने आधुनिकता के विकल्प की विचारधारा पर अमल किया यद्यपि उन्होंने अति आधुनिक शस्त्रों एवं यातायात के साधनों का प्रयोग करने से कभी परहेज नहीं किया। उनके अलावा भारत की, बल्कि विश्व की जनजातियां किसी न किसी सीमा तक आधुनिकता की गुल्थी से बाहर ही रही हैं, चाहे अपनी मर्जी से या फिर मजबूरन।

इन सब, और इनके अलावा भी, आधुनिकता के अनेक नये मंत्रों को देखते हुए इस मुद्दे पर प्राप्त ज्ञान को पुनः परिभाषित करना आवश्यक है। किन्तु इन सभी मंत्रों के साथ भी अनेक समस्याएं हैं।

'वैकल्पिक आधुनिकाएं' या 'अनेक आधुनिकताएं' एकांगी आधुनिकता का रूपरेखा को तो बहुत खूबी से ध्वंस करती हैं किन्तु आधुनिकता का मूल स्वरूप क्या है इससे ध्यान हटा देती हैं। इनसे हम यह अंदाजा नहीं लगा पाते कि आधुनिकता क्या है? उसे कैसे समझा या परिभाषित किया जाये? आरिफ डर्लिक ने आधुनिकता के सार के, इसकी किसी भी परिभाषा के सार के इस प्रक्रिया में विघटित हो जाने की कड़ी आलोचना की है।<sup>34</sup> दूसरी ओर आधुनिकताओं के विस्तार के वाद विवाद में 'आधुनिकीकरण' के कारण पूर्व आधुनिक और आधुनिक काल में उपनिवेशों ने जिन विषमताओं का अनुभव किया, उन पर से भी ध्यान हट चुका है। फिर, क्या विशाल क्षेत्रों जैसे यूरोप, चीन, भारत, अफ्रीका, मुस्लिम क्षेत्र का कल इकाइयों के रूप में विश्लेषण करना उचित होगा? इन सभी में अंदरूनी स्तरीकरण को ध्यान में रखें तो जाहिर है कि इन पर 'आधुनिकीकरण का असमान प्रभाव पड़ा होगा, जो आज भी पड़ रहा है। केन्नेथ पोमरैन्ज इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।<sup>35</sup>

**अभी** तक हमने इस इस समस्या के स्थली पहलुओं पर गौर किया है; इसके काल या समय के आयाम पर भी ध्यान देना अति आवश्यक है। इतिहासकाल का त्रिभागी विभाजन प्राचीन, मध्यकालीन एवं

आधुनिक सोलहवीं शताब्दी में प्रथम प्रयोग में आया;<sup>36</sup> इसको औपचारिक रूप सत्रहवीं शताब्दी के लगभग अंत में एक डच इतिहासकार क्रिश्चियन सेल्लारियस (अथवा क्रिस्टोफ केल्लर) ने प्रदान किया। उसने इससे पहले के विकासमुखी धार्मिक विभाजन, जिसमें समय को जनजातीय धर्म (paganism) और ईसाई धर्म के बीच बांटा गया और क्रमशः प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास<sup>37</sup> की संज्ञा दी गयी थी, की बुनियाद पर इतिहास को तीन भागों में बांटा। शुरू में यूरोप में आधुनिककाल को एक निश्चित तिथि, 1453, जब कुस्तुनतुर्निया (वर्तमान इस्तान्बुल) पर तुर्की के सुल्तान ने कब्जा कर लिया था, पर स्थापित किया गया। इसे फिर हटा कर 1492 पर निश्चित किया गया जब क्रिस्टोफर कोलम्बस अपनी अमेरिका की यात्रा पर निकला था। औद्योगिक क्रांति ने इतिहासज्ञों का ध्यान किसी एक तिथि से हटा कर दूरगामी प्रक्रियाओं की ओर खींचा; इस प्रकार सत्रहवीं और अठारवीं सदी में क्रियान्वित आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों को आधुनिकता के साथ संलग्न किया जाने लगा और आधुनिककाल पूर्व आधुनिक व आधुनिक में विभाजित होने लगा। 'आधुनिकता' के विषय में विकसित सहमति से उसे अठारवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में बैठा दिया गया। जॉर्न विट्टरॉक, जो 'आधुनिकता' का उदय इन्हीं शताब्दियों में पाते हैं, अभी भी इसे 'काम प्रगति पर है' के रूप में देखते हैं। आधुनिकता उनके लिए एक 'वादा' है जो अठारवीं और उन्नीसवीं सदी से चला आ रहा है।<sup>39</sup>

और लोग इतने विश्वस्त नहीं हैं।

जैक गुडी आधुनिकता का प्रादुर्भाव इटली में तेरहवीं शताब्दी में हुए पुनर्जागरण में पाते हैं और इसकी कड़ी ईसाइयत के सर्वांगी प्रभाव के ह्रास और विश्वविद्यालयों की स्थापना एवं शिक्षा के विस्तार से जोड़ते हैं।<sup>40</sup> ऑक्सफोर्ड में अभी भी आधुनिक इतिहास का प्रारम्भ रोमन साम्राज्य के पतन से शुरू होता है और फ्रांस में पंद्रहवीं शताब्दी से। उधर शैल्डन पौलोक्क शक्तिशाली दलील के साथ 'आधुनिककाल' का प्रारम्भ लगभग ग्यारहवीं सदी से करते हैं जब विश्व के कई भागों में स्थानीय भाषाओं का विकास होना शुरू हुआ।<sup>41</sup> इस विकास में 'आधुनिकीकरण' और 'जनतंत्री यकरण' में समानता नजर आती है।

जब आधुनिकता के विषय को स्थलीय अंतरों के संदर्भ में देखा जाने लगा है तो स्वाभाविक है कि उसके काल की सीमाएं और अधिक ऊर्जा के साथ बदलती रहें। फिर हर स्थल, हर क्षेत्र के अंदरूनी स्तरीकरण पर गौर करें तो समस्या और भी गहन हो जाती है।

तो यहां से आगे का क्या रास्ता है? हम 'आधुनिकता' की कुछ स्पष्ट गुणों के आधार पर स्थापना कर सकते हैं। यहां मैं दो गुणों का वर्णन करूँ :

1. आधुनिकता का एक प्रमुख गुण है कि विज्ञान और तकनीकी की बुनियाद पर उसके विकास की गति उसके पूर्व की तुलना में अत्यंत द्रुतगामी हो, जैसाकि औद्योगिक क्रांति के समय और उसके बाद प्रत्यक्ष हुआ।

2. 'प्रगति की विचारधारा' (idea of progress) आधुनिकता की शर्त बने। इस विचारधारा की शुरुआत तो अठारवीं सदी में ऐडम स्मिथ और अन्य विचारकों से हुई थी किन्तु इसकी पूर्ण रूप से विकसित रूपरेखा कार्ल मार्क्स के 'प्रगति की अवस्थाओं' (stages of development) में तैयार हुई।<sup>42</sup> आज हम इस विचारधारा में निहित प्रकृति और पर्यावरण के ध्वंस के खतरे से परिचित एवं चिन्तित हो रहे हैं; किन्तु इस चिन्ता से हम अभी हाल में ही ग्रस्त हुए हैं।

ये गुण हमें आधुनिकता की खोज में वापस अठारवीं और उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के यूरोप तक ले जाते हैं।

या फिर हम इस आधुनिककाल की प्रगति की हैरान कर देने वाली रफ्तार को पूर्व में हुई प्रगति के जमा होते हुए फल की सूरत में देख सकते हैं। आज इक्कीसवीं सदी में प्रगति की रफ्तार बीसवीं

सदी की रफ्तार से ज्यादा है जो उन्नीसवीं सदी की रफ्तार से ज्यादा थी, इस प्रकार आदि आदि जब हर सदी की प्रगति की बढ़ती हुई रफ्तार अपने से पूर्व की प्रगति का नतीजा थी। और हम यह स्वीकार करें कि जिस 'आधुनिक विश्व' के हम वाशिनदे हैं वह किसी एक क्षेत्र के वासियों की देन नहीं, बल्कि वह समग्र विश्व की बहुमुखी संवाद धर्मिता द्वारा निर्मित एवं विकसित हुआ है। इसमें न तो विभिन्न क्षेत्रों के योगदान को 'एकरूपीकरण' के पैमाने पर मापने की जरूरत है न हर क्षेत्र के अनुपात की। यूं भी हर योगदान एक गुण है न कि ठोस पदार्थ जिसको तराजू पर तोला जा सके। हम इस तरह 'विश्व के इतिहास' (world history), जिसमें हर क्षेत्र का इतिहास अपने आप में एक स्वतंत्र इकाई है, से हट कर 'विश्वव्यापी इतिहास' (global history) की ओर मोड़ ले सकते हैं। यह सम्पूर्ण मानव इतिहास, जो दीर्घ समय से विकसित होता हमें आज तक ले आया है और भविष्य में ले जायेगा और जिसमें पूर्ण मानवजाति ने योगदान दिया है, अनेक रंगों से युक्त छवि प्रदान करेगा।

हमें यह स्वीकार कर लेना आवश्यक है कि 'आधुनिकता' का मुद्दा जो सदियों से अब तक विवादमुक्त चला आ रहा था, अब विवादों से घिर गया है और इसके एकांगी चरित्र की जगह विविधता ने ले ली है; यह मानना भी आवश्यक है कि हम पहले जैसे विश्वस्त एक स्वरीय सूत्रों से बहुतस्तरीय व्याख्याओं की ओर अग्रसर हो चुके हैं जहां से वापसी असम्भव है। यह प्रगति आर्थिक व्यवस्था और उससे भी अधिक महत्वपूर्ण ज्ञान के विश्वीकरण के संदर्भ में हुआ है जिसमें अनेक दबी हुई आवाजें बुलंद हुई हैं और अनेक नये प्रश्न किये जा रहे हैं जो पहले कभी नहीं किये गये थे। सामाजिक विज्ञानों और दर्शन में निश्चयवाद व मार्क्सवाद की निश्चिन्तताओं से हट कर अर्थों के विविध स्तरों की ओर प्रगति हुई है।

दूसरी बात : क्योंकि 'आधुनिकता', या फिर इतिहासकाल का प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिककाल में विभाजन, केवल इतिहास लेखन की अथवा सांस्कृतिक कृति है और इसलिए अपने आप में परिवर्तनशील है, अतः यह आवश्यक है कि हम इसके अस्थायी चरित्र को स्वीकार करें और इसकी परिवर्तनशीलता से साक्षात्कार करें। यूं भी बाइसवीं या तेइसवीं सदी में अठारवीं, उन्नीसवीं व बीसवीं सदी को 'आधुनिक' माना जाना लगभग असम्भव लगता है। जाहिर है कि प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक की जगह विश्लेषण की कुछ नयी श्रेणियां ले लेंगी जिनका अनुमान हम नहीं लगा सकते।

यह समय है कि हम उस दिशा की तरफ चलना शुरू करें। एक कदम शायद यह हो कि हम घने मूल्ययुक्त प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक की श्रेणियों से मुक्ति पा लें और उनके स्थान पर मूल्य उदासीन श्रेणियों का प्रयोग करना शुरू करें जैसे पूर्व, सम्प्रति, हाल, समकालीन आदि। या इतिहासकाल के लिए सहस्राब्दी, शताब्दी, दशक आदि का प्रयोग करें जो कि केवल समय के वर्णन की इकाइयां हैं। यह प्रस्थान की दिशा में एक अदना सा कदम होगा; लेकिन बहुत लम्बे सफर आखिर एक अदना से कदम से ही शुरू होते हैं।

## संदर्भ :-

1. सी.ए. बेली, **द बर्थ ऑफ द मॉडर्न वर्ल्ड, 1780-1914**, ब्लैकवेल पब्लिशिंग, ऑक्सफोर्ड, 2004, पृ. 11  
 2. जाक ले गॉफ, **हिस्ट्री एंड मेमोरी**, अग्रेजी अनुवाद स्टीवन रेन्डॉल एवं एलिजाबेथ क्लेमन, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1992, पृ. 23; फ्रेडरिक जेम्सन, **ए सिग्नलर मॉडर्निटी, एस्से ऑन द ऑन्टोलोजी ऑफ द प्रेजेन्ट**, वर्सा, लंदन, 2002, पृ. 17  
 3. इस विषय पर अर्जुन अप्पादुराय का बड़ा दिलचस्प निजी विचार है। उनके विचार में उत्तर प्रबोधन यूरोप कभी भी अपनी समझ या अपने विश्वव्यापी उद्देश्य में न तो एकमत था न ही युक्तिपूर्ण; विवेकशीलता की उसकी समझ में अनेक दरारें भी थीं और अंतर्विरोध भी। इन सबको छुपाने के लिए यूरोप ने उत्तर प्रबोधनकाल के बहुत बाद

पुनरावलोकन के द्वारा एक एकांगी विवेकशीलता का गठन किया और उसका विश्वव्यापी विस्तार किया। देखिये उनकी पुस्तक **द फ्यूचर ऐज कल्चरल पास्ट**, वर्सा, लंदन, 2013 अध्याय 2. 4. जौन हस्साडे, **सोशियॉलोजी एंड ऑर्गेनिजेशन थ्योरी : पॉजिटिविज्म, पैराडाइम एंड पोस्ट मॉडर्निटी**, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1993, पृ. 5-6 कौक्त के अनुसार, 'यह निश्चायात्मक रास्ता हमें मानवजाति के लक्ष्य तक पहुंचने की कुंडी, समाज के एक ठोस स्वरूप (तक पहुंचने) की कुंजी प्रदान करेगा। यह वह दृष्टि है जो समाज के व्यवधान की एक वैज्ञानिक विवेकशीलता का आधार है। इसकी बुनियाद समाजशास्त्र में स्थित है जो प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों का अनुसरण करता है। समाजशास्त्र उन वैज्ञानिक विधियों को प्रत्यक्ष करेगा जो समाज के विभिन्न भागों के परस्पर सम्बंधों की व्याख्या करती हैं। पृ. 16 5. आइजेनस्टाट, **मॉडर्नाइजेशन, प्रोटेस्ट एंड चेंज**, प्रेंटिस हॉल, एंग्लवुड क्लिक्स, न्यू जर्सी, 1966, पृ. 1 6. सी.ए. बेली के विचार आधुनिकता के तत्व हैं : 'राष्ट्रीय राज्य का उद्भव, शक्ति का केन्द्रीयकरण या किसी विशेष जाति या समुदाय के प्रति कर्तव्यनिष्ठा; इनके साथ ही वाणिज्य एवं विचारों का विश्वव्यापी विस्तार। उद्योग की अंतरराष्ट्रीय पहुंच और एक नये ढंग के शहरी जीवन ने इन तत्वों को और भी गम्भीर बना दिया। इन सबने मिल कर मानव सामाजिक संगठन में अद्भुत परिवर्तन ला खड़ा किया। परिवर्तन के क्षेत्र और रफ्तार में नाटकीय पैमाने का विकास हुआ। इस तरह आधुनिकता न केवल प्रक्रिया थी बल्कि उसका एक काल भी था जिसका प्रारम्भ अठारवीं शताब्दी में हुआ और जो कई सूरतों में अभी भी जारी है।' बेली, **द बर्थ आफ द मॉडर्न वर्ल्ड**, पृ. 11 7. एक प्रकाशशील व्याख्या के लिए देखिये, आरिफ डलिक, 'चाइनीज हिस्टोरियंस एंड द मार्क्सिस्ट कान्सेप्ट ऑफ कैपिटलिज्म : ए क्रिटिकल एग्जामिनेशन', **मॉडर्न चाइना**, 8, 1 जनवरी 1982, पृ. 359-75. 8. ए.आई. चिचेरोव, **इंडियन इकॉनॉमिक डिवेलपमेण्ट इन द 16-18 सेन्चुरीज आउटलाइन हिस्ट्री ऑफ क्राफ्ट्स एंड ट्रेण्ड**, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मांस्को, 1971; वी.आई. पावलोव **हिस्टोरिकल प्रिभिजेस फॉर इंडियाज टु कैपिटलिज्म**, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मांस्को, 1978 रूसी विद्वानों के मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन के सर्वेक्षण के लिए देखिये, यूजेनिया वनीना, 'रशियन स्टडीज इन मिडीवल इंडियन हिस्ट्री एंड सोसायटी : ऐन इनसाइडर्स व्यू', **द मिडीवल हिस्ट्री जर्नल**, 2, 2, जुलाई-दिसम्बर 1999, पृ. 361-86. वनीना के इस विषय पर निजी, अप्रत्यक्ष विचार के लिए, उनकी पुस्तक **अर्बन क्राफ्ट्स एंड क्राफ्ट्समेन इन मिडीवल इंडिया (थर्टीन्थ टू एट्डीन्थ सेंचुरीज)**, मुंशीलाल मनोहरलाल पब्लिशर्स, नयी दिल्ली, 2009, पृ. 22. 9. सतीश चंद्र, 'सम आस्पेक्ट्स ऑफ द ग्रोथ ऑफ ए मनी इकॉनॉमी ड्यूरिंग द सेवेन्टीन्थ सेंचुरी', उनकी पुस्तक **मिडीवल इंडिया : सोसायटी, जागीरदारी क्राइसिस एंड द विलेज**, मेकमिलन पब्लिशर्स, नयी दिल्ली, 1982, पृ. 155-56 (प्रथम प्रकाशन द इंडियन इकॉनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, 3, 4, 1966)। पुरुषोत्तम अग्रवाल ने 'देशज आधुनिकता' की धारणा प्रस्तुत की है यद्यपि वह इसका संदर्भ सत्रहवीं सदी से पहले स्थापित करते हैं। देखिये उनकी **अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय**, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009. 10. इरफान हबीब, 'पोटेन्शियेलीटीज ऑफ कैपिटलिस्टिक डेवेलपमेण्ट इन द इकॉनॉमी ऑफ मुगल इंडिया' प्रथम प्रकाशन **जर्नल ऑफ इकॉनॉमिक हिस्ट्री**, 29, 1969. हाल में उनकी पुस्तक **एस्तेज इन इंडियन हिस्ट्री : टुवाइर्स ए मार्क्सिस्ट पर्सपेक्शन**, तूलिका, नयी दिल्ली, 1995, पृ. 180-232. 11. डौब्ल ने पश्चिम यूरोप में प्यूडलिज्म के पतन और पूंजीवाद के उदय का अत्यंत प्रभावशाली विश्लेषण अपनी पुस्तक **स्टडीज इन द डिवेलपमेण्ट ऑफ कैपिटलिज्म**, रूटलेज, लंदन, 1946, में किया जिस पर एक अंतरराष्ट्रीय बहस चल पड़ी। कुछ वर्ष पश्चात् आर.एच. हिल्टन ने इसका सम्पादन किया और यह **द ट्रांजीशन फ्रॉम प्यूडलिज्म टु कैपिटलिज्म**, के शीर्षक से वर्सा, लंदन, 1976 में प्रकाशित हुई। भारत में इसका पुनः प्रकाशन हाल में आकार बुक्स, नयी दिल्ली ने 2006 में किया। 12. **डेडलस**, 127, 3, पूर्व आधुनिकताओं पर विशेषांक, ग्रीष्म 1998; भूमिका, एस.एन. आइजेनस्टाट व वोल्फगैंग श्कूलख्टर, पृ. 2. 13. फ्रेडरिक जेम्सन की पुस्तक का शीर्षक : **ए सिंगुलर मॉडर्निटी ऐस्से ऑन द ऑन्टोलोजी ऑफ द प्रेजेण्ट**, वर्सा, लंदन, 2009 (प्रथम प्रकाशन 2002). 14. रिचर्ड वॉलिन, 'मार्डर्निटी', **अमेरिकन हिस्टोरिकल रिव्यू**, हिस्टोरियंस एंड द क्वेश्चन ऑफ मॉडर्निटी पर गोलमेज, 116, 3, जून 2011, पृ. 747. 15. **न्यू पर्सपेक्टिव्स क्वाटर्ली**, 25, 4, फॉल 2008, पृ. 10-15 में उनके साक्षात्कार का शीर्षक/ इससे पहले 2004 में बीजिंग से प्रकाशित अपनी चीनी भाषा की पुस्तक, **द राइज ऑफ मॉडर्न चाइनीज थोट** में वह यही बात कह चुके थे। 16. आंद्रे गन्डर फ्रैंक की अब तक शास्त्रीय स्तर पर पहुंच चुकी पुस्तक **दि ओरिएंट ग्लोबल इकॉनॉमी इन द एशियन एज**, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, 1998, केन्नेथ पोमिरेन्ज, **द ग्रेट डाइवर्जेंस : चाइना, यूरोप एंड द मेकिंग आफ द मॉडर्न वर्ल्ड**, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 2000; प्रसन्न पार्थसारथी, **व्हाई यूरोप ग्रियू रिच एंड एशिया डिड नॉट**, **ग्लोबल इकॉनॉमिक डाइवर्जेंस, 1600-1850**, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2011, 17. हरबंस मुखिया, 'एग्रिकल्चरल टेक्नॉलोजी इन मिडीवल नॉर्थ इंडिया', उनकी पुस्तक, **एक्सप्लोरिंग इंडियाज मिडीवल सेंचुरीज : ऐस्तेज इन हिस्ट्री, सोसायटी, कल्चर एंड टेक्नोलॉजी**, आकार बुक्स, नयी दिल्ली, 2010 पृ. 277-306. 18. इस विषय पर असंख्य लेख एवं पुस्तकें हैं; संक्षिप्त रूप में देखिये तपन राय चौधुरी व इरफान हबीब, सं., **दू कैम्ब्रिज इकॉनॉमिक हिस्ट्री**

**ऑफ इंडिया**, 1, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1982, पृ. 382-433. **19.** गैनेरी, **लॉस्ट एज ऑफ रीजन फिलॉसोफी इन अर्ली मॉडर्न इंडिया**, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 2011. **20.** वही, अध्याय, 'इंडिया एंड द वर्ल्ड, 1656', पृ. 16. **21.** इस विषय पर असीमित लेखन हुआ है। अति सीमा में देखिये तपन राय चौधुरी व इरफान हबीब, सं., **द कैम्ब्रिज इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया**; मोनिका जुनेजा, सं., **आर्किटेक्चर इन मिडीवल इंडिया**; **फौर्म, कैन्टेक्ट्स, हिस्ट्रीज**, पमनिण्ट ब्लैक, दिल्ली 2001; हरबंस मुखिया, सं., **हिस्ट्री ऑफ टेक्नालॉजी इन इंडिया**, 2, इंडियन नैशनल साइंस एकेडमी, नयी दिल्ली, 2012; हरबंस मुखिया, **द मुगल्स ऑफ इंडिया**, ब्लैकवेल पब्लिशर्स, ऑक्सफोर्ड, 2004; इसका हिन्दी अनुवाद **भारतीय मुगल** आकार बुक्स, नयी दिल्ली, द्वारा 2008 में प्रकाशित हुआ। **22.** अली मुहम्मद खान, **मीरात ए अहमदी**, अंग्रेजी अनुवाद एम.एफ. लोखंडवाला, ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, 1965, पृ. 358-59, लेखक स्पष्ट लिखते हैं कि फसाद दो जवाहरात के व्यापारियों, एक हिन्दू और एक मुस्लिम के बीच बढ़ते हुए तनाव का नतीजा था यद्यपि इनका तुरंत कारण था कि हिन्दू आपस में होली के दिन रंग खेल रहे थे और एक रास्ता चलते मुसलमान पर रंग फेंक दिया गया। फसाद दो रोज चला जिसमें 'दोनों तरफ से बहुत से लोग मारे गये या जख्मी हुए। नाजिम दाउद खां स्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए निकल पड़ा।' **23.** मुहम्मद उमर, **इस्लाम इन नॉर्दन इंडिया इयूरिंग द एयर्टीथ सेंचुरी**, मुंशीलाल मनोहर लाल, नयी दिल्ली, 1993, पृ.163. **24.** अलेग्जेण्डर वुडसाइड, **लौस्ट मॉडर्निटीज : चाइना, विएटनाम, कोरिया एंड द हेजाईस ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री** हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, हारवर्ड, 2006, **25.** इस्लामोग्लू व परद्यू, **शेयर्ड हिस्ट्रीज ऑफ मॉडर्निटीज : चाइना, इंडिया एंड द औटोमन एम्पायर**, रूटलेज, नयी दिल्ली, 2009. **26.** कैरोल ग्लुक्क, 'द एंड ऑफ एल्सवेयर राइटिंग मॉडर्निटी नाओ', **अमेरिकन हिस्टोरिकल रिव्यू**, हिस्टोरियन्स एंड द कक्वेशन ऑफ मॉडर्निटी पर गोलमेज, 116, 3 जून 2011, पृ. 685. **27.** निलुफर गोल, 'सैपशॉट्स ऑफ इस्लामिक मॉडर्निटीज', **डेडलस**, 129,1, मल्टीपल मॉडर्निटीज पर विशेषांक, शीत 2000, पृ. 91-117, **28.** पुरुषोत्तम अग्रवाल की 'देशज आधुनिकता' का आधार अधिकतर मध्यकालीन भारत (जो शब्द शृंखला उन्हें नापसंद है) में वाणिज्य का विकास है। देखिये उनकी **अकथ कहानी प्रेम की**। अग्रवाल मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के विशेषज्ञ हैं। **29.** **डेडलस**, 129,1, शीत 2000. **30.** **डेडलस**, 127, 3, 1998, जिसका सम्पादन एस.एन. आइजेनस्टाट व केल्विंग श्लुख्टर ने किया है। **31.** आरिफ डलिक, 'रिविजनिंग मॉडर्निटी : मॉडर्निटी इन यूरोशियन पर्सपेक्टिव', **इंटर एशिया कल्चरल स्टडीज**, 12, 2 (2011), पृ. 84-305; जैक गुडी, **कैपिटलिज्म एंड मॉडर्निटी : द ग्रेट डिबेट**, पॉलिटी प्रेस, कैम्ब्रिज यू.के., 2004, विशेषकर अध्याय 6; जैक गुडी, **द थैफ्ट ऑफ हिस्ट्री**, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2006 जहां इस विषय पर अप्रत्यक्ष चर्चा है। **32.** रोजांत प्राजनिअक, 'सिएना ऑन द सिल्क रोड्स : एम्ब्रोजियो लोरेंजैती एंड द मॉगोल ग्लोबल सेंचुरी (1250-1350)', **जर्नल ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री**, 21, 2, जून 2010, पृ. 177-217, **33.** जे.एम. ब्लाउट, **द कोलोनाइजर्स मॉडल ऑफ द वर्ल्ड: ज्योग्रफिकल डिफ्यूजनिज्म एंड यूरोसेण्ट्रिक हिस्ट्री**, गिलफोर्ड प्रेस, न्यूयार्क, 2000, **34.** आरिफ डलिक, 'थिंकिंग मॉडर्निटी हिस्टोरिकली: इज 'आल्टरनेटिव मॉडर्निटी' द आंसर?', **एशियन रिव्यू ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्रीज**, 1, 1, 2013, पृ. 5-44, **35.** केन्नेथ पोमेरेन्ज **द ग्रेट डाइवर्जेंस** पृ. 3-10 आदि। **36.** जाक ले गौफ **हिस्ट्री एंड मेमोरी**, पृ. 23 : '... इतिहास का प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक काल में 'विभाजन सोलहवीं शताब्दी में स्थापित हुआ'। **37.** हेरी एल्मर बान्स, **ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग**, द्वितीय संशोधित संस्करण, डोवर पब्लिकेशंस, न्यूयार्क, 1963, पृ. 16, 173. **38.** विभिन्न प्रकाशित आलेखन में देखिये **द मिडीवल हिस्ट्री जर्नल** का प्रथम अंक जो कई क्षेत्रों के 'मध्यकाल के संदर्भिकरण' पर केन्द्रित है, 1998. इन क्षेत्रों में यूरोप, चीन, जापान, भारत, अरब मुस्लिम क्षेत्र और मध्य एशिया शामिल हैं। **39.** जॉन विहरोक्क, 'मॉडर्निटी : वन, नन और मैनी? यूरोपियन ओरिजिन्स एंड मॉडर्निटी ऐज ए ग्लोबल कंडीशन', **डेडलस**, 129, 1, मल्टीपल मॉडर्निटीज पर केन्द्रित विशेषांक, 2000, पृ. 31-60. **40.** जैक गुडी, **द थैफ्ट ऑफ हिस्ट्री**, अध्याय 5, **41.** शेल्डन पौलौक, 'इंडिया इन द वर्नाकुलर मिलेनियम : लिट्टेरी कल्चर एंड पॉलिटी 1000-1500', **डेडलस**, 127, 3, पूर्व आधुनिकताओं पर केन्द्रित विशेषांक, 1998, पृ. 41-74. **42.** सूजन रेनोल्ड्स, **द मिडल एजेज विदाउट स्पूडलिज्म एस्सेज इन क्रिटिसिज्म एंड कम्पैरिजन ऑन द मिडीवल वैस्ट**, ऐशगेट वैलोरियम, फार्नहैम, 2012, पृ. 202।

## विष्णु नागर की आठ कविताएं

---

### उनका कद

सोनिया गांधी राहुल गांधी से निश्चय ही उनका कद बहुत छोटा है  
उन्होंने एक बार नापा था तो उनके कुत्ते बिल्लियों से भी छोटा निकल गया  
सुविधा के लिए वे पीएम के कद से भी अपने को छोटा मान लेते हैं  
वैसे वे इतने ज्यादा विनम्र भी हैं कि गडकरी से  
अपने को छोटा मान लेने में हर्ज नहीं मानते  
राष्ट्रपति जब तक राष्ट्रपति हैं  
उनसे भी अपने को छोटा मानने में उन्हें दिक्कत नहीं  
नापा नहीं उन्होंने अपना कद उपराष्ट्रपति से मगर उन्हें लगता है  
कि सम्भव है उनसे भी वे थोड़े ही छोटे हों  
टाटा, बिड़ला, अम्बानी से अपने को छोटा मानने में तो  
खैर उन्हें कभी कोई समस्या ही नहीं रही

वैसे उनका कद काफी बड़ा है  
आप ये समझ लो कि नरेन्द्र मोदी से कुछ ही छोटा होगा  
और शरद यादव से कुछ तो बड़ा निश्चय ही होगा ही

साहित्यकार कलाकार तो उनके आगे कहीं लगते ही नहीं  
लेकिन चोरों लुटेरों से कद उनका कई बार बहुत छोटा पड़ जाता है  
और कोई खींचखांच कर लम्बा कर दे तो फिर उस समय लम्बा भी हो जाता है

आपने अपने रामलखन की याद कहां दिला दी  
वह तो उनके सामने पिद्दी क्या पिद्दी का शोरबा भी नहीं है  
उससे वे 150 नहीं तो कम से कम 100 फीट ऊंचे तो होंगे ही!

भेजे में गया आपके कुछ  
वैसे आपको क्या समझ में आयेगा  
आपको तो इतना तक नहीं मालूम कि आपका कद कितना है  
उनके हिसाब से तो डेढ़ फीट से कुछ ज्यादा मगर दो फीट से कुछ कम होगा  
उनके सामने तो आप कीड़े हो  
वो भी बिलबिलाते हुए  
और बिलबिलाते हुए भी, तब जब वे बिलबिलाने की इजाजत दें।

## तोप

माना कि आप तोप ही नहीं, बहुत बड़ी तोप हैं  
बल्कि बहुत बड़ी क्या  
सबसे बड़ी तोप हैं  
लेकिन किसी ने बनाया है तभी तो आप तोप हैं  
किसी ने बारूद भरी, तभी तो आप तोप हैं  
किसी को चलाना आता है  
तभी तो आप तोप हैं  
और तोप हैं तो  
मशीनगनों और बमों के जमाने में तोप हैं!

## हमने उन्हें मना लिया

हमने उन्हें मना लिया  
हमने उनसे इतनी इतनी बार माफी मांगी  
कि वे न पिघलने की कसम खाकर भी  
पिघल गये  
और इस तरह हमने उन्हें मना लिया

हम उन्हें कितना कितना चाहते हैं  
यह बताते बताते कहीं हम रो न पड़ें  
इस डर से वे मुस्करा दिये  
और हमने उन्हें मना लिया

हमने उन्हें चने के झाड़ पर इतना चढ़ाया, इतना चढ़ाया  
कि उससे गिर जाने के डर से मान गये  
और हमने उन्हें मना लिया

हमने कुएं में छलांग लगाने, तीसरी मंजिल से कूद जाने  
सरेआम चूम लेने का भय दिखा कर उन्हें मना लिया  
वे तो मानना चाहते ही थे  
इसलिए हमने उन्हें मना लिया

वे जानते हैं कि वे जब भी रूठेंगे  
वे कितना ही रूठें  
हम इसी तरह उन्हें मना लेंगे  
वे जानते हैं  
हम कितने झूठे हैं  
फिर भी देखो हम हैं कि उन्हें मना ही लेते हैं!

## समुद्र

कुछ लोगों में  
समुद्र सी गहराई और वैसा ही विस्तार होता है  
गहराई इतनी कि गोताखोर तल तक जाकर  
भी उसका पता न दे सकें  
विस्तार इतना कि कितनी ही बार  
समुद्र नाप लो  
तब भी उसका पता नहीं चलता

लेकिन यह भी होता है कि उनकी लहरें  
किनारे तक जा पछाड़ खाकर लौट लौट आती हैं  
उनके आकर्षण में बंधे लोग उनके पास आते हैं  
उनमें खूब नहाते हैं लेकिन कभी कभी उनमें डूब भी जाते हैं



उन्हीं को लोगों की, कारखानों की, जहाजों की गंदगी भी  
झेलनी पड़ती है और शिकायत करना क्या होता है इससे अनजान रहना होता है

मछलियों और तमाम करोड़ों जीवों को पालने के बावजूद  
उनमें इतनी ताकत नहीं होती कि बड़े बड़े ट्रालरों से इन्हें बचा लें  
समुद्र होने के सुख उसके दुखों से कम नहीं ज्यादा ही होते हैं

और समुद्र को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता  
कि हम उस पर कविताएं लिखा करते हैं।

## आग भी जानती है

आग भी जानती है  
कि कहां लगेगी तो कोई जल्दी उसे बुझा नहीं पायेगा  
इसलिए वह जिनके दिलों में लगती है  
उनके घरों को भी नहीं छोड़ती।

## आवाजें

कुछ आवाजें इतनी धीमी, इतनी कोमल होती हैं  
कि हम उन्हें सुन नहीं पाते  
कुछ आवाजों में खतरे की घंटियां लगातार बजती हैं  
इसलिए हम उन्हें सुन कर भी सुनना नहीं चाहते  
कुछ आवाजों को हम जानते हैं कि हम जब चाहेंगे, इनका गला घोट देंगे  
इसलिए हम उन्हें अनसुना करते रहते हैं  
लेकिन होती तो हैं ये सभी आवाजें  
और इनमें से कुछ आवाजें कभी हमारी भी थीं  
जो भटकते हुए अब भी हमारा पता पूछती रहती हैं।

## दूर रहते हुए भी

दूर रहते हुए भी इतने पास रही  
जैसे तुम, तुम नहीं आकाश हो  
जैसे वह कई कई रंग बदलता है  
जैसे वह तारों से जगमगाता है

जैसे वह सूरज और चांद दोनों लाता है  
जैसे वह कभी कभी दोनों को बादलों से ढंक देता है  
जैसे वह नीला, एकदम नीला  
नीले से भी ज्यादा नीला हो जाता है  
जैसे वह अपना और अपना और भी अपना हो जाता है  
जैसे वह दूरियों को नजदीकियों के एकदम करीब ला देता है।

## वह भी मैं हूँ

जो सपने में तैरते तैरते सातों सागर पार करता रहा  
वह भी मैं हूँ  
जो बूढ़ा हरहमेशा खांसता कराहता रहा  
वह भी मैं हूँ  
जो भीड़ में धक्के खाता रहा, वह भी मैं हूँ  
और जो हर मौके पर भुला दिया गया  
और जो हर बार बेशर्मी की तरह अपनी याद दिलाता रहा  
वह भी मैं हूँ

जो मैं कल था  
आज नहीं हूँ  
वह भी मैं हूँ  
और जो इस बदलाव पर सवाल करता है  
वह भी मैं हूँ

हालांकि मैं हूँ कहां मैं?  
मैं तो तू हूँ, मैं तो वह हूँ  
मैं तो चिड़िया हूँ, उसकी भी बस चीं चीं चीं हूँ।

# बद्री नारायण की कविताएं

---

## कहां दूढ़ंगा उसे

कोई इसे पियेगा  
कोई इसे सोखेगा  
कई जगह यह खुद ही सूखता जायेगा  
एक दिन इस दुनिया में अपना काम कर  
पानी कहीं चला जायेगा  
फल मीठा लग कर खत्म हो जायेगा  
फूल खिलेगा, खिलने के बाद चमकेगा हमारी आंखों में  
फिर मुरझा कर झड़ जायेगा  
चांद से चू ओस की बूंदें केले के पत्ते पर  
गिर उसकी चमक बढ़ा झड़ जायेगी  
शाश्वत और अमर समय घटने के बाद बीत जायेगा

अमावस्या की रात गंगा घाट पर चमकती अग्नि में  
सोने की काया राख बन रही होगी, किसकी है यह काया  
अंधेरे में सड़क किनारे रोते कुत्ते

अशुभ का संकेत करने के सिवा  
कुछ नहीं कह पायेंगे  
कोई अपरिचित, कोई अनाम, कोई अनजान  
हो सकता है इसमें कोई वह जल रहा हो  
जिसके साथ बिताये हों हमने  
जीवन के कई सुंदर पल  
जिससे भावनाएं, प्रेम और प्यार मिला हो  
या वह जिससे कभी प्रेम हुआ हो, कभी दुश्मनी,  
कहां दूहूंगा उसे

स्वर्ग, नरक, अमरपुर, सुरपुर या मायापुर  
इस लोक में नहीं तो  
हो सकता है उसी लोक में  
कहीं वह मिल जाये किसी बाजार में  
सब्जियां खरीदता या  
किसी तालाब में नहाता

## तुम क्यों नहीं समझते

आनंद, वैभव, खुशियों की तलाश में  
मॉल, हाईवे, फ्लाईओवर से गुजरते  
तुम पहुंच रहे हो  
एक महाबाजार में  
उसी बाजार के बिल्कुल बगल से  
खुलता है मृत्युलोक का एक महाद्वार  
तुम समझते क्यों नहीं

तुम समझते क्यों नहीं  
कि जिन्दगी की हंसी खिलखिलाहटों के बीच  
यह दुनिया है एक महाशमशान  
हीरे में भी पत्थर होता है तुम क्यों नहीं समझते  
तुम क्यों पानी के बुलबुले पर बैठ  
राई राई, पाई पाई जोड़ने में समझते हो अपनी शान

तुम समझते क्यों नहीं

कि इस सभ्यता को  
कबीर की एक बार फिर आ पड़ी है जरूरत  
कि एक बार फिर पुराने डिक्शन में नयी बात  
कहने की बड़ी आवश्यकता है

तुम समझते क्यों नहीं  
कि प्रेम मात्र सुख ही नहीं है  
प्रेम के पीछे भरा है अनंत दुख  
कि तुम्हें बुद्ध क्यों नहीं आते याद  
यह ठीक है कि यह जिन्दगी बहुत मनोरम है  
और चौरासी योनी के बाद  
मानुष जन्म पाने पर  
तुम चाहते हो इस जीवन के हर आनंद को भोग लेना  
परंतु तुम यह क्यों नहीं समझते  
कि चारवाक दिल्ली में महाभोग के बाद भी कितना दुखी है  
और शाहदरा की किसी गली में बैठा फूट फूट रो रहा है

कि तुम फिर से उस हंसा को  
क्यों नहीं करते याद  
जो हरे गांछ से उड़ान भरने को  
न जाने कबसे खड़ा है  
तैयार

## पहचान

अजब कन्फ्यूजन है इस समय में  
सब अपनी अपनी पहचान से त्रस्त हैं  
किसी के लिए पहचान शक्ति है  
किसी के लिए सजा  
किसी के लिए जो पहचान कहीं लाभ का सौदा है  
वही कहीं हानि का खेल  
किसी के लिए पहचान  
घर में अलगनी पर टंगे कपड़ों से ज्यादा कुछ नहीं है  
जिन्हें कभी इसको उसमें  
कभी उसको इसमें मैच करा के

पहनता है

कोई असली खाटी मूल निवासी  
होने का दम भरता है  
पर सच तो यह है लोगों  
जो अपने को जहां का समझता है  
सच मानो वह वहां का नहीं है

कलानगर का के.के. कोंकण से आया है  
और मेरिन्ड्राइव का आर.के. दंडकारण्य से  
एस.के. दूर लातूर से

दुनिया एक खाली डब्बे के समान है  
और हम खाली डब्बे में पड़े हुए  
कंकड़ के समान,

डब्बा थोड़ा भी हिलता है तो  
हम इधर से उधर बिखर जाते हैं  
कोई विदर्भ से जनकपुर  
कोई मगध से सतारा  
कोई अंगदेश, बंगदेश  
कोई कोणार्क में पड़ा है  
जो जहां खड़ा है वहीं गड़ा है  
जो जहां गड़ा है, कोई जरूरी नहीं वह वहां खड़ा हो  
हर कोई अपने आपको ही खूब जोर से  
पकड़ के रखे है हारिल की लकड़ी के मानिन्द

मुम्बई में काली पीली टैक्सी की  
स्टेयरिंग घुमाते  
कहते हैं राम अवध शुक्ल  
कोई कितना भी जकड़े पकड़े भइया  
पर सच तो यह है  
कि यह दुनिया कंजूस मालकिनि की  
सराय है  
जहां पर हर क्षण सबको अपना बिस्तरबंद

पैक रखना है  
कब हो जाये जाने का आदेश  
कोई ठीक नहीं।

## पिछले जन्म की याद

मैं अब भी लिए फिरता हूँ  
लाल रुमाल में बंधी आग  
जिसे पिछले जन्म में किसी ने दिया था  
उसे मैंने खुशी खुशी अपने कुरते के आगे वाली जेब में  
रख लिया था  
पहले कुरता जला, फिर देह जली,  
पिछले जन्म में उसी से हुई मेरी मृत्यु  
इस जन्म में भी मेरे संग रह गया है  
वही आग बंधा लाल रुमाल  
फिर जलने लगी है मेरे कुरते की बांह  
मेरी देह जलने लगी है  
पर मैं इसे फेंकूंगा नहीं  
यह किसी की दी हुई भेंट जो है  
इसे मैं जनम जनम तक साथ रखूंगा।

# प्रकाश की चार कविताएं

---

जन्म : 11.11.1976। काव्य संकलन : होने की सुगंध। सम्मान : भारतीय भाषा परिषद का युवा पुरस्कार। सम्प्रति : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में कार्यरत। इन दिनों : हिन्दी के बारह कवियों पर केन्द्रित एक आलोचना पुस्तक का लेखन।

## सुकर्ण

एक कहना था जिसको सुनता हुआ एक सुकर्ण था

कहना सुकर्ण के निकट था सुकर्ण चौकन्ना था  
सुकर्ण सुन कर स्वीकृति में सिर हिलाता था

सुकर्ण क्या सुन कर सिर हिलाता था?

कहने की ध्वनि ऋक् नहीं थी  
वह साम और उद्गीथ भी नहीं था  
वह कहना वाक् नहीं था  
सुकर्ण जब वाक् नहीं सुनता था तो क्या सुनता था?



सुकर्ण सुनता रहता था  
एकाएक वह उठता था नदी की ओर बढ़ जाता था  
वह जल में कटि तक स्थित होता था  
उसके समक्ष पूर्व में उठता हुआ सूर्य था

कहना सुकर्ण के निकट आता था  
उसका स्वर वाक् नहीं था  
सुकर्ण सुनता था  
सुकर्ण जब वाक् नहीं सुनता था तो क्या सुनता था?

सुकर्ण सूर्य की ओर अपलक देखता था  
सुकर्ण अवाक् को सुनता था  
सुन कर सुकर्ण स्वीकृति में सिर हिलाता था

सुकर्ण अवाक् स्वीकृति को सुनता था!

## गिरता हुआ परदा

धीरे धीरे एक उठता हुआ परदा था!

सामने से उफनता हुआ एक दरिया आता था  
एक गिरती हुई रोशनी एक बहता हुआ बादल आता था  
एक स्याह पक्षी की प्यास उड़ती हुई आती थी  
शीतल हवा में एक उत्तप्त सांस घूमती फिरती थी  
वह आती थी  
एक अदृश्य आंख से देखा गया अभिराम दृश्य उतर कर आता था

एक घनी पुकार पुकारकर गूंजती करीब आती थी  
कोई एक इठलाता हुआ खिलखिला कर हंसता था  
उसकी हंसी का साम बहता हुआ आता था

वह साम सुन कर कोई एक करुणा से रोता रहता था  
उसका रोना झर झर दरिया में गिरता था

उठा हुआ एक परदा

धीरे धीरे एक गिरता हुआ परदा हो जाता था!

## रंग

उसके अंक में प्रवेश कर अग्नि लुप्त हो गयी थी  
उसकी आभा के पास पहुंच कर काला गिर गया था  
हरा उसकी सीमा में जाकर विरल हो रहा था  
नीला उसके पीछे परदे में रहा करता था  
परदा और नीला अब वहां नहीं था  
पीला उसकी थाह लेना चाहता था  
परंतु उसे छूने से पहले कांप जाता था  
भूरा उसमें प्रवेश करने से पहले खो गया था  
अब वह बेतहाशा खुद को ही टूटता फिरता था  
सुनहरा खुश था कि वह किसी तरह उसमें शामिल हो गया है  
पर गफलत टूटते ही मायूस हो जाता था  
गुलाबी उसमें लगभग घुस सा गया था  
कि अचानक बाहर धकेल दिया जाता था  
मटमैला पहले से डरा हुआ था  
वह उसके पास जाने से पहले इतना सावधान था  
कि अतिरिक्त में फिसल कर किसी गह्वर में जा गिरता था

सबके वजूद के गिरे हुए मलबे पर उठा हुआ वह  
सबके बिखरे हुए सौन्दर्य पर खिलता हुआ वह

शीतल

सहज

ज्योकित

श्वेत था!

## ज्ञ

निर्ध्वनि में केवल 'ज्ञ' ध्वनित होता था।

'ज्ञ' को सुनने के लिए 'ज्ञ' की ध्वनि होती थी  
'ज्ञ' की ध्वनि को सुनता हुआ एक और 'ज्ञ' ध्वनित होता था  
दोनों को सुनता हुआ एक तीसरा 'ज्ञ' ध्वनित होता था

यूं 'ज्ञ' के समग्र जोड़ में 'ज्ञ' का अनंत 'ज्ञ' ध्वनित होता था  
'ज्ञ' का अनंत 'ज्ञ' निर्ध्वनि में ध्वनित होकर आकाश होता जाता था  
एक समय 'ज्ञ' निर्ध्वनि को आपूरित कर देता था

निर्ध्वनि चुपचाप 'ज्ञ' का आकाश देखता था

और 'ज्ञ' से बाहर चला जाता था  
वहां एक और 'ज्ञ' उसकी प्रतीक्षा करता था!

# हलफनामा : कविता के दक्खिन टोले से

अशोक कुमार पाण्डेय

छात्र जीवन में वामपंथी राजनीति में गहरे सक्रिय अशोक के तेवर अब भी तीखे हैं। आर्थिक विषयों पर गम्भीर लेखन के बाद कविता पथ पर गतिशील। अशोक अनुवाद के क्षेत्र में भी काम करते हैं। 'लगभग अनामंत्रित' कविता संग्रह चर्चित।

कल्ल की उस सर्द अंधेरी रात  
हसन हुसैन की याद में छलनी सीनों के करुण विलापों के बीच  
जिस अनाम गांव में जन्मा मैं  
किसी शेषनाग के फन का सहारा हासिल नहीं था उसे  
किसी देव की जटा से नहीं निकली थी उसके पास से बहने वाली नदी  
किसी राजा का कोई सिंहासन दफन नहीं था उसकी मिट्टी में  
यहां तक कि किसी गिरमिटिये ने भी कभी लौट कर नहीं तलाशीं उस धरती में अपनी जड़ें

कहने को कुछ बुजुर्ग कहते थे कि  
गुजरा था वहां से फाह्यान और कार्तिक पूर्णिमा के मेले का जिक्र था उसके यात्रा  
विवरणों में

लेकिन न उनमें से किसी ने पढ़ी थी वह किताब  
न उसे पढ़ते हुए कहीं मुझे मिला कोई जिक्र

इस कदर नाराजगी इतिहास की  
कि कमबख्त इमरजेंसी भी लगी तो मेरे जन्म के छः महीने बाद  
वैसे धोखा तो जन्म के दिन से ही शुरू हो गया था  
दो दिन बाद जन्मता तो लाल किले पर समारोह का भ्रम पाल सकता था  
इस तरह जल्दबाजी मिली विरासत में  
और इतिहास बनने से चुक जाने की नियति भी...

## (दो)

वह टूटने का दौर था  
पिछली सदी के जतन से गढ़े मुजस्सिमों और इस सदी के तमाम भ्रमों के टूटने का दौर

कितना कुछ टूटा

अयोध्या में एक मस्जिद टूटने के बहुत पहले इलाहाबाद रेडियो स्टेशन के किसी गलियारे  
में जवान रसूलन बाई की आदमकद तस्वीर के सामने चूड़िहारन रसूलन बाई खड़े खड़े  
टूट रही थीं। सिद्धेश्वरी तब तक देवी बन चुकी थीं और रसूलन बाई की बाई रहीं।<sup>1</sup>

यह प्यासा के बाद और गोधरा के पहले का वाकया है...

बारह साल जेल में रह कर लौटे श्याम बिहारी त्रिपाठी खंडहर में तबदील होते अपने घर  
से निकल साइकिल से 'लोकलहर' बांटते हुए चाय की दुकान पर हमसे कह रहे थे 'हम  
तो हार कर फिर लौट आये उसी पार्टी में, तुम लोगों की उम्र है, हारना मत बच्चा कामरेड  
और हम उदास हाथ उनके हाथों में दिये मुस्करा रहे थे।

यह नक्सलबारी के बाद और सोवियत संघ के बिखरने के ठीक पहले का वाकया है...

इस टूटने के बीच  
हम कुछ बनाने को बजिद थे  
हमारी आंखों में कुछ जाले थे  
हमारे होठों पर कुछ अस्पष्ट बुदबुदाहटें थीं

और तिलंगाना से नक्सलबारी होते हुए हमारे कंधों पर सवार इतिहास का एक रौशन  
पन्ना था जिसकी पूरी देह पर हार और उम्मीद के जुड़वा अक्षर छपे थे। सात रंग का

1. सबां दीवान की डाक्यूमेण्ट्री 'द अदर सांग देखते हुए।

समाजवाद था जो अपना पूरा चक्र घूमने के बाद सफेद हो चुका था। एक और क्रांति थी संसद भवन के भीतर सतमासे शिशु की तरह दम तोड़ती। इन सबके बीच एक फिल्म थी इंकलाब जिसका नायक तीन घंटों में दुनिया बदलने के तमाम कामयाब नुस्खों से गुजरता हुआ नाचते गाते संसद के गलियारों तक पहुंच चुका था।

एक और धारावाहिक था जिसे रोका रखा गया कई महीनों कि उसके नायक के सिर का गंजा हिस्सा बिल्कुल उस नेता से मिलता था जिसने हिमालय की बर्फ में बेजान पड़ी एक तोप को उत्तर प्रदेश के उस इंटर कालेज के मैदान में ला खड़ा किया था जिसमें अपने कंधों से ट्रालियां खींचते हम दोस्तों ने पहली बार परिवर्तन का वर्जित फल चखा था। वह हमारे बिल्कुल करीब था... इतना कि उस रात उसकी छायाएं हमसे गलबहियां कर रही थीं और हम एक फकीर को राजा में तबदील होते हुए देख रहे थे जैसे तहरीर को तस्वीर होते देखा हमने वर्षों बाद...

### (तीन)

फिर एक रोज हास्टल के अधअंधेरे कमरे में अपनी पहली शराबें पीते हुए हमने याद किया उन दिनों को जब अठारह से पहले ही नकली नामों से उंगलियों में नीले दाग लगवाये हमने और फिर भावुक हुए... रोये... चीखे चिल्लाये... और कितनी कितनी रातों सो नहीं पाये...

वे जागते रहने के बरस थे

जो बदल रहा था वह कहीं गहरे हमारे भीतर भी था

बेस्वाद कोका कोला की पहली बोतलें पीते

हम एक साथ गर्वोन्नत और शर्मिन्दा थे

जब अर्थशास्त्र की कक्षा में पहली बार पूछा किसी ने विनिवेश का मतलब

तो तीसके साल पुराने रजिस्टर के पन्ने अभिशप्त आत्मा की तरह फड़फड़ाये एकबारगी

और फिर दफन हो गये कहीं अपने ही भीतर

पुराने पन्ने पौराणिक पंखी नहीं होते

उनकी राख में आग भी नहीं रहती देर तक

झाड़ू के चंद अनमने तानों से बिखर जाते हैं हमेशा के लिए

वे बिखरे तो बिखर गया कितना कुछ भीतर बाहर...

और बिखरने का मतलब हमेशा मोतियों की माला का बिखरना नहीं होता न ही किसी पेशानी पर बिखर जाना जुल्फों का टूटे थर्मामीटर से बिखरते पारे जैसा भी बिखरता है बहुत कुछ।

## (चार)

सब कुछ बदल रहा था इतनी तेजी से  
कि अकसर रात को देखे सपने भोर होते होते बदल जाते थे  
और कई बार दोपहर होते होते हम खिलाफ खड़े होते उनके  
हम जवाबों की तलाश में भटक रहे थे  
सड़कों पर, किताबों में, कविताओं में  
और जवाब जो थे वे बस सिगरेट के फिल्टर की तरह  
बहुत थोड़ी सी गर्द साफ करते हुए...  
और बहुत सारा जहर भीतर भरते हुए हम नीलकंठ हुए जा रहे थे...

इतना जहर लिए हमें पार करनी थी उम्र की दहलीज  
जहां प्रेम था हमारे इंतजार में  
जहां एक नयी दुनिया थी अपने तमाम जबड़े फैलाये  
जहां बनिये की दुकान थी, सिगरेट के उधार थे  
जरूरतों का सौदा बिछाये अनगिनत बाजार थे  
हमें गुजरना था वहां से और खरीदार भी होना था  
इन्हीं वक्तों में हमें नींद ए बेखाब भी सोना था

और फिर ...उजाड़ दफ्तरों में बिकी हमारी प्रतिभाएं  
अखबारों के पन्ने काले करते उड़े हमारे बालों के रंग  
वह जहर ही था हमारी आत्मा का अमृत  
वह जहर ही था नारों की शक्ल में गूंजता हमारे भीतर कहीं  
वह जहर ही था किसी दंतेवाड़ा के साथ धधक उठता  
वह जहर ही था किसी सीमा आजाद के साथ उदास  
वह जहर ही था कविताओं की शक्ल में उतरता हमारी आंखों से

## (पांच)

हा, हम लगभग अभिशप्त हुए कवि होते जाने को। आजादी की तलाश में हम एक ऐसी दुनिया में आये जहां एक बहुत पुराना गांव रहता था अपनी पूरी आनबान के साथ। ढेर सारे कुल कुनबे थे और चली ही आ रही थी उनकी रीत। आलोचक थे, सम्पादक थे, निर्णायक थे, विभागाध्यक्ष थे, पीठाध्यक्ष थे और इन पंच परमेश्वरों के सम्मुख हाथ जोड़े सर्वहारा कवियों की एक पूरी जमात जिनका सब कुछ हरने के बाद उन्हें पुरस्कार दे दिये जाते थे। पंचों की आलोचना वर्जित रीति थी और मौत से कम किसी सजा का प्रावधान

नहीं था उस अलिखित संविधान में। हैरान आंखों से देखते समझते सब हम जा बसे  
दक्खिन टोले में।

**(छह)**

और

पूरा हुआ जीवन का एक चक्र

खुद को छलते हुए खुद की ही जादूगरी से

बीस से चालीस के हुए और अब शराब के खुमार में भी नहीं आते आंसू

डर लगता है कि कहीं किसी रोज कह ही न बैठें किसी से

कि ऐसे ही चलती रही है दुनिया ऐसे ही चलती रहेगी

और...

और जोर जोर से कहने लगते हैं

बदलती ही रही है दुनिया और बदलती रहेगी...



# अपर्णा मनोज की कविताएं

---

अपर्णा मनोज : नयी प्रतिभाओं में बहुत सम्भावनापूर्ण नाम। अपर्णा ने कुछ कहानियां भी लिखी हैं।

## स्त्री और मृत्यु

मृत्यु एक बार तुम हो जाओ प्रविष्ट मेरी रोशनी की गुफा में  
और मैं तुम्हारी हथेलियों की काली लकीरों में  
हो जाओ तुम स्त्री  
हो जाओ तुम मेरा दुख  
हो जाओ तुम मेरा सुख  
हो जाओ मेरे हाथ  
मेरे घने केश  
मेरा वस्त्र पहन कर देखो एक बार।  
हो जाओ तुम स्त्री का रेशा रेशा, स्त्री का आदि अंत

तुम अपने डैने फंसा कर देखो  
एक बार स्त्री के तूफान में

गिर कर देखो उसके अथाह में।

और जब गिरने लगे आकाश, शरीर से बाहर आनी लगे सांसें  
तो उतर आना संभल कर उस पर्वतारोही सी जिसकी विजय  
मात्र सन्नाटा और निर्जन है।

तब ये औरत देगी सीढ़ियां, तुम्हें पेड़ की वह सुखद टहनी  
देगी तुम्हें नदी का ठंडा पानी  
तुम्हारे ठंडे हाथों को बोरसी की गर्माहट  
देगी तुम्हें हरेपन की छाया और यथार्थ के पैरों में चुभे काटे पर खिला देगी गुलमेंहदी।

जब तुम बहुत अकेली हो जाओ मौत  
तुम्हारी काया में प्रविष्ट होते हुए  
खड़ी होगी तुम्हारी सांस में स्त्री की देह, उसकी छाती, उसका प्रेम  
उसकी निर्मलता, उसके जख्म  
उसके संघर्ष जिनके अवशेष तक पी गयीं सभ्यताएं  
और पत्थरों के पास इतनी ताकत नहीं बची कि वे बन सकते शिलालेख  
भोजपत्र तो वैसे भी कमजोर थे, प्रशस्तियों के ही काम आये।

पुरुष के पास बोलने के लिए शब्द नहीं थे  
भाषा भूल जाती थी लिखना  
और व्याकरण में उभर आते थे कई दोष।

तुम चाहो तो उसका शिशु हो सकती हो मौत।

संवादहीनता की जीभ से बाहर  
तुम बन कर देखो औरत का सनातन चेहरा  
फंसा कर देखो अपनी नन्हीं उंगलियां उसके दूध भरे स्तनों में  
लगा लो अपने गुलाबी ओंठ  
पीकर देखो मातृत्व का स्त्री होना

यूँ मोक्ष के बाहर हो सकती हो।

और मेरा तुम्हारे भीतर होना कोई नयी बात नहीं।

## मैं और मृत्यु

मृत्यु ने मेरे भीतर जाते हुए कहा

हे! राम

और मैंने उसकी गंगाजली से किया वुजू

...

इस तरह से हम दोनों कोशिश करते रहे एक दूसरे को पहचानने की  
हमारी शक्तें समय बना रहा था

और समय के पास दो ही रंग थे... बहुत सफेद जो जिन्दगी भर मैं ओढ़े रही  
और बहुत काला जिसमें से गुजर कर जाना होता था हर बार सफेद को

अंत में हम दोनों के बीच दूरियां थीं उतनी

जितनी कि धमाके के बीच गिरते इंसान की...

# अविनाश मिश्र की तीन कविताएं

---

समझ से जहीन और स्वभाव से संकोची अविनाश मिश्र कविताओं के प्रकाशन में दिलचस्पी कम रखते हैं। यह दूसरा मौका है जब उनकी कविताएं शायी हो रही हैं। कभी कभी गद्य में भी काम करते हैं। इन दिनों 'पाखी' पत्रिका के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध।

## फर्स्ट टाइम क्राइम एंड पनिशमेण्ट और ये वे नन्हें फूल हैं जो...

वे शायद सुधर रहे थे तब ही खबर आयी कि वे एक मुठभेड़ में मार दिये गये...

पहले जुर्म की स्मृतियां नहीं होतीं

लेकिन एक मस्तिष्क में वह वैसे ही विकसित होता रहता है

जैसे इस संसार में एक वृक्ष या एक देह या देह में मस्तिष्क...

आपराधिक प्रवृत्ति के इस विकासक्रम के वे विस्मृत बीज कहां हैं?

इस प्रश्न पर विचार करते हुए सामान्यताएं भी वैसे ही विकृत नजर आती हैं

जैसेकि अपराधी... लेकिन वे विस्मृत कहां हैं...??

गर्भ में नन्हें नन्हें पैरों से बेवक्त और बार बार मां को पीड़ा पहुंचाना

और बेवक्त और बार बार ही फारिग होना एक असमर्थ देह की जरूरतों से

वे एक उम्र तक जुर्म क्या है नहीं समझते  
लेकिन माएं दर्द को विकल्पों में से नहीं चुनतीं  
वहां वह इतना शाश्वत, सहज और अनिवार्य होता है कि बस और क्या कहा जाये...  
लेकिन वे एक उम्र तक दर्द क्या है नहीं समझते  
नये नये उभरते हुए दांतों की प्रखरता मां के गुदगुदे स्तनों पर दर्शाना...  
वे उम्र गुजार देते हैं और दर्द क्या है नहीं समझते...

बाग बागीचों से गुजरते वक्त फूलों और पत्तियों को तोड़ते हुए चलना  
बैठना जब भी घास पर तब उसे उखाड़ते रहना  
मिल जाये जो भी सिरा उसे उधेड़ते रहना  
जमीं पर रेंगती हुई चींटियों को कुचलते हुए चलना  
ठोकरों और ठोकरों से जूतों को जल्दी जल्दी फटने देना  
पतंगों को उड़ाना कम फाड़ना ज्यादा  
और होमवर्क की कापियों को हवाई जहाज बना कर उड़ा देना  
या उनकी कशितयां बनाना बारिश के मौसम में  
और इसी मौसम में स्कूल से लौटते वक्त भीगना और भिगाना उन किताबों को  
जिन्हें मुहावरे में मां बाप ने पेट काट कर खरीदा था  
इसके बाद बीमार और अनुपस्थित होना कक्षाओं से एक लम्बे वक्त के लिए  
फिर बीमारियों के महत्व को समझते हुए उनके बहाने बना कर पढ़ाई से दूर बने रहना  
स्कूल की ड्रेस में स्कूल न जाकर भटकना शहर के कूचों में बीड़ियां फूंकते और  
यह खोजते हुए कि वे आखिर कहां निकलते हैं  
दीवार पर बैठी मक्खियों के मटमैले खून को हथेली पर जांचना  
गुलेल से गौरियों के घोंसले तबाह करना  
और मधुमक्खियों के छत्तों पर आजमाना तीर कमान  
गायों की आंखों में चुभोना सीकें और तितलियों को चिन्दी चिन्दी करना  
भमीरी के पैरों में धागे बांध कर उड़ाना  
और कुत्तों की दुमों में बांधना पटाखे

इमारतों में लगे शीशे तोड़ना और गाड़ियों के टायरों की हवा निकाल देना  
पेड़ों पर बरसाना पत्थर कच्चे फलों के लिए  
और कांच के गिलास के भीतर एक कीड़े को कैद कर  
परखना उस घुटन को जिसे वे नहीं समझते  
अध्यापक या अतिथि जब बैठने वाले ही हों तब ही उनके ठीक नीचे से कुर्सी हटा देना  
और अगली बार कुर्सियों पर च्यूंगम या कोई नुकीली चीज रखना  
ऊंचाइयों पर चढ़ कर गुजरते हुए राहगीरों पर थूकना या कुछ फेंकना

इंकपैनों और प्रकारों से हमले करना समवयस्क और समझदार सहपाठियों पर  
करंट और आग से डराना, मारना, चिढ़ाना और गलत ढंग से पुकारना  
उम्र में छोटे भाइयों और बहनों को  
'उठो लाल अब आंखें खोलो...' को नजरअंदाज करना और  
'मैया मैं तो चंद्र खिलौना लैहों...' टाइप जिदों से गुंजा देना आसमान  
इम्तिहानों में नकल और घर में चोरी करना  
बड़ों की बुलाहटें अनसुनी करना  
और भयंकर शोर मचाना एक काहिल बौद्धिक के कमरे के बाहर  
दीवार में लगी बंद खिड़कियों को खोल कर भाग जाना  
और दरवाजे पर पड़े पर्दे को लपेट कर खुद के इर्दगिर्द, गोलगोल घूमना देर तक  
भिखारियों को छेड़ना और पागलों को डिस्टर्ब करना

खेल कोई भी हो उसमें बेईमानी करना  
खेल कोई भी हो उसमें परस्पर चोटिल कर देने वाली कार्यवाहियां करना  
शतरंज, कैरम, कबड्डी, कंचे, क्रिकेट... खेल कोई भी हो उसे जुए में बदल देना  
गंदी गालियों से सीखी गयी गालियों के प्रथम प्रयोग बुजुर्गों पर करना  
और आशय से वंचित होते हुए भी कहना एक चुभती हुई बात सबसे निकटवर्तियों को  
और कुछ बड़े होने पर गली में से गुजरती एक लड़की की छातियां नोच कर भाग जाना  
और बाद इसके धीरे धीरे उस सब कुछ के प्रति नफरत से भर उठना जो हासिल नहीं है

वे एक उम्र तक जुर्म क्या है नहीं समझते  
और पहले जुर्म की स्मृतियां नहीं होतीं...

सरकार के उन पर कई एहसान थे  
वे सरकारी अस्पतालों में पैदा हुए  
सरकारी स्कूलों में शिक्षा पायी  
सरकारी फुटपाथों पर रातें गुजारीं  
सरकारी परिवहनों में बगैर कुछ चुकाए यात्राएं कीं  
सरकारी बाल सुधारगृहों और जेलों में रहे  
सरकारी अदालतों ने उन्हें सुधारने के अनेक प्रयास किये  
लेकिन आखिरकार वे एक सरकारी मौत मरे...

सरकारी हरदम असरकारी नहीं होता  
लेकिन यहां असरकारी भी असरकारी साबित नहीं हुआ  
वे उन 'एनजीओस' को ही बेच कर खा गये

जो उन्हें पुनर्वास और स्वावलम्बन के मायने समझाने आये थे...

शरारतें जुर्म नहीं होतीं, जुर्म का रियाज होती हैं  
आहिस्ते आहिस्ते एक लत एक जरूरत बनती हुई  
कई बड़ी नुमाइशों के लिए खुद को मुस्तैद करतीं  
सब तरफ शरारतें ही तो दिखती हैं इस वक्त में इतना रक्त बन कर  
मानवाकृतियों के घेरे में स्याह और जमी हुई शरारतें...

ये सिलसिले रुक नहीं रहे और ब्यौरे हैं कि बढ़ते ही जा रहे हैं  
बस अब मैं और तफसील में नहीं जाऊंगा...

## सेवानिवृत्ति

मैं आज ब्रह्ममुहूर्त से ही पी रहा हूं  
चार दिन बाद होती है और आज मेरी रिटायरमेण्ट सेरेमनी

आज दौ सौ रुपये देकर दो ढोल वाले बुलाये जायेंगे  
जो जहां कहा जायेगा वहां बजाते रहेंगे  
आगे की लेन में स्टाफ की सारी महिलाएं बैठी होंगी  
चटक रंग पहने हुए, चटक रंग वाली ऊन के स्वेटर बुनते हुए  
कुछ कम उम्र की महिलाएं सेलफोन के माध्यम से  
कान में इयरफोन लगा कर एफएम सुनती रहेंगी  
बाकी के कर्मचारी यहां वहां बैठे होंगे, टहलते होंगे  
इस दौरान ढोल और सेलफोन बराबर बजते रहेंगे

मैं एक गाना गाऊंगा 'चल उड़ जा रे पंछी कि अब ये देश...'  
कुछ देर तक 'सचिव' जी का इंतजार होगा... वे नहीं आ पायेंगे  
मेरे कामयाब बेटों की तरह, हालांकि मेरी बहुएं आयेंगी  
और 'कुछ कहने' के लिए कहे जाने पर कुछ नहीं कहेंगी  
मेरी पत्नी और आगे की लेन में बैठी स्टाफ की सारी महिलाओं की तरह...

स्त्रियों के पास कहने के लिए वैसे भी बहुत कम होता है  
और बड़बड़ाने के लिए बहुत ज्यादा  
लेकिन मेरी पांच वर्ष की पोती जरूर अपनी बेहद धीमी आवाज में  
'ऐ दिल ये बता दे तू किस ओर चला...' गायेगी

इसके बाद स्टाफ का एक तथाकथित कवि  
संदर्भ से हट कर एक गैरजरूरी चीज सुनायेगा  
और बार बार गालियों के साथ हूट होगा

इसके बाद एक चेक, एक शाल, एक स्मृतिचिह्न, कुछ तालियां, कृत्रिम धन्यवाद  
और मुझसे 'दो शब्द' कहने का औपचारिक निवेदन...  
लेकिन मेरे पास कहने को इतना कुछ है  
कि मैं अगर 'दो शब्द' भी कहूंगा  
तब भी वे पैंतीस वर्ष लम्बे हो जायेंगे  
लेकिन मैं कहूंगा दो शब्दों को बहुत पीछे छोड़ते हुए  
एक पैंतीस वर्ष लम्बा वाक्य...

मैं सर्वप्रथम और सबसे अंत में  
वहां उपस्थितों और अनुपस्थितों सबसे क्षमा मागूंगा  
क्योंकि बेशुमार गलतियां की हैं मैंने यहां रहते हुए  
इसलिए मुझे माफ कर दीजिए  
और मेरे दीर्घायु होने की कामना कीजिए...

मैं शाकाहार की वकालत करूंगा यह कहते हुए कि मटन मेरी कमजोरी है  
मैं बताऊंगा कि बढ़ता हुआ मोटापा मेरे लिए कभी कोई समस्या नहीं रहा  
हंसने के लिए मुझे कभी लाफ्टर क्लबों की जरूरत नहीं पड़ी  
सुबह की ताजा हवा जो काम पर जाते समय लग गयी सो लग गयी  
मैंने कभी बहुत जल्दी उठ कर व्यायाम करते हुए  
उसे पार्कों में पकड़ने की कोशिश नहीं की  
मैंने 'योगा' को नहीं भोगा  
और अगरबत्तियों और टूटे हुए फूलों में भी  
मेरी कभी कोई दिलचस्पी नहीं रही  
साहित्य को मैं दूर से सलाम करता हूं  
संगीत, रंगमंच और सिनेमा से भी मैं ऊब चुका हूं  
और अखबारों को उनकी सुर्खियों से ज्यादा कभी नहीं पढ़ पाया  
मैं खुद को उन सभी उद्धरणों से बचा ले गया जो मेरे नहीं थे...  
मैं आज के बाद क्या करूंगा, यह मैं खुद भी नहीं जानता हूं  
हालांकि मेरी धर्मपत्नी मेरे साथ चार धामों, ज्योतिर्लिंगों, तिरुपति,  
शिरडी, वैष्णो देवी, अमरनाथ और कैलाश मानसरोवर तक जाना चाहती है  
लेकिन कमबख्त ये छूटती नहीं मुंह से लगी हुई



और कौन जाये अब दिल्ली की गलियां छोड़ कर...  
इस प्रदीर्घ वाक्य के बाद सारे स्टाफ की तरफ से मुझे  
पंद्रह लीटर का एक मयूर जग प्रदान किया जायेगा  
इस बीच ढोल के दौ सौ रुपये वसूल होते रहेंगे  
और आगे की लेन में बैठी हुई औरतें सेलफोन पर पतियों से झगड़ती रहेंगी  
'बैंगन के भर्ते या आलुओं को चिप्स में इस्तेमाल किया जाये या पराठों में,  
इस 'गम्भीर' बात को लेकर...  
और फिर 'डांस' होगा, मैं देर तक नचाया जाऊंगा  
रंग और गुलाल की रस्में निभायी जायेंगी  
गुझियों, जलेबियों, समोसों और ठंडाई का जलपान होगा  
और इस तरह जाना कुछ आसान होगा...

और इससे ज्यादा क्या होगा आज मेरी रिटायरमेण्ट सेरेमनी में  
यही सब सोच कर आज ब्रस्ममुहूर्त से ही पी रहा हूं...

## मेट्रो में रोना

जैसे रोना चाहिए वैसे नहीं रो रही थीं वे

वहां संसद थी और केन्द्रीय सचिवालय का मेट्रो स्टेशन  
जहां से एक लम्बी सुरंग से गुजर कर  
मेट्रो रेल दिल्ली विश्वविद्यालय तक जाती थी  
बगैर धूल उड़ाये मेरे धूल धूसरित भारत में

यह शासन के अनुशासन में गुजर जाने का वर्तमान है  
और रुलाइयों के व्याकरण पर इसका गम्भीर प्रभाव है  
यहां बेवफाइयां हंसमुख और जुदाइयां शुष्क थीं  
और इस वर्तमान में एक लड़की और उसके साथ दो बच्चियां  
जो उस लम्बी सुरंग में से गुजर रही मेट्रो रेल के भीतर  
बराबर रोये चली जा रही थीं  
जैसे रोया जाता है वैसे  
जैसे रोना चाहिए वैसे नहीं

मलाई लड़कियों और दैवीय सेलफोन धुनों को बेअसर करती हुई  
उन बच्चियों की रुलाई भीड़ में 'हॉर्न प्लीज' की तरह थी

दिल्ली पुलिस की आंख और कान बनने के चक्कर में  
लगभग अंधे और बहरे हो चुके नागरिकों  
और दिल्ली मेट्रो रेल कार्पोरेशन के अब तक के स्वर्णिम अतीत में  
यह रुलाई सम्भवतः पहली बार थी

दिल्ली पुलिस की आंख और कान बराबर पूछताछ कर रहे थे  
लेकिन बच्चियां अपनी रुलाई से आगे नहीं बढ़ पा रही थीं  
और लड़की खुद की चुप से

अंधी और बहरी नागरिकताएं तब तक चैतन्य नहीं होतीं  
जब तक सामान्यताएं अपवाद में न बदल जायें  
लेकिन यह चैतन्यता अपंगता ही है  
इसलिए एक रुमाल एक कलम एक ट्रांजिस्टर बम है  
सब मकान मालिक शरीफ और सारे किरायेदार लुटेरे हैं  
पांच सौ और एक हजार के सब नोट जाली हैं  
कहीं कोई मजबूरी बता कर कुछ मदद मांग रहा व्यक्ति ठग है  
और यदि यही मजबूरी कहीं कुछ बेच रही है तो माल यकीनन चोरी का है  
और बच्चे यहां तभी रोते हैं जब वे अपहृत होते हैं

और इस अर्थ में मेट्रो में रोना अपहरण में रोना था  
मेट्रो में रोना सब गन्तव्यों पर रुक रुक कर रोना था  
मेट्रो में रोना संसद से जहांगीरपुरी तक रोना था  
मेट्रो में रोना मेट्रो में होना था...

## मणिकर्णिका-II

डॉ. तुलसीराम

### मार्क्सवादी चमत्कार

**1 जून 1968** को जब मैं बी.एच.यू. गेट पर स्थित लंका मोहल्ले के कैलाश भवन में कमरा लेकर रहने आया, तो वह स्थान मेरे लिए छात्र राजनीति का अड्डा बन गया। मेरा झुकाव पूर्ण रूप से कम्युनिज्म की तरफ हो गया था। ठीक उसी समय आजमगढ़ के मेरे कम्युनिस्ट दोस्त सुखनंदन राम, एडवोकेट के बहनोई बद्री प्रसाद अपनी पत्नी की आंख का बी.एच.यू. अस्पताल में ऑपरेशन कराने के लिए मेरे पास आये। सुखनंदन राम ने एक चिट्ठी लिख कर दिया था कि जब तक उनकी बहन का इलाज नहीं हो जाता, वे मेरे ही पास रहेंगे। बद्री प्रसाद सिंगारपुर में कैण्टीन चलाते थे। वे एक महीने तक रहने के लिए राशन आदि लेकर आये थे। मेरे कमरे में जब वे चावल की गठरी खोलने लगे, तो मैंने देखा कि चावलों के बीच एक किताब छिपी हुई है। मैंने किताब को निकाला, तो उस पर लिखा हुआ था : 'भागो नहीं (दुनिया को) बदलो', लेखक थे राहुल सांकृत्यायन। इस किताब का जिक्र मैंने सुखनंदन राम से सुन रखा था, किन्तु इसे कभी पढ़ने का मौका नहीं मिला था। किताब हाथ में आते ही, मैं उसे पढ़ने लगा। पौने तीन सौ पेज की इस किताब को लगातार पढ़ कर दो दिन में समाप्त किया। मेरे ऊपर इसका जादुई प्रभाव पड़ा। छोटे छोटे बीस अध्यायों में बंटी इस किताब में चार प्रमुख पात्र संतोखी, भैया, दुखराम और सोहनलाल हैं। ये चारों पात्र दुनिया जहान की तमाम समस्याओं पर आपस में बहस करते हुए उन पर प्रश्न खड़े करते हैं, फिर समाधान ढूँढते हैं। इनकी वार्ताओं में प्राचीन डायलाग वाली यूनानी शैली की झलक साफ मिलती है। पहला अध्याय 'दुनिया नरक है' से शुरू होता है, जिसमें वे भूखे नंगे रहने वालों का जिक्र करते हैं और कहते हैं कि अन्न न मिलने से शरीर दुर्बल तथा दुर्बलता से बीमारी फैलती है। वे आगे कहते हैं : दुर्बलो दैव घातक ; यानि

कोई भी आसपास से बीमारी जा रही हो, दुर्बल आदमी को देखते ही उसका मन ललचा जाता है। इस तरह से वे मस्तिष्क को छू जाने वाली बातों में अपनी वार्ता जारी रखते हुए सामाजिक, आर्थिक समस्याओं से लेकर अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर गहन बहस करते हैं। उत्पादन के साधनों के विकास के क्रम में वे मार्क्स के पूरे ऐतिहासिक भौतिकवाद यानि आदिमयुग से उठ कर दासयुग, सामंतयुग तथा पूंजीवाद से होते हुए समाजवादीयुग में प्रवेश करते हैं। पूंजीपति तथा पूंजीवाद को वे 'जॉक पुरान' के रूप चित्रित करते हैं। ज्ञातव्य है कि जॉक दो ढाई इंच लम्बे केचुवे की तरह का एक जीव होता है, जो शक्ल से चपटा और बिना हड्डी का होता है और उसकी खुराक सिर्फ दूसरे का खून चूसना होती है। वे खून चूसने वाले जॉकों के दुश्मन के रूप में मरकस बाबा यानि कार्ल मार्क्स के दर्शन पर बहस करते हुए लेनिन तथा रूसी क्रांति के बारे में विस्तार से बताते हैं। वे हिटलर द्वारा सोवियतसंघ पर आक्रमण का 'भस्मासुर भूतनाथ (यानि शिव) पर चढ़ दौड़ा था' के रूप में वर्णन करते हैं। वे हिटलर की नीतियों को 'पागल सियार गांव की ओर' जैसा बताते हैं। वे चीन, विश्वशांति, भारत की आजादी, पंडा, मुल्ला, सेठ, महिला, अछूत, शोषित, भाषा, ज्ञान आदि सब पर प्रकाश डालते हुए कमरों के राज में साम्यवादी व्यवस्था का मनमोहक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। इस तरह राहुल सांकृत्यायन ने साम्यवाद तथा साम्यवादी व्यवस्था का अपने उन चार पात्रों के सहारे अद्भुत वर्णन किया है। इसीलिए उन्होंने इस पुस्तक का नाम 'भागो नहीं (दुनिया को) बदलो' रखा। मुझे रूसी क्रांति वाला प्रकरण सबसे ज्यादा प्रभावित किया था। सचमुच में इस किताब ने मेरी दुनिया हमेशा के लिए बदल दी और मैं कम्युनिस्ट हो गया।

इसके बाद मैं राहुल सांकृत्यायन की पुस्तकों का दीवाना सा बन गया था। बनारस की तमाम दुकानों लंका से लेकर गुरुबाग, चौक, राजदरवाजा आदि प्रमुख स्थानों को मैंने छान मारा। इस प्रयास में मेरे काम आये गोदौलिया चौराहे के उत्तर पश्चिम कोण पर एक गुमटी में बैठे माखन दादा यानि माखन मुखर्जी। माखन दादा बूढ़े हो चले थे। वे लम्बी लम्बी दाढ़ी मूछ तथा सिर के बाल बड़े रखते थे। प्रथम दृष्टया मैंने उन्हें कार्ल मार्क्स समझ रखा था, क्योंकि वे बिल्कुल उनके जैसे लगते थे। उनकी विशेषता यह थी कि वे सिर्फ मार्क्सवादी पुस्तकें ही बेचते थे। छोटी सी गुमटी में बैठे बैठे वे बारी बारी से किताबों को उठा कर रुमाल से पोछा करते थे, भले ही किताब पर धूल मिट्टी जमी न हो। जब भी कोई ग्राहक किसी किताब को उठा कर देखता, उसके चले जाने पर उसे वे खूब झाड़ू पोछ कर वहीं सजा देते। यदि कोई किसी किताब को फेंक कर रखता, माखन दादा गुस्से में लाल होकर उससे लड़ जाते थे। मार्क्सवादी पुस्तकों का अपमान उन्हें कतई पसंद नहीं था। पहली बार उन्होंने ही मुझे राहुल सांकृत्यायन की पुस्तकें : 'वोल्गा से गंगा, तुम्हारी क्षय, साम्यवाद ही क्यों, दर्शन दिग्दर्शन, कार्लमार्क्स (जीवनी), लेनिन, स्तालिन, माओत्से तुंग आदि उपलब्ध कराया था। सारनाथ के एक बौद्ध मठ से मैंने राहुल की 'बुद्धचर्या' तथा 'मंझिम निकाय' प्राप्त किया। राहुल को मैंने सिलसिलेवार पढ़ना शुरू किया। रात में पढ़ने में बड़ी कठिनाई होती थी, क्योंकि मैं बिना बिजली वाले कमरे में रहता था। इसलिए मिट्टी के तेल वाला लैम्प जला कर पढ़ता था। लैम्प के नीचे हमेशा अंधेरा रहता था, अतः मैं किताबों को हाथ में लिए दायें बायें घुमाते हुए पढ़ता था। उस समय बुद्ध का यह कहना मुझे हमेशा याद रहता था कि हर सुख का पीछा दुख वैसे ही करता है, जैसे हर दीपक के नीचे अंधेरा होता है। मिट्टी के तेल वाला लैम्प मुझे बहुत अच्छा लगने लगा था, क्योंकि वह हमेशा बुद्ध की याद दिलाता रहता था। मिट्टी का तेल बचाने के लिए मैं दिन में ही ढेर सारा पढ़ लेता था, किन्तु बुझा हुआ लैम्प हमेशा मेरे सामने पड़ा रहता था। यद्यपि उस लैम्प का प्रकाश कम दूरी तक होता था, किन्तु मैं जो कुछ पढ़ पाता उससे सारी दुनिया मुझे बहुत साफ दिखायी देने लगी। इस कड़ी में मैंने राहुल की दूसरी किताब : 'तुम्हारी क्षय' पढ़ा। तुम्हारे समाज की क्षय, धर्म की क्षय, भगवान की क्षय, सदाचार की

क्षय, जाति पांति की क्षय तथा तुम्हारे जोंकों की क्षय नामक लेखों के माध्यम से आदिकाल से लेकर पूंजीवादी युग तक की बुराइयों की चीरफाड़ की गयी है। धर्म के बारे में राहुल सांकृत्यायन का कहना था कि यदि मां बाप अपने बच्चे को धर्म के बारे में बचपन से ही तरह तरह की पौराणिक गाथाएं नहीं सुनायें तो बच्चे को शायद पता ही नहीं चल पाये कि यह भी कोई वस्तु है। उन्होंने धर्म को भारतीय समाज का सबसे बड़ा शोषक माना है, क्योंकि धार्मिक आडम्बर दिखा कर समाज में प्रगतिशील परिवर्तनों को रोकने में सहायता मिलती है। उनका यह भी मानना था कि भगवान एक काल्पनिक वस्तु के अलावा कुछ भी नहीं है। अज्ञान का ही दूसरा नाम ईश्वर है। हम अपने अज्ञान को साफ स्वीकार करने में शर्मति हैं, इसलिए सम्भ्रांत नाम; ईश्वर ढूँढ निकाला गया है। ईश्वर विश्वास का दूसरा कारण है, मनुष्य की असमर्थता तथा बेबसी। उसी के लिए मानव ईश्वर का ख्याल कर लेता है। वास्तविकता यह है कि ईश्वर में विश्वास अंधकार की उपज के अलावा कुछ भी नहीं। पुनर्जन्म के बारे में उनका तर्क था कि यदि पुनर्जन्म होता तो एक के मरने पर एक ही पैदा होता या उससे भी कम, क्योंकि हिन्दू माइथालोजी के अनुसार कुछ लोगों को मोक्ष मिल जाता है, अर्थात् मोक्ष मिल जाने पर जन्म नहीं होता है। किन्तु देखा जाता है कि एक मरता है तो दस पैदा हो रहे हैं और आबादी की बढ़ोत्तरी इस समय विश्व की एक बड़ी समस्या बन गयी है। आखिर इतने लोग कहां से पैदा हो जाते हैं। 'पुनर्जन्म नहीं होता है', के बारे में यह एक अकाट्य तर्क है। राहुल सांकृत्यायन के ये तर्क मेरे मस्तिष्क को परत दर परत उधेड़ते चले गये। 'तुम्हारी क्षय' को पढ़ने के बाद बनारस में मैंने चारों तरफ ईश्वर को ढूँढा, गंगा से लेकर मंदिरों से होते हुए बी.एच.यू. तक, किन्तु वह मुझे कहीं नहीं मिला। शुरु में मैं नास्तिकता की संतरण वाली स्थिति से गुजरने लगा। ईश्वर है, नहीं है के विवाद ने मेरे मस्तिष्क को परेशान कर दिया था। मैं ईश्वर के होने की परीक्षा लेने के लिए बनारस के तमाम मंदिरों की फेरी करने लगा और देवी देवताओं की मूर्तियों के सामने खड़ा होकर उन्हें ढेर सारी गालियां देता और उनसे कहता कि यदि 'तुम हो' तो मेरे खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करो। वापस कैलाश भवन लौट कर रात भर बेचैन रहता क्योंकि ईश्वर को गालियां दीं! पुनः दूसरे दिन उन्हीं मंदिरों में जाकर ईश्वर से माफी मांगता कि गालियां देकर मैंने गलती की। इस तरह की स्थिति से मैं महीनों तक गुजरता रहा। जिन मंदिरों में जाकर मैं ईश्वर को गालियां देता तथा फिर उनसे माफी मांगता, वे थे संकटमोचन मंदिर, तुलसीमानस मंदिर, दुर्गाकुंड मंदिर, विश्वनाथ मंदिर, विश्वनाथ गली, दशाश्वमेध घाट का मंदिर, गंगा के किनारे तथा विश्वनाथ मंदिर, बी.एच.यू. आदि। उस दौरान मैं राहुल की एक अन्य पुस्तक 'बौद्धधर्म' तथा प्रथम सदी के महान बौद्ध कवि अश्वघोष की कालजयी रचना 'बुद्धचरित' को बार बार पढ़ता, विशेष रूप से बुद्ध के प्रथम उपदेश को मैं रट सा गया। उनके अनात्मवाद को हर क्षण दोहराता। अंततोगत्वा राहुल के साथ साथ बुद्ध ने मेरी नास्तिकता पर अमिट ठप्पा लगा दिया। मेरे मस्तिष्क तथा हृदय के सारे दरवाजे ईश्वर तथा अंधविश्वासों के लिए हमेशा के लिए बंद हो गये। मैं पूर्णरूपेण नास्तिक हो गया। नास्तिकता ने मुझे हृदय से ज्यादा मानवीय बना दिया। मैं विशुद्ध रूप से मानवता का पुजारी बन गया। जो लोग मानवता की बात करते हुए ईश्वरीय अंधविश्वासों की वकालत करते हैं, मैं उन्हें सबसे बड़ा पाखंडी और ढोंगी समझने लगा। इस संदर्भ में मुझे डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर की यह उक्ति हमेशा याद रहती है : *जो लोग चींटियों को शक्कर खिलाते हैं, किन्तु आदमी को प्यासा रखते हैं, वे पाखंडी होते हैं।* नास्तिकता तथा कम्युनिज्म को मैंने मानव मस्तिक के चिन्तन की सर्वोच्च पराकाष्ठा के रूप में अपनाया। इन दोनों स्थितियों में मैं अनुभव करने लगा था कि मैं एक नया इंसान बन गया। घर से भाग कर जो आया था, उससे एकदम भिन्न। मुझे ऐसा लगता था कि ईश्वरविहीन दुनिया का मैं मालिक बन गया। कंगाली की हालत में भी मैं सम्पन्न हो

गया था। ईश्वर को चुनौती देना कोई मामूली बात नहीं थी। मेरा अनुभव बताता है कि यह बड़ा मुश्किल काम है, जिसके लिए साहसी होना अतिआवश्यक है, क्योंकि ईश्वर हमेशा डरपोक दरवाजे से ही मस्तिष्क में घुसता है। व्यावहारिक रूप से ईश्वर मानव को सिर्फ डरपोक बनाता है। मैंने पाया कि भय ईश्वर की आधारभूत कल्पना है। कार्ल मार्क्स ने ठीक ही कहा था कि ईश्वर हृदयहीन व्यक्तियों का हृदय होता है। नास्तिकता तथा कम्युनिज्म ने मुझे अब्बल दर्जे का पढ़ाकू भी बना दिया था। मैं बी. एच.यू. की सयाजी राव गायकवाड़ लायब्रेरी में घंटों उपस्थित रहता। मैं अनेक विषयों की पुस्तकें पढ़ने लगा। लंका स्थित 'ग्लोब बुक सेण्टर' से कार्लमार्क्स, फ्रेडरिक एंजेल्स तथा ब्लादिमिर इल्लिच नेनिन की मास्को से प्रकाशित सस्ती किताबों को खरीद कर खूब पढ़ता। इसी दुकान से लायी हुई पुस्तक में चीनी क्रांति का इतिहास पढ़ा। 1935 का माओ द्वारा चलाया गया 'लांग मार्च' मुझे बहुत प्रभावित किया था। इस संदर्भ में एक अन्य पुस्तक, जिसका सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से मेरे ऊपर अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ा, वह थी राहुल सांकृत्यायन की ही 'वोल्गा से गंगा'। ऐतिहासिक भौतिकवाद पर आधारित 20 कहानियों का यह संग्रह उनकी सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक रचना है। आदिम साम्यवादी युग पर आधारित पहली कहानी 'निशा' उस समाज का प्रतीक है, जिसमें यौन शुचिता की कोई आचारसंहिता नहीं थी। निशा का पति उसका सगा भाई भी था। उसके मर जाने पर निशा का बड़ा बेटा उसका पति बन जाता है। दोनों के सहयोग से पुनः पुत्र पैदा होता है। बड़े बेटे, पति के मर जाने के बाद छोटा बेटा निशा का पति हो जाता है। इस तरह निशा के सात पुत्र होते हैं जिसमें से अधिकतर निशा के पति बन बैठते हैं अतः यह कहना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि निशा के सात पुत्रों में कौन किसका बाप है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार यह कहानी छः हजार ईसा पूर्व की है। 'सुपर्ण यौधेय' नामक कहानी में गोमांस खाने का वर्णन है। वहीं 'प्रभा' नामक कहानी प्रथम सदी के बौद्ध भिक्षु कवि अश्वघोष के जीवन पर आधारित एक प्रेमगाथा है। किन्तु जिस कहानी का सबसे ज्यादा दूरगामी प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा, वह थी 'दुर्मुख'। दुर्मुख मध्ययुगीन समाज का एक ऐसा प्रतिनिधि है, जो सच्ची बातों को बयान करता रहता है, जिसके कारण लोग उसे बुरे मुंह वाला यानि दुर्मुख कहने लगते हैं। दुर्मुख धार्मिक अंधविश्वासों के विरुद्ध महान बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति के सिद्धांतों का सहारा लेता है। वह उस अंधकारमय युग में धर्मकीर्ति के सिद्धांतों को अंगार फेंकने जैसा बताता है, जिससे सारा समाज प्रकाशमय हो जाता है। धर्मकीर्ति का पूरा दर्शन उनके श्लोक में निहित है, जिसमें वे कहते हैं कि : *जो व्यक्ति संसारकर्ता ईश्वर को मानता है, जो वेदों में विश्वास करता है, जो शरीर को कष्ट देकर भूखे तप करता है, जो नदी नाले में नहा कर पाप मुक्ति समझता है तथा जो अपनी जाति पर गौरव करता है, वह जड़ता का मारा दुनिया का सबसे बड़ा मूर्ख है।* इसे पढ़ने के बाद मैंने एक दूरगामी निर्णय यह लिया कि मैं भी जिन्दगी भर 'दुर्मुख' बना रहूंगा और कड़वी सचाइयों को बयान करता रहूंगा, भले ही उसे कोई पसंद करे या न करे। मेरा सारा लेखन एवं सम्भाषण इसका प्रतीक है। मुझे इस सचाई पर बहुत संतोष मिलता है कि मैं चेचक के कारण चेहरे से पहले से ही दुर्मुख था, किन्तु बाद में जबान से भी दुर्मुख बन गया। मुझको मार्क्सवाद तथा बौद्ध दर्शन की ऊचाइयों तक पहुंचाने का पूरा श्रेय राहुल सांकृत्यायन को ही जाता है।

यह एक ऐसा दौर था, जब मैं मार्क्सवाद तथा बौद्ध दर्शन से सम्बंधित अनेक विषयों के गहन अध्ययन में लिप्त होता चला गया। पढ़ने की भूख थमती ही नहीं थी। मार्क्स, एंजेल तथा लेनिन की चुनी हुई रचनाओं को रटने लगा। 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो', 'इम्पीरियलिज्म इज द हाइएस्ट स्टेज आफ कैपिटलिज्म', 'स्टेट एंड रिवोल्यूशन' तथा 'लेफ्ट विंग कम्युनिज्म ऐन इनफेन्टाइल डिसार्डर' आदि जैसी रचनाएं मेरी जिह्वा पर शीघ्र ही सवार हो गयीं। राहुल द्वारा ही लिखित 'सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास' पढ़ा तो क्रांति का भूत सिर पर चढ़ कर तंग करने लगा। उन दिनों भारतीय कम्युनिस्ट

पार्टी अपने नये सदस्यों की तलाश में इधर उधर भटकती रहती थी। मेरे साथ उल्टा हुआ। मैं खुद कम्युनिस्ट पार्टी की तलाश करने लगा। यद्यपि 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी में फूट पड़ने के चलते अलग हुआ ग्रुप 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) अर्थात् 'सी.पी.आई. (एम.)' के रूप में जाना जाता था और संक्षेप में लोगों से सुनने में आता था कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), यानि सी. पी.आई. (एम.) चीन समर्थक है। मैं सी.पी.आई. की तरफ इसलिए आकर्षित था, क्योंकि वह सोवियत रूस समर्थक थी। बचपन में मुन्नर चाचा से सुना रूस में 'समोही' खेती वाला प्रकरण हरदम आंखों के सामने नाचता रहता था। अतः मैंने सी.पी.आई. में शामिल होने का निर्णय लिया। इस संदर्भ में बी.एच.यू. के नरेन्द्र प्रसाद सिन्हा तथा दीपक मलिक जैसे कम्युनिस्ट छात्र नेताओं से मेलजोल बढ़ाना शुरू कर दिया। उनसे पता चला कि पहले पार्टी में कुछ साल काम करना पड़ता है, जिसके बाद सदस्यता दी जाती है। मैं पार्टी को सदस्यता प्राप्त करने के लिए खूब काम करने लगा। बनारस में मैं सम्भवतः पहला कम्युनिस्ट था जिसे कम्युनिस्ट पार्टी ने नहीं ढूँढा, बल्कि मैंने स्वयं कम्युनिस्ट पार्टी को ढूँढ निकाला। उन दिनों छात्र आंदोलनों के अलावा वियतनाम युद्ध के विरुद्ध अमरीका के खिलाफ खूब प्रदर्शन होते थे। मैं वियतनाम युद्ध विरोधी प्रदर्शनों में हिस्सा लेते लेते अमरीका का कट्टर दुश्मन बन गया। यह दुश्मनी आज भी मेरे मस्तिष्क में कायम है। अब मेरे सामने एक तरफ कम्युनिज्म तो दूसरी ओर बी.एच.यू. था। कैलाश भवन में जातीय समस्या एक बार फिर उभर कर सामने खड़ी हो गयी। छात्र कम्युनिस्ट आंदोलनों में सक्रियता के कारण लंका के दुकानदारों के बीच मैं काफी लोकप्रिय हो गया था। बनारसी जनता की एक विशेषता यह थी कि वे किसी भी व्यक्ति का आदर या अनादर के साथ उल्लेख करते समय उसकी जाति का आंकड़ा अवश्य पेश कर देते थे। इस प्रक्रिया में कैलाश भवन के केयरटेकर रमा शंकर यादव को भी मेरी असली जाति का पता चल गया। यादव जी जाति पाति में गहरी पैठ रखते थे। कैलाश भवन के प्रांगण में एक कुआं था। उसी कुएं से पानी निकाल कर सभी लोग नहाते धोते तथा खाना पकाते थे। मैं भी उसी कुएं से अपना सारा काम चलाता था। उस मकान में बिजली के साथ साथ पानी का कनेक्शन भी नहीं था। एक दिन यादव जी मेरे कमरे में आये और रौद्र रूप धारण करते हुए कहने लगे : "आप झूठ बोल कर कमरा ले लिए और कुएं का पानी भी भ्रष्ट कर दिये।" उन्होंने तुरंत कमरा खाली करने का फरमान जारी कर दिया। यह पहला अवसर था, जब मैंने जातीय भेदभाव के खिलाफ लड़ने का फैसला किया। मैंने यादव जी से साफ कह दिया कि न तो मैं कमरा खाली करूंगा और न आगे का किराया दूंगा। मैंने उनसे यह भी कहा कि यादव लोग भी ऊंची जाति में नहीं आते हैं। यादव जी मेरी सारी बातें अचम्भित होकर सुनते रहे, किन्तु जब मैंने यह कहा कि बी.एच.यू. से सैकड़ों छात्रों को बुला कर लाऊंगा और पूरे कैलाश भवन पर कब्जा करा दूंगा, तो वे यकायक डर गये और बिना कुछ बोले वापस चले गये। मैंने सचमुच में अगले महीने से किराया देना बंद कर दिया। यह घटना जून 1969 की है। पहले महीने का किराया बंद होने के बाद डुमरांव से कैलाश भवन के मालिक आये। मालिक के साथ यादव जी पुनः मेरे कमरे पर आये। यादव जी चुपचाप खड़े थे किन्तु उनके मालिक ने मुझसे धमकी भरे लहजे में कहा : "यदि किराया नहीं देना है, तो जंगल में झोपड़ी बना कर रहो।" मैंने ऐसा सुन कर जोर से चिल्लाते हुए वहां बरामदे में रखे हुए लकड़ी के चैलों में से एक चैला उठा लिया और धमकाते हुए कहा कि वे तुरंत भाग जायें, अन्यथा चैले से सिर फोड़ दूंगा। इसके बाद वे सचमुच में भाग गये। मार्क्सवाद ने मुझे पहली बार इतना साहसी बनाया था। मेरे दिमाग में बार बार यह बात आती कि यदि मैं ईश्वर को खदेड़ सकता हूँ, तो इन जातिवादी मनुष्यों को क्यों नहीं? इस बार पक्का इरादा कर लिया था कि जातिवाद से भविष्य में डरूंगा नहीं, बल्कि मुकाबला करूंगा। बनारस में यह विचित्र स्थिति थी

कि मकान तो किराये पर मिलता था, किन्तु जातिवाद मुफ्त में। इसी बीच 1 जुलाई 1969 को दो ऐसी घटनाएं घटीं, जिन्हें मैं कभी नहीं भूल पाऊंगा। सर्टिफिकेट के अनुसार 1 जुलाई 1949 को मेरा जन्मदिन पड़ता है। उस दिन मैं 20 साल का हो गया था। मैं गोदौलिया से सिटी बस पकड़ कर मडुआडीह रेल इंजन कारखाने स्थित अपने रिश्तेदार रघुनाथ प्रसाद के घर जा रहा था। कारखाना स्थित जनरल मैनेजर के आफिस के ठीक सामने से रेल लाइन गुजरती थी। हमारी बस रेल लाइन के समांतर बनी सड़क पर बायें न मुड़ कर सीधे बिना फाटक वाली रेल लाइन पर चढ़ गयी। इस बीच इलाहाबाद से आ रही रेलगाड़ी आ धमकी। मुश्किल से एक इंच का फासला रहा होगा, अन्यथा बस के चिथड़े चिथड़े उड़ गये होते। ड्राइवर ने दिमाग से काम लेकर बस को लाइन पार करा कर जी.एम. आफिस से टकराते टकराते बचा लिया था। बस में साठ सत्तर आदमी किसी तरह अंटे हुए थे। सबने राहत की सांस ली अन्यथा उस दिन कोई जिन्दा नहीं बचता। बस में बैठी कुछ औरतें रोने लगी थीं। उस दिन अपने रिश्तेदार के यहां दोपहर का खाना खाकर शाम को उसी बस से पुनः गोदौलिया वापस उतर गया। बस से उतर कर मैं माखन दादा की किताब वाली दुकान पर चला गया। वहां मैंने देखा कि चेकोस्लोवाकिया के प्रख्यात क्रांतिकारी जूलियस फ्युचिक की पुस्तक 'फ्राम द गैलो' का हिन्दी अनुवाद 'फांसी के तख्ते से' रखी हुई थी। इस किताब का प्रकाशन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा संचालित 'पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली से किया गया था। पांच रुपये दाम वाली इस किताब को मैंने खरीद लिया। किताब लेकर मैं दशाश्वमेघ घाट चला गया। मैं जब भी गोदौलिया की तरफ जाता, एक बार गंगा को देखने अवश्य चला जाता था। यद्यपि कोई धार्मिक भावना नहीं होती थी, फिर भी गंगा बहुत अच्छी लगती थी। मैं दशाश्वमेघ घाट की गंगा को छूती एक सीढ़ी पर पैर लटका कर बैठ गया। 'फांसी के तख्ते से' को तब तक उलटपुलट कर पढ़ता रहा, जब तक कि अंधेरा नहीं हो गया। घाट पर सैकड़ों लोग आते जाते रहे और अनेक साधु संत तथा आस्थावान लोग गंगा में नहाते रहे। वे लोग शायद मुझे देख कर यही समझते रहे होंगे कि मैं कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ रहा था। खैर, अंधेरा होने के बाद मैं गंगा की सीढ़ियों से उठ कर पैदल ही बी.एच.यू. के पास स्थित अपने निवास कैलाश भवन की ओर चल दिया। लंका से थोड़ा पहले अस्सी नाले के पास सड़क के किनारे एक मंदिर था। मंदिर से सटा हुआ उसके अहाते में कुछ कमरों वाला एक लाज था जिसमें सिर्फ ब्राह्मणों को रहने दिया जाता था। यह मंदिर एक ऐसा मठ था जिसके पुजारी परम्परागत ढंग से संस्कृत का अध्ययन करते थे। उस समय संस्कृत शिक्षा से जुड़े अनेक मठ मंदिर बनारस में हुआ करते थे। अस्सी वाले मठ में मेरे मित्र तथा बी.एच.यू. के सहपाठी गोरख प्रसाद पांडे रहते थे। गोरख पांडे संस्कृत विश्वविद्यालय से आचार्य (एम.ए.) करके पुनः बी.एच.यू. में मेरे साथ बी.ए. कर रहे थे। वे परम्परागत तौर पर पोंगा पंडित से मार्क्सवाद की तरफ संतरित हो रहे थे। इसलिए उनसे मेरी गहरी दोस्ती हो गयी थी। हम दोनों आपस में यह तय कर लिये थे कि कोई नयी किताब मिलेगी, तो उसे आधा आधे पा पढ़ कर एक दूसरे को बतायेंगे कि उसमें क्या है? कभी कभी तो हम अलग अलग किताबों को पढ़ते थे और फिर एक दूसरे को बताते थे कि उनमें क्या क्या लिखा हुआ था। इस तरह हम एक किताब पढ़ते थे और दो किताबों का ज्ञान हासिल कर लेते थे। ज्ञान प्राप्त करने की हम दोनों की यह अनूठी तकनीक थी। अतः जब मैं उस मठ मंदिर के पास पहुंचा, तो सोचा कि इस किताब को गोरख पांडे को दूँ ताकि आधा वे पढ़ें और बाद वाला आधा आधा हिस्सा मैं पढ़ूँ और फिर एक दूसरे को पढ़ा हुआ हिस्सा बता देंगे। उस मंदिर के एक पुजारी त्रिलोकी नाथ पांडे बी.एच.यू. के संस्कृत कालेज में एम.ए. कर रहे थे। त्रिलोकी नाथ पांडे मुझे अच्छी तरह इसलिए जानते थे, क्योंकि मैं एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के रूप में पूरे विश्वविद्यालय में कुख्यात हो चुका था। वे जहां भी मिलते, मुझे



‘जगजीवन राम’ कह कर पुकारते। ‘जगजीवन राम’ का सम्बोधन जातिवादी मानसिकता का प्रतीक था, फिर भी, मैं कभी उनसे प्रतिवाद नहीं करता था। उस दिन रात के ‘देवभोग’ के लिए होने वाली पूजा में कई पुजारी अलग अलग वाद्ययंत्रों, जैसे घंटा, चिमटा, झाल, ढपली आदि बजाने के साथ वंदना गीत भी गा रहे थे। रात के करीब आठ बजे थे। मैं ज्यों ही मंदिर के पास से होते हुए गोरख पांडे के कमरे की ओर मुड़ा। सारे पुजारी अपने अपने वाद्ययंत्रों के साथ मेरी ओर दौड़ पड़े। त्रिलोकी नाथ पांडे के हाथ में घंटा बजाने वाली मुंगरी थी। उनके एक साथी के हाथ में बड़ा सा साधुओं वाला चिमटा था। त्रिलोकी नाथ जोर से चिल्ला कर बोले ‘चमार सियार’ मंदिर में नहीं आ सकते। चिमटे वाला पुजारी प्रहार करने की मुद्रा में मेरी तरफ दौड़ा। मैं स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए बड़ी तेजी से बी.एच.यू. की तरफ भागा। यदि मैं तेज रफ्तार से भागता नहीं तो मेरी धार्मिक पिटाई निश्चित थी। इस बीच मंदिर की हलचल को गोरख पांडे देख लिए थे। मठ के प्रथम तल पर उनका कमरा था। वे नीचे उतर कर पुजारियों से लड़ पड़े। वे जोर जोर से चिल्ला कर उनको लथेड़ने लगे। शीघ्र ही गोरख पांडे दौड़ते हुए सड़क पर मेरा पीछा करके लंका चौमुहानी पर मुझसे मिल कर बहुत दुख जताने लगे। गोरख पांडे के मुख से ईश्वर, धर्म और पंडे पुजारियों के खिलाफ अनवरत गालियां निकलती रहीं। गोरख पांडे का ऐसा रूप मैंने पहली बार देखा था। वे कहने लगे कि ऐसे मंदिर में मैं कभी नहीं रहूंगा, जहां दलितों का प्रवेश वर्जित है। वे विशेष रूप से त्रिलोकी नाथ पांडे को गरियाते रहे। वे बहुत देर बाद शांत हुए, जबकि मेरे मुंह से कुछ भी नहीं निकला। गोरख मेरे साथ मेरे कमरे पर आ गये। हम दोनों लोहे की सिकड़ी में लकड़ी का कोयला जला कर दाल चावल पकाये। गोरख पांडे आदतन सब्जी के बदले प्याज काट कर उसमें सरसों का तेल तथा नमक मिला कर दाल चावल के साथ खा लेते थे। उस रात यानि 1 जुलाई 1969 को हमने वैसा ही किया। खाने के बाद देर रात तक धर्मांधता पर चर्चा होती रही। आधी रात के बाद वे कैलाश भवन से अपने निवास उस अस्सी के मंदिर गये। सुबह होते ही अपना बोरिया बिस्तर लेकर के अस्सी इलाके में गंगा के किनारे एक अन्य बड़े पुराने संस्कृत मठ में चले गये। इस मठ में भी सिर्फ ब्राह्मणों को रहने दिया जाता था। खासियत इस बात की थी कि मठों में किसी ब्राह्मण को रहने से कभी मना नहीं किया जाता था। ब्राह्मण होने के नाते गोरख पांडे को ऐसा लाभ हर किसी संस्कृत मठ में मिल सकता था। ऐसे संस्कृत मठों को धनी मारवाड़ी सेठ भारी रकम अनुदान में दिया करते थे। बनारस में कुछ ऐसे भी संस्कृत मठ थे, जिन्हें मुगल बादशाह औरंगजेब ने अनुदान देने की प्रणाली शुरू की थी। बाद में मुगल शासन समाप्त होने के बाद कुछ समाजसेवी मुस्लिम संगठनों ने उन मठों को अनुदान देना जारी रखा। जहां तक अस्सी नाले के पास वाले मंदिर की घटना का सवाल है, मैं उससे बुरी तरह आहत हुआ था। मन में यह भावना बार बार आती थी कि अपना वश चलता तो धर्म और ईश्वर का पल भर में सफाया कर देता। उस समय सबसे ज्यादा दुख मुझे गोरख पांडे के लिए हुआ था, क्योंकि मेरे कारण उन्हें उस मंदिर से निकल जाना पड़ा था। वे मुझसे बार बार कहते कि इस मंदिर के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट की जानी चाहिए। शीघ्र ही इस घटना की खबर बी.एच.यू. की राजनीतिक सर्किल में पहुंच गयी। मैं उन दिनों विश्वविद्यालय के सफाई कर्मचारियों के बीच यूनियन का काम कर रहा था। लंका स्थित यूनिवर्सल बुक हाउस में बनारस के प्रख्यात कवि ‘धूमिल’ से मुलाकात हुई। वे मुझसे पूछने लगे कि आपके साथ मंदिर में क्या हुआ था? मैंने सारा वृत्तांत बताने के बाद उनसे कहा : “मैं अस्सी मंदिर के विरुद्ध भंगियों का प्रदर्शन आयोजित करने जा रहा हूं।” इतना सुनते ही धूमिल ने जवाब दिया : “भंगियों का क्यों वहां तो ब्राह्मणों का प्रदर्शन किया जाना चाहिए, क्योंकि इस घटना के लिए वे ही जिम्मेदार हैं।” उनकी बात सुन कर मैं अवाक रह गया। किन्तु मुझे लगा कि धूमिल के तर्क में भारी दम था। फिर भी, गोरख और धूमिल के अलावा मुझे कोई तीसरा ब्राह्मण नहीं मिला, जिसे लेकर मैं प्रदर्शन के लिए जाता।

अतः प्रदर्शन वाली बात अपने आप धराशायी हो गयी। इस बीच बी.एच.यू. छात्रसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष रामबचन पांडे मुझे लंका पर मिले और नाराजगी प्रगट करते हुए कहने लगे : “कुछ गरीब ब्राह्मण उस मंदिर में अपनी रोजी रोटी किसी तरह चला रहे हैं और आप उनके मुंह से रोटी छीनना चाहते हैं?” मैं रामबचन पांडे के तर्क से दंग रह गया। वास्तविकता यह थी कि त्रिलोकी नाथ पांडे राम बचन पांडे के करीबी भाई बंधु थे। उन दिनों भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता नरेन्द्र प्रसाद सिन्हा जो बी.एच.यू. में बहुत सक्रिय थे, उन्होंने भी मंदिर प्रकरण पर एकदम उदासीनता दिखायी। अंततोगत्वा सारा मामला टांय टांय फिस्स हो गया। इसके बाद छः वर्षों से ज्यादा समय तक मैं बनारस में रहा और लगभग रोज ही गौदौलिया स्थित पार्टी आफिस को जाते हुए जब भी उस मंदिर से गुजरता, उसमें रखी देवी देवताओं की मूर्तियों को घूरता हुआ अपना अकेला विरोध प्रदर्शन जारी रखता। उन दिनों मैं कभी कभी ‘सम्पादक के नाम पत्र’ लिखा करता था। अतः मंदिर प्रकरण पर दिल्ली से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका ‘पैट्रियाट’ को पत्र लिखा, जो पूरा का पूरा प्रकाशित हो गया, जिससे मुझे बहुत संतुष्टि मिली थी। सच मानिये तो मेरा लेखकीय अभियान ‘सम्पादक के नाम पत्र’ से ही शुरू हुआ था। यह बात फरवरी 1969 की है। उत्तर प्रदेश में विधानसभा का पहला मध्यावधि चुनाव हो रहा था। आर्य समाज के तत्कालीन प्रख्यात नेता प्रकाशबीर शास्त्री का बनारस के बेनियाबाग में भाषण हुआ। अपने भाषण में उन्होंने कहा : “यदि जाति पाति तोड़नी है, तो सर्वण युवकों को चाहिए कि वे दलित लड़कियों से शादी करें।” उनके इस भाषण की प्रतिक्रिया में मैंने बनारस से प्रकाशित होने वाले ‘आज’ अखबार में एक ‘सम्पादक के नाम पत्र’ लिखा। पत्र में मैंने लिखा था : “यदि जाति पाति तोड़नी है, तो सर्वण लड़कियों को दलित लड़कों से शादी करनी चाहिए। यदि सांसद या विधायक अपनी लड़कियों की शादी दलितों से करें, तो वे भारी बहुमत से चुनाव जीत सकते हैं।” सम्पादक के नाम यह पत्र काफी लम्बा था, जिसमें मैंने जातिवाद के खिलाफ अनेक तर्क दिया था। यह पत्र पहली बार पूरा का पूरा छपा। मैं उसकी कटिंग अपने पाकेट में तब तक रखे रहा, जब तक कि वह तार तार होकर एकदम झड़ नहीं गया। मैं अनेक दोस्तों मित्रों को वह पत्र जबरन पढ़ने पर मजबूर कर देता था। उस पत्र की खास बात यह थी, कि करीब एक महीने से भी ज्यादा समय तक उसकी प्रतिक्रिया में सम्पादक के नाम अनेक पत्र छपते रहे। प्रतिक्रिया में छपे सारे पत्र मेरे पत्र के विरोध में थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एम.ए. की एक छात्रा दमयंती ताम्बे का छपा पत्र आज भी मुझे याद है। उन्होंने सर्वण लड़कियों की दलितों से शादी की बात को हिन्दू धर्म के लिए खतरा बताया था। करीब करीब सारे पत्रों में ऐसी ही मिलती जुलती बातें कही गयी थीं। सम्पादक के नाम मेरे पत्र की प्रतिक्रिया में छपे पत्रों ने मुझे भविष्य में एक लेखक बनने की असीम प्रेरणा दिया था। साथ ही मेरे अंदर बसा ‘बोल्गा से गंगा’ वाला ‘दुर्मुख’ विशालतर होता चला गया।

संस्कृत मठों की कड़ी में एक मठ बनारस चौक के पास नेपाली खपड़ा नामक मोहल्ले में था, जिसमें मेरे एम.ए. के सहपाठी मिथिला के कट्टर पंडित हीरानंद झा रहते थे। इस मठ में भी पचास साठ ब्राह्मण रहते थे, जिसमें खाना रहना सब कुछ मुफ्त था। हीरानंद हमेशा टीका चंदन लगाये रहते थे। कक्षा में उनका सबसे पहला दोस्त मैं ही बना था। शुरू शुरू में उनका टीका चंदन देख कर मैं बहुत घबड़ाया था। किन्तु उनका व्यवहार मेरी धारणा के एकदम विरुद्ध सिद्ध हुआ। वे छुआछूत जाति पाति में एकदम विश्वास नहीं करते थे। वे मेरे निवास पर अक्सर दोपहर की कक्षाओं के बाद आते और सबसे पहले कमरे के कोने में खा भगोना या पतेली उठा कर अपने जंघों पर रख लेते और बचाखुचा चावल दाल आदि खाकर खाना समाप्त करने के बाद बातचीत शुरू करते थे। उनका ऐसा करना मुझे बहुत अच्छा लगता था, किन्तु मेरी मुश्किल यह थी कि मैं एक समय का खाना पका कर आधा शाम के लिए छोड़ दिया करता था। जिस दिन वे पतेली सफाचट कर जाते, मेरी कठिनाई बढ़

जाती थी। इस तरह हीरानंद झा मेरे गहरे दोस्त बन गये। एक दिन उन्होंने कहा : “मैं अकसर आपका खाना खा जाता हूँ। एक बार आप मेरे मठ में आइये और वहीं भोजन कीजिए।” मैंने उनसे कहा कि ब्राह्मणों के मठ में कैसे आऊँ? वहाँ तो कट्टर जातिवादी मामला होता है। इस पर झा जी ने कहा : “क्यों घबड़ाते हैं, मेरा टीका चंदन आपके काम आयेगा और आपका परिचय दूंगा कि ये तुलसीराम शर्मा हैं।” टीका चंदन मुझे लगा कर उस संस्कृत मठ में ले गये। अन्य ब्राह्मणों से शर्मा जी के रूप में उन्होंने मेरा परिचय कराया। उम्र में मुझसे छोटे कई ब्राह्मणों ने मेरा पैर छूकर नमस्कार किया। उन सभी ने बहुत विनम्रता दिखायी थी। मैंने उन सबके साथ मुफ्त में मिलने वाला सादा किन्तु बहुत स्वादिष्ट खाना खाया। खाते समय मेरे सामने कल्पना में हरदम अस्सी वाले मठ के पुजारी त्रिलोकी नाथ पांडे घंटा पीटने वाली मुंगरी तथा दूसरे पुजारी लोहे का बड़ा चिमटा ताने खड़े नजर आने लगे। मुझे हरदम ऐसा लगता था कि शीघ्र ही मेरे ऊपर प्रहार हो जायेगा। चमार जो था। भोजन के बाद हीरानंद अपने कमरे में मुझसे बहुत देर तक बात करते रहे क्योंकि गर्मी का दिन था, इसलिए धूप में बाहर नहीं जाने दिया। दिन ढलने पर जब बनारस की तंग गलियां छाया से ढक गयीं, मैं झा जी से विदा लेकर पास स्थित मणिकर्णिका घाट चला गया, क्योंकि यह स्थली बनारस में मेरी सबसे चहेती स्थली बन गयी थी। इसे देखते ही मेरी मुर्दहिया आंखों के सामने नाचती दोपहरी यानि मृगत्रिष्णा जैसी दिखायी देने लगती थी। उन्हीं दिनों मैंने बुद्धकालीन एक महान भिक्षुणी पटाचारा के बारे में पढ़ा कि वह भिक्षुणी बनने से पहले श्रावस्ती के श्मशान में शोकग्रस्त होकर अर्धविक्षिप्त अवस्था में गंधड़ंग पागलों की तरह चिल्लाती विलखती इधर उधर घूमा करती थी, क्योंकि एक ही दिन में उसके पति की सांप काटने से मृत्यु हो गयी, उसके नवजात शिशु को बाज खा गया, बड़ा बच्चा नदी में डूब गया, माता तथा पिता बारिश में घर गिर जाने से मर गये थे। एक दिन इसी अवस्था में गंधड़ंग वह जहां बुद्ध उपदेश दे रहे थे, उधर से गुजरी। भिक्षुओं ने उसे भगाने की कोशिश की, किन्तु बुद्ध के कहने पर वह पास आ गयी। एक भिक्षु ने अपनी संघाटी यानि कमर के ऊपर वाला चीवर उसके ऊपर फेंका, जिसे उसने ओढ़ लिया और बुद्ध के उपदेश को सुन कर वह शोकमुक्त होकर भिक्षुणी बन गयी। चीवर ओढ़ने के कारण उसका नाम पटाचारा पड़ा था। इसके बाद मैं अनेक बार मणिकर्णिका गया और हर बार मुझे ऐसा लगने लगता था कि कभी न कभी पटाचारा कहीं न कहीं से घूमती मुझे वहीं मिल जायेगी। जहां तक हीरानंद झा का सवाल है, उन्होंने मुझे कई बार कहा कि आप तो कम्युनिस्ट पार्टी के काम से शहर आते ही रहते हैं, अतः मठ में आकर भोजन कर लिया करिये। किन्तु मैं डर के मारे दोबारा उनके यहां नहीं गया। मैं सोचने लगता था कि कहीं अस्सी मठ वाली घटना न दोहरा जाये।

वैचारिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से सन् 1968-69 का वर्ष मेरे लिए जीवनशैली निर्माण का वर्ष सिद्ध हुआ। धर्मांधता का गढ़ होने के कारण होली के अवसर पर हिन्दू मुसलमान प्रायः तनातनी का शिकार हो जाते थे। सन् 1968 में एक ऐसा ही दंगा हो गया। मैंने पहली बार पाया कि दंगों को हिंसक बनाने के लिए क्या क्या हथकंडे अपनाये जाते हैं। हिन्दुत्ववादी लोग अकसर बताते कि बनारस के किसी न किसी प्रख्यात मंदिर के सामने गाय का कटा सिर पाया गया। अफवाहों का बाजार इतना गर्म हो गया था कि सही गलत में फर्क करना मुश्किल हो गया था। मदनपुरा तथा जैतपुरा मुस्लिम बहुल क्षेत्र होने के बावजूद वहां दोनों समुदायों की मिलीजुली आबादी है। अतः उस समय बड़ी भयावह स्थिति पैदा हो जाती थी, जब दंगा के दौरान हिन्दू मकानों की छतों से नारे लगाये जाते : ‘हर हर महादेव’, और ऐसे ही मुस्लिम मकानों की छतों से नारे आते : ‘अल्लाह ओ अकबर’। ‘हर हर महादेव’ वाला नारा बनारसवासियों का एक तरह का तकियाकलाम था। एक विचित्र बात यह थी कि बनारस के राजा विभूति नारायण सिंह अपनी कार में किसी गली में दिखायी देते तो आम लोग हर हर महादेव

का नारा लगाते चिल्ला उठते थे। उस समय सन् 1967 में उत्तर प्रदेश की पहली मिलीजुली सरकार में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के रुस्तम सैटिन पुलिस मंत्री थे। वे बनारस के ही रहने वाले थे। उन्होंने दंगा कुचलने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। बनारस में मैंने ऐसे कई दंगे देखे और हमेशा अपने को चिन्ताग्रस्त पाया। उस दंगे के दौरान एक ऐसी घटना हुई, जिससे यह अंदाजा लगा कि कैसे साधारण गरीब लोग सबसे आगे बढ़ कर हिंसक गतिविधियों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते हैं। बी.एच.यू. की दक्षिणी सीमा के उस पार 'सीर करहिया' नामक एक गांव है। वहां से एक ग्वाला साइकिल पर बाल्टों में दूध रख कर बेचने आता था। कैलाश भवन में अनेक लोग चाय बनाने के लिए उससे एक एक पाव दूध लिया करते थे। मैं भी कभी कभी उससे दूध ले लिया करता था। जिस दिन दंगा शुरू हुआ उसके बाद तीन दिनों तक वह हम लोगों के पास नहीं आया। उसे लोग सरदार कहते थे। अन्य लोगों के साथ मैं भी चिन्तित हो गया था कि सरदार को क्या हो गया? चिन्ता इस बात की थी कि वह मुस्लिम इलाकों में भी दूध बेचने जाता था। मेरे दिमाग में हरदम यह बात आती थी कि सरदार कहीं दंगों का शिकार न हो गया हो। इन आशंकाओं के बीच चौथे दिन सरदार दूध लिए कैलाश भवन आ धमका। हम सभी कुतूहलवश उसे घेर लिए। पूछने पर उसने बताया : "हम जगमबाड़ी जात रहली। वोंही कुछ मुसलमानन के बंगाली लोग घेरले रहलैं। म आपन बल्टवा क दुधवा गिराय के बल्टे बल्टे उनहन क कपरा फोड़ि दिहलौं। ओकरे बदवा म बल्टवा वोहीं छोड़ि के भागि अइलौं।" ऐसा सुन कर मैं दंग रह गया। खैर, सरदार सही सलामत था, इसलिए हम भी उसे पुनः दूध बांटते देख कर बहुत खुश हुए थे। उन दिनों जब भी साम्प्रदायिक दंगे होते बी.एच.यू. के छात्रनेता, मूलतः कम्युनिस्ट तथा लोहियावादी सोसलिस्ट हमेशा शांति कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। नागरिक समितियों के माध्यम से साम्प्रदायिक एकता के लिए खूब काम किया जाता था। अपने बनारस प्रवास के दौरान मैंने पूंजीवाद के साथ साथ साम्प्रदायिकता से भी लड़ना सीखा। साम्प्रदायिकता को मैं आज भी राष्ट्रीय एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा मानता हूं। बी.ए. में रह चुके मेरे एक सहपाठी मदनपुरा के मो. सलीम अंसारी थे। उनके पिता और बड़े भाई घर के अंदर हथकरघे पर कपड़ा बुन कर सारे परिवार की जीविका चलाते थे। सलीम भाई बी.एच.यू. हाकी टीम के कैप्टन भी थे और मेरे गहरे दोस्त। मैं अकसर उनके घर दंगों के बाद जाया करता था। वे लोग मेरा बड़ी गर्मजोशी से स्वागत करते और खूब खिलाते पिलाते। बाद में हुए एक ऐसे ही दंगे के बाद मैं सलीम के घर गया। उनके पिताजी यह बताते हुए रो पड़े कि दंगाइयों ने हजारों गरीब मुसलमानों के अटेरन हथकरघा आदि को तोड़ दिया, जिससे उनकी रोजी रोटी का एकमात्र सहारा छिन गया। संयोगवश, सलीम का हथकरघा सही सलामत बच गया था। उनके घर का एक नजारा मुझे कभी नहीं भूलता। मैं वहां जब भी जाता, उनके पिताजी मृगछाला की तरह बकरे का चमड़ा बिछा कर मुझे बैठा देते और स्वयं हथकरघे पर अनवरत काम करते हुए बातें करते रहते थे। ऐसे अवसरों पर बिल्कुल कबीर का 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' वाला दृश्य प्रस्तुत हो जाता था। मदनपुरा मोहल्ले की एक खासियत यह थी कि गोदौलिया से बी.एच.यू. की तरफ जाने वाला सड़क के किनारे वाला पूर्वी हिस्सा अमीर मुसलमानों का होता था और पश्चिम वाला हिस्सा गरीब मुसलमानों का। पश्चिम वाले हिस्से में ठीक सड़क के किनारे एक मकान के प्रथम तल पर बनारस के प्रसिद्ध शायर 'नजीर बनारसी' रहते थे। उनके कमरे के सामने एक खुली छत थी। मैं वहां से जब भी गुजरता नजीर साहब प्रायः अपनी बकरी को पेड़ पौधों की पत्तियां खिलाते नजर आते थे। बी.एच.यू. की स्वर्ण जयंती (1967) के अवसर पर सम्पन्न मुशायरे में उनके द्वारा सुनायी एक नज्म की ये पंक्तियां विशेषकर दंगों के बाद मुझे अकसर याद आ जाती थीं :

*अंधेरे ने भीख मांगी थी रोशनी की*

मैं अपना घर न जलाता, तो क्या करता?

सन् 1969 के आते आते देश की राजनैतिक हालत में काफी बदलाव आ गया था। सन् 1967 के आम चुनावों में जिन नौ प्रांतों में विरोधी दलों की संयुक्त सरकारें बनी थीं, वे सब की सब धराशायी हो गयीं और फरवरी 1969 में पहली बार इन विधानसभाओं का मध्यावधि चुनाव हुआ। बड़ा प्रांत होने के नाते उत्तर प्रदेश में काफी गहमागहमी थी। इस चुनाव में मैं काफी सक्रिय था। शहर दक्षिणी की सीट पर रुस्तम सैटिन पुनः उम्मीदवार थे। अन्य पार्टी कार्यकर्ताओं के साथ चुनाव प्रचार में मैंने दिन रात एक कर दिया था। चुनाव प्रचार के दौरान जगह जगह नुक्कड़सभाएं होतीं, जिनमें दीपक मलिक, सुनिल दास गुप्ता, विश्वनाथ मुखर्जी जैसे बनारस के कम्युनिस्ट नेताओं के भाषण होते। इन नुक्कड़सभाओं में पार्टी कार्यकर्ता मो. सिराज के क्रांतिकारी गीतों से खूब रोमांच पैदा हो जाता था। उनके द्वारा गाये गये गीतों में से निम्न पंक्तियां बहुत लोकप्रिय हुई थीं :

*दमादम मस्त कलंदर*

*दमादम मस्त कलंदर ।*

*मेरा नाम है बिरला भाई*

*मेरा नाम है टाटा ।*

*हम दोनों ने मिल कर*

*भारत आधा आधा बांटा ।*

*दमादम मस्त कलंदर...*

इन पंक्तियों को सुन कर मेरे साथ अनेक पार्टी कार्यकर्ता रो पड़ते थे। ऐसे ही पार्टी कार्यकर्ताओं में एक थे शिवानंद दूबे। वे औघड़ किस्म के आदमी थे। बड़े ही मनमौजी स्वभाव वाले व्यक्ति थे। उन्होंने आम जनता में कम्युनिस्ट पार्टी तथा कम्युनिज्म के प्रति आकर्षण पैदा करने का एक विचित्र फार्मूला निकाला था। वे मुझसे कहते थे कि हम दोनों सिटी बस में एक साथ बैठ कर शुरू से अंत तक चलेंगे और मार्क्सवाद के बारे में बहस करेंगे ताकि लोग न चाह कर भी उसे सुनें। किसी न किसी के पल्ले कुछ तो पड़ेगा। शिवानंद दूबे के साथ मैं अनेक बार सिटी बस में खड़ा हो जाता। वे कम्युनिज्म से सम्बंधित छोटे छोटे प्रश्न पूछते और मैं उनका जवाब देता। मेरे जवाब को दूबे जोर जोर से रटते ताकि बस में बैठे अन्य लोग भी सुन सकें। उनका पहला प्रश्न होता क्रांति किसे कहते हैं? मैं जवाब देता कि जब राजसत्ता एक वर्ग से दूसरे वर्ग यानि पूंजीपतियों के हाथ से मजदूरों के हाथ में आ जाती है, तो उसे क्रांति कहते हैं। वे पूछते समाजवाद किसे कहते हैं? मैं बताता कि उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व को समाजवाद कहते हैं, जिसमें कार्यक्षमता के अनुसार काम करने पर मजदूरों को पूरी मजदूरी दी जाती है। इसी तरह वे पूछते साम्यवाद किसे कहते हैं? मैं बताता कि क्षमता के अनुसार काम करने पर जब मजदूरों को आवश्यकतानुसार मजदूरी मिलने लगे तो उसे साम्यवाद कहते हैं। इस तरह शिवानंद दूबे रूसी क्रांति से लेकर मार्क्स, लेनिन, स्टालिन, विश्वयुद्ध, चे गुआरा, फीडेल कास्त्रो तथा समाजवादी देशों आदि से सम्बंधित अनेक प्रश्न पूछते और मैं संक्षेप में उत्तर देता। किन्तु हम लोगों का यह कम्युनिस्ट प्रचार अभियान बहुत दिन तक नहीं चल पाया। यद्यपि शिवानंद दूबे बड़े ही मुंहफट किस्म के व्यक्ति थे और कोई बात कहने में जरा भी नहीं हिचकते थे, किन्तु मैं हमेशा बहुत संकोची व्यक्ति रहा हूं। इसलिए बस में कम्युनिज्म पर बहस करने से मैं कतराने लगा। अंततोगत्वा हमारा यह अभियान पंद्रह बीस बहसों में ही समाप्त हो गया। दूबे की आदत किताब से कुछ पढ़ने की बिल्कुल नहीं थी, किन्तु सुनने में वे माहिर थे। इसलिए वे मुझसे हमेशा कहते रहते थे : “तू जवन बतिया बतावैला, ऊ दिमगवा में एकदम बइठ जा ले ।” अतः दूबे

अकसर मेरे कमरे पर आ जाते और कम्युनिज्म के साथ साथ ढेर सारे प्रश्नों के उत्तर सुन कर रट जाते थे। वे पार्टी में मुझे अपना आदर्श मानते थे तथा हमेशा यह कहते : “पार्टी के चाही कि ऊ तोहके कैडरवन के पढ़ावै बदे लगावै।” किन्तु उनकी यह कल्पना कभी साकार नहीं हो पायी। दूबे की एक अन्य विशेषता यह थी कि वे दक्षिण भारतीय नेताओं के बोलने की खूब नकल करते थे। वे शुद्ध बनारसी गालियां इस अंदाज में देते थे कि मानो जैसे कोई नेता तमिल या तेलगु में भाषण दे रहा हो। बहुत जानकार लोग ही उनकी गालियों को पकड़ पाते थे। गाली के संदर्भ में शिवानंद मुझसे हमेशा कहते : “तू हमरे सवलवा क जवबवा पूंजीपतियन के गरियाय गरियाय के बतावल करा। हमके ऊ जल्दी इयाद होइ जाले।” अतः मैं जब भी समाजवाद सोवियत संघ या समाजवादी दुनिया के बारे में अमरीका या पूंजीपतियों को गाली दे देकर कुछ बताता, उसे वे तुरंत रट लेते थे। वे शास्त्रीय संगीत की भी अच्छी नकल कर लेते थे। इस संदर्भ में उनकी एक हरकत आज भी याद करके मैं तनावमुक्त हो जाता हूँ। उनके पड़ोस में एक सोनार का परिवार रहता था। सोनार अपनी पत्नी को डंडे से पीटा करता था, जिसके बदले वह महिला खूब गालियां दिया करती थी। दूबे के एक अन्य पड़ोसी ‘पंडित जी’ थे, जो उन गालियों को ‘राग दरबारी’ में बहुत अच्छी तरह गाया करते थे। उनके द्वारा गायी गयी पंक्तियां इस प्रकार थीं :

*मत मार रक्तपेवना, मोहे डंडवा क मार।*

*अबकी मरबे, त लेबों तोरि मोछिया उखार। मत...*

इस गीत का परिणाम यह हुआ कि सोनार की पत्नी खुश होकर खुद पंडित जी से फरमाइश करने लगी कि वे उसे गाकर सुनाते रहें। अंततोगत्वा वह महिला अपने पति द्वारा प्रायः डंडे की मार खाती रही और पंडित जी उसे रागदरबारी सुनाते रहे। जब भी कुछ पार्टी कैडरों का जमावड़ा मेरे कमरे पर होता, शिवानंद दूबे वही रागदरबारी ज्यों का त्यों सुना कर खूब मनोरंजन करते थे। पार्टी के नीरसता भरे जीवन में दूबे की बनारसी मस्ती बड़ी राहतकारी सिद्ध होती थी। एक दिन दूबे के साथ एक लफड़ा हो गया। वे बी.एच.यू. के इंजीनियरिंग के एक छात्र नंदी के साथ मिल कर गोविन्द त्रिवेदी नामक नेपाली पार्टी कैडर को होस्टल के कमरे में बंधक बना कर ताला लगा दिये। उनका कहना था कि त्रिवेदी मूर्तिचोर है और उन्हें बेच कर वह बहुत पैसा कमाया है, इसलिए उन्हें भी उसमें हिस्सा चाहिए। त्रिवेदी किसी तरह हॉस्टल के प्रथम तल पर बंद कमरे के झरोखे से बाहर कूद कर सीधे गोदौलिया स्थित पार्टी दफ्तर आया और उसने दूबे की सारी हरकत का बयान कर दिया। परिणामस्वरूप दूबे को पार्टी से निकाल दिया गया। उस दिन भी दूबे मेरे पास आये और मैं उन्हें पहली बार बहुत दुखी पाया। फिर भी, पार्टी से निकाले जाने के बावजूद जब भी पार्टी का कोई जुलूस निकलता, शिवानंद दूबे हमेशा नारा लगाते मेरे बगल में होते। उस दौरान चुनाव प्रचार के लिए प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता भूपेश गुप्त बनारस आने वाले थे। उनकी आमसभा गंगा के किनारे अहिल्याबाई घाट पर रखी गयी थी। मैं बी.एच.यू. के अन्य पार्टी कार्यकर्ताओं के साथ घूम घूम कर लोगों से सभा में आने के लिए अपील करता। फरवरी 1969 का कोई शुरुआती दिन था। सभा चार बजे शाम को शुरू होने वाली थी, क्योंकि उस समय गंगा के तमाम घाटों पर खूब भीड़ होने लगती थी। बनारस के बारे में प्रचलित अवधारणा, ‘राड़, सांड, सीढ़ी, संच्यासी इनसे बचै ते सेवै कासी’, शाम के समय ज्यादा साकार होने लगती थी। विश्वनाथ गली से लेकर दशाश्वमेघ घाट के आसपास इन तत्वों की भरमार रहती थी। विशेष रूप से गली कूचों से लेकर सड़कों के चौराहों तक ट्रैफिक नियंत्रण का भार, ऐसा लगता था कि मानों म्युनिस्पैलिटी ने साड़ों के ही हवाले कर दिया हो। यद्यपि सामाजिक जागरूकता के कारण आजकल बनारस में वास कर रही विधवाओं की संख्या में काफी कमी आयी है, किन्तु उन दिनों इनकी बहुतायत थी। इनमें अधिकतर विधवाएं लोगों के घरों में बर्तन मांज कर अपना गुजारा करती थीं,

फिर भी वे 'स्वर्गप्राप्ति' की कामना में वहां रहने पर मजबूर थीं। मैंने स्वयं देखा था एक बुढ़िया विधवा, जो ब्राह्मणी थी, वह अस्सी स्थित मठ में गोरख पांडे समेत अनेक बाशिन्दों के बर्तन धोती थी। ऐसे ही कामों में लिप्त अनेक विधवाओं के बारे में वह बताया करती थी। खैर, रोजमर्रा की इस धमाचौकड़ी के बीच अहिल्याबाई घाट पर भूपेश गुप्त की सभा हुई, जिसका एक सबसे बड़ा कारण यह था कि यह घाट बंगालियों के मोहल्लों के बिल्कुल पास था। अतः वहां बड़ी संख्या में बंगाली इकट्ठा हुए थे। मैं बी.एच.यू. से गोरख पांडे को लेकर उनका भाषण सुनने अहिल्याबाई घाट गया। भूपेश गुप्त का भाषण बंगला भाषा में हुआ। वे एकचटिया यानि एकाधिपत्य रखने वाले पूंजीपति टाटा बिड़ला पर हमला बोलते हुए जूट प्रेस (यानि पूंजीपतियों के ही प्रेस) की भूमिका को जनविरोधी बता रहे थे। राष्ट्रीय एकता पर जोर देते हुए उन्होंने तत्कालीन जनसंघ की साम्प्रदायिक नीतियों पर खूब हमला बोला। उनका भाषण काफी देर तक चलता रहा और चारों तरफ अंधेरा छाने लगा था। इस बीच गोरख पांडे ने कहा कि वे वापस जाना चाहते हैं। मैंने उन्हें जाने दिया और स्वयं सभा समाप्त होने तक वहीं रुका रहा। दूसरे दिन सुबह होते ही कैलाश भवन के मेरे कमरे पर बनारस की संस्कृत यूनिवर्सिटी में संस्कृत के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो. परम कुबेर मालवीय आये। वे गोरख पांडे के प्राध्यापक रह चुके थे। मालवीय जी लंका के एक अन्य मकान में रहते थे। उन्होंने मुझे बताया कि गोरख पांडे पिछली रात से भेलूपुर थाने में बंद हैं। कारण पूछने पर पता चला कि जब वे भूपेश गुप्त का भाषण बीच में छोड़ कर वापस आते समय सोनारपुरा चौमुहानी पर पहुंचे, तो देखा कि ठीक चौराहे पर एक ट्रक खड़ा था, जिससे आने जाने वाले रिक्शाचालकों आदि को बड़ी कठिनाई हो रही थी। ट्रक चालक को दो पुलिस वाले रोक कर कुछ घूस मांग रहे थे। किन्तु उसके पास पैसे नहीं थे, इसलिए पुलिस वाले ट्रक को आगे नहीं जाने दे रहे थे। पुलिस की इस हरकत को देख कर गोरख पांडे दहाड़ते हुए उनसे लड़ पड़े और ट्रक वाले को वहां से आगे जाने देने के लिए तत्काल अपील की। परिणामस्वरूप मामला उलझता चला गया और वहां काफी भीड़ इकट्ठा हो गयी। भीड़ की गम्भीरता इसलिए ज्यादा बढ़ गयी, क्योंकि गोरख पांडे एकदम भाषण की मुद्रा में आ गये और वे पुलिस द्वारा घूसखोरी का पर्दाफाश करने लगे। इस बीच एक पुलिसवाला बिल्कुल पास स्थित भेलूपुर थाने से दस बारह सिपाहियों को बुला लाया। सिपाहियों ने लाठियों से गोरख पांडे को बुरी तरह पीटते हुए थाने में ले जाकर बंद कर दिया। उनके ऊपर अनेक धाराओं में मुकदमें दर्ज कर दिये गये। सुबह दस बजे कोर्ट में प्रस्तुत कर उन्हें जेल भेजा जाने वाला था। अतः मालवीय जी ने कहा कि चलिए थाने से ही उनकी जमानत करा ली जाये। वे गोरख पांडे के बड़े हितैषी थे, किन्तु उनके कम्युनिस्ट हो जाने पर चिन्तित हो गये थे। खैर, हम लोग जैसे तैसे जमानत पर गोरख पांडे को थाने से छुड़ा लाये। पुलिस की मार से उनका हाल बेहाल था। उनके शरीर पर अनेक लाठियों के निशान पड़ गये थे। मेरे कमरे में सोकर वे कराहने लगे। थोड़ी देर बाद मालवीय जी ने मुझे दस रुपये देते हुए कहा तुरंत जाकर एक बोतल ठर्रा लाकर इन्हें पिला दो, ताकि दर्द की अनुभूति कुछ कम हो जावे। मालवीय जी के इस सुझाव पर मैं चौंक गया, किन्तु वैसा ही किया। शाम के समय खाना पकाते समय मैंने गोरख से कहा कि रास्ते चलते आप पुलिस से क्यों झगड़ा मोल ले लिए? इस पर वे मेरे ऊपर बुरी तरह बिगड़ गये और कहने लगे कि अन्याय जहां भी होगा, मैं विरोध हमेशा करूंगा, भले ही मेरी जान चली जावे। हकीकत यह थी कि बचपन से लेकर आचार्य (एम.ए.) तक गुरुकुलिया संस्कृत पढ़ते हुए गोरख पांडे एक अतिवादी पोंगापंथ के शिकार हो गये थे, किन्तु जब वे बी.एच.यू. आकर मार्क्सवाद में संतरित हुए, तो वह अतिवाद कम्युनिस्ट अतिवाद में बदल गया, जिससे उन्हें जिन्दगी भर जूझना पड़ा था। इस घटना के कुछ माह पूर्व एक अन्य घटना उल्लेखनीय है। हुआ यह था कि कुछ हिन्दुत्ववादी छात्रों ने जब बिरला होस्टल के

अनेक छात्रों को बुरी तरह पीट दिया था, तो बी.एच.यू. में हड़ताल हो गयी थी। उन दिनों प्रो. हजारी प्रसाद द्विवेदी रेक्टर थे। वे हिंसा के विरोध में एक दिन के उपवास पर चले गये। अखबारों में यह खबर आने से हम सभी बहुत खुश हुए थे, किन्तु शीघ्र ही तत्कालीन वाइस चांसलर डॉ. अमर चंद जोशी के दबाव डालने पर द्विवेदी जी ने अपना रुख बदलते हुए यह घोषणा कर दी कि वे हिंसा के विरोध में नहीं, बल्कि 'एकादशी' का व्रत रखे थे। उनके इस विरोधाभासी रुख पर करीब दो सौ छात्र द्विवेदी जी के घर पर प्रदर्शन करने गये। जुलूस में गोरख पांडे के साथ मैं भी था। घर के अंदर द्विवेदी जी एक चटाई पर बैठे हुए थे। गोरख पांडे उन्हें देखते ही अपनी चिर परिचित दहाड़ने वाली आवाज में चिल्ला उठे : "तुम पाखंडी हो और आर.एस.एस. के दलाल हो, इसलिए उनके दबाव में अपने बयान से पलट गये. ..।" उस दिन मैंने देखा कि प्रो. हजारी प्रसाद द्विवेदी एकदम अवाक रह गये और उन्हें कोई जवाब नहीं सूझ रहा था। बाद में उसके ठीक दूसरे दिन गोरख पांडे पैदल वाइस चांसलर लाज के ठीक सामने वाली सड़क से आर्ट्स कालेज जा रहे थे। वहीं उन्हें कुछ पुलिस वालों ने पकड़ कर वाइस चांसलर लाज के अंदर ले जाकर लाठियों से बुरी तरह पीटा था। इस तरह गोरख पांडे के अंदर अन्याय से लड़ने की एक विचित्र उत्कंठा हमेशा व्याप्त रहती थी। वे परिणाम की कल्पना कभी नहीं करते थे।

उधर फरवरी 1969 का नौ प्रांतों वाला मध्वावधि चुनाव समाप्त हुआ और कांग्रेस लगभग हर जगह सत्ता में वापस आ गयी। किन्तु उत्तर प्रदेश में डांवाडोल स्थिति बनी रही। बनारस की कचहरी में जब वोटों की गिनती चल रही थी, मेरे साथ गोरख पांडे सुबह से शाम तक वहीं डटे रहे। अंततोगत्वा रुस्तम सैटिन चुनाव हार गये, जिससे मैं बहुत दुखित हो गया था। उनके विरोध में जनसंघ के शचीन्द्र नाथ बक्सी चुनाव जीते थे। बक्सी एक स्वतंत्रता सेनानी थे किन्तु साम्प्रदायिक शक्तियों के साथ चले जाने के कारण उनकी छवि बहुत खराब हो गयी थी। फिर भी, हिन्दू वोटों के ध्रुवीकरण के कारण वे चुनाव जीत गये, जिसका एकमात्र कारण था शहर दक्षिणी क्षेत्र में मुसलमानों का कम्युनिस्ट पार्टी को समर्थन देना। चुनावों के बाद दलबदल का एक भीषण दौर शुरू हुआ। चरण सिंह कांग्रेस पहले ही छोड़ चुके थे। उन्होंने भारतीय क्रांति दल (बी.के.डी.) बना लिया था, जिसकी उत्तर प्रदेश में खूब चर्चा थी। पूर्वी यू.पी. में यादव लोगों की बहुतायत थी। वे लोग चरण सिंह को यादव समझ कर उनके साथ हो गये थे। यादवों की यह विचित्र समझ थी, क्योंकि चरण सिंह शुद्ध जाट थे। चरण सिंह ने 'अजगर' यानि 'अहीर, जाट, गूजर तथा राजपूत' का नारा देकर जातीय ध्रुवीकरण को अपने पक्ष में करने की कोशिश की थी। वे तोड़जोड़ में माहिर थे, जिसके कारण पुनः मुख्यमंत्री बन गये। उनकी जुगाड़ राजनीति के कारण तत्कालीन सोशलिस्ट पार्टी के नेता राजनारायण चरण सिंह को 'चेयर सिंह' कह कर सम्बोधित करते थे। यह वही दौर था जब भारतीय राजनीति में 'आयाराम गयाराम' की अवधारणा उमड़ कर सबके सामने आयी। हुआ यह था कि हरयाना में 'गयाराम' नामक एक विधायक थे। वे चौबीस घंटे के अंदर तीन बार दल बदल किये थे। अतः उन्हीं के नाम पर 'आयाराम गयाराम' प्रसिद्ध हुआ था। दलबदल के कारण उत्तर प्रदेश की विधानसभा में पहली बार मारपीट की परिपाटी शुरू हुई थी। इन चुनावों के बाद देश की राजनीति में एक बड़ा उबाल उस समय आया जब 20 जुलाई 1969 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने बीस बड़े बैंकों को राष्ट्रीयकरण कर दिया। साथ ही उन्होंने राजाओं को दिये जाने वाले 'प्रीवीपर्स' की समाप्ति की भी घोषणा कर दी। आजादी के बाद से ही प्रीवीपर्स के रूप में तमाम पूर्व राजाओं को बड़ी धनराशि मुआवजे के रूप में दी जाती थी। इतना ही नहीं, हत्या जैसे अपराधों के लिए उन पर मुकदमे नहीं दायर किये जा सकते थे। कोयले की खानों का भी राष्ट्रीयकरण किया गया था। इन कदमों के कारण इंदिरा गांधी को देश भर में हद से ज्यादा लोकप्रियता मिली थी। किन्तु कांग्रेस के अंदर दक्षिणपंथी नेताओं ने विद्रोह कर दिया था, जिससे पार्टी



दो भागों में बंट गयी। उसी समय तत्कालीन वित्तमंत्री मोरार जी देसाई को इंदिरा गांधी ने मंत्रिमंडल से बर्खास्त कर दिया था। कांग्रेस के दक्षिणपंथी गुट में देसाई के अलावा ए.एस. निजलिंगप्पा (कांग्रेस अध्यक्ष), नीलम संजीव रेड्डी, एस.के. पाटिल आदि जैसे नेता शामिल थे। जिस दिन बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा प्रिवीपर्स खत्म करने की घोषणा की गयी, ठीक उसी दिन उत्तर भारतीय राज्यों से सी.पी.आई. से सम्बद्ध आल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन का बनारस में एक सम्मेलन हो रहा था। यह सम्मेलन लक्सा स्थित एक धर्मशाला में आयोजित किया गया था। राष्ट्रीयकरण आदि की घोषणा होते ही सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित करके उसका स्वागत किया गया तथा हम लोगों ने एक जुलूस निकाल कर इंदिरा गांधी के प्रति समर्थन का इजहार किया था। जुलूस लक्सा से रामपुरा, गिरजाघर चौमुहानी, गोदौलिया, विश्वनाथ गली होते दशाश्वमेघ घाट पर समाप्त हुआ था। यह जुलूस स्वतःस्फूर्त था, जिसके लिए पार्टी की राय नहीं ली गयी थी, क्योंकि हमारी राजनीतिक समझ यह थी कि पहली बार इंदिरा गांधी ने सामंतों तथा पूंजीपतियों के खिलाफ कुछ सशक्त कदम उठाया था। यह वही दिन था, जब अमरीका का 'अपोलो 11' नामक अंतरिक्षयान तीन यात्रियों को लेकर चांद पर गया था। इनमें से नील आर्मस्ट्रॉंग पहली बार चांद पर उतरे थे। दो अन्य अंतरिक्ष यात्री थे एल्लिडन तथा लवेल। ये अंतरिक्ष यात्री चांद की मिट्टी जमीन पर लाये थे। चांद पर मानव के प्रथम कदम का समाचार बनारस के अखबारों में बड़ी बड़ी सुर्खियों में छपा था। अखबार अमरीका की तारीफ करते नहीं थकते थे। उसी समय आर्म स्ट्रॉंग ने धरती पर अमरीकी कंट्रोल सेण्टर को सूचना भेज कर कहा कि वे ज्यों ही चांद पर कदम रखे, उन्हें वहां एक चमक दिखायी दी। इस समाचार को पढ़ कर बनारस के एक ज्योतिषी शास्त्री जी ने बयान दिया : "मनुष्य के पापी कदम पड़ते ही 'चंद्र देवता' निकल कर भाग गये, इसीलिए वहां चमक हुई थी!" धर्मप्रिय नगरी होने के बावजूद बनारस के अधिसंख्य लोग शास्त्री जी के बयान को झूठा तथा अटकलबाजी बताने लगे थे। उस दिन मैंने देखा कि बी.एच.यू. के अनेक छात्र इस प्रश्न पर बहस करते हुए उक्त ज्योतिषी के प्रति बनारस की वही पुरानी प्रचलित गाली 'भो और झी' के बीच 'स' का इस्तेमाल करने में जरा भी नहीं हिचकते थे। अपोलो वाली घटना के साथ उसी दिन घटित एक अन्य घटना से मैं बहुत उत्तेजित था। वह घटना थी सोवियत संघ द्वारा 'लूनाखोद' नामक मानवरहित अंतरिक्षयान का चांद पर उतारा जाना। लूना भी चांद की मिट्टी खोद कर जमीन पर लाया था। उन दिनों अमरीका तथा सोवियत संघ के बीच 'कोल्ड वार' अपनी चरमसीमा पर था। अतः बी.एच.यू. के छात्र इन्हीं खेमों में बंटे हुए थे। उठते बैठते जब भी बहस होती, मैं हमेशा सोवियत वैज्ञानिकों की उपलब्धि को ज्यादा चमत्कारिक बताता और कहता कि जिस चांद की मिट्टी को अमरीका मानव भेज कर मंगाया, सोवियत संघ ने उसे मात्र एक मशीन द्वारा सम्भव बना दिया। विशेष रूप से बी.एच.यू. के कैफेटेरिया में बहस के दौरान मैं छात्रों को बताता कि सोवियत संघ स्पेस साइंस (अंतरिक्ष विज्ञान) का जनक है, क्योंकि सन् 1957 में उसने पहली बार अंतरिक्ष में 'स्पूतनिक' नामक उपग्रह सफलतापूर्वक भेजा था, जिस पर अमरीकियों को विश्वास नहीं हो पाया था। बाद में जल्दीबाजी में अमरीका ने एक उपग्रह अंतरिक्ष में भेजा किन्तु मिनटों में ही वह गिर कर नष्ट हो गया, जिस पर 'न्यूयार्क टाइम्स' ने हेडिंग दिया था: 'फ्लापनिक', यानि 'ध्वस्त' हो गया। चूंकि मैं सोवियत क्रांति के प्रभाव से कम्युनिस्ट बना था, इसलिए सोवियत संघ मेरी बहसों में हमेशा सर्वोपरि होता था, जिसके कारण अनेक छात्र मुझे 'रूसी ऐजेण्ट' बताते थे। किन्तु मैं इस तरह के कथनों को कभी बुरा नहीं मानता था, क्योंकि सोवियत संघ का कट्टर समर्थक होने को मैं एक सच्चे कम्युनिस्ट की निशानी मानता था। इस बीच देश की राजनीति में बड़ी तेजी से ध्रुवीकरण उभर कर उस समय आया, जब भारत के तीसरे राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसेन की मृत्यु के बाद 24 अगस्त 1969 को नये राष्ट्रपति का चुनाव हुआ। उस चुनाव में कांग्रेस के आधिकारिक

उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी थे, जो दक्षिणपंथी माने जाते थे, किन्तु इंदिरा गांधी ने वराह व्यंकट गिरि को अपना उम्मीदवार बनाया था। उस दौरान कांग्रेस की राजनीति में तूफान सा आ गया था। इंदिरा गांधी ने 'अंतरात्मा' की आवाज पर वी.वी. गिरि को वोट देने की अपील की थी। अंततोगत्वा, पूरा देश दक्षिणपंथी एवं वामपंथी ध्रुवीकरण के बीच बंट गया। कांग्रेस के अंदर सिण्डिकेट यानि दक्षिणपंथी गुट, जनसंघ (आर.एस.एस. की प्रथम पार्टी) तथा चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के नेतृत्व वाली राजाओं की स्वतंत्र पार्टी रेड्डी के साथ हो गयी, वहीं सी.पी.आई., सी.पी.आई.एम.; सोशलिस्ट पार्टी आदि इंदिरा गांधी गुट के साथ थे। इसका परिणाम यह हुआ कि गली गली में राष्ट्रपति चुनाव की धूम मच गयी। ध्रुवीकरण की खबरों से भारत के तमाम अखबार भरे पड़े रहते थे। बी.एच.यू. के छात्रों के बीच दिन रात ध्रुवीकरण पर बहसें होतीं। इन बहसों में मैं भी बड़ी सक्रियता से हिस्सा लेता था। इस चुनाव में सी.पी.आई. सबसे ज्यादा मुखर हो उठी थी। पार्टी के चेयरमैन श्रीपाद अमृत डांगे देश भर में घूम घूम कर वी.वी. गिरि के समर्थन में जनसभाएं करने लगे थे। इतनी गहमागहमी किसी भी राष्ट्रपति के चुनाव में आज तक नहीं देखी गयी। डांगे अपनी सभाओं में 'नेशनल बुर्जुआजी' यानि 'राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग' की अवधारणा पर विशेष विश्लेषण करते। वे कहते कि नेशनल बुर्जुआजी पूंजीवाद का समर्थक होने के बावजूद उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद का विरोधी होता है जिसके कारण उसकी भूमिका प्रगतिशील हो जाती है। इसलिए कम्युनिस्ट पार्टी नेशनल बुर्जुआजी का समर्थन अवश्य करे। इस अवधारणा को और साफ करते हुए उनका कहना था कि कांग्रेस के अंतर्गत इंदिरा गांधी का गुट नेशनल बुर्जुआजी की श्रेणी में आता है तथा सिण्डिकेट गुट साम्राज्यवाद समर्थक है। अतः नेशनल बुर्जुआजी को समर्थन देकर साम्राज्यवाद समर्थक गुट की राजनीति को परास्त करना चाहिए। डांगे का यह विश्लेषण लेनिन द्वारा किये गये नेशनल बुर्जुआजी के उस विश्लेषण से बिल्कुल मेल खाता था, जिसे उन्होंने 1920 में मास्को में सम्पन्न कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में प्रस्तुत किया था। उपनिवेशवाद का विश्लेषण करते हुए लेनिन ने कहा था कि गांधी जी के नेतृत्व वाली कांग्रेस आंतरिक मामलों में पूंजीवाद का समर्थक होने के बावजूद उपनिवेशवाद की विरोधी है, इसलिए वह नेशनल बुर्जुआजी की श्रेणी में आती है। अतः कम्युनिस्ट, उपनिवेशवाद को समाप्त करने के लिए गांधी जी को अवश्य समर्थन दें। लेनिन तथा डांगे का यह राजनीतिक विश्लेषण मेरे मस्तिष्क में एकदम समा गया था। मैं छात्रों तथा पार्टी कैडरों के बीच इस अवधारणा का खूब प्रचार करता। इस तरह राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में नेशनल बुर्जुआजी की अवधारणा का मैं प्रबल प्रचारक बन गया, जिस पर मैं आज भी कायम हूं। इस पूरी राजनीतिक प्रक्रिया के दौरान वी.वी. गिरि चुनाव जीत गये। उनके चयन से देश भर में एक नया उल्लास फैल गया था। देश में समाजवाद की अवधारणा बड़ी तेजी से उमड़ कर जनता के सामने आयी थी, जिस पर सिण्डिकेट के नेता एस.के. पाटिल ने कहा था : 'समाजवाद मेरी लाश से गुजरेगा।' उनके इस कथन के बाद मुम्बई से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक अखबार 'ब्लिट्ज' के सम्पादक आर.के. करंजिया ने एक फोटो छपा जिसमें एस.के. पाटिल झुक कर नेहरू जी के जूते का फीता बांध रहे थे। उस समय समाजवाद पर की गयी टिप्पणी से पाटिल की खूब खिल्ली उड़ायी गयी।

देश में हो रही उस उथलपुथल के बीच अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रही घटनाएं भी मुझे बुरी तरह प्रभावित कर रही थीं। विशेष रूप से वियतनाम की घटनाओं से मैं बहुत चिन्तित रहने लगा था। वियतनाम के एक शहर दानांग पर अमरीकी नेपाम (आग लगाने वाले) बमों से भयंकर बमबारी कर रहे थे। चारों तरफ तबाही मची हुई थी। युद्ध के खिलाफ कई वियतनामी बौद्ध भिक्षुओं द्वारा आत्मदाह कर लेने की भी खबरें आने लगीं। विश्व बौद्ध इतिहास में यह पहला अवसर था, जब शांति प्रेमी भिक्षुओं ने आत्मदाह जैसी घटनाओं में लिप्तता दिखायी। उन्हीं का अनुसरण करते हुए आज

भी समय समय पर चीन की नीतियों के विरुद्ध तिब्बत के भी बौद्ध भिक्षु आत्मदाह कर लेते हैं। मुझे ऐसी घटनाओं पर बहुत अचम्भा होता था, क्योंकि बुद्ध नरहत्या या आत्महत्या के एकदम खिलाफ थे। बौद्ध कानूनों (नियम) के संग्रह 'विनय पिटक' की शुरुआत में ही बुद्ध ने तीसरा कानून आत्महत्या के विरोध में बनाया था। उन्होंने साफतौर पर कहा : “जो भिक्षु मानव हत्या करे या आत्महत्या के लिए हथियार लावे या मरने की तारीफ करे या मरने के लिए प्रेरित करे या कहे कि जीने से मरना अच्छा है, वह पाराजिक होता है।” पाराजिक का अर्थ होता है कि जिस भिक्षु को अपराध करने पर भिक्षुपन से हमेशा के लिए निकाल दिया जाता है। प्रथम दो कानून किसी भिक्षु द्वारा जानवर के साथ मैथुन करने तथा चोरी के विरुद्ध बनाये गये थे। आगे की शिक्षा बंद हो जाने की सम्भावना को सोच कर कई बार मेरे दिमाग में भी आत्महत्या की कल्पना आयी थी, किन्तु बुद्ध ने मुझे बचा लिया। उसी समय वियतनाम से आयी एक अन्य खबर से सारी दुनिया हिल गयी थी। वह खबर थी उस देश के 'माईलाई' नामक गांव में रात में घुस कर अमरीकी सैनिकों ने निहत्थे चार सौ से भी ज्यादा औरतों पुरुषों तथा बच्चों की हत्या कर दी थी। यद्यपि यह जनसंघार 16 मार्च 1968 को हुआ था, किन्तु लगभग साल भर तक अमरीका इसे छिपाने में सफल रहा था। इसलिए इसका पर्दाफाश 1969 में कुछ अमरीकियों ने ही किया। इस घटना के विरोध में हम लोगों ने रामनगर स्थित (यानि गंगा के उस पार) एक अमरीकी संस्था (लायब्रेरी) के समक्ष प्रदर्शन किया था। उन दिनों कोई भी अमरीकी अधिकारी बनारस आता, हम लोग उसके विरुद्ध अवश्य प्रदर्शन करते थे। कलकत्ता में लगाये जाने वाले नारे 'आमार नाम, तोमार नाम, वियतनाम वियतनाम' की गूंज बनारस में भी उठने लगी थी। उस समय मेरे जैसे कम्युनिस्टों के साथ आनंद कुमार के नेतृत्व में समाजवादी युवजन सभा के लोग भी वियतनाम युद्ध के खिलाफ अमरीका विरोधी प्रदर्शनों में शामिल होते थे। किन्तु अचम्भे वाली बात यह थी कि 'समाजवादी' लोग वियतनाम की सहायता करने वाले सोवियत संघ का भी विरोध करते थे, विशेष रूप से अपने भाषणों में। इस बीच वियतनाम से जुड़ी एक अफवाह ने बनारस में हंगामा मचा दिया था। हुआ यह था कि न जाने कहां से यह खबर उड़ी कि वियतनाम में युद्ध के कारण औरतों के लिए मर्दों की कमी हो गयी है, इसलिए इस कमी को पूरा करने के लिए युवकों की आवश्यकता है। अतः ऐसे युवक बनारस कलेक्टरेट में अपने नामों का पंजीकरण करावें। इस अफवाह के फैलते ही सैकड़ों लफंगे कचहरी पहुंच कर पूछताछ करने लगे थे, जिसके चलते जिला प्रशासन को एक बयान जारी कर इस अफवाह पर रोक लगानी पड़ी थी। उस दिन शाम को गोरख पांडे मेरे कमरे पर कैलाश भवन आये और गुस्से में कहने लगे : “आपने गौर किया कि सी.आई.ए. (सेण्ट्रल इंटेलिजेंस एजेन्सी, अमरीका) ने वियतनामी क्रांतिकारी महिलाओं के खिलाफ अफवाह फैला कर किस तरह उनकी क्रांतिकारिता पर चोट की है?” हम लोग बड़ी देर तक अमरीका की नीतियों पर बहस करते रहे। बहस के दौरान गोरख की जबान पर बार बार अमरीका की मां बहनें आ जाती थीं। दूसरे दिन जब हम लोग बी.एच.यू. गये तो छात्रों के बीच उस अफवाह पर खूब चर्चा हो रही थी। उस रोज मैं सारा दिन छात्रों से बहस के दौरान अमरीका के खिलाफ बोलता रहा। एक अन्य मुद्दा जिसे मैं छात्रों के बीच उठते बैठते हरदम उठाता रहता था, वह था फिलिस्तीन का। दो साल पूर्व यानि 1967 में अमरीका के समर्थन से अरब मुल्कों पर इजराइल का हमला। छः दिन तक चलने वाला यह युद्ध 5 जून को शुरू हुआ था। इस युद्ध के द्वारा इजराइल ने विशेष रूप से सीरिया के गोलन हाइट, जार्डन के वेस्ट बैंक तथा मिस्त्र के गाजा पट्टी आदि पर कब्जा करके अपने मूल क्षेत्रफल को दुगुना कर लिया था। उस युद्ध के कारण फिलिस्तीनी शरणार्थियों की समस्या ने बहुत खतरनाक मोड़ ले लिया था। धीरे धीरे मैं अंतरराष्ट्रीय राजनीति में पूरी तरह रमने लगा था। बनारस में सुबह सुबह सिर्फ एक

ही अखबार मिलता था। वह था 'आज', जिसे पढ़ने के लिए मैं रोज सुबह छः बजे नहा धोकर लंका स्थित शंकर की चाय की दुकान पर हाजिर हो जाता था। सिर्फ एक चाय के बदले उस दुकान में मैं कम से कम दो घंटा अवश्य बैठता और सारा अखबार अक्षरशः चाट जाता था। राजनीतिक समाचारों को मैं एक तरह से रट जाता था। उन दिनों रेडियो ट्रांजिस्टर बहुत कम होते थे और टेलीविजन का तो नामोनिशान तक नहीं था। बी.एच.यू.के सामने पूरे लंका बाजार में सिर्फ शंकर की चाय की दुकान में एक रेडियो होता था। रेडियो पर आकाशवाणी से आठ बजे सुबह समाचार आता था। मैं रोजाना इस समाचार को सुन कर वहां से उठता था। प्रतिदिन होने वाले घटनाक्रम से परिचित होने के लिए यही दो माध्यम थे। इस प्रक्रिया के दौरान 3 सितम्बर 1969 की सुबह आठ बजे रेडियो पर समाचार की पहली खबर आयी कि 2 सितम्बर को उत्तर वियतनाम के राष्ट्रपति हो ची मिन्ह का दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया। उनकी मृत्यु का समाचार सुन कर यकायक मैं न सिर्फ स्तब्ध रह गया, बल्कि मेरे आंसू भी निकल गये। चाय की दुकान के मालिक शंकर मुझसे बार बार पूछते रहे कि क्या हो गया? मैं सचमुच में बहुत दुखित हो गया था। बार बार दिमाग में आता कि वियतनाम की मुक्ति का क्या होगा। अमरीका ने युद्ध को बहुत तेज कर दिया था। उन दिनों वियतनाम दो भागों में बट गया था। दक्षिण वियतनाम के राष्ट्रपति 'न्हो दिन्ह दायम' अमरीका के पिट्रू थे। अतः वियतनाम बहुत बुरे दौर से गुजर रहा था। काफी समय बाद मुझे यह जान कर बहुत संतुष्टि मिली कि वियतनामी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता 'फान वांग डांग' बहुत सफलता के साथ हो ची मिन्ह की ही तरह अमरीका विरोधी युद्ध का संचालन कर रहे थे। उस समय मैं 'प्रोलेतैरियत इंटरनेशनलिज्म' की मार्क्सवादी अवधारणा, यानि एक देश का सर्वहारा किसी भी देश के सर्वहारा का भाई बंधु होता है, से पूरी तरह प्रभावित रहता था। इसलिए कम्युनिस्टों के खिलाफ किसी भी देश में कुछ भी होता, मैं बहुत तनावग्रस्त हो जाता था।

इस बीच भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी छात्र शाखा आल इंडिया स्टूडेण्ट्स फेडरेशन (ए. आई.एस.एफ.) को निर्देश जारी कर कहा था कि 18 वर्ष की उम्र में मताधिकार के लिए पार्लामेंट के सामने 15 नवम्बर 1969 को प्रदर्शन करे। हम लोग इस प्रदर्शन की तैयारी में लग गये। डब्बा लेकर गली गली में हम चंदा इकट्ठा करने जाते। ज्ञात रहे कि उन दिनों मताधिकार 21 वर्ष की अवस्था में दिया गया था। पार्टी ने तय किया था कि पूरी एक बस भर कर हम बनारस से दिल्ली प्रदर्शन के लिए जायेंगे। अतः काफी धन की जरूरत थी। हम लोग चंदा मांगने शहर के हर कोने जाते। अनेक लोग सिर्फ दस पैसा डब्बे में डालते। कोई दुकानदान चवन्नी डालता तो हम लोग उसे बहुत धन्यवाद देते। एक दिन चंदा मांगते हम लोग बनारस के उपनगरीय इलाके 'पांडेपुर पिसनहरिया' के बाजार में पहुंच गये। हम बहुत भूखे थे। चंदा मंडली ने तय किया कि आटा दाल खरीद कर सड़क के किनारे किसी पेड़ के नीचे गोइठे का अहरा लगा कर हड़िया में खाना पकाया जाये। फिर वैसा ही किया गया। इस काम में शिवानंद दूबे सबसे आगे रहे। वहां दीपक मलिक सहित करीब 15 पार्टी कार्यकर्ता थे। उस दिन पांडेपुर पिसनहरिया चंदा मंडली के लिए पूर्णरूपेण एक पिकनिक स्थली में बदल गयी थी। डब्बा लेकर चंदा मांगने का इतिहास कम्युनिस्टों के लिए बहुत रोचक है। इसकी शुरुआत कार्ल मार्क्स ने की थी। हुआ यह था कि 1871 में फ्रांस के मजदूरों ने सत्ता पर कब्जा कर लिया, जिसे 'पेरिस कम्यून' कहा गया। पेरिस कम्यून मात्र 71 दिनों तक कायम रहा, क्योंकि जर्मनी की सैनिक सहायता से फ्रांस ने इसे कुचल दिया था। यद्यपि कार्ल मार्क्स ने फ्रांसीसी मजदूरों को सलाह दी थी कि वे वैसा अभी नहीं करें, क्योंकि सत्ता पर कब्जा करना आसान है, पर उसे कायम रखना कठिन होता है इसका कारण था मजदूर वर्ग का उस समय शक्तिशाली न होना। मार्क्स का विश्लेषण बिल्कुल सही निकला। पेरिस कम्यून के कुचले जाने के बाद हजारों मजदूरों को मार डाला गया तथा अनगिनत लोगों पर

मुकदमा चलाया गया। मजदूरों की तरफ से मुकदमा लड़ने के लिए मार्क्स डब्बा लेकर चंदा इकट्ठा करने लगे थे। उनकी इस परम्परा को दुनिया भर के कम्युनिस्ट बरकरार रखे हुए हैं। उस परम्परा का हिस्सा बन कर मैं आज भी गर्व महसूस करता हूँ। डब्बा कलेक्शन द्वारा प्राप्त धनराशि से हम एक किराये की बस द्वारा दिल्ली चल दिये। हमारी यात्रा बनारस से 14 नवम्बर 1969 को 11 बजे रात को शुरू हुई। बस मालिक से तय हुआ था कि वह आगरा तथा फतेहपुर सीकरी होते हुए दिल्ली पहुंचाएगा। प्रथम चरण में हम 15 नवम्बर को दोपहर बाद आगरा पहुंचे। आगरा पहुंचते हमारी यात्रा रोचक इसलिए बन गयी थी, क्योंकि भारत आस्ट्रेलिया का कानपुर में क्रिकेट टेस्ट मैच चल रहा था और कर्नाटक के नये खिलाड़ी जी.आर. विश्वनाथ ने दूसरी पारी में शतक बनाया। हम बस में रडियो से कमेंट्री सुन रहे थे। ताजमहल के पास ज्यों ही हमारी बस रुकी, विश्वनाथ का शतक पूरा हुआ। बस में खुशी से खूब तालियां बजी थीं। इसी खुशी के साथ ज्योंही मेरी प्रथम दृष्टि ताजमहल पर पड़ी, मैं काव्यात्मक अनुभूति का शिकार हो गया, जिसे तुरंत लिपिबद्ध कर लिया, जो इस प्रकार थी :

*कितना अद्भुत ताजमहल,  
तू यमुना तट पर फैला है।  
चाहे कोई कुछ भी समझे,  
तू मजनू की लैला है।।*

बाहर से ही ताजमहल से सम्मोहित हो, जब मैंने अंदर शाहजहां और मुमताज की मजार को देखा, तो एक अलग ढंग की अनुभूति हुई। मेरे ऊपर मार्क्सवादी सोच हावी होने लगी। अब प्यार की निशानी मजदूर की निशानी में बदल गयी। फतेहपुर सीकरी तक पहुंचते पहुंचते चार लाइनें फिर लिपिबद्ध हो गयीं:

*जिनकी हड्डी पसली से हैं  
बनी ताज की दीवारें  
रखते ही पग झनझन करती  
आहें उनकी चित्कारें।*

बाद में मैंने ताजमहल पर एक बहुत लम्बी कविता लिखी, जिसे बाद के दिनों में बी.एच.यू. एम.ए. के सहपाठी प्रो. सतीश कुमार राय (काशी विद्यापीठ) छात्रों के स्वागत या विदाई समारोहों में गर्मजोशी से सुनाया करते थे। उन दिनों लिखी गयी मेरी कविताओं की सबसे बड़ी प्रशंसक बी.एच. यू. सोशल साइंस फैकल्टी की वर्तमान डीन प्रो. चंद्रकला पाण्डेय थीं। वे आज भी जब भी मिलती हैं, उन कविताओं को प्रकाशित कराने को कहती रहती हैं। चंद्रकला भी मेरे साथ पढ़ती थीं। फतेहपुर सीकरी ने मुझे ताजमहल से कहीं ज्यादा प्रभावित किया था। पूरे किले से अकबर की धर्मनिरपेक्षता प्रवाहित हो रही थी। गुजरात विजय की शान में निर्मित बुलंद दरवाजा कला का अद्भुत नमूना प्रस्तुत कर रहा था। वहां एक पहलवान किस्म का आदमी था। दरवाजे की अद्भुत ऊंचाई से नीचे पानी से भरे एक छोटे से गड्ढे में 'अली अली' का नारा लगाते हुए वह कूद जाता था। एक कुदान के बाद ज्यों ही पर्यटकों से कुछ पैसे मिल जाते, वह पुनः बुलंद दरवाजे पर अगली छलांग के लिए चढ़ जाता था। उसकी यह बुलंद कुदान दिन भर जारी रहती थी, जिससे उसके परिवार का पालन पोषण चलता रहता था। हैरत इस बात की थी कि उसके साथ कभी कोई दुर्घटना नहीं हुई, अन्यथा एक दो सेण्टीमीटर के हेरफेर से वह चूर चूर हो सकता था। वहां सलीम चिश्ती की दरगाह कला का एक अलग विस्मित करने वाला नमूना था। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मनौती मानने वालों का तांता लगा हुआ था। मनौती का तरीका था दरगाह के झरोखों में धागा बांधना। मैंने धागा तो नहीं बांधा, किन्तु यह मनोकामना लिए दरगाह से बाहर निकला कि भारत में समाजवादी व्यवस्था अवश्य लागू हो। मैं

राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित 'अकबर' नामक पुस्तक पहले ही पढ़ चुका था। अतः उसमें वर्णित अकबर के जीवन से जुड़ी तमाम घटनाएं मेरे मस्तिष्क के आरपार होने लगीं। फतेहपुर सीकरी में रहते हुए अकबर जंगली गदहों का शिकार करता था। दरबार में जिससे नहीं पटी उसे शाही खर्च से हज करने मक्का भेजा जाता था, किन्तु यमुना पार होते ही अकबर के कारकुन उसे मार डालते थे। एक बार एक चरागसाज यानि किले में चिराग जलाने वाला चिराग जलाते हुए अचानक बीमार होकर शाही तख्त के पास गिर कर लेट गया। ठीक उसी समय अकबर ने वहां उसे देख लिया। उसने तुरंत फरमान जारी कर दिया कि चरागसाज को बुलंद दरवाजे से नीचे फेंक दिया जाये। देखते ही देखते चरागसाज चकनाचूर हो शाही फरमान का शिकार हो गया। राहुल सांकृत्यायन द्वारा वर्णित इस तरह के तथ्यों ने मेरे दिमाग में अकबर के व्यक्तित्व पर प्रश्नचिह्न सा लगा दिया था। पानी की कमी से अकबर को वह किला छोड़ना पड़ा था। यह तथ्य भी अचम्भे वाला था। फतेहपुर सीकरी में एक घंटा रुकने के बाद हमारी बस दिल्ली के लिए रवाना हो गयी। सिकंदरा में अकबर का मकबरा देखते हुए हम मथुरा होते देर रात को दिल्ली पहुंच गये। आगरा से दिल्ली के बीच की यात्रा मुझे लगातार मुगलकालीन भारत के इतिहास का बोध कराती रही। कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ से हमारे ठहरने का इंतजाम तालकटोरा गार्डन में किया गया था। वहां तम्बू गड़े हुए थे। करीब 15 हजार कम्युनिस्ट छात्र देश के कोने कोने से वहां आये थे। रात में कम्युनिस्ट पार्टी के चेयरमैन एस.ए. डांगे का भाषण हुआ। डांगे की आवाज में जादू सा बिखर जाता था। मैं उनके व्यक्तित्व से बुरी तरह प्रभावित हुआ था। सुबह होने पर करीब 10 बजे हम पार्लामेण्ट पर प्रदर्शन के लिए चल पड़े। जुलूस की शक्ति में चलते हुए हमारा प्रमुख नारा था : 'अठारह साल में मताधिकार ले के रहेंगे... ले के रहेंगे।' बीच बीच में 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' में मार्क्स द्वारा दिये गये नारे : 'दुनिया के मजदूरों एक हो' की भी गूंज होती रहती थी। इस तरह के जुलूस में मैं पहली बार दिल्ली आया था। उस दिन तालकटोरा तथा इंडिया गेट के बीच पूरे रास्ते भर मैं अत्यंत भावुक हो उठा था। भारत में क्रांति की कल्पना से मेरे आंसू रोकने पर भी नहीं रुकते थे। इंडिया गेट की सभा में ए.आई.एस.एफ. के प्रेसिडेंट जोगिंदर सिंह दयाल तथा यूथ लीडर सी.के. चंद्रभान आदि के भाषण हुए। कम्युनिस्ट नेता भूपेश गुप्त ने भी भाषण दिया था। सभा का अंत होने पर छात्रों के डेलीगेशन ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को एक 'मेमोरेण्डम' दिया। उस दिन एक रोचक घटना यह हुई कि चंडीगढ़ को पंजाब में मिलाने को लेकर अकालियों के नेतृत्व में एक बहुत बड़ा पंजाबियों का जुलूस इंडिया गेट पर आया था। हजारों हजार की संख्या में पगड़ीधारी सिखों को एक जगह मैंने पहली बार देखा। वे एक रोचक नारा लगा रहे थे : 'फूल खिला गुलाब का चंडीगढ़ पंजाब का... नहीं किसी के बाप का'। इस नारे ने हमें बहुत लुभाया था। हकीकत यह थी कि वहां से तालकटोरा लौटते हुए कई छात्र उसी नारे को दोहराते रहे। मैं मुश्किल से 24 घंटे दिल्ली रहा, दक्षिण दिल्ली की साफसुथरी पेड़ों से घिरी सड़कें, गोल चक्कर वाले चौराहे, संसद भवन तथा केन्द्रीय सचिवालय, कनाट प्लेस आदि देख कर मैं भौचक रह गया था। किन्तु प्रदर्शनकारियों के लिए खाने पीने की कोई उचित व्यवस्था न होने के कारण इधर उधर भटकना पड़ा, दक्षिण दिल्ली के बड़े क्षेत्र में चाय के ढाबों का न होना तथा कहीं भी जाने के लिए थकाऊ पैदल यात्रा जैसी कठिनाइयों से ऊब कर एक बार तो मैंने मन ही मन प्रण कर लिया था कि दुबारा कभी दिल्ली नहीं आऊंगा। मेरे दिमाग में बार बार यह बात आती थी कि मेरी जैसी पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति के लिए दिल्ली नहीं बनी है। मैं यह भी सोचने लगा था कि भूखे रहना है, तो बनारस ही भला। इन्हीं सोचों के साथ 16 नवम्बर 1969 की देर शाम हमारी बस दिल्ली से सीधे बनारस के लिए चल पड़ी। बनारस हवाई अड्डा 'बाबतपुर मंगारी' गांव के रहने वाले पार्टी कार्यकर्ता राम करन पटेल बस के चलते ही जोर जोर से

‘फूल खिला गुलाब का...’ वाला नारा लगाने लगे, फिर सारी बस इसी नारे से गूँज उठी, जिसके साथ जोरों का ठहाका भी लगा। कुछ समय के लिए हम कम्युनिस्टों का झुंड पंजाब के अकालियों में बदल गया था। शायद इसी को बनारस की मस्ती कहते हैं। राम करन पटेल बड़े जिन्दादिल इंसान तथा काशी विद्यापीठ के छात्र थे। उन ठहाकों के बाद पटेल के ही साथ हम सभी ने बार बार जोर का नारा लगाया : ‘दुनिया के मजदूरों एक हो’। इस तरह हमारी बस में पुनः ‘कम्युनिज्म’ की वापसी हो गयी। जैसे जैसे हमारी बस बनारस की ओर बढ़ती गयी, ठीक वैसे ही दिल्ली दूर होती चली गयी। सच मानूँ तो अपनी प्रथम यात्रा में जिस तरह बनारस और कलकत्ता ने प्रभावित किया था, वैसा दिल्ली नहीं कर पायी। जहाँ बनारस और कलकत्ता अपने लगे थे, वहीं दिल्ली एकदम परायी। संयोगवश एक महीने बाद फिर दिल्ली आना पड़ा। हुआ यह कि दिल्ली में वियतनाम युद्ध विरोधी एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस बार यह यात्रा रेलगाड़ी से हुई थी। बिट्टल भाई पटेल हाउस में सम्मेलन के दौरान मैंने पहली बार वी.के. कृष्णमेनन को देखा और सुना। साम्राज्यवाद के खिलाफ उनका भाषण बड़ा आकर्षक लगा था। कई समाजवादी देशों के युवा डेलिगेट भी इस सम्मेलन में आये थे। वियतनाम से आयी एक युवती ने ए.आई.एस.एफ. को एक छुरी उपहारस्वरूप दिया था। वह छुरी वियतनाम युद्ध में मार गिराये एक अमरीकी युद्धक विमान ‘बी-52’ के मलबे से बनायी गयी थी। स्मरण रहे कि उस समय ‘बी-52’ दुनिया का सबसे बड़ा आधुनिकतम लड़ाकू विमान हुआ करता था, जिसे सोवियत संघ द्वारा निर्मित ‘सैम-6’ (SAM-6) मिसाइल द्वारा मार गिराया गया था। ‘सैम-6’ मिसाइल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बिना निशाने के भी इसका इस्तेमाल किया जा सकता है, क्योंकि यह मिसाइल आसमान में गर्मी ढूँढते हुए अपनी दिशा बदलती रहती है और यह गर्मी बमबारों के इंजन से आती है। इसलिए अमरीकी लड़ाकू विमानों के लिए यह मिसाइल कब्रगाह का काम करती थी। लम्बे चलने वाले वियतनाम युद्ध में इस मिसाइल से अमरीका के हजारों लड़ाकू विमान मार गिराये गये थे। मैं उस छुरी को देख कर बहुत रोमांचित हो उठा था। बार बार दिमाग में यह कल्पना आती रही कि यदि मौका मिलता, तो मैं भी वियतनाम चला जाता और ‘सैम-6’ से किसी न किसी अमरीकी युद्धक विमान को अवश्य मार गिराता। दिल्ली की दूसरी यात्रा में भी मैं मात्र 24 घंटे वहाँ रहा। बनारस लौटने पर कई दिनों तक मेरे मस्तिष्क में वियतनाम युद्ध छाया रहा। दिल्ली सम्मेलन के तुरंत बाद एक दिन शाम को गोरख पांडे मेरे निवास कैलाश भवन आये। वे पूछने लगे कि सम्मेलन में क्या हुआ? जब मैंने वियतनामी युवती द्वारा उपहारस्वरूप दी गयी अमरीकी बी-52 के मलबे से बनी छुरी का जिक्र किया, तो उन्होंने तुरंत कहा कि वियतनाम के हल जोतते किसान तथा पशु चराते चरवाहे भी अपनी पीठ पर ‘सैम-6’ लादे काम करते रहते हैं तथा आसमान में ज्यों ही कोई युद्धक विमान दिखायी देता है, वे तुरंत उसे मार गिराते हैं। यह कहते हुए वे तैश में आ गये और ऐसा लगा कि मानों हजारों के बीच भाषण दे रहे हों। वे बोल पड़े : “मुझे पूरा विश्वास है कि एक दिन वियतनाम की क्रांतिकारी जनता अमरीकी साम्राज्यवादियों तथा उनके पीछे भागने वाले कुत्तों को अवश्य मार भगायेगी...।” वे उसी लहजे में कहते रहे कि देख लिया, हथियारों के बल पर अमरीका कभी नहीं लड़ाई जीत सकता, इसलिए अनर्गल अनैतिक हथकंडों का सहारा लेकर कुछ दिन पहले उसने वियतनामी युवतियों के खिलाफ अफवाहें फैलायी थी। उस दिन उनके सामने मैं अकेला था, किन्तु हजारों की भीड़ के सामने वाली मुद्रा में गोरख काफी देर तक वियतनाम युद्ध पर बोलते रहे। उनके भाषण के चलते दिल्ली सम्मेलन वाली बातें एकदम विलुप्त हो गयीं। उस दिन, रात का खाना मेरे यहाँ खाकर वे अपने निवास अस्सी मोहल्ले चले गये। उन दिनों संस्कृत मठों में स्थापित क्रूर जातिवादी चेतना के कारण वे वहाँ हमेशा के लिए तिलांजलि देकर अस्सी मोहल्ले में एक कमरा लेकर रहने लगे

थे। वे रात का खाना प्रायः मेरे कमरे पर खाते और दोपहर को वे मुझे अपने कमरे में खाना पका कर खिलाते। वे अक्सर देवरिया जिला स्थित अपने गांव से चावल, आटा तथा दाल जैसे अन्न लाते रहते थे, जिसका एकमात्र कारण था कि अभी वे अपना घर (गांव) पूर्णतया नहीं छोड़े थे। वे बार बार यह दोहराते रहते थे : 'मेरा बाप जमींदार है, इसलिए वह भी शोषक है।' सन् 1969 का साल हम दोनों के लिए कई अर्थों में प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। वह एक ऐसा दौर था, जब हम कोई भी नयी चीज पढ़ते उसी से प्रभावित हो जाते थे और लम्बे समय तक उस पर आपस में चर्चा करते रहते थे। उन दिनों कम्युनिस्ट पार्टी के एक सदस्य त्रिलोकी नाथ यादव की लंका पर 'यूनिवर्सल बुक डिपो' नामक किताबों की दुकान थी। मैं उस दुकान पर रोज ही एक बार अवश्य जाया करता। वहां लंदन स्थित 'पेग्विन पब्लिकेशंस' की ढेर सारी नव प्रकाशित किताबें आया करती थीं। मैं प्रायः उलट पुलट कर इन किताबों को देखा करता था। इस प्रक्रिया में मुझे एक दिन प्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक ज्यां पाल सार्त्र की पुस्तक 'बीइंग एंड नथिंगनेस' मिली। गोरख के आग्रह पर मैंने उसे खरीद ली। दाम था 18 रुपये। उन्होंने कहा कि इस किताब को पहले वे खुद पढ़ेंगे। पूरी किताब को पढ़ कर वे मेरे कमरे पर आये और बताने लगे : "सार्त्र ने इस किताब में अपने अस्तित्ववादी दर्शन की स्थापना की है। उसने रेने देकार्त के दर्शन 'काजिटे अर्गो सम' यानि 'आई थिंक, देअरफोर आई एग्जिस्ट' यानि 'मैं सोचता हूँ, इसलिए मेरा अस्तित्व है' को उलट दिया। सार्त्र ने कहा 'अर्गो सम काजिटो' यानि 'मेरा अस्तित्व है, इसलिए मैं सोचता हूँ'; आदि आदि।" गोरख पांडे के वर्णन से मैं अत्यंत प्रभावित हो उस किताब को पढ़ गया और कुछ समय के लिए मैं भी अस्तित्ववादी बन गया था, जिसका कारण यह था कि जिस तरह बचपन से ही मेरी जिन्दगी चल रही थी, उसे देख सोच कर अस्तित्ववादी होना स्वाभाविक सा हो गया था। मेरा अस्तित्ववाद तो दो वर्षों के भीतर ही लगभग उड़ सा गया, क्योंकि मार्क्स और बुद्ध मेरे ऊपर पूरी तरह हावी थे। किन्तु क्रांतिकारी विचारों के साथ साथ गोरख जीवन भर अस्तित्ववाद के हमले से नहीं बच सके। वे अकेले रास्ता चलते बकते रहते थे 'मैं हूँ इसलिए मैं सोचता हूँ।' कई बार कई छात्र मुझसे पूछते रहते थे कि गोरख चलते चलते अंवाट बंवाट क्या बकते रहते हैं? मैं उन्हें सार्त्र का अस्तित्ववादी विचार बताता और कहता कि उसी के प्रभाव में गोरख राह चलते बड़बड़ाते रहते हैं। लोग खूब हंसते, किन्तु इसी बहाने वे सार्त्र के बारे में कुछ न कुछ अवश्य जान लेते थे। गोरख एक अन्य फ्रेंच दार्शनिक ज्यां जेने की भी नकल करने लगे। वे मुझको बताते कि जेने औघड़ किस्म का व्यक्ति है, जो खाने पीने की चिन्ता न करके किसी भी सार्वजनिक बस स्टॉप जैसी जगहों पर अखबार बिछा कर सो जाता है। इस तरह गोरख पांडे के अस्तित्ववादी मस्तिष्क में ज्यां जेने जैसा औघड़ भी समाने लगा। वे सार्त्र की महिला मित्र प्रसिद्ध फ्रेंच लेखिका सिमोन द बुआ तथा उनकी पुस्तक 'सेकेण्ड सेक्स' का भी खूब जिक्र करते और फिर हंसते हुए मुझसे कहते : "तुलसी जी मुझे भी एक सिमोन द बुआ चाहिए।"

सन् 1969 का साल साहित्यिक रूप से मेरे तथा गोरख दोनों के लिए बड़ा रोमांचकारी था, जिसका एकमात्र कारण था 15 फरवरी 1969 को प्रख्यात शायर मिर्जा गालिब की मृत्यु सदी का आना। तमाम पत्र पत्रिकाओं में गालिब के बारे में लेख छपते। मैं इन लेखों को बड़े चाव के साथ पढ़ता और गोरख पांडे को भी बताता। चूँकि, गोरख संस्कृत विश्वविद्यालय से गुरुकुल प्रणाली वाली आचार्य तक शिक्षा लेकर आये थे, इसलिए संस्कृत साहित्य को छोड़ कर हिन्दी या उर्दू साहित्य का उनका ज्ञान बड़ा सीमित था। उन्हीं दिनों मैंने किसी लेख में गालिब की एक लाइन पढ़ी थी : 'हमें तो मारा इस होने ने/ गर हम न होते तो क्या होता?' इस लाइन को मैंने ज्योंही गोरख को सुनाया, वे खड़े हो गये और उत्तेजित होकर कहने लगे कि इसमें तो सार्त्र का अस्तित्ववाद छिपा है, इसलिए कहीं से



गालिब का लेखन उपलब्ध कराइये। मैंने लंका, गोदौलिया, राजा दरवाजा तथा गुरुबाग आदि मोहल्लों में किताब की सारी दुकानों को छान मारा, किन्तु गालिब कहीं नहीं मिले। अंततोगत्वा मैं अंदाजावश बनारस कैंप्ट स्टेशन गया, जहां मुझे 'ह्वीलर एंड ह्वीलर' कम्पनी की दुकान पर पाकेट सिरीज वाला 'दीवान ए गालिब' मिला। उसकी कीमत थी मात्र तीन रुपये। कैंप्ट स्टेशन से कैलाश भवन आते समय रिक्शे पर बैठे बैठे मैं लगभग एक तिहाई 'दीवान ए गालिब' पढ़ गया। गालिब की जन्मों और गजलों में इस्तेमाल की गयी फारसी मिश्रित शब्दावली को समझना बड़ा मुश्किल काम था, किन्तु हर पृष्ठ के नीचे ऐसे शब्दों का अर्थ हिन्दी में लिखा हुआ था। इसलिए समझना आसान हो गया था। मैंने तत्काल गोरख पांडे को नहीं बताया कि 'दीवान ए गालिब' मिल गयी है, अन्यथा वे तुरंत उसे उठा ले जाते। इसलिए पूरा पढ़ जाने के बाद मैंने तीन चार दिन बाद उन्हें बताया। 'दीवान ए गालिब' मिलते ही गोरख पांडे उसमें पूरी तरह खो गये। गालिब की अनेक रचनाएं वे रट गये और मेरे कमरे पर जब भी आते, सस्वर गाकर सुनाने लगते। वे जिन गजलों को बड़े चाव से सुनाते उनमें ये पंक्तियां बहुत मशहूर थीं : 'ये न थी हमारी किस्मत विसालेयार होता', 'नुक्ताचीं है गमे' दिल उसको सुनाये न बने', 'इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया, वर्ना हम भी आदमी थे काम के', 'उनके आने से जो आ जाती है चेहरे पे रौनक, तो कहते हैं बीमार का हाल अच्छा है', 'बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले' तथा 'कर्ज की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हां, रंग लायेगी हमारी फाकामस्ती एक दिन...' आदि आदि। उन्हीं दिनों 'कर्ज की पीते...' वाली गजल को ध्यान में रख कर प्रख्यात व्यंग्यकार हरिशंकर पारसाई का एक व्यंग्य 'धर्मयुग' नामक पत्रिका में छपा, जिसमें उन्होंने लिखा था कि जहां कहीं भी शराबखाना हो, उसके सामने सूदखोरों की भी दुकान होनी चाहिए ताकि लोग इधर से कर्ज लें और उधर शराब पीयें। अतः यह काम गालिब की मृत्यु सदी में उनके लिए असली श्रद्धांजलि होगी। इसे पढ़ कर गोरख पारसाई के भी फैन हो गये। उस समय वे खड़ी बोली में गीत लिखते थे। उनके कई गीत भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित पत्रिका 'ज्ञानोदय' में छपे थे। गोरख पांडे पर कवि शम्भूनाथ सिंह की कविताओं का बड़ा असर था। वे हमेशा शम्भूनाथ सिंह की प्रसिद्ध कविता 'समय की शिला पर मधुर चित्र कितने', 'किसी ने बनाये किसी ने मिटाए' को भी गाते रहते थे। शम्भूनाथ सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय में ही प्रोफेसर थे। कुछ दिनों के लिए हम दोनों कार्ल मार्क्स तथा सार्त्र को भूल कर हरदम गालिब की रट लगाये रहते थे। होता ऐसा था कि हम दोनों गालिब में अपना चरित्र ढूंढने लगते थे। हमारे बीच जब भी गालिब पर चर्चा होती, अंत में गोरख धीरे से कहते कुछ 'पदार्थ' है। पदार्थ का मतलब शराब से हाता था। पदार्थ पर खत्म होती हमारी चर्चा हमें गिरजाघर गोदौलिया चौमुहानी स्थित शराबखाना पहुंचा देती थी। उस देशी शराबखाने में बैठ कर पीने की व्यवस्था थी। पचासों लोग वहां हमेशा जमा रहते थे। सामने ठेलों पर 'चिखना' बेचने वाले होते थे। चिखना में तली हुई कलेजी, मछली तथा चने की घुघुरी आदि मिलती थी। वहां भी आठ आने में छोटा भरुका तथा एक रुपये में बड़ा भरुका भर कर शराब मिलती थी। हम दोनों हमेशा तीन तीन छोटा भरुका पीकर रात हो जाने पर शराबखाने से बाहर आ जाते और पैदल ही चल देते थे। लड़खड़ा कर चलते हुए हमें गालिब एकदम दबोच लेते थे और उन पर चर्चा का अंत ही नहीं होता था। मेरे निवास कैलाश भवन से पहले अस्सी स्थित गोरख का निवास पड़ता था। हम वहां चले जाते और फिर वही पुरानी कहानी 'नून तेल लकड़ी' वाली दोहराने लगते थे। इस तरह गालिब की मृत्यु सदी में हम भयंकर 'पदार्थी' बन गये थे और शाम को समय समय पर हमारी 'पदार्थयात्रा' जारी रही। उन दिनों गोरख मार्क्स की तरह दाढ़ी बढ़ा लिए थे, किन्तु जब गालिब का भूत सवार हुआ तो उनकी दाढ़ी के कुछ हिस्से में गालिब की भी दाढ़ी उग आयी। उसी वर्ष की अंतिम तिहाई में दो अक्टूबर को गांधी जी की जन्म सदी भी आ गयी। गालिब

की मृत्युसदी के साथ गांधी जी की जन्मसदी विचारों के तौर पर एकदम विरोधाभासी थी। बी.एच. यू. के छात्रों में गांधी जी के प्रति बड़ा उत्साह नहीं दिखायी देता था। सभी छात्रों की जबान पर गांधी जी का एक ही कथन याद रहता था : 'कोई एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना चाहिए।' इस कथन का छात्र खूब मजाक उड़ाते थे। गांधी जी के अहिंसावादी सिद्धांत पर भी खूब चर्चा होती। मैं छात्रों से कक्षा के बाहर बहस करते हुए अकसर कहता कि अहिंसा तो गौतम बुद्ध का सिद्धांत था, किन्तु गांधी ने उसे हड़प कर अपना बना लिया और उनके मुंह से कभी बुद्ध का नाम नहीं निकला। अतः यह एक वैचारिक बेईमानी थी। मैं यह भी बताता कि 'रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम...' गा गाकर गांधी जी ने धर्मांधता फैलाने का काम किया। मेरे इस तर्क से अधिकतर छात्र अचम्भित होते, किन्तु अनेक लोग मेरे बुद्धिसंगत विचार से सहमत भी होते। बी.एच.यू. के संदर्भ में गांधी जन्मसदी की सबसे उल्लेखनीय घटना थी खान अब्दुल गफ्फार खान यानि 'सीमांत गांधी' का पाकिस्तान से भारत आना। उन्हें लेकर जयप्रकाश नारायण बी.एच.यू. आये थे। खान अब्दुल खान गफ्फार को देख कर मुझे विचित्र अनुभूति हुई थी। मुझे लगता था कि मैं मानव रूप में किसी लम्बी पेण्टिंग को देख रहा हूँ। ऊंचे कद वाले बड़ी बड़ी बांहों तथा गिद्ध के ठोर जैसी लम्बी नाक वाले, उन्हें देख कर निगाहें कहीं और हटने का नाम नहीं लेती थीं। उनकी एक सभा बी. एच.यू. के विशाल एम्फ़ी थिएटर मैदान में हुई थी, जिसमें विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डॉ. कालू लाल श्रीमाली भी उपस्थित थे। छात्रों, अध्यापकों एवं कर्मचारियों की भारी भीड़ इकट्ठा थी। खान साहब ठीक 2 अक्टूबर 1969 को भारत आये और यहां पहुंचते ही वे दिल्ली में अनशन पर बैठ गये, क्योंकि ठीक उसी समय अहमदाबाद में साम्प्रदायिक दंगा हो गया था। खान साहब दंगों से बहुत आहत थे। अतः उनका पूरा भाषण साम्प्रदायिक राजनीति के एकदम विरोध में था। अनेक लोग उनके भाषण से आहत हुए थे, क्योंकि दंगों के समय अकसर आम लोगों में हिन्दुत्ववादी भावना व्याप्त हो जाती है। बी.एच.यू. में ऐसा देखने को मिला था। खान अब्दुल गफ्फार खान उस अवसर पर बहुत दुखित दिखे थे। मुझे उनकी बातें बहुत अच्छी लगी थीं। इस संदर्भ में आज मैं सोचने लगता हूँ कि उनके जिन्दा रहते यदि अयोध्या में बाबरी दहन तथा उसके बाद मुम्बई या गुजरात जैसे सैकड़ों दंगे होते, तो वे कैसा महसूस करते? बनारस में उनकी एक दिवसीय यात्रा तो समाप्त हो गयी, किन्तु दूसरे दिन बनारस के अखबारों में जयप्रकाश नारायण के विरुद्ध टिप्पणियां छपीं। उन्हें अखबारों ने 'तुनुकमिजाज' बताया, क्योंकि उन्होंने पत्रकारों को खान साहब से बात करने पर मना कर दिया था। गांधी जन्मसदी में मुझे गांधी नहीं बल्कि खान अब्दुल खान ने बहुत प्रभावित किया था। अंततोगत्वा 1969 के खतम होते होते एक बार फिर से गालिब हमारे सिर पर सवार हो गये, जिसका एकमात्र कारण था 27 दिसम्बर को उनका जन्मदिवस यानि 172वां जन्मदिन। मेरे लिए गालिब की गजलों और नज्मों में इन पंक्तियों ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया था :

*मेरी किस्मत में गर गम इतना था,  
दिल भी यारब कई दिये होते।*

उस दिन मेरी और गोरख पांडे की एक और 'पदार्थयात्रा' गिरजाघर चौमुहानी पर समाप्त हुई थी। इसी के साथ जब यह प्रकारण समाप्त हो रहा है, तो गालिब मेरे मस्तिष्क पर सवार होकर एक बार फिर बोल रहे हैं :

*बक गया हूं जुनूं में क्या क्या कुछ  
कुछ न समझे खुदा करे कोई।*

**अगले अंक में जारी...**

## अर्थात् औरों की कथा-II

अरुण कमल

**और** मैंने तय कर लिया कि अब जीवविज्ञान नहीं पढ़ना। तभी पटना कॉलेज में बी.ए. के लिए कुछ खाली जगहों की सूचना निकली और मैं अंग्रेजी ऑनर्स का विद्यार्थी बन गया। बाबूजी से बिना पूछे। उनको पत्र लिख दिया। तब वह हजारीबाग जिले में नौकरी पर थे। जाहिर है वह दुखी और निराश हुए होंगे क्योंकि अभी मेरा नाम मेडिकल की प्रतीक्षा सूची में भी था और मन लगाने पर शायद अगली बार अच्छी जगह मिल जाती और तब पढ़ाई पूरी करने पर पैसों के लिए झंखना न पड़ता। गरीब लोग हमेशा ऐसी इच्छा रखते हैं। खुशफैली, आराम। उन दिनों हमारी हालत यह थी कि हम सब, दादी मां, तीनों बहनें और मैं पटना आ चुके थे क्योंकि बहनों को भी पढ़ना था और हॉस्टल में मेरे अकेले पर ही जितना खर्च आ रहा था उसमें कुछ और फेंट देने से सबका गुजारा हो जाता। वह किराये का ही मकान था। पटना में किराये का पहला मकान जिसका मालिक रोज झगड़ा करता। यहां क्यों दाग लगाया, दरवाजा क्यों जोर से भड़का, पानी क्यों ज्यादा बहाया, दीवार में कांटी क्यों ठोंकी। मालिक, हर तरह के मालिक ऐसे ही होते हैं। सरकारें भी ऐसी ही होती हैं जो हर कारकुन पर ऐसी ही तीखी नजर रखती हैं। जो भी मालिक है उसका स्वभाव ऐसा ही होगा। बाद में पता चला कि वह अपने गांव के बड़े मकान के चारों तरफ बिजली का नंगा तार लगाये हुए था ताकि रात को कोई घुस न सके और हुआ यह कि एक रात वह खुद ही उसमें सट कर मर गया और उसकी सम्पत्ति तहसनहस हो गयी। हम मामूली से मामूली चीज को भी इतना सटा कर रखते हैं, दूसरे को छूने भी नहीं देते और भूल जाते हैं कि एक दिन यह सब ठाठ यहीं रह जायेगा। मृत्यु का भय या एहसास हमें पवित्र भी बनाता है। मैंने देखा है कि खूंखार अपराधी, हत्यारे और भ्रष्ट अधिकारी या नेता मृत्यु से नहीं डरते यानी मृत्यु कहीं है इसे वे याद भी नहीं करते। शायद इसलिए भी कि उनके पास इतने

पैसे इतने साधन हैं कि वह अधिक से अधिक जी सकें। शायद इसलिए भी कि उन्हें अपनी संतति के लिए, सात पुश्तों के लिए सहेज कर रखना है। मेरे घर जो कोयला पहुंचाता था वह कुत्ता काटने से मर गया था। और एक दाई ठंड लगने से। तभी मैंने एक आदमी को बीच सड़क पर भूख से बेहोश मरते देखा था असवैधानिक मौत। हमारी हालत यह थी कि बाबूजी का वेतन पूरा नहीं पड़ता था। एक एक कर उन्हीं दिनों जो भी सोना चांदी पुराने बर्तन थे विक्रय हो गये। बाबूजी कहते थे, कुछ भी खरीदने के पहले यह सोचो कि इसके बिना काम चल सकता है कि नहीं। यह बहुत मुफीद सूत्र था। इस सूत्र को मैंने हमेशा याद रखा। बल्कि कविता के लिए भी यह बहुत जरूरी है सोचो कि इस शब्द के बिना, इस अक्षर या मात्रा के बिना काम चल सकता है कि नहीं। न्यूनतम खर्च का सौन्दर्यशास्त्र जैसाकि लेनिन कहते थे। उन्हीं दिनों मैंने एक और सूत्र पा लिया। वो यह कि अगर तुम घर से बाहर न निकलो तो खर्चा बचा सकते हो। मेरे पास पैसे बहुत ही कम होते थे। कभी कभी कोई रिश्तेदार आया और चलते वक्त हाथ में कुछ रख गया तो मौज रहती। लेकिन सिनेमा का चस्का बचपन से ही था। सो विज्ञान की पुरानी किताबें आधी कीमत पर बेच कर फिल्में देखता। एक से एक खराब फिल्में। मेरा वही ममेरा भाई बीच बीच में आ जाता और भीषण गर्मी की दुपहर में हम खाली गलियों के चक्कर लगाते शाम किसी सिनेमा हॉल से निकलते पाये जाते। जब अंग्रेजी ऑनर्स में पढ़ने लगा तो मेरी दोस्ती इम्तेयाज से हो गयी। ऐसी गहरी दोस्ती कि जब मैं पंजाब बैंक में क्लर्क का इंटरव्यू देने गया तो मेरे पास उस जाड़े में कोट नहीं था सो उसी का हरा कोट पहन कर गया जो मेरे शरीर पर ढक्कन की तरह लग रहा था। मेरी शामें अक्सर उसी के साथ बीततीं। एक और दोस्त मुमताज मिल गया जो उर्दू ऑनर्स पढ़ रहा था और आज उर्दू का नक्काद भी है। हम तीनों खूब घूमते और कविता साहित्य की बातें करते। इम्तेयाज फिल्में भी खूब देखता मेरे साथ। अक्सर शाम को मैं सब्जीबाग की मस्जिद के बाहर खड़ा रहता और वे दोनों या अकेले इम्तेयाज टोपी उतारता बाहर मांओं की गोद में टिके बीमार बच्चों के सिर फूंकता मेरे पास हंसते हुए आता चलो चाय पीते है। उस दूकान में जहां एक इश्तहार लगा होता यहाँ सियासी गुफ्तगू मना है। और भी कई दोस्त थे लेकिन गाना अकेले इम्तेयाज गाता और देवसिया जो तब गिरिजा में ब्रदर था और हमारा सहपाठी अपने साफ, रोशन कमरे में वायलिन बजाता। हमारे झुंड में लड़कियां नहीं थीं। यह केवल लड़कों की दोस्ती थी, बी.ए. कर रहे लड़कों की। हममें कभी भी कोई यौन प्रसंग नहीं घटा, न वैसी कोई रुचि ही थी। जहां तक मेरा सवाल है बचपन में मेरे कुछ सम्बंध ऐसे रहे। किशोरावस्था तक। आपस में हमउम्र दोस्तों के साथ। एक कारण तो शायद यह होता हो ऐसे सम्बंधों का कि अपनी ही जैसी देह के रहस्य का आकर्षण, देह को अकस्मात मिलने वाला विचित्र सुख, एक ऐसी ऐंठ देह की रस्सी की और एक जैसे अंगों से रहस्यमय रिसाव। एक खाली घर में हमने गरमी की अनेक लू अंधड़ भरी दुपहरें एक दूसरे को इसी तरह खोलते, एक दूसरे में इसी तरह प्रवाहित होते बितायीं। इसके बाद भी यदि ऐसे सम्बंध चलते रहते हैं तो कारण कुछ और होंगे। मार्क्स ने कहा है कि सामंती, पुरुष वर्चस्व वाले समाजों, समूहों में जहां स्त्रियां पर्दे में या सार्वजनिक जीवन से बाहर घरों में महदूद रखी जाती हैं वहां पुरुषों के बीच समलैंगिकता सबसे ज्यादा और सबसे वीभत्स रूप में होती है जहां सामंत या दूसरे लोग भी लौण्डे रखते हैं और इसमें अपनी शान समझते हैं और इस तरह स्त्रियां अपनी पराधीनता का बदला लेती हैं। मैं जल्दी ही इससे उकता चुका था। इसका एक कारण एक वीभत्स घटना भी रही होगी। हम शाम को छोटी लाइन की पटरियों पर जामुन के पेड़ों के नीचे बैठे चुनचुन कर जामुन खा रहे थे कि मेरा दोस्त द्वारिका हंसते हुए आया और बोला कि आज अरहर के खेत में फला लड़का अपने से छोटे फलां लड़के के साथ ऐसा कर ही रहा था कि उस लड़के ने हग दिया

और द्वारिका खूब जोर से हंसा। वहीं मेरा एक यौन जीवन समाप्त हो गया। मुझे रात में उल्टी भी हुई। लगभग उसी समय की बात है कि मैं, तब मैं दसवीं कक्षा में पढ़ता था, बाबू जी के साथ पहली बार पटना आया और जितना घूम सकता था घूमा। इतना बड़ा शहर मैंने पहली बार देखा था। मेरी बहुत इच्छा थी विधानसभा देखने की, भीतर जाकर, क्योंकि संविद सरकार यानि संयुक्त विधायक दल की सरकार बनी थी जिसमें बिहार के सोशलिस्ट बहुत थे। हमें भीतर जाने की अनुमति मिल गयी थी और मैं विधानसभा की दर्शकदीर्घा से भाग्यविधाता लोगों को देख रहा था। ऐसी चमकदमक, इतने मुलायम गद्दे, गलीचे, शान शौकत मैं हतप्रभ था। फिर कभी कहीं भी विधानसभा या संसद को भीतर से देखने का मौका नहीं मिला। रुचि भी न रही। बाबूजी मुझे बिठा कर किसी से मिलने चले गये और मैं एक कोने में जहां खाली खाली था जाकर बैठ गया और नीचे देखने लगा। तभी एक अर्धेड़ आदमी आया खादी का सफेद कुरता पायजामा पहने और मेरी बगल में आकर बैठ गया। वह भी नीचे ताकता रहा। फिर अचानक उसने अपना दाहिना हाथ बिना मेरी ओर देखे बिना बोले, मेरे अंग पर रख दिया और सहलाने लगा। मैं चुपचाप बैठा रहा। वह सामने ताकता रहा और सहलाता रहा। मेरा सफेद पायजामा भीग गया। वह उठा। चला गया। मैं अवाक बैठा रहा। तब से मुझे राजनीति से, संसदीय राजनीति से और सोशलिस्टों से, नफरत हो गयी। वह संसदीय राजनीति के भ्रष्टाचार के रूपक की तरह आज भी मुझे याद आता है। मैं जितना जान समझ चुका हूं सबसे ज्यादा यौन भ्रष्टाचार राजनीति वालों और नेताओं, मंत्रियों में है। एक ऐसी किताब इनके बारे में लिखी जानी चाहिए। इन महान नेताओं की रखैलों, लौण्डों, कुटुम्ब सहवासों, यौनशोषण के बारे में। मारकेस ने 'अमरूद की सुगंध' नामक साक्षात्कारों की किताब में 'प्लेबाय' पत्रिका द्वारा पूछे गये प्रश्न 'आपकी नजर में सर्वाधिक उत्तेजनादायी क्या है' के जवाब में छूटते ही कहा 'पावर', सत्ता, ताकत। ये भ्रष्ट लोग किसी की रक्षा क्यों करेंगे। हो सकता है कि इसी घटना के प्रभाव के कारण आगे चल कर मैं जयप्रकाश नारायण के आंदोलन का समर्थन न कर सका क्योंकि उसमें अधिकतर वही लोग थे जो संविद सरकार में थे। इस्तेयाज भी मेरी ही तरह उनका समर्थक नहीं था जबकि उसके लॉज में रहने वाले बाकी सारे लड़के, जो सब मुसलमान थे, आंदोलन के समर्थक थे। मैंने उन लड़कों से जब ये कहा कि भाई मुसलमान लोग इस आंदोलन के समर्थक क्यों हैं तो उनमें से एक ने कहा कि क्यों, क्या मुसलमान इस देश में नहीं रहते, आप यह सवाल हिन्दुओं से तो नहीं पूछते। मैं निरुत्तर था। तभी मुझे लगा कि अक्सर हम दूसरों के बारे में अपने मन में सोच कर तय कर लेते हैं, उन्हें जान कर, उनसे मिल कर नहीं। वैसे भी हमारा मिलना जुलना कितना कम होता है। मैंने आज तक कोई भी, मुसलमान परिवार की शादी शुरू से अंत तक नहीं देखी। एकाध ईसाई शादी में गिरिजा में शामिल हुआ। खुद अपने ही घरों में जन्म, विवाह, मृत्यु के कितने प्रसंग हम देखते हैं। लेकिन जो बाकी लोग हैं उनकी जिन्दगी तो इन्हीं पायों पर टिकी होती है। वे सब कुछ जानते हैं। कैसे नाल कटेगा, कब नाभि से झरेगा, कहां रोपा जायेगा, कैसे मड़वा छाया जायेगा, कैसे हल्दी लगेगी, कैसे चुमाया जायेगा, कैसे परीछा जायेगा, कैसे देह को स्नान कराया जायेगा, घी का लेप पहले मस्तक पर, कैसे अर्धी बांधी जायेगी, कैसे मुखाग्नि और प्रवह। हो सकता है ऐसा उपन्यास हो, लेकिन मैंने नहीं पढ़ा जिसमें इन विधियों का विस्तृत विवरण हो, एक एक बारीक ब्योरे का। उन दिनों मुझे नातेदारी रिश्तेदारी घूमने का बहुत शौक था। वैसे भी वक्त बहुत था। सो इन स्थितियों में अक्सर अपने को शामिल पाता। अब किसी भी सामाजिक कार्यव्यवहार, शादी वगैरह या दावतों में जाना भारी लगता है। मन नहीं करता क्योंकि वहां अब कुछ भी नया नहीं मिलता। इस बीच एक बात और ये हुई है कि इन सभी आयोजनों के चरित्र बदल गये है। पूंजीवाद हमारे जन्म विवाह मरण सब कुछ को प्रभावित करता है। अब न तो कई दिनों तक चलने

वाले विस्तृत लोकव्यवहार या उत्सव होते हैं न मृत्यु पर ही शोक की लम्बी अवधि। जीवन और मृत्यु के प्रति हमारे मन में सम्मान कम हुआ है। खुद जीना और जीते जाना। न तो संस्कार गीत याद हैं, न उनकी धुनें। जीवन में धूमधड़ाका बढ़ा है, लेकिन उत्सव, प्यार और उछाह कम हुआ है। जब मैं किसी को निष्ठापूर्वक व्रतपूर्वक कष्ट उठा कर नियमों का पालन करते देखता हूँ, तो यह जानते हुए भी यह महज एक चले आते को ढोना है, मैं उस श्रद्धा, उस प्रेम के प्रति नतमस्तक होता हूँ। कुछ तो है जो हमें दूसरों के लिए, जो नहीं है उसके लिए भी, कष्ट सहने को तैयार करता है। यहां मुख्य बात परम्परा या ढकोसला नहीं बल्कि प्रेम है जिसने दादी की मृत्यु पर हमें दस दिनों तक बिना हल्दी के बिल्कुल बेस्वाद भोजन करने के लिए विवश किया और हमने कभी गुरेज नहीं किया। दादी अभी चल सकती थीं। लेकिन खुले में रहने वाले को शहर की एक पतली गली के छोटे से पिंजड़े में जीना नागवार लग रहा था। एक रात उन्होंने आंखें मूंद लीं, रात के डेढ़ बजे। बाबूजी शाम को ही डुमरी से आ गये थे। यह मेरे घर में मेरे होश में पहली मृत्यु थी। अचानक मैं इसका भार समझ नहीं पाया। बारह तेरह दिनों की गहमागहमी के बाद धीरे धीरे मैं उस खोने के भार को उनके न होने के खालीपन से अनुभव किया। कोई भी स्मृति एक खो गये क्षण का शोक है। मेरा माथा मुंडा गया। बाबूजी का भी। दाढ़ी मूछ भी। तब मुझे लगा कि मुंडा हुआ चेहरा कितना निरीह, असहाय और सर्वहारा लगता है। उसके कुछ ही पहले गया की ढाई कट्टे जमीन जो बाबूजी ने खरीदी थी, नक्शा भी मकान का बनवाया था बेचनी पड़ी ताकि रोज का जीना हो सके। सम्पत्ति का अर्थ है सुरक्षा। जो जितना ज्यादा जगह घेरते हैं वे उतना ही ज्यादा सुरक्षित हैं। हम उन लोगों में आ गये जो एक एक दिन जीते हैं। तभी बाबूजी भी बहुत गम्भीर रूप से बीमार पड़े और मरते मरते बचे। हमने मकान बदल लिया था। नया मकान था तो डेढ़, दो कमरों का, लेकिन खुला था, छत थी, छज्जा था। सामने पेड़ थे। और चारों तरफ लड़कियां थीं। इस मकान में हमने तेईस साल बिताये। यहीं मेरी शादी हुई। बच्चे हुए। दो बहनों की शादी हुई और मेरी नौकरी लगी। और कोई मौत नहीं हुई। सबसे बड़ी नेमत थी खुली छत धूप और चांदनी से भरी छत। प्रूस्त ने लिखा है माथे के ऊपर थोड़ा सा ही सही आकाश जरूर होना चाहिए। लेकिन यहां मैं बीमार बहुत रहता था। तेज बुखार और फिर बेहोशी। लेकिन हर बार मैं उठ कर खड़ा हो जाता। कॉलेज में शुरू में पढ़ाई खराब होने, रिजल्ट खराब होने और अनिश्चितता ने मुझे परेशान कर दिया। परिवार की समस्या, पैसे की तंगी यह तो थी ही। तभी मेरे पहले साहित्य सखा रामकृष्ण पांडे ने मुझे मुक्तिबोध की किताब 'चांद का मुंह टेढ़ा है' पढ़ने को दी। मैं नहीं कह सकता, आज भी ठीक ठीक नहीं बता सकता कि कौन सी कविता में क्या है लेकिन उन कविताओं ने मुझे उठा कर खड़ा कर दिया। मैं फिर से जी उठा। कविता की इस चमत्कारिक शक्ति पर, मंत्र जैसी शक्ति पर, झाड़फूंक, मकरध्वज जैसी शक्ति पर मेरा भरोसा आज तक है। जीवन के अनेक मोड़ों, अवसरों, गहनतम शोक के क्षणों में भी दुनिया के कवियों ने मेरा माथा सहलाया है। नहीं जानता कविता से समाज में कुछ होगा या नहीं, लेकिन इतना जरूर कह सकता हूँ कि मेरे निजी जीवन में कविता ही मेरा प्राण है। मुक्तिबोध ने मुझे जीवन से भर दिया। मुक्तिबोध जीवन के, जीने के, जमीन में गड़ कर भी जीने के कवि हैं। मेरे प्राणदाता। तब कुछ ऐसे लोग भी थे जो कहते थे, कोई अर्थ करके तो बताए मुक्तिबोध की कविता का। मैंने तो उसका प्रभाव देखा था। वे अवस्थाएं तुम्हें दरिद्र ही करायेंगी, कि दैन्य ही भोगोगे...। और आलोक धन्वा ने निराला की सात किताबें दीं। वह कहीं से कविता पढ़ कर आये थे... झारखंड के किसी जनसंगठन की सभा से और आकर ये पुस्तकें खरीदी थीं जो मुझे दीं। मैं बदल चुका था। मैं जीने के, बस जीने के नशे में चूर था पीपल के पेड़ की तरह। उन्होंने मुझे फैज की किताब 'शीशों का मसीहा' भी दी। मैं अपनी केंचुल उतार चुका था।

पुराने वल्कल उतार चुका था। नयी, छलछलाती कथई पतियों से भरा मैं हवा और धूप और पानी को हिलोड़ रहा था। हांलाकि बीमार तब भी पड़ता रहा। बेहोश भी होता रहा। लेकिन आगे की चिन्ता खत्म हो गयी। क्या होगा, मैं भी बाकी लोगों की तरह जीऊंगा एक एक दिन। एक एक पल। तब सोवियत संघ भी था। क्यूबा भी और चीन भी। और कम्युनिस्ट लोग हारे हुए लोग नहीं थे। मेरे अधिकतर साथी मेरे ही जैसे थे। वैसे तो सबको अपने सबसे अच्छे दिन शुरुआती युवावस्था के लगते हैं, लेकिन मेरे साथ और मेरे साथियों के साथ सचमुच ही ऐसा था। यह सन् सत्तर पचहत्तर का पट था जहां दिनकर, रेणु और नागार्जुन थे। राजकमल चौधरी अभी तक थे। कुमारेंद्र आ रहे थे। शिवचंद्र शर्मा थे। केसरी कुमार और नरेश थे। और नाटक, संगीत, चित्र सबमें उत्साहपूर्ण गतिविधियां थीं। मार्क्सवाद मजबूत था। और एकदम नये कवियों लेखकों की बहुत बड़ी टोली थी। वैसी गहमागहमी फिर कभी न हुई। पहली बार कन्हैया जी ने हमें नेरुदा, ब्रेख्त से परिचय कराया। बहुत सी जगहों, गलियों, चाय के ढाबों, कब्रिस्तानों, गंगा घाटों और चौराहों को मैं तब तक फिर से नहीं देख सकता जब तक कि किसी दूसरी जगह न चला जाऊं। उसी स्थान पर लगातार रहते हुए आप उसे ठीक से नहीं जान सकते। साथ रहते हुए आप किसी को याद तो नहीं कर सकते। फिर भी मुझे वो ऋण याद है जब रामकृष्ण पांडे से मुलाकात हुई। वह पाजामा कुर्ता पहनते थे। पैण्ट शर्ट भी। कम। मुझसे दो साल आगे थे। अशानपरा नाम से पांच लोगों अवध, शांडिल्य, नरेन्द्र, परशुराम और रामकृष्ण ने पांच पांच रुपया लगा कर एक साइकोस्टाइल पत्रिका 'प्रक्रिया' निकाली जिसके पहले अंक में मेरी कविता पहली बार प्रकाशित हुई। और रामकृष्ण पांडे से गहरी पारिवारिक दोस्ती हुई जो उनकी स्मृति के रूप में आज भी जीवित है। वह बेहद पवित्र इंसान थे। हिन्दी, बंगला, उर्दू के जानकार। मेरी ही तरह संघर्षशील। पर अत्यंत नेक, ईमानदार और साफ बोलने वाले। मेरा आधा समय उन्हीं के साथ उन्हीं के घर पर खाते पीते गुजरता। उनके साथ इस शहर में मैं जितना घूमा उतना फिर कभी नहीं घूमा। गहरा दुख है कि मैं दिल्ली में उनके घर कभी जा न सका। आदमी को कल पर कुछ टालना नहीं चाहिए। मुझे अगर लगता कि मेरे माता पिता नहीं रहेंगे तब मैं उनके साथ भी बेहतर व्यवहार करता। कभी कोई बात उठाता नहीं, कभी कड़ा नहीं बोलता, कभी कोई दुख नहीं देता। लेकिन जीते हुए हम मृत्यु की सोच कर तो जीते नहीं। फिर जी भी कैसे पायेंगे। लेकिन एक आदमी को जीने का कम से कम दो मौका मिलना चाहिए एक अभ्यास या रिहर्सल, एक वास्तविक। रामकृष्ण पांडे की सोहबत में मैं प्रगतिशील लेखक संघ की एक गोष्ठी में, यह बात सन् सत्तर की है, गया और फिर उस संगठन में शामिल भी हुआ। मैंने कोई तय करके ऐसा नहीं किया। एक उमर में होता यह है कि जहां आपको अच्छा लगता है जहां आपकी बात सुनी जाती है जहां आपके जोड़ा पाड़ी मिलते हैं आप वहां जाने और रहने लगते हैं। आज भी प्रगतिशील लेखक संघ मेरे लिए मेरी प्राथमिक पाठशाला की तरह है, घर के पास की जहां टिफिन और छुट्टी की बजने वाली घंटी मेरे घर में सुनायी देती है। तभी रामवचन राय जी ने मेरी एक कविता छापी 'प्रस्थान' में। फिर शिवचंद्र शर्मा ने दस कविताएं एक साथ 'स्थापना' में। फिर सब्यसाची ने ग्यारह कविताएं एक साथ 'उत्तरार्ध' में। तब नवल जी ने दस कविताएं धरातल में। टी.एस. इलियट ने नये कवियों के लिखने छपने, संगत, गोष्ठियों आदि के बारे में बहुत दिलचस्प बातें अपने लेख 'वाट इज माइनर पोयट्री' के दूसरे खंड में लिखी हैं। अंग्रेजी साहित्य की पढ़ाई और उसके बारे में बातें इस तरह से होती हैं जैसे वे दूसरे लोक के प्राणी हों। लेकिन अगर हम जान जायें कि वे भी हिन्दी या उर्दू के कवियों लेखकों की तरह ही हाड़ मांस के पुतले हैं, उतने ही प्राणवान, दम्भी, इर्ष्यालु, गुटबाज, तिकड़मी और ठीक वैसे ही जैसे रूसी या मराठी के लेखक तो अपनी जिन्दगी भी बहुत मजेदार लगने लगेगी। उन दिनों पटना में ब्रिटिश

लायब्रेरी और अमेरिकन लायब्रेरी भी थी। उर्दू के लेखकों में सुहैल अजीमाबादी, कलीमुद्दीन अहमद, कलीम आजिज और रामशरण शर्मा तथा अस्करी साहेब जैसे इतिहासकार भी मौजूद थे। इन सबने मिल कर पटना की उस हवा का निर्माण किया जो हमारे लिए सांस बनी। ज्ञानेन्द्रपति, आलोक धन्वा, सुलभ, वसंत कुमार, शिशिर सबके लिए। उस वक्त यहां बंगाली बुद्धिजीवी भी बहुत थे और उनकी गम्भीर साहित्यिक गोष्ठियां भी। जब तक कई भाषाओं के लेखक न हों तब तक सर्वदेशी या कॉस्मोपॉलिटन वातावरण बनता भी नहीं। मैं ऐसे समाज की कल्पना भी नहीं कर सकता जहां सब लोग एक जैसे हों, एक ही जाति, एक ही धर्म, एक ही नस्ल और भाषा के। मैं होली के दिन भी अस्पताल या स्टेशन जाने के लिए निकला हूं और रमना रोड में मुझे रिक्शा मिल गया है और घर से दूर होली बिताने वाले लोगों को परांठे और मिठाइयां। दूसरों के होने का मतलब है एक और रास्ते, एक और दरवाजे का होना विकल्प का होना। उन दिनों बीमारी के और बीमारी के बाद के दिनों में जब मुझे नींद नहीं आती थी या रात में दो ढाई बजे नींद टूट जाती थी रात का यह पहर, दो ढाई बजे रात का पहर, सबसे खामोश और खूंखार होता है। मैं अंधेरे में ताकता रहता। पसीने से तर। किसी भयावह दुर्घटना की आशंका में। तभी कोई गाय रंभाती। कोई कौआ बोलता। फिर चार। फिर किसी वृद्धा का भजन। फिर गंगास्नान में जाने वाली स्त्रियों के कंठ स्वर। फिर अजान। और अब मैं आश्रवस्त हूं। मेरी आंख लग जाती है। जब तक दूसरे जगें हैं तब तक मैं सो सकता हूं। अब मुझे सो जाना चाहिए। रात के बारह बज रहे हैं। इस कलम की डंटी (रिफिल) पुरने वाली है। नयी कलमों की दिक्कत यह है कि ये आपको रुकने नहीं देतीं जबकि मेरे बचपन की कलमों को, सरकंडे या किरिच की कलमों को, या होल्डर वाली निबों को बार बार दावात में डालना पड़ता था, फिर बाद के दिनों में स्याही भरनी पड़ती थी और इस तरह लिखते हुए सोचने का खाली समय या चलते हुए रुकने का विश्राम मिल जाता था। अब का जीवन भी ऐसा है कि आप रुक नहीं सकते। एक रोज अभी कल ही तो मैं दिन भर गतिशील रहा दिल्ली में, दिल्ली से पटना हवाई जहाज में, पटना में टैक्सी में, रिक्शे पर, टेम्पू में, टैक्सी में जब घर पहुंच कर जूते खोले तो सोचा कितना चला। तब मैंने ध्यान दिया कि अरे आज तो मैं ठीक से दस डेग भी नहीं चला। यानि बिना पैर चलाये ही चलता रहा। यह लिखना भी तो ऐसा ही है। अभी तक तो एक कहानी क्या एक घटना भी ठीक से नहीं बनी। बस हवा मिठाइयां बना रहा हूं, चुटकी भर चीनी और हवा से। जब कभी हवा मिठाइयां देखता हूं, लगता है मेले में हूं। और मैंने बहुत तरह के मेले देखे। लेकिन मेलों में इसलिए नहीं गया कि मुझे कुछ खरीदना है। बस यूँ ही गया। और मेले तो जमते हैं नवतुरिया लोगों से। किशोरों नवयुवकों तरुणों से। पटने का वह काल हमारे लिए एक मेला था जहां गुड़ की जलेबियां भी थीं और वो लड़कियां भी जिन्होंने पहली बार साड़ी पहनी थी और जो अचानक एकदम नयी लग रही थीं। उसने मुझे क्यों देखा? तुम कौन हो? रुनु। कहां रहती हो? और जल्दी ही यह दोस्ती गहरे सम्बंध में बदल गयी। जैसे भतिया, खिंच्वा ककड़ी के शरीर पर महीन रोएं होते हैं वैसे ही उसके शरीर पर भी महीन रोएं थे, चेहरे पर भी। और एक शाम हम वैसे ही ध्वनियों से भरे थे जैसे घंटी के भीतर हिलता हुआ लोलक और चारों तरफ घंटियों की गूंज। अभी पिछले महीने वह मिली थी गोद में पोते को लिए हुए। साथ में बहू भी थी। मैं सचमुच बूढ़ा हो रहा हूं। जो देख नहीं पाते उनको अस्सी की उमर तक भी नहीं लगता कि वे बूढ़े हो गये हैं क्योंकि वे अपना वृद्ध होता बदन देख नहीं पाते। लेकिन हम जो रोज लगातार अपने को देख रहे हैं वे भी अक्सर भूल जाते हैं। हम हमेशा दूसरों द्वारा सही सही मापे जाते हैं। बटखरा भी दूसरे बटखरे से परखा जाता है। भर्तृहरि ने सही कहा है, कालो न यातो वयमेव याता। कविता भी इसीलिए बदलती है कि हम बदलते हैं, हमारे अनुभव और बाहरी उद्दीपनों के प्रति हमारी



प्रतिक्रियाएं बदलती हैं। और हम उन्हें बदलते हुए जानते समझते हैं। लेकिन हम हमेशा सही तरह ही तो नहीं बदलते। एक गाड़ी खरीदने का मतलब केवल गाड़ी का उपयोग नहीं होता। वह उस पूरे सामाजिक रिश्ते और ढांचे में शामिल होना भी होता है। और एक बड़ी गाड़ी। और कई कई गाड़ियां। हम हर बार हर नये सामान और सुख के साधन के साथ एक नये रिश्ते में जाते हैं। पुराने रिश्ते छूट जाते हैं। मेरे साथ भी ऐसा हुआ होगा। अब वे लोग मुझसे दूर हो गये जो कभी बहुत करीब थे। बहुत से रिश्तेदारों दोस्तों के घर गये सालों हो गये। धीरे धीरे हम एक जैसे लोगों से मिलने लगते हैं। लेकिन साहित्य का काम तो ऐसे होगा नहीं। मेरा काम केवल आत्मकथा लिखना तो है नहीं। मुक्तिबोध के लिए आत्मसंघर्ष का यही अर्थ था। अपने को उन सबसे जोड़ना जो गरीब, वंचित, सताए हुए लोग हैं। जीवन का अंधड़ भी वहीं है। भाषा भी वहीं है। निराला ऐसे ही कवि हुए जो अंत तक रचते और बदलते रहे। अंततः एक कवि की कविता उसके निजी जीवन पर ही निर्भर करती है। मेरी हर अपवित्रता मेरी कविता का क्षरण है। उसने पूछा आप केश रंगते क्यों नहीं। क्योंकि मैं जैसा हूँ वैसा ही दिखना चाहता हूँ। मैंने देखा उसने केश रंग रखे थे। मृत्यु का भय हमें वृद्ध लगने से रोकता है। बाबूजी उमर के साथ साथ अधिक सुंदर होते गये। पवित्र लोगों के साथ ऐसा ही होता है। मकई के भुट्टे की तरह उनके दानों में दूध भरता है, ज्वाता है, दाने सुडौल होते हैं और फिर सुनहले। रामकृष्ण पांडे के साथ और उन सभी साथियों के साथ दिन भर घूमते रात देर तक खाली होती जाती सड़कों पर जोर जोर से बहस करते हम कभी ऊबते या थकते न थे। किसी एक व्यक्ति का बनना या बिगड़ना, उसका कुछ भी होना या न होना पूरे वातावरण पर निर्भर करता है। वैसा वातावरण फिर न बना। वह ठेठ अर्थों में वामपंथी, सत्ता विरोधी वातावरण था, आशाओं से भरा। हम सबके रहन सहन भी साधारण थे और अपने से ऊपर के वर्ग में जाने की इच्छा भी न थी। उस समय के अधिसंख्य लोग, चाहे साहित्य में हों या राजनीति में आज भी अश्वत्थामा की तरह अपने मस्तक पर रिसते घाव लिए जनअरण्य में रास्ता ढूँढते मिल जायेंगे। वह अत्यंत तेज, ऊँचे बौद्धिक स्तर का समय था। आज सब कुछ कितना बदल चुका है। हम मानें या न मानें आज की हवा में न तो मार्क्सवाद है न साधारण लोगों की तरह जीने की इच्छा कोई बड़ा आदर्श। उस समय के लोगों में दो ऐसे थे जिन्हें मैं आज भी नहीं भूल पाया। एक तो थे जो खत्री थे, बहुत बड़े घर के थे। सारी सम्पत्ति छोड़ कर कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुए और अंत तक वहीं रहे। लाल झंडे में लिपटा शव। वह प्रगतिशील लेखक संघ में थे। कवि थे। और मिठाई की दूकानों में काम करने वाले कर्मचारियों कारीगरों के संघ के नेता कार्यकर्ता थे। उनसे हमारी दोस्ती का एक कारण मुफ्त में या सस्ते में मिलने वाली मिठाइयां भी थीं। उनका एक अजीब शौक था। वह सांप पालते थे। अविवाहित थे। तरह तरह के सांप पालते थे। उन्होंने ही मुझे बताया कि सांप दूध नहीं पीते। अगर पी लें तो तुरंत मर जायेंगे। एक बार एक गेहुंअन पोआ, सांप के बच्चे को, उन्होंने दूध पिलाने की कोशिश की और वह तुरंत चल बसा। वह बेहद प्यारे लेकिन आवेश वाले इंसान थे। एक बार उन्हें पार्टी के महासचिव ने कुछ कहा। उन्होंने प्रतिवाद किया। महासचिव न माने। तब हमारे प्यारे साथी ने एक सांप महासचिव की मेज के पास छोड़ दिया। महासचिव मेज पर चढ़ गये। पंखे से लटक गये। माफी मांगी। तब जाकर सांप वापस झोले में आया। ऐसे ही एक कामरेड और थे। वह लेखक न थे। फुटपाथ पर मार्क्सवादी किताबें लगाते थे। और देखते ही जोर से पुकारते, लाल सलाम कामरेड! गम्भीर बहस करते। वे सब पढ़े लिखे लोग थे। कहते हैं एक बार ऐसे ही किसी साथी को देख कर वह उसके पीछे पीछे लाल सलाम कहते भागते गये और बेचारा वह साथी पकड़ा गया। वह भूमिगत था। पुलिस उसको खोज रही थी। हमारी दुनिया तब बेहद बहुरंगी और गहमागहमी से भरी थी। पटने के युवा लेखक सम्मेलन में मैंने इतने लेखक देखे जितने

एक साथ फिर कभी न देखे। हालांकि प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन बहुत बड़े और भव्य हुआ करते। लेकिन ये लेखक अलग किस्म के होते। हर उमर के। तब प्रगतिशील लेखक मार्क्सवादी थे या वामपंथी या सत्ताविरोधी और उनकी मूल प्रेरणा समाज परिवर्तन की आकांक्षा तथा गरीबों से प्रेम थी। जात पांत का सवाल न था। लेखक भी गरीब से गरीब परिवारों से आते। आज स्थिति बदल गयी है। लेकिन सबसे ज्यादा अफसोस होता है विचार गोष्ठियों के निरंतर गिरते स्तर को देख कर और लेखक के रूप में अपना कैरियर बनाने की होड़ को देख कर। चेखव के नाटक 'सीगल' के अंत में नीना कहती है, अब मैं जान गयी हूँ कोत्स्या कि हमारे लिए, हम लेखक हों या कलाकार, हमारे लिए प्रसिद्धि या ऐश्वर्य जरूरी नहीं है, जो सबसे जरूरी है वह है दुख सहना संघर्ष करना और फिर भी जीवन में विश्वास बनाये रखना। सोवियत संघ से आने वाली इन्हीं सस्ती किताबों ने हमारे मन को बनाया था। रुनु से मुलाकात होती रहती थी। दोस्ती तो कई से हुई। लेकिन मुझे यह लगता था कि ऐसी दोस्ती के लिए काफी समय चाहिए। इसलिए छोटे छोटे सम्बंध तो कई बने। लेकिन लम्बा चलने वाला प्रेम कोई न बना। शायद मैं प्रेम करने लायक न था। मुझमें स्वार्थ अधिक है। रिश्तेदारी में कई जगह एक एक दो दो दिन या रात के रिश्ते बने। एक जगह वह मेरे साथ चलना चाहती थी। अभी हाल में एक स्त्री ने कहा, तुममें सामाजिक साहस का अभाव है। उसने सही कहा। और इसकी कमी का एक कारण मुझमें प्रेम करने वाले धैर्य और शक्ति की कमी है। जो इंतजार नहीं कर सकता वह प्रेम भी नहीं कर सकता। प्रेम जैसे दशरथ मांझी ने किया। जबकि मैं तत्काल सब कुछ चाहता रहा। इस बार मेरा खिंचाव घर में काम करने वाली एक दाई की तरफ हो गया। एक दिन जब मैं उसकी बांह पकड़े उसे खींच रहा था वह पीछे हटती जा रही थी हंसती हुई। मेरी मुट्ठी नीचे खिसकती जा रही थी। और वह खिलखिला कर भागी। और मेरी चुटकी में उसकी बांह के नीचे कुहनी के ऊपर वाले गड्ढे से छूट कर देह की मैल रह गयी। ऐसी वितृष्णा पहले कभी न हुई। तो इसी मैल के लिए मैं इन देहों के पीछे भाग रहा हूँ। यह कोई धार्मिक या नैतिक शुद्धि का भाव नहीं था बल्कि स्वयं उसी देह की पुकार थी जिस देह के लिए मैं इतना व्यग्र रहा करता था। डब्लू बी यीट्स ने लिखा है लव हैज पिच्ड इट्स टेंट इन द प्लेस अॅव इक्सक्रिशन प्रेम ने उत्सर्जन भूमि पर अपना तम्बू गाड़ा है। कभी कभी सोचता हूँ अगर वे स्त्रियां भी अपने मन की बातें लिखें तो पता नहीं मेरे बारे में और दूसरों के बारे में क्या कहेंगी। अब मुझे यह भी लगता है कि वास्तव में हम सामान्य सहजीवन तब शुरू करते हैं जब हम एक दूसरे को काम भावना से न देखें या जब हमारे बीच कोई काम भावना का पर्दा न हो। हम उससे उबर चुके हों। हम नहा कर नदी को निहार रहे हों। हमारा समाज ठीक उल्टी दिशा में चल रहा है। हम ज्यादा कामुक और हिंस्त्र होते जा रहे हैं। एक किस्सा छपा था एक नगर सेठ का जो सतहत्तर साल का था, भयंकर बीमारी से ग्रस्त था, कुछ दिन का मेहमान था और वह एक दाई की बेटी का पीछा करते करते उसके ससुराल पहुंच गया और उस लड़की को एक प्रेमी ने छुरा घोंप कर उसे मार डाला। स्त्रियों की मुक्ति तो होनी ही है, पुरुषों की मुक्ति भी जरूरी है। मुझे अपनी देह का सम्मान करना सीखना होगा। लेकिन मैं तो रोज नहाता भी नहीं था। एक रोज सैलून वाले ने केश काटते हुए कहा, आप शैम्पू नहीं करते? एक दूसरे साधारण सैलून वाले ने मेरे केश बिल्कुल छोटे कर दिये। मैंने पूछा तो बोला, आपके पिताजी ने कहा था। उसने मुझे कोई और समझा। एक बार एक सैलून में सारे कारीगर छप छप छट छट काम में लगे थे। मैं बाहर निकल ही रहा था कि मालिक ने कहा आइये बैठिये अभी हो जायेगा। और मैंने देखा एक नया लड़का एक हाथ में कैंची और एक में तिकोनी कंधी लिए मेरे केश तेजी से काटता जा रहा है। अब मैं उठ भी नहीं सकता था। उसने पहली बार मेरे ही माथे पर हजामत सीखी। तब से मैं हर नये कारीगर यहां

तक कि हर नये कवि का सम्मान करता हूँ। आज वह बहुत मशहूर सैलून का मालिक है। और वहाँ मुझे लाइन में बैठना नहीं पड़ता। तब प्रगतिशील लेखक संघ में मिठाई बनाने वाले, बाल काटने वाले, घड़ीसाज, दर्जी और दुकानों के कर्मचारी भी हुआ करते थे। नहीं, वे अक्सर कम्युनिस्ट पार्टी में होते थे और हमारे साथी बन जाते थे। बिहारशरीफ के एक बीड़ी मजदूर, रांची के रंगरेज, समस्तीपुर के एक प्रतिभाशाली घड़ीसाज हमारे अच्छे साथी बन गये थे। कई तो भारी घुमक्कड़ थे। मैं भी तो हवा की संतान था। मेरे एक सम्बंधी का बेटा मेरी ही उमर का था जो गांव में रहता था। उससे मेरी दोस्ती भी थी। मैं भी वहाँ जाता। वह भी आता। उसके पिता नहीं थे। मां थी। एक चाचा बस यूँ ही घूमते रहते थे। एक चाचा मर गये थे। उनका पूरा परिवार बेसहारा था। चाची एक घर में नौकरानी हो गयीं। एक और चाचा थे जो बस गुजर बसर लायक काम में थे। भयानक गरीबी थी। न खेत न कोई रोजगार। वह एक पेट्रोल पम्प पर काम करने लगा। ठीक ही था। अचानक उसे खून आने लगा। वह मेरे घर आया। यहीं अस्पताल में रात में उसकी मृत्यु कुछ महीने की बीमारी के बाद हुई। हम नहीं थे। वैसी रात मैंने कम देखी है। घुप्प अंधेरा घना आकाश। बाहर एक शव। लगातार चीखती रोती स्त्री, उसकी नवविवाहिता गर्भवती पत्नी। यौनांगों का नाम ले लेकर रोती। कुत्ते रोते भूंकते। एक आदमी या एक परिवार क्यों इतने दुख भोगता है? अगले दिन जब बांस घाट पर दाह कर्म होना था तब पूछा गया, लकड़ी से या बिजली से? कुछ महीने पहले उसका बेटा मिला था। बी.ए. में पढ़ता है। उम्मीद है कि तीसरा पुश्त अच्छा जीवन पा सकेगा। उसी गांव में मेरे एक और सम्बंधी थे कुछ दूर के जिनका लड़का बारह साल की उमर से लापता हो गया। अकेला लड़का। और जीवन के अंत तक वह उसका इंतजार करते रहे। मैं सोचता हूँ पृथ्वी पर सबसे बड़ा दुख क्या है। अगर कोई मर गया या मारा गया तब तो दुख है ही उनको जो जीवित हैं। लेकिन सबसे बड़ा दुख है किसी का गायब हो जाना जब हम अंत अंत तक दरवाजे पर इंतजार में बैठे रहते हैं। जब हमारे शरीर का होना भी सिर्फ इसीलिए होता है। क्या यह पृथ्वी ऐसी नहीं हो सकती कि जब हम किसी लापता को खोजने जायें तो मालूम पड़े कि वह तो फलां गांव शहर या देश में सोया पड़ा है। तभी मेरी मुलाकात एक ऐसे आदमी से हुई थी जो गुमशुदा बच्चों को उनके घर पहुंचाता था। और अच्छी बख्शीश पाता था। सुबह वह खून बेचता था। शाम को भट्ठी पर दारू पीता था। और गुमशुदा बच्चों को उनके घर पहुंचाता था। मुक्तिबोध की कविता ने भी तो यही किया। उसने मुझे मेरे घर पहुंचाया। साहित्य बार बार हमें अपने घर पहुंचाता है।

**अगले अंक में जारी...**

# बखेड़ापुर

हरे प्रकाश उपाध्याय

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में जो रचनाकार काव्य परिदृश्य पर चमके उनमें हरे प्रकाश विशिष्ट हैं। उन्हें कविता के लिए अंकुर स्मृति सम्मान मिला और उनका कविता संकलन 'खिलाड़ी दोस्त अन्य कविताएं' युवा कविता की चुनिन्दा कृतियों में है। अब उनका यह उपन्यास, जिसे उन्होंने एक कथाकार की पूरी प्रौढ़ता से रचा है। 'बखेड़ापुर' में जीवन का महाभारत पूरी महारत से सजीव हुआ है।

**खिलखिलाता खेत में धान का दुधबच्चा है  
कालिदासी मेघ का रंग अभी कच्चा है (रामाज्ञा शशिधर)**

सुदामा और धीरू लंगोटिया यार थे। सुदामा के पिता और धीरू के पिता दोनों ब्लॉक के कर्मचारी थे और अलग अलग जातियों के होने के बावजूद उनमें गाढ़ी छनती थी। दरअसल दोनों परिवारों की आर्थिक हैसियत में भी बहुत फर्क नहीं था। धीरू और सुदामा ने लगभग एक ही साथ स्कूल जाना शुरू किया था। सुदामा के घर से निकल कर कुछ दूर चलने पर स्कूल के रास्ते में ही धीरू का घर पड़ता था।

स्कूल के लिए निकलते समय रास्ते में सुदामा उसे ले लिया करता था। धीरू भी बिना सुदामा को लिए आगे नहीं बढ़ता था और अपने घर से निकल स्कूल के रास्ते में सुदामा के लिए खड़ा रहता था। कभी कभी थोड़ी जल्दी निकलने पर सुदामा उसके घर भी चला जाता था।

धीरू के पिता को सुदामा चाचा कहता था। धीरू भी सुदामा के पिता को चाचा ही कहता था। यह कोई छोटी बात नहीं थी उस गांव में, जहां ब्राह्मण का नौनिहाल अब भी सबका 'बाबा' था पर अपने बाप को भी बाप की तरह पुकारने का चलन वहां से इस तरह मिटता चला जा रहा था मानो वह कभी रहा ही न हो। अब तो बेटे अपने अपने बाप का भी नाम रखने में अपनी प्रचंड

प्रतिभा का परिचय दे रहे थे जैसे सुदामा का भैरव चाचा अपने बाप यानी सुदामा के दादा को 'बलमू जी' कहता था। कोई अपने बाप को 'पगला सम्राट' कहता, तो कोई अपने बाप को 'हीरो हीरालाल' और यही नाम धीरे धीरे प्रचलित हो जाता। गांव के दूसरे लोग जिस विशेष नाम से किसी व्यक्ति को पुकारने लगते, उसके घर वाले यहां तक कि उसके बालबच्चे भी उसे उसी नाम से 'रजिस्टर्ड' कर देते। इस गांव में अब अधिकतर लोगों के कई नाम थे। कम से कम दो तो सबके थे। ये नाम समानार्थी नहीं थे बल्कि समझ लीजिए कि प्रायः विलोमार्थी ही थे। खैर जाने दीजिए नाम में क्या रखा है यहां 'मैनेजर' नाम वाला बनिहारी कर रहा था और 'डॉक्टर' नाम वाले को गाय चराने, धोने और दुहने भर की विशेषज्ञता हासिल थी!

धीरू के पिता सुदामा को बहुत मानते थे पर धीरू की मां का स्वभाव कुछ दूसरा था। एक बार धीरू के घर पर उसकी मां ने सुदामा को पीने के लिए पानी दिया। सुदामा ने थोड़ा पानी पिया पर गिलास में अभी बहुत पानी था। धीरू को भी प्यास लगी थी। उसने उस गिलास का पानी पी लिया तो उसकी मां ने उसे एक कमरे में ले जाकर बुरी तरह धमकाया था। बाद में धीरू ने सुदामा से कहा था कि उसकी मां ने उसे इसलिए धमकाया था कि वह छोटी जाति का है, इसलिए उसका जूठा पानी धीरू को नहीं पीना चाहिए था, इससे धरम नष्ट हो जाता है। धीरू की मां धीरू को अपना अलग टिफिन खाने की हिदायत देती थी, यह वजह बता कर कि नान्ह जात का जूठा खाओगे तो 'धरम' तो नष्ट होगा ही, 'नरक' में भी जाना पड़ेगा। धीरू नहीं जानता था, 'नरक' कहां है और उसे यह भी नहीं पाता था कि दोस्त के साथ खाने पर 'धरम' कैसे नष्ट होगा। अब्ल तो उसे 'धरम' के बारे में कुछ नहीं पता था और सुदामा के टिफिन में कुछ अच्छा होता तो धीरू अपनी मां की सारी हिदायतें भूल जाता और सुदामा के टिफिन से वह उस चीज को उठा लिया करता। कभी कभी सुदामा भी ऐसा ही करता। वैसे स्कूल में सिर्फ धीरू और सुदामा ही नहीं थे। और भी बहुत सारे लड़के थे, जैसे कि मीनुआ, सीमवा, रंजीतवा, शशिया, बोकवा, बमभोलवा, लमका, हसनैनवा, शंकर और शंकर की बहन साक्षी। बहुत सारे लड़के थे अगल अलग उम्र और अलग अलग मोहल्ले के, पर धीरू और सुदामा ज्यादा नजदीक थे। दोनों की आपस में बहुत कम लड़ाइयां होती थीं।

साक्षी बहुत सुंदर थी और सुदामा साक्षी से प्यार करता था, माने 'लभ'। 'लभ' शब्द से गांव के ये लड़के नशे में आ जाते थे। यही उनका गांजा था, चरस था। वे इस भरोसे में जीते लड़के थे कि 'लभ' असल शहरी चीज है, जिसे करके गांव में 'गदहजनम' छुड़ाया जा सकता है। यह ऐसा मजा है जिसे मिल जाय, वो तर जाय। दरअसल उस गांव में औरत और मर्द दो दुनिया के लोग थे। वे आपस में कभी मिलते भी थे या नहीं, इसके बारे में किसी सार्वजनिक साक्ष्य का नितांत अभाव था। वहां औरत और मर्द एक दूसरे के प्रति भयानक आतुरता से भरे हुए परस्पर रहस्यमय जीव थे। बच्चे और बच्चियां साथ साथ पढ़ते थे मगर स्कूल के बाद वे दो अलग अलग संसारों में रहने के लिए चले जाते थे। एक दूसरे के संसार में वे भाई बहन के रिश्ते का नकाब पहन कर ही मिल सकते थे। वह भाई बहन के रिश्ते के अतिरेक से लबालब भरा हुआ और उससे त्रस्त एक साधारण गांव था।

उस गांव का लड़का सुदामा हरदम इसी ताक में रहता था कि कब उसके ही गांव की लड़की साक्षी को छूने का मौका उसे मिले, वह हरदम उसी के साथ खेलना चाहता था पर साक्षी सुदामा को अपने साथ नहीं खेलाती थी। वह कहती थी, "तुम लड़का हो और जाओ लड़कों के संग खेलो।" वह हमेशा लड़कियों के साथ ही खेलती थी। कभी कभी सुदामा उसके साथ खेलने के लिए जिद करने लगता, तो वह उससे लड़ जाती और उसकी शिकायत अपने भाई शंकर से कर देती। शंकर सुदामा से एक क्लास बड़ा था और थोड़ा मजबूत था और गुस्सैल तो बहुत था। गुस्सा हमेशा उसकी नाक

पर कबड्डी खेलता था। वह सीधे सुदामा के पास आता और एक झापड़ मार कर कहता कि जान से मार दूंगा। वह ऐसा अक्सर दूसरे लड़कों के साथ भी करता। सुदामा सोचता, इसकी शिकायत एक दिन वह शशि के पिता सिपाही अंकल से करेगा। सिपाही अंकल के पास बंदूक थी, इसीलिए सुदामा शशि से दोस्ती रखता था। सुदामा को बंदूक बहुत अच्छी लगती थी। वह सोचता था कि वह भी बड़ा होकर बंदूक लेकर घूमेगा। वह शशि से अक्सर बंदूक के बारे में कुछ न कुछ पूछता था, पर शशि की रुचि बंदूक में नहीं थी। वह उसे चिड़ियों के बारे में बताता था। उसे चिड़ियों से प्यार था। शशि जैसे उससे थोड़ा बड़ा था पर वह उसी के क्लास में पढ़ता था और सिपाही अंकल सुदामा को बहुत मानते भी तो थे। सुदामा गांव का सबसे जहीन लड़का था। वह छोटा था मगर प्रतिभाशाली बहुत था। होनहार वीरवान के होत चिकने पात...।

एक दिन सिपाही अंकल से सुदामा ने पूछा था कि सिपाही अंकल आप बंदूक क्यों रखते हैं तो उन्होंने कहा था कि बदमाशों को मारने के लिए। सुदामा की नजर में शंकर बहुत बदमाश था। पर सुदामा सिपाही अंकल से उसकी शिकायत शायद इसलिए नहीं करता था कि सिपाही अंकल उसके कहने पर शंकर को मार देंगे तो साक्षी उससे कभी नहीं बोलेंगी। हमेशा हमेशा के लिए रूठ जायेगी। सुदामा साक्षी को खोना नहीं चाहता था। साक्षी बहुत सुंदर थी। धीरू सुदामा को लाख समझाता कि तू लड़कियों के चक्कर में मत रहा कर, नहीं तो तुझे पाप पड़ेगा पर सुदामा पाप से नहीं डरता था। वह शंकर से डरता था। और शंकर भूतों से डरता था।

**वे** जिस स्कूल में पढ़ते थे यानी राम दुलारो देवी मध्य विद्यालय, बखेड़ापुर जिसका एक कमरा जो मुख्य स्कूल से थोड़ा हट कर था और खंडहर बन चुका था और जिसकी घुन खायी दो खिड़कियों और इकलौते दरवाजे को गांव वाले जलावन के लिए ले भागे थे, के बारे में अफवाह थी कि उसमें गांव भर के 'भूत प्रेत' रहते हैं। उस कमरे का छप्पर उजड़ चुका था और उसमें पीपल का एक विशाल वृक्ष आबाद था। कहा जाता था कि उस पीपल पर रात में प्रेत झूला झूलते हैं।

गांव में एक विधवा औरत थी जिसको उसके घरवालों ने उसकी सम्पत्ति और घर से बेदखल कर रखा था और वह खेतों में मजदूरी करके गांव के सीमान पर अपनी एक अलग झोपड़ी में जीवन बसर कर रही थी। उसके बारे में सब मानते थे कि वह एक मानी हुई डायन है। उसके बारे में लोगों का कहना था कि शादी के साल भर बाद ही उसे एक बहुत सुंदर बेटा हुआ जिसे वह जन्मते ही खा गयी और अगले साल भर के भीतर अपने हट्टे कट्टे पति को। कहा तो यहां तक जाता था कि अपने पति को मारने बाद उसने उसका खून पी लिया था, इसलिए उसकी लाश नीली पड़ गयी थी। यही नहीं उसके बारे में कहा तो यह भी जाता था कि गांव के कई जवान मर्दों और बच्चों को भी वह खा चुकी है। इसीलिए बहुत मजबूरी न हो तो उसे जल्दी कोई अपने घर फटकने नहीं देता था। उसका नाम पता नहीं क्या था पर गांव में सब उसे लोटन बहू कहते थे। लोटन बहू के बारे में लोगों का खयाल था कि वह रात में उस खंडहर के पीपल की पूजा करती थी और फिर उस पर बैठ कर स्वर्ग नरक, दुनिया जहान सब जगह घूम कर आ जाती थी। कस्बे में उसके बारे में ऐसे कई अविश्वसनीय किस्से थे जैसे कि कहा जाता था कि लोटन बहू चाहे तो किसी के घर को रात में उठा कर कहीं भी लेकर चली जाये और सुबह होते ही उस घर को यथास्थान रख दे और यह खबर इंसान तो क्या पेड़ पौधे, परिन्दे तक को पता न चले।

उसका हौआ इतना था कि गांव में जब भी कोई नौजवान या बच्चा बीमार पड़ता, लोगों की आशंका लोटन बहू पर जा टिकती। इसको लेकर लोटन बहू को आये दिन गाली गलौज से लेकर

मारपीट तक बहुत फजीहत झेलनी पड़ती। एक बार तो पंचायत के प्रधान जी ने उसे नंगा कर पूरे गांव में घुमाया था। बाद में कई दिनों तक गांव में पुलिस आती रही। फिर जाने क्या हुआ, मामला सलट गया। वह इसके लिए लगभग अभ्यस्त भी हो गयी थी और इससे निपटने के लिए वह अपने तौर तरीके अपनाती थी। वह काली की पूजा करती थी और अपनी छवि इस तरह बनाये रखती थी कि वह किसी मरणासन्न को जीवन देने के लिए काली देवी को मना सकती है और कोई ज्यादा तंग करे तो उसे निपटाने की क्षमता भी उसमें है। लोग उससे डरते भी थे और उसे डराते भी थे। उससे बेवजह पंगा लेने की कोशिश कोई नहीं करता।

कहा जाता था कि भूत, प्रेत, जिन्न आदि उसके इशारे पर काम करते थे। गांव के लोग अपने बच्चों को लोटन बहू के पास फटकने नहीं देते थे। लोटन बहू जब किसी के घर जाती तो लोग अपने बच्चों को उससे ओझल कर लेते थे। जिस गली से वह गुजर जाती, उस गली में खेलते बच्चे खेल बंद कर थथम से जाते। माएं अपने नौनिहालों को दूध पिलाने या सुलाने के लिए लोटन बहू के आतंक का इस्तेमाल बखूबी करती थीं।

पर सुदामा यह पक्के विश्वास के साथ कह सकता था कि उसका भैरव चाचा लोटन बहू से नहीं डरता था।

**एक** दिन की बात है, सुदामा अपने भैरव चाचा को खोजते हुए बागीचे की ओर जा रहा था, तो लोटन बहू की झोपड़ी से उसे उसकी फुसफुस आवाज सुनाई पड़ी। लहालह गरमी की दुपहरिया थी और उस साल आम खूब आये थे। जितने ज्यादा आम आये थे, उतनी ही ज्यादा आमों की चोरियां भी हो रही थीं। कारण कि गांव में पचास परिवार थे और बाग आठ ही थे और इन आठ छोटे बड़े बगानों के मालिक कुल तीन परिवार थे। इसलिए बहुत सारे परिवारों के पास अपना आम नहीं था, इसलिए वे दूसरे के आम को ही अपना आम समझ, उसे चुरा कर ही सही, खाना अपना अधिकार समझते थे। बाजार से आम खरीद कर लाना खासा नफासत और मूर्खता का काम था। भैरव ने सीजन शुरू होने के पहले एक बाग पैसे देकर खरीद लिया था। वह खुश था कि इस साल दूना लाभ कमायेगा।

भैरव खेत के पास आम के बागीचे में जाने की बात कह घर से निकला था कि कुछ देर बाद भैरव चाची को चाचा से कुछ काम आन पड़ा और उन्होंने सुदामा को उसे बुला लाने के लिए कहा। बागीचे तक जाने के दो रास्ते थे। पता नहीं उस दिन सुदामा के मन में क्या आया कि वह लोटन बहू की झोपड़ी की ओर से जाने वाले रास्ते पर ही निकला और उसकी झोपड़ी से भैरव की आती आवाज को सुन कर ठिठक गया। झोपड़ी का दरवाजा भीतर से बंद था। सुदामा ने सोचा, चाचा यहां क्या कर रहा है? सुदामा को थोड़ा डर भी लगा कि कहीं चाचा को लोटन बहू खा तो नहीं रही है। फिर उसे लगा कि भैरव चाचा तो खुद ही लंठ है, उसको लोटन बहू क्या खायेगी। उसकी चाची को वह बात बेबात इतने झापड़ मारता था कि उसकी वीरता पर सुदामा संदेह कर ही नहीं सकता था, फिर भी सुदामा ने आश्वस्त हो लेना चाहा। झोपड़ी का दरवाजा पीटते हुए उसे डर लगा। उसने झोपड़ी में बनी एक दरार से भीतर झांका। यह क्या? लोटन बहू लगभग नंगी पड़ी है और भैरव उसके दूध को मुंह में लिए उसके ऊपर उकड़ू लेटा है। भैरव भी कमर से नीचे नंगा है। सुदामा को पहले तो यकायक लगा कि यह कोई सपना है, फिर लगा कि नहीं भैरव चाचा लोटन बहू को खा रहा है। पर वह तो लोटन बहू का दूध पी रहा था। तो क्या चाचा की मति को मार कर लोटन बहू ने उसे बच्चा बना दिया है? सुदामा का पूरा शरीर पसीने से नहा गया, उसकी हवा गुम हो गयी और बिना कुछ सोचे सुदामा के मुंह से जोर से रुलाई फूट पड़ी, “चच्चा ओ चाचा।”

और सुदामा वहीं थस्स से बैठ कर जोर से रोने लगा, “चाचा हो चाचा !”

भैरव लुंगी बांधते हुए बाहर निकला और सुदामा को दो हल्के थप्पड़ लगा कर पूछा, “रो क्यों रहे थे? यहां अभी कैसे, कहां जा रहे हो? दुपहरिया में मकौड़ा मार रहे हो साले...”

सवालियों की बौछौर को नजरअंदाज करते हुए सुदामा ने अपना डर व्यक्त किया, “तुमको लोटन बहू ने बच्चा बना दिया था। वह तुमको खा जाती तो...? चाची तुमको बुला रही थी।”

सुदामा फिर रोने लगा, “चाचा हो चाचा। मैं क्या कहता, चाची से हो चाचा? मैं कौन मुंह दिखाता हो चाचा...।”

भैरव हंसते हुए बोला, “धत्त... साला, औरतों की तरह रोता क्या है? लोटन बहू मुझे बच्चा कैसे बना देगी?”

सुदामा ने आंसू पोंछते हुए कहा, “बना तो दी थी।”

भैरव ने चौंकते हुए पूछा, “कैसे?”

“मैंने अभी झोंपड़ी की दरार में से झांक कर देखा। तुम लोटन बहू का दूध पी रहे थे।” चाचा ने सुदामा के मुंह पर हाथ रख दिया और उसे झोंपड़ी के भीतर लेकर झोंपड़ी का दरवाजा बंद कर दिया। लोटन बहू ने सुदामा के आंसू पोंछे, प्यार किया और खाने के लिए दो गुड़ के लड्डू दिये। गुड़ के लड्डू सुदामा को बहुत पसंद थे। सुदामा लड्डू खाने लगा।

भैरव ने सुदामा से कहा “देखा, लोटन बहू किसी को खाती नहीं, गुड़ के लड्डू देती है खाने को। मुझे भी खिला रही थी पर किसी को बताना मत, नहीं तो भूत से धरवा देगी लोटन बहू। मुझे भूत ने धर लिया है। झरवा लूं लोटन बहू से?”

भैरव लोटन बहू से सट कर लेट गया। उन लोगों ने एक बड़ी चादर से खुद को ढंक लिया था। सुदामा थोड़ा थोड़ा डर भी रहा था पर लड्डू की मिठास ने उसे एक निश्चिंतता तो दे ही दी थी।

कुछ देर बाद भैरव भूत झरवा कर घर लौटने लगा तो रास्ते भर सुदामा को ब्लैकमेल करता रहा कि किसी को बताना मत कि हम लोटन बहू के यहां गये थे, नहीं तो लोग मारेंगे। लोटन बहू मेरे से सेट है। तुम्हारा कोई काम हो तो मुझे बता देना, मैं उससे कह कर प्रेतों से तुम्हारा काम करवा दूंगा।

सुदामा ने पूछा कि क्या लोटन बहू प्रेतों से शंकर को मरवा सकती है?

भैरव ने कहा, “हां क्यों नहीं।”

सुदामा ने पूछा, “क्या लोटन बहू मुझे भूत प्रेतों से बचा सकती है?”

भैरव बोला, “क्यों नहीं।” शर्त यही थी कि सुदामा को लोटन बहू और भैरव चाचा की सेटिंग किसी से बतानी नहीं थी। किसी से भी नहीं, चाची से तो एकदम नहीं। भैरव ने सुदामा से कान पकड़वा लिए। कसम खिलवा ली। जितना डरा सकता था, जितनी आशंकाएं लाद सकता था, सब कर लिया। उसके बाद सुदामा ने भूत प्रेतों से डरना छोड़ दिया।

**शंकर** भूतों से बहुत डरता था। वह स्कूल के पास वाले खंडहर में कभी नहीं जाता था। वैसे प्रायः कोई लड़का उधर नहीं जाता था। एक दिन सुदामा ने साक्षी का हाथ पकड़ा और उसे खंडहर की ओर ले जाने लगा। साक्षी ने कोई विरोध नहीं किया। वह चलती चली गयी। खंडहर में ले जाकर सुदामा उसके साथ मोटे पीपल के वृक्ष की ओट में खड़ा हो गया और पूछा, “तूझे भूतों से डर नहीं लगता?”

साक्षी ने उसे एक थप्पड़ मार कर कहा, “भूत से डर तो मेरे भाई शंकर को लगता है और शंकर से तुम्हें डर लगता है। मुझे किसी से डर नहीं लगता है।”



सुदामा को गुस्से की जगह आश्चर्य हुआ कि क्लास में बात बात पर रोने वाली साक्षी क्या सचमुच किसी से नहीं डरती? वह साक्षी के साहस के आगे निरुत्तर हो गया। वह उससे ढेरों सवाल पूछना चाहता था पर अब उसमें एक भी पूछने की हिम्मत नहीं रही। सुदामा ने उसे खाने के लिए शरीफा दिया। उसे मालूम था कि साक्षी को शरीफा बहुत पसंद है। साक्षी ने सुदामा के गाल को चूम लिया। उस दिन के बाद साक्षी और सुदामा गहरे दोस्त बन गये। सुदामा रोज उसके लिए घर से कुछ न कुछ लाता, खासकर शरीफा। और वे दोनों रोज पीपल के पीछे चले जाते। वे दोनों अब बहुत निडर थे। अब सुदामा ने उसके साथ खेलने की जिद करना छोड़ दिया था। अब वह अपनी बहादुरी के बड़े बड़े किस्से उसे सुनाता और वह अपनी हथेली से उसके चेहरे का पसीना पोंछ देती। न जाने क्यों डींग हांकते समय सुदामा का चेहरा पसीने से नहा जाता। साक्षी अपने हाथों से उसके बाल ठीक कर देती। साक्षी को कभी कभी सुदामा अपनी कलम भी दे दिया करता और घर जाकर कहता कि उसकी कलम खो गयी और साक्षी अपने घर जाकर बता दिया करती कि उसे कलम स्कूल के बाहर गिरी हुई मिली। साक्षी सुदामा की कलम से लिखते हुए बहुत खुश होती थी और कभी कभी उसे दिखाते हुए उस कलम को चूम भी लेती थी। सुदामा भी इस बात से फूला न समाता था कि साक्षी उसकी कलम से लिखती है। एक बार सुदामा की दी हुई कलम उससे शंकर ने ले ली थी, तो वह उससे बहुत लड़ी थी। उसने सुदामा को जब यह बात बतायी तो सुदामा ने उससे कहा था कि शंकर से बोलो कि वह सुधर जाये नहीं तो मैं एक दिन उसे किसी भूत से पकड़वा दूंगा। साक्षी कुछ नहीं बोली थी। बस वह सुदामा का चेहरा देखती रह गयी थी। उस दिन के बाद साक्षी की सहेलियां सुदामा को कभी कभी चिढ़ाते हुए 'लोटन बहू' कहने लगीं। सुदामा या कोई भी इस रहस्य को नहीं जान पाया कि वे ऐसा क्यों कहती हैं। यह तो बहुत बाद में सुदामा को पता चला कि वह झूठमूठ का तीसमार खां बन रहा था। दरअसल स्कूल में कई लड़कियां लड़के थे जो भूत प्रेत से शायद ही डरते थे। जब जरूरत पड़ती वे पीपल के पेड़ के पीछे चले जाते। एक दिन तो सुदामा ने धीरू को ही पकड़ लिया। बाद में वह कहने लगा कि वह तो रूबी को मूंगफली खिलाने उधर गया था। अगले दिन कहा कि किसी को बताना मत, रूबी मुझसे सेट है। मैं उससे शादी करूंगा। जबकि एक दिन सुदामा ने जय के साथ रूबी को उधर देखा तो जय ने धीरे से आकर उससे कहा कि वह उससे सेट है। सुदामा को क्या। वह साक्षी से या किसी से यह सब कुछ नहीं बताता था। एक बार ऐसी ही कोई बात धीरू ने अपनी मां से कह दी तो उन्होंने उसे सुदामा के सामने ही बहुत मारा था और शायद क्लास टीचर तक भी शिकायत पहुंच गयी थी क्योंकि उस दिन क्लास टीचर ने एक सवाल का सही जवाब देने पर भी गलत करार देकर उसे मुर्गा बना दिया था। सुदामा ने तो कान ही पकड़ लिया था उस दिन।

**समय** का पहिया तेजी से घूम रहा था।

साक्षी और सुदामा का घर आसपास था। उनकी छतें आपस में मिलतीं थी। साक्षी के विनोद चाचा की नयी नयी शादी हुई थी। उसके यहां फिलहाल मिठाइयों का अच्छा स्टॉक था। सुदामा ठहरा मिठाइयों का परम लालची। अक्सर गर्मियों की शाम में वे अपनी छतों पर आ जाते। दोनों घरों में और कोई बच्चे थे नहीं। शंकर तो फुटबॉल का शौकीन था। वह अब माध्यमिक विद्यालय में जाने लगा था। उसके बहुत सारे नये दोस्त हो गये थे। गर्मियों की शाम में वह अपनी गेंद लेकर स्कूल के मैदान की ओर चला जाता। घर के दूसरे लोगों को इतने काम थे कि शाम में छतों पर टहलने की फुर्सत किसे थी। शाम की छतें बस साक्षी की और सुदामा की थीं। वह अपनी चाची के गांव

से आये तरह तरह के पकवानों में से कोई एक लेकर छत पर आ जाती और सुदामा को खाने को देती। वे छत पर अपने स्कूल के बारे में, अपने मास्टर्स के बारे में, स्कूल के दूसरे बच्चों की लड़ाइयों के बारे में तरह तरह की बातें करते और कभी कभी लूडो खेलते थे। कभी बैठ कर बोल बोल कर कोई कविता या अंग्रेजी शब्दों की स्पेलिंग और मीनिंग याद करते थे। कभी कभी साक्षी अपनी चाची के बारे में बातें बताया करती थी कि वह कितनी सुंदर है, कैसे चलती है और कैसे बोलती है, चाचा के साथ रात में क्या क्या बातें करती है आदि आदि। साक्षी अपनी चाची के कमरे में ही सोती थी। वह चाची की ठीकठाक नकल करने लगी थी और उसकी इस अदा पर सुदामा फिदा था। वे उस असर में बचपन की सरहदें लांघ रहे थे।

सर्दियों के दिन थे। एक दिन साक्षी ने सुदामा से पूछा कि 'चाचा चाची' का खेल खेलोगे? सुदामा ने सोचा वह मजाक कर रही है, पर वह गम्भीर थी। उसने रात में सोने के लिए छत पर रखे हुए कम्बल को फैला लिया और सुदामा का हाथ खींचते हुए उस पर लेट जाने के लिए कहा। सुदामा के साथ वह भी लेट गयी और उसके गले में हाथ डाल लिया वे एक दूसरे को कुछ देर सहलाते रहे।

इसके बाद अगले दिन से 'चाचा चाची' उनका फेवरेट खेल बन गया। एक शाम वे 'चाचा चाची' का यह खेल खेल ही रहे थे कि साक्षी का नवल चाचा छत पर आ गया। वह ठहरा एक नम्बर का पाजी। उसने पूरा खेल तो नहीं पर उस खेल का अदेशा जगानेवाली एक झलक देख ली थी। उसने दो थप्पड़ मार कर साक्षी को नीचे भगा दिया। उसके बाद सुदामा का हाथ पकड़ कर वह उसे छत पर बनी कोठरी में ले गया। कोठरी का दरवाजा भीतर से बंद कर दिया और सुदामा की निक्कर उतारने लगा। सुदामा डर गया और रोने लगा तो उसने उसकी पीठ पर चार पांच हाथ रखते हुए कमरे का दरवाजा खोल कर कहा, "आइं दे साक्षी के साथ छत पर मत आना।"

उस दिन साक्षी की भी घर में धुलाई हुई थी। उसके बाद साक्षी और सुदामा की बातचीत बंद हो गयी। पर साक्षी जो बार बार सबकी नजरें बचा कर उसे कनखियों से देखती थी, आखिर वह कैसे अनदेखा कर पाता?

## 2

### **घुन खाये शहतीरों पर की बाराखड़ी विधाता बांचे कटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे (नागार्जुन)**

रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय, बखेड़ापुर में मास्टर कुल तीन थे, कमरे कुल चार और कक्षाएं कुल आठ। पढ़ने वाले छात्र कुल सौ के करीब होंगे। पहली और दूसरी कक्षाएं एक कमरे में लगती थीं और तीसरी तथा चौथी कक्षाएं एक कमरे में। पांचवीं और छठी एक कमरे में और सातवीं आठवीं एक कमरे में। चार छोटे छोटे कमरों में सौ सवा सौ छात्र छात्राएं भेड़ बकरियों की तरह भरे रहते। एक एक कमरे में दो दो कक्षाएं लगने से माहौल अराजक बना रहता। कभी अच्छा मौसम होता, जैसे जाड़े में अच्छी धूप निकली होती, तो किसी कक्षा को बाहर आम के पेड़ तले या खुले में लगा लिया जाता। कभी मौसम खराब होता जैसे कि बरसात हो रही होती और एक कमरे की छत चूने लगती तो दो कक्षाओं की आकस्मिक छुट्टी कर दी जाती। वैसे इस स्कूल में छुट्टियों का कोई टोटा नहीं था। अक्सर बात बेबात छुट्टियां होती रहतीं। जैसे कि कभी तीन मास्टर्स में से कोई एक छुट्टी कर लेता तो किन्हीं दो कक्षाओं की छुट्टी कर दी जाती। और ऐसा अक्सर होता ही रहता कि कोई न कोई मास्टर छुट्टी पर ही रहता। वैसे मास्टर जी लोगों को ब्लॉक पर अक्सर किसी न किसी मीटिंग में जाना होता। तब स्कूल बंद हो जाता था। स्कूल तो वैसे भी पढ़ने वाले लगनशील बच्चों के भरोसे

ही चल रहा था। अक्सर पढ़ाने का काम भी बच्चों से ही लिया जाता। बड़ी कक्षाओं के मेधावी बच्चों को छोटी कक्षाओं के बच्चों को पढ़ाने की जिम्मेदारी देकर मास्टर लोग खूब निश्चिंत हो जाते थे।

कुल तीन मास्टर्स में एक बिल्कुल बगल के गांव पचमा गांव के मास्टर साहब थे। बच्चे उन्हें 'पचमा मास्साब' कहते। वे अक्सर स्कूल की प्रार्थना के बाद अपने खेतों की बुवाई या कटाई या पटवन का काम देखने निकल जाते। वे अपने घर के अकेले कमासुत आदमी थे और उनकी अच्छीभली खेती थी। स्कूल के लड़के और बाकी मास्टर उनकी मजबूरी समझते थे। गांव वाले तो खैर पढ़ने लिखने को ही एक 'मजबूरी' समझते थे और उनके हाथ का होता तो इस काम से दुनिया को कबका निजात दिला चुके होते। गांव के मुखिया जी कहते भी थे, "पढ़ाई ससुरी बहुते निकम्मी बनावे वाली चीज है जी। आदमी को 'सुकवार' बना देती है। जो चार अक्षर पढ़ लेता है, वह बेलबाटम पहन कर बस कानून छांटने लगता है, किसी काम का थोड़े रह जाता है...।"

एक हेड सर थे। वे थोड़े नेता किस्म के आदमी थे। उन्हें अब्बल तो इतनी मीटिंगों में बाहर जाना होता कि महीने में कुछ दिन ही उनके दर्शन का सौभाग्य बच्चों को मिलता और दूसरे वे बीमार भी रहते थे, तो उनके स्कूल आते ही स्कूल के छात्रों में उनकी सेवा के लिए होड़ लग जाती। स्कूल के छात्रों का पक्का यकीन था कि हेड सर जिस पर खुश हो जायें उसका तो बेड़ा पार ही समझो। उसे कोई सातवीं तक रोक नहीं सकता। छात्रों का पक्का यकीन था कि पढ़ाई से कुछ नहीं होता, 'सेवा' बड़ी चीज है। अब इस स्कूल के सबसे जहीन छात्र कृष्णकांत को ही देखो। पढ़ाई में जवार भर में अब्बल मगर थोड़ा सा नकचढ़ा था। कोई मैथ दो, क्षण भर में हल निकाल देता। अंग्रेजी की किताबें वो फरटिदार पढ़ता कि लोगों की आंखें फटी की फटी रह जातीं मगर वह किसी क्लास में क्या 'फस्ट' आ सका? हरदम 'थर्ड' आया।

इसलिए हेड सर को दूर से आते देख कर लड़कों में होड़ लग जाती उनकी साइकिल पकड़ने की। एक साथ कई लड़के दौड़ पड़ते। सबको सौभाग्य कहां नसीब होता? जो सबसे मजबूत लड़का होता, सबको परे धकेल कर 'भाग्य' झपट लेता और उसके इस पौरुष पर हेड सर लहालोट होते। हेड सर के स्कूल में आते ही उनके चरण छूने की होड़ लगती लड़कों में। चपरासी था नहीं, कोई लड़का दौड़ कर जग मांज कर पानी भर लाता तो कोई कुर्सी की धूल झाड़ने लगता। वैसे ऐसी सेवा तीनों मास्टर्स को नसीब थी। पर हेड सर चूँकि बीमार रहते थे। इसलिए स्कूल लगने के बाद उनके सिर और पैरों की मालिश भी की जाती और यह काम वे प्रायः छोटे लड़के लड़कियों से नहीं लेते। इसके लिए वे सातवीं क्लास की लड़कियों को ही विशेष रूप से मुफीद समझते थे। कहते थे कि छोटे बच्चे ठीक से पैर और सिर दबा नहीं पाते। उनसे दबता ही नहीं। और बड़े लड़के ससुरे बड़े 'लंड्रे' होते हैं।

हेड सर की इस समझ के पीछे भी एक कहानी है। कहा जाता है कि बहुत पहले की बात है कि एक बार कोई एक बड़ा लड़का उनका सिर दबा रहा था। हेड सर शायद थके हुए थे, उन्हें इतना सुकून मिला कि वे सो गये। मौका देख कर उस लड़के ने उनकी चुटिया कुर्सी में पीछे कस कर बांध दी और बस्ता लेकर घर चला गया। स्कूल में नियम था कि हेड सर जब सो रहे हों, तो उन्हें कोई जगा नहीं सकता था। अगर प्रलय आ जाये, तब भी नहीं। नहीं तो हेड सर जग जाने पर प्रलय ला सकते थे। इसलिए उस दिन वे पूरे दिन सोते रहे। शायद किसी बरात से सीधे स्कूल चले आये थे। उस बरात में रात भर जग कर उन्होंने 'चांद बिजली' का नाच देखा था। दो मास्टर स्कूल की छुट्टी से पहले ही चले गये थे, पर जब स्कूल की छुट्टी का समय हुआ और लड़के भी स्कूल से जाने लगे तो सातवीं क्लास का सबसे लम्बा लड़का जिसका नाम पता नहीं क्या था, पर जिसे सारे लड़के 'लम्बू जी' कहते थे ने दो लड़कों की मदद से उन्हें बरामदे में कुर्सी समेत रखा और कमरों

में ताला बंद कर चला गया। स्कूल की चाबी वही रखता था। कहते हैं कुछ देर बाद जब एक कुत्ता आकर कुर्सी पर खड़ा होकर हेड सर के माथे पर अगला दो पैर रख कर उनकी गोद में मूतने लगा, तो अकबका कर उनकी नींद टूटी। खड़े होने लगे तो अब खड़े कैसे हों, गिर पड़े। फिर अपनी चुटिया खोली।

कहते हैं अगले दिन उन्होंने लम्बू जी और वह लड़का जो सिर दबा रहा था जिसका नाम चंद्रभूषण था, दोनों का नाम काट दिया। जम कर मार पिटाई की सो अलग। लेकिन उन दोनों लड़कों ने भी हेड सर को सबक सिखा दिया था। अगले दिन वे स्कूल के टाइम पर हेड सर के रास्ते में पुरनका जामुन के पेड़ के पास उसकी ओट में लाठी लेकर खड़े हो गये। हेड सर की साइकिल वहां से जैसे ही गुजरी उनकी लाठी हेड सर पर। संयोग अच्छा था। उनका माथा बच गया। कुरता फट गया था। मुंह सुजाये हेड सर उस दिन स्कूल की जगह मुखिया जी के घर पहुंचे, फिर पता नहीं क्या हुआ। अगले दिन जब हेड सर, लम्बू जी और चंद्रभूषण तीनों स्कूल आये, तो तीनों के चेहरे फूले हुए थे। बताया गया कि तीनों का यह हाल मधुमक्खियों ने किया है। लम्बू जी और चंद्रभूषण का नाम स्कूल में फिर से लिख गया था। उसके बाद अपनी विशेष सेवा के लिए हेड सर लड़कियों को ही मुफ्तीद समझते थे। लड़कियां उनकी सेवा मन और लगन से करती भी थीं।

एक बार छठी में पढ़ने वाली रिकी तो हेड सर के सिर में चम्पी के लिए घर से सरसो तेल की शीशी तक लेती आयी थी। हेड सर का जी तो बहुत ललचाया था, पर एक तीसरे मास्टर साहब, उगना मास्साब ने हेड सर से साफ साफ अपनी असहमति जता दी थी, “देखिए, स्कूल में लड़कियों से तेल लगवाइयेगा तो ठीक नहीं होगा। किसी दिन बवाल हो जायेगा। फिर हम सब बदनाम होंगे।”

हेड सर खैर मान गये थे पर उस दिन उगना मास्साब से उनकी ठन गयी थी। बोले थे, “और आप पढ़ाने के नाम पर लड़कों को मार छड़ी कूटते रहते हैं, उससे बवाल नहीं होगा? आपको का मालूम है कि नया सरकुलर क्या आया है। चले जाइयेगा एक दिन हाथी के उसमें, तब मत कहियेगा।”

उगना मास्साब पढ़ाने के मामले में एकदम कड़ियल आदमी थे और गुस्सेल भी थे। वे एक भी दिन स्कूल ‘मिस’ नहीं करते थे, अगर बहुत जरूरत न पड़े। उनको भी ताव आ गया, “ऐसे ही नहीं मारते हैं। मेहनत से छह घंटा पढ़ाते हैं। आप लोगों ने तो स्कूल को तफरीह की जगह बना ली है। आप लोग लड़कों का भविष्य चौपट कर रहे हैं। एक दिन भुगतना पड़ेगा।”

इधर चुप पड़े पचमा मास्साब भी कब तक चुप रहते। वे भी हेड सर की तरफ से उतर पड़े, “चुप रहिए। ज्यादा पढ़ाने वाले बने हैं। राम जी की दया से, पढ़ा के लड़कों को अमेरिका भेज दीजियेगा का? आरे किसान के लड़के हैं, किसान बनेंगे। राम जी की दया से, बचपन में थोड़ी मस्ती करने दीजिए। खाने खेलने की उमिर है। अभिए से चाप के रखियेगा, तो मिरमिरा जायेंगे। राम जी की दया से, आगे दिन तो इन्हें हल में जुतना ही है, कलम नहीं चलाना है। राम जी की दया से, आप ही पटना में पढ़ कर का हुए, मास्टरे न। हम बिना कहीं गये, मास्टर हो गये। राम जी की दया से, आपसे कम तनखाह पाते हैं क्या?”

“आप अपना काम कीजिए ना। सरकार पढ़ाने के लिए पैसा देती है, तो पढ़ाइए। पढ़ाई लिखाई बेकार नहीं जाती। ज्ञान तो है ना।” उगना मास्साब गुस्से में उबल रहे थे।

“तो का हम अज्ञानी हैं? राम जी की दया से, ज्यादा चभर चभर मत कीजिए। लड़कों को मारना बंद कीजिए नहीं तो गंडवाला सब एक दिन ‘धांग’ देगा।” पचमा मास्साब आपसे बाहर हो रहे थे।

“सरकार पढ़ाने का कितना पैसा देती है जी? आपको पता है, आपसे ज्यादा पैसा तो मेरा राजमिस्त्री कूट रहा है। सौ रुपया रोज, आ दिन भर में चार सौ ईंट भी जोड़ दे तो बहुत। मेटेरियल्स में अलग कमीशन खेंच रहा है।” हेड सर ने आग उगली, “महंगी की आग लगी है और आप कह

रहे हैं कि सरकार पैसा दे रही है। सरकार स्कूल का बिल्डिंग तो बनवा नहीं रही है। दो साल से विधायक के पास दौड़ रहा हूँ। तीन पोस्ट खाली है। जाइए ना एप्वाइंटमेंट करवाइये।”

पचमा मास्साब ने हेड सर को सपोर्ट किया, “हम लोग क्या पढ़ाएँ जी? राम जी की दया से, कभी गाय गरू गिनने जाओ। कभी आदमी गिनो। कभी चुनाव कराओ, कभी वह सर्वे कभी यह सर्वे। स्कूल में गेहूँ बांटो। खाना बांटो। यही मास्टर का काम है? ये तो कहिए मुखिया जी की मेहरबानी है कि राम जी की दया से, बांटने बूटने का झंझटे नहीं है। बाहरे बाहर माल साफ हो जा रहा है। नहीं तो स्कूल में हांडा मांजना पड़ता, तब आपको बुझाता।”

उगना मास्साब ने दृढ़ता से कहा, “आप लोग जो कर रहे हैं, ठीक नहीं कर रहे हैं।”

हेड सर ने उगना मास्साब को देख लेने की धमकी दी। हेड सर छोटे मोटे नेता भी थे। सुना जाता था कि वे पटना में विधायक जी के बंगला पर भी महीना दो महीना में एक बार चक्कर मार आते थे।

दो महीने के भीतर दो बातें हुईं। एक, उगना मास्साब का कहीं दूर ट्रांसफर हो गया और उनकी जगह आ गयीं संगीता मैडम। दूसरी, पचमा मास्साब के बड़े बेटे रघुवीर सिंह की शादी जो लगातार तीन साल से पेण्डिंग पड़ती जा रही थी; वह इस साल मुकम्मल हो गयी। पर आगे कहानी में हम रघुवीर सिंह का नाम न देंगे, उन्हें पचमा मास्साब का लड़का ही कहेंगे क्योंकि पूरी कहानी में उनका व्यक्तित्व एक नाक चुआते लड़के भर का ही है जबकि पचमा मास्साब का असली नाम हमें नहीं मालूम, इसलिए हम उन्हें हरदम पचमा मास्साब ही कहेंगे।

### 3

**सबसे छुपा बांधता हूँ रोज पढ़ियाँ चुपचाप**

**देखता हूँ घाव अपने खोल कर हर रात। (अरुण कमल)**

पचमा मास्साब का लड़का बी.ए. पास कर बेरोजगार हो गया था और जल्दी ही विधिवत रूप से पुश्तैनी विभाग यानी कृषि विभाग का उतराधिकार हासिल कर लेने वाला था पर पचमा मास्साब इतने गंवार नहीं थे कि बगैर शादी के ही बेटे को जाँब देकर दहेज का मार्केट डाउन कर लेते। अभी तो वे कहते फिरते थे कि लड़का जाँब के लिए कम्पटीशन दे रहा है। वे बेटे की पूरी कीमत के चक्कर में थे। उन्हें भगवान का भरोसा था कि भगवान बेटा दिये हैं तो आंख का अंधा और गाँठ का भरपूर कहीं समधी भी पैदा किये ही होंगे। उनके घर में देर है, अंधेर नहीं। बेटा कुंआरे तो रहेगा नहीं और बिआह होगा तो ‘फ्री’ में तो होगा नहीं। आजकल फ्री में तो कोई हगता भी नहीं। पचमा मास्साब के सोचने और बतियाने का ढंग ही अनूठा था।

पचमा मास्साब दहेज के मामले में शुरू से ही काफी गम्भीर आदमी बताये जाते हैं। पता नहीं झूठी है या सच्ची, उनके बारे में एक घटना की चर्चा जवार भर में काफी मजेदार ढंग से की जाती है। वह यह कि पचमा मास्साब की शादी तब ही हो गयी थी जब वे धोती की जगह निक्कर पहन कर घूमा करते थे। जब उनकी शादी हो रही थी तो उन्होंने अपने दोस्तों के सामने यह समस्या रखी कि अपनी शादी में वे कोई चीज ‘अपने लिए’ कैसे प्राप्त करें? एक दोस्त बड़ा शरारती था। उसी ने समस्या हल की। उसने कहा कि ऐन जब लड़की के मांग में सिन्दूर डालना हो, उसके पहले ही वे अड़ जायें और कहें कि बिना कुछ दान दहेज लिए वे सिन्दूरदान नहीं करेंगे। पचमा मास्साब बचपन में बहुत सीधे थे। उन्होंने दोस्त से पूछा, “उसके बाद?”

दोस्त ने कहा, “उसके बाद क्या? फट जायेगी सालों की।”

पचमा मास्साब ने फिर पूछा, “फिर?”

दोस्त ने आजिज आकर कहा, “रेल मांग लेना।”

पचमा मास्साब सीधे थे और बच्चा तो थे ही। उन्होंने रेलगाड़ी तब तक देखी नहीं थी। रेलगाड़ी के बारे में सुना था और जैसा सुना था उस हिसाब से रेलगाड़ी एक दुर्निवार आकर्षण की तरह उनके दिल में बस गयी थी। उसके लिए तो वे शादी करने से भी साफ मना कर सकते थे।

तो हुआ यही कि अपनी शादी में ऐन सिन्दूरदान के समय अपना थोबड़ा थोड़ा लटका कर उन्होंने कहा, “मैं बगैर एक दहेज लिए सिन्दूर नहीं डालूंगा लड़की के माथ में। हमारा भी कुछ सौख अरमान है।”

पूरा घर पड़ गया फेर में। लड़की के बाप को बुलाया गया। बाप ने सोचा कि लड़का जैसे ही छाव दिखाने के लिए छाव दिखा रहा है। इसलिए पुचकारते हुए कहा, “मेहमान क्या हम जानते नहीं आप लोगों का बड़प्पन। हम लोग आप लोगों के सामने क्या हैं? फिर भी हम लोग आप लोगों से बाहर थोड़े ही हैं। जो कहियेगा, हम ताकत भर उससे चूकेंगे क्यों? बेटी दे रहे हैं, तो सौख अरमान हमारा भी है।”

पर पचमा मास्साब पूरे ताव में थे। उन पर लड़की के बाप की पुचकार का कोई असर न हुआ। बोले कि दहेज देना स्वीकार करते हैं कि बोलिए हम आंगन से चलें।

लड़की के बाप ने आजिज आकर कहा, “कहिए क्या लेंगे?”

पचमा मास्साब पूरी गम्भीरता से बोले, “रेल।”

एक सन्नाटा खिंच गया। क्या लड़का पगला है? कि मजाक कर रहा है? बाप को लगा कि यह तो भरे आंगन में इज्जत बिगड़ जायेगी। वह बुरा फंसा। पर जिस तरह आपात स्थिति आने पर कोई न कोई तात्कालिक निदान भी प्रकट हो जाता है, उसने तत्काल निदान सोच लिया। लड़के को एक किनारे ले गया। पुचकार कर कहा, “बोलो बेटा, क्या तुम रेले साइकिल की बात कर रहे हो?”

पचमा मास्साब बिगड़ते हुए बोले, “आप मुझे समझते क्या हैं? मैंने रेले साइकिल नहीं देखी है? मुझ रेल चाहिए, रेलगाड़ी, समझे?”

लड़की के बाप को लग गया कि लड़का या तो बहुत लड़का है या थोड़ा ढीला है। पर उसके सामने रास्ता क्या था? लड़के को आंगन से खदेड़ देता, तो बेइज्जती क्या उसकी नहीं होती? और लड़के को वह क्या खाकर यों खदेड़ सकता था? लड़के वाले उसकी लड़की तो क्या गांव की कई लड़कियों को उठा ले जाते। शामियाने से बंदूकों के गरजने की साफ आवाज आंगन में भी आ रही थी।

उसने थोड़े संयम और थोड़ी समझ से काम लिया। कहा, “बेटा रेल कौन बड़ी चीज है? आरा स्टेशन पर लगी है। जब चाहो ले लो। दहेज तो हमें देना ही है। लेकिन इसके पहले कि तुम्हारे गांव तक रेल पहुंचे, पटरी तो बिछवा लो अपने बाबू जी से।”

पचमा मास्साब मान गये और ठसक से बोले, “तो क्या आप हमी लोगों को कम समझते हैं? आप रेल दे देंगे तो हम पटरी नहीं बिछा लेंगे?”

लड़की के बाप को मामला सुलझता जान पड़ा तो हिम्मत भी बढ़ी, “हम भी एकजबानी हैं बबुआ। कह दिया तो कह दिया। आप कीजिए शादी। हमारा सब धन काहे का है? अपना ही समझिए।”

पचमा मास्साब भला ऐसे दिलेर आश्वासन के सामने कहां टिकते? शादी कर ली। बताया जाता है कि जब तक ठीक से जवान नहीं हो गये, बाप से गांव में रेलवे लाइन बिछाने के लिए लड़ते रहे।

**बहरहाल** पचमा मास्साब के लड़के के दहेज की बात इस साल दो लाख रुपये पर टूटी थी। जिस दिन लड़कीवाले पैसा लेकर आने वाले थे, उस दिन वे अपने साथ लड़की के मामा को भी लेते आये थे जो किसी सरकारी सहायता प्राप्त संस्कृत स्कूल के अंशकालिक शिक्षक थे। वैसे वे पूर्णकालिक

रूप से संगीत में रुचि लेते थे और लोकगीत के अपने जवार में माने हुए गायक थे। अब तक पटना रेडियो से चार बार उनके गायन का प्रसारण हो चुका था जिसे वे अपने जीवन की बतौर उपलब्धि के रूप में हर जगह पेश करना नहीं भूलते थे। पर जवार भर में वे इस बात के लिए जाने जाते थे कि बातचीत में वे अच्छे अच्छों को पदा देते थे। उनके आगे कोई नहीं टिक सकता था। उन्हें इतनी कविताएं याद थीं कि किसी भी तर्क के जवाब में विषयांतर कर वे उन्हें पेल देते और सामने वाला भकर भकर मुंह ताकने लगता। वे तर्क में कुतर्क के और कुतर्क में गाना के प्रयोग से कैसी भी बात की बाजी जीत लेते थे। पचमा मास्साब उन्हें जानते थे। इसलिए उनको देखते ही पचमा मास्साब की सुलग गयी। उन्हें पूरा भरोसा हो गया कि यह सरवा कुछ न कुछ करामात कर ही देगा। करामात हुआ भी। पैसा देने के पहले लड़की वालों ने लड़के को बुला लिया। उनका कहना था कि आज जब बात फाइनल हो रही है, तो वे लड़के से मिल लेना भी चाहेंगे। पहले तो पचमा मास्साब ने बहाना किया कि लड़का क्या देखना है, चल के जवार में किसी से पूछ लीजिए। वैसे भी आज लड़का अपने फुआ के घर गया है लेकिन वहीं बैठा पचमा मास्साब का छोटा लड़का बीच में बोल पड़ा, “नहीं, भैया तो आंगन में खा रहा है।”

पचमा मास्साब एकबारगी तो लजा से गये पर अपने को संभालते हुए बोले, “हैं, हमको तो बोला था कि फुआ के यहां जा रहे हैं। लगता है अभी तक गया नहीं, खाकर निकलेगा।” वे अपने छोटे लड़के को लगभग खींचते हुए दालान से जनानखातना की ओर ले गये और आंगन में ले जाकर खींच कर दिया एक थप्पड़, “सार वहां बीच में पंचाइती करने चले जाते हो। नाक का पानी नहीं पोछा रहा है। बतकट्टी करते हैं...।”

लड़का समझ नहीं पाया कि उसे मारा क्यों जा रहा है। वह अपने बाप को गालियां देने लगा और रोने लगा। लड़के की मां का भी मन लड़के को पीटा जाता देख खीज गया पर वह जानती थी अभी बोलना ‘मालिक’ को अपनी दुर्गत करने के लिए न्यौतना ही है। वह चुप रही।

पचमा मास्साब आंगन में खाना खाते अपने उस बेटे से मुखातिब थे जिसकी शादी तय होने जा रही थी, “थोड़ा चेहरा मोहरा ठीक कर आओ। वो लोग बुला रहे हैं... बानर जैसा दसा बनाये हो...।”

लड़के को बुरा लगा। पर सोचा अभी गरमाना ठीक नहीं है। दुआर पर अगुआ सब आया है। मामला बिगड़ गया तो पता नहीं, फिर कब संजोग जुटे। थोड़ी देर में लड़का दालान में लड़कीवालों के सामने था। उसकी मां ने उसके माथे पर थोड़ा सा कोई गमकौआ तेल मुचड़ कर कंधी कर दिया था। अब वह गुड्डे की तरह लग रहा था। वह एक एक कर लड़की पक्ष के सारे लोगों के पैर छूता गया और अंत में किनारे जाकर सहमा सिकुड़ा बैठ गया।

लड़की के बाप ने पहले लड़के से उसका नाम, पता, पिता का नाम और गोत्र पूछ लिया और लड़के ने सब ठीक ठीक रटेरटाये ढंग से बता दिया, तो लड़की पक्ष वाले आश्वस्त हो गये और सब लड़की के मामा की ओर देखने लगे। पचमा मास्साब इधर अपने चेहरे और आंखों में वह भाव लिए बैठे थे जो कसाई के सामने जिबह होने के पहले बकरे की आंखों में और चेहरे पर होता है। वे मन ही मन हनुमान चालीसा पढ़ रहे थे कि काम बिगड़ न जाये। हे हनुमान जी मति मार दो मामा की फिर मनौती पूरी करेंगे तुम्हारी। सवा किलो लड्डू चढ़ायेंगे हो बजरंगबली। काम बना दो। और जब मामा बोला तो लगा कि बकरे पर जैसे गिरी कटार। मामा ने पूछा, “अच्छा बेटे पढ़े कितना हो?”

बेटा क्या बताता कि बीए पार्ट टू में दो बार फेल होने के बाद तो उसका मनोबल ही टूट गया था। उसके बाद न वह क्लास गया, न परीक्षा देने। परीक्षा फार्म भरने तक नहीं गया। यह तो बाप का प्रताप था कि उन्होंने न जाने किस तरह उसकी फाइल में बी.ए. फाइनल का सर्टिफिकेट ला घुसेड़ा था। इसलिए पचमा मास्साब ही बोले, “राम जी की दया से, बी.ए. ऑनर्स है अंग्रेजी से।”

मामा बोला, “क्या लड़का कम बोलता है?”

पचमा मास्साब तो भीतर से खौल रहे थे, “कम काहे बोलेंगा, राम जी की दया से?”

“तो लड़के को ही बोलने दीजिए न।” मामा पानी थाहने पर उतारू हो आया, “अच्छा बेटा, बी.ए. ऑनर्स किये हो अंग्रेजी से। जरा ट्रांसलेशन बनाओ तो, थोड़ा सड़क पर अड़क कर भड़क गया।” लड़का चुप। थोड़ा मायूस भी।

मामा को लगा कि उसने थाह पा ली है, “अच्छा बेटा, थोड़ा और आसान। यह बनाओ, गाड़ी आने आने को है।”

लड़के का इनसल्ट हो रहा था और मामा पर खिसिया रहा था। सार हो जाने दो शादी, तुम्हारी छौंड़ी को बतायेंगे ट्रांसलेशन। पचमा मास्साब भी यही सोच रहे थे। लड़की का मामा सोच रहा था कि काम बन गया। पचास हजार कम करा ही लेंगे। वह लड़के से बोला, “जाओ बेटा, थोड़ा और मेहनत करो अंग्रेजी में। अंग्रेजी बड़ा काम आती है जीवन में।” और मन में सोचा अब जो जी में आये करो। अपना काम तो बन ही गया बेटा। पचास हजार की मोहलत करा ही देंगे जीजा जी को।

लड़का बाहर आकर भुनभुनाया, “बिना ट्रांसलेशन किये तुम्हारी लौंडिया मेरे साथ सोयेगी नहीं क्या? सार कहीं के गेयान हग रहे हैं।” मन ही मन सोचा, “मास्टर” तो ऐसे ही मुझे नाक्कारा समझते हैं। ई सरवा सब आज अउर बेइज्जत करके रख दिया उनके सामने। का सोच रहा होगा मास्टर सहेबवा, यहीं न कि लईका लहेंडा निकल गया! पता नहीं शादी करने चले हैं मैया चो... वाले कि ट्रांसलेशन पढ़ाने?

लड़के के जाने के बाद पचमा मास्साब से लड़की का मामा बोला, “मास्साब लड़का तो पसंद है लेकिन दो लाख ज्यादा हो रहा है।”

पचमा मास्साब समझ गये थे कि यही बात होनी है पर वे जल्दी हार मानने वाले नहीं थे। उन्होंने प्रतिवाद किया, “पर राम जी की दया से बात तो दो लाख पर ही टूटी थी।”

“टूटी होगी पर लड़का तो अंग्रेजी में कमजोर है। कुछ नीचे उतरना पड़ेगा।”

“अंग्रेजी से क्या होता है? राम जी की दया से वह जेनरल नॉलेज में काबिल है। कम्पटीशन में तो जेनरले नॉलेज न चल रहा है।”

“नहीं अंग्रेजीओ चल रहा है। बिना अंग्रेजी के आज के जमाने कुछ चलने वाला है?”

“हम आप अंग्रेजी नहीं जान रहे हैं तो क्या राम जी की दया से काम नहीं चल रहा है। पैसा कम कराना है तो यही कहिए कि जुट नहीं रहा आपसे। लईका के सिकाइत मत कीजिए। वो तो आप नाता में पड़ रहे हैं तो आपके यहां शादी कर रहे हैं, नहीं तो अढ़ाई लाख तो गच से मिल जायेगा। कतना लोग दुआर कोड़े हुए है।”

लड़की के मामा को धीरे से चूटी काट कर लड़की का बाप बोला, “क्या है कि मास्साब हम लड़की वाले हैं। जीवन भर देंगे। हमारा काम देना ही तो है। तो कुछ कनसेसन करिये कि गरीब का उबार हो। हम आपकी सेवा में कोई शिकायत नहीं रहने देंगे।” यह बोलते बोलते लड़की के बाप ने अपने कंधे का गमछा उतार कर पचमा मास्साब के पैरों पर रख दिया।

पचमा मास्साब सब जानते थे यह नाटक। गमछा उठा कर लड़की के बाप के कंधे पर रख दिया और सीधे सीधे पूछा, “क्या चाहते हैं कनसेसन? राम जी की दया से मेरा भी खर्च है। महंगी भी आपसे छुपी नहीं है।”

लड़की का मामा बोला, “पचास हजार कम कीजिए।”

“नहीं करनी है शादी। रहने दीजिए।” पचमा मास्साब ने बयाना का दो हजार जेब से निकाल कर लड़की के बाप के मुंह पर दे मारा।



“लड़की का बाप नोट समेट कर फिर से अपने गमछे समेत पचमा मास्साब के चरणों में डालते हुए बोला, “ऐसे मत कहिए। उबारिए हमें।”

“तो राह रहन की बात कीजिए राम जी की दया से।”

लड़की का बाप बोला, “आपके बाबूजी जो कह देंगे। मान लेंगे हम। वे मेरे भी बाबूजी हैं।”

लड़की का बाप जानता था कि पचमा मास्साब के पिताजी शिवबचन सिंह पुराने आर्यसमाजी रहे हैं। वे तिलक दहेज के विरोधी हैं और पचमा मास्साब भी आखिर भरी महफिल में अपने बाप की बात कैसे न मानते? हालांकि पचमा मास्साब के पिताजी इसमें पड़ना नहीं चाहते थे। पर दोनों तरफ के अनुरोध के बाद उन्होंने तीस हजार कम कर दिया। पचमा मास्साब बस बीस हजार तक कम करना चाहते थे। वे मन ही मन अपने बाप को गालियां देते हुए लड़की पक्ष वालों से बोले, “तो राम जी की दया से, लड़का को एक सोना की सिकड़ी दीजियेगा।”

लड़की का मामा भी घाघ, “तो तिलक में स्टील का बर्तन देंगे। तांबा नहीं चढ़ा पायेंगे।”

पचमा मास्साब सोचे कि बात ज्यादा फेटेंगे तो टूट जायेगी। इसलिए उन्होंने कहा, “राम जी की दया से, आप देखिए जो मन में आये। बारात का स्वागत ठीक से होना चाहिए।”

**बेटे** की शादी तय कर दो दिन बाद स्कूल गये पचमा मास्साब तो उन्हें पता चला कि स्कूल में एक ‘लेडीज की पोस्टिंग’ हो गयी है। उन्होंने हेड सर को आंख मार कर कहा, “ठीक है शादी में लिया जायेंगे। राम जी की दया से, मानर पूजेगी।”

4

**तुझे क्या पड़ी थी नदी**

**चुरा लायी अंतरा**

**और कुछ हिस्से किस्से के (दिविक रमेश)**

संगीता मैडम अनुमंडलाधिकारी आफिस के बड़ा बाबू की बीवी थीं। उनकी यह पहली पोस्टिंग थी। नयी नौकरी थी और नयी उमर। जिस दिन वे स्कूल में ज्वाइन करने आयीं, गांव ज्वार में हल्ला मच गया। बस से जब वे बखेड़ापुर गांव में उतरीं, गांव में ‘लिलो लिलो’ शुरू हो गया। दरअसल बस स्टैण्ड पर कई फुरसतिया टाइप के गंजेड़ी दिन रात ‘बम भोले बम भोले’ करते रहते थे और गांजा पीते रहते थे। वे अपना पाकिट खर्च कुछ तो बस वालों से ही रंगदारी के नाम पर उमेठते थे, कुछ गांव में लगने वाले बाजार में सामान बेचने आये छोटे छोटे दुकानदारों से हफ्ता के नाम पर वसूलते थे। कुछ लोगों का कहना था कि वे रात में सड़कों पर छीनाछोरी भी करते थे।

जब इन लोगों ने बस से संगीता मैडम को उतरते देखा तो आपसे बाहर हो गये। उनसे अपना जोश संभाला न जा रहा था। संगीता मैडम ने जींस टॉप पहन रखा था और आंखों पर गोगल्स चढ़ा रखा था। गंजेड़ियों ने पहली बार यह शै देखी थी, देखते ही ‘जीव जीव जीव’ कह कर आहें भरने लगे। लगा कि सब पगला गये। संगीता मैडम ने माजरा समझा नहीं। स्कूल आयीं तो लड़के आंखें फाड़ फाड़ के देखे जा रहे हैं और लड़कियां शरमा रही हैं। पचमा मास्साब ने लम्बू जी की ओर देख कर एक आंख दबा ली। लम्बू जी ने मन ही मन कहा, पचमा मास्टरवा ई ‘बोलेरो’ छोड़ेगा नहीं। दोपहर ढलते ढलते हर घर के लफंगे स्कूल पर जुटने लगे और अपने जलवे बिखेरने लगे तो हेड सर ने संगीता मैडम को समझाया, “देखिये ई पिछड़ा इलाका है। इहां तनी संभर के चलना पड़ेगा, मैडम। सार लंठ के कमी नहीं है। एक से एक भकटाइल राकस इहां रहता है। बुरा मत मानियेगा ...कुछ मिस हैपिनिंग हो गया, तो हम साहेब को क्या मुंह दिखायेंगे?”

संगीता मैडम शरमा गयीं, “जी। ऐसा तो कुछ नहीं पहना है मैंने। वैसे मैं साड़ी भी ट्राई करूंगी। वैसे भी मुझे यहां कितना दिन रहना है गंवारों के बीच। मैं तो जल्द ही ट्रांसफर ले लूंगी।”

संगीता मैडम बताने लगीं कि उन्हें आज जगदीशपुर से यहां आते हुए कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ीं, “ओ क्या है कि रोड की कंडिशन इतनी बैड है कि मेरी कमर में पेन हो रही है। कहीं हाई, कहीं इतनी लो। एग्रीकल्चर फील्ड से बस रन कर रही है। हेयर में इतनी डस्ट घुस गयी है कि लगता है कल लीव लेनी पड़ेगी।”

पचमा मास्साब को अंग्रेजी नहीं आती थी। उनकी समझ में पता नहीं क्या आया, क्या नहीं। पर वे घोंचू की तरह चुप कैसे रहते। वे संगीता मैडम को सलाह देने लगे, “जी कमर में पेन लाने की क्या जरूरत है। एक लेडिज पर्स रखिए। राम जी की दया से, फील्ड यहां दिन भर प्लेने रहता है। आप कुछ सूटर ऊटर बीनना जानती हों तो कुर्सी पर बैठ कर बीनिये। ऐसा स्कूल आपको नहीं मिलेगा। राम जी की दया से, यहां बड़ा भाग्यवाला के पोस्टिंग होता है। अभागा था उगना जीउवा, गया तेलहंडा में। अब उसको बुझायेगा। लड़कों की चिन्ता मत करिये। यहां ई सब अपने भाग से पढ़ता लिखता है। न हो तो यहीं एक डेरा ले लीजिए। राम जी की दया से, कहिए तो खोजूं।”

संगीता मैडम ने कहा, “फील करूंगी, तो आपको बता दूंगी। हसबैंड से भी थोड़ी राय लेनी होगी।”

“देख लीजिए। राम जी की दया से, कोई दिक्कत नहीं आयेगी। हमारा इलाका है। हम मदद नहीं करेंगे तो आप भी कहियेगा, इधर कैसा आदमी है।” पचमा मास्साब ने उन्हें आश्वस्त करना चाहा।

हेड सर ने कहा, “पचमा जी इधर के धाकड़ आदमी हैं। थोड़ा क्या है कि एजुकेशन में इंटेरेस्ट उतना नहीं हैं। बाकी किसी काम में इनका जवाब नहीं।”

**अगले दिन संगीता मैडम सचमुच नहीं आयीं।**

हेड सर ने पचमा मास्साब को टहोका मारा, “का जी? मैडम को कहां डेरा दिलवा रहे हैं? देखियेगा मरखंडी गाय लगती है।”

**अगले दिन जब संगीता मैडम स्कूल आयीं तो उन्होंने साड़ी पहन रखी थी और उनके हाथ में एक झोला था जिसमें ऊन और सलाइयां थी।** प्रार्थना के बाद संगीता मैडम जाड़े की धूप का मजा लेते हुए बाहर बैठ कर स्वेटर बुनने के काम में तत्काल तन्मय हो गयीं। पचमा मास्साब के यहां गन्ने की पेराई हो रही थी, वे उधर ही निकल गये। कुछ काबिल किस्म के लड़कों ने पढ़ाने का काम संभाल लिया तो हेड सर ने भी हाजरी बही वगैरह देखदाख कर संगीता मैडम की ओर रुख किया। एक कुर्सी लेकर वह उनके बगल में ही जा जमे। संगीता मैडम बुनाई का काम समेटने लगीं तो हेड सर ने उनका संकोच दूर करते हुए कहा, “आरे नहीं... नहीं, आप तो बुनती ही रहिए। भीतर ठंड पड़ रही थी, तो सोचा कि आपके पास चल कर थोड़ा गरमा लूं। और बताइए, किसके लिए स्वेटर बुन रही हैं? ऊन तो बहुत अच्छा लग रहा है।” हेड सर ने अपने भीतर के देहाती संकोच को भरपूर धक्का देते हुए हाथ बढ़ा कर संगीता मैडम की गोद में पड़े ऊन को सहला लिया।

“जी, वैसे ही।”

“हेहेहे... एक बात पूछें मैडम, बुरा मत मानियेगा... सुना है कि आपके हसबैंड अमित बाबू...” दो ही दिन में हेड सर ने संगीता मैडम की पूरी जन्मकुंडली पता कर ली थी।

“जी, कहिए, क्या कहना चाहते हैं आप?” संगीता मैडम ने यह सवाल वैसे ही दाग दिया पर उनको भी कोई संशय नहीं था कि यह आदमी उनके बारे में सब कुछ नहीं जानता होगा। दरअसल

उनकी कहानी 'झामा' बन चुकी थी और इलाके भर के परिचित अपरिचित लोगों का पर्याप्त मनोरंजन कर रही थी।

पर हेड सर ने थोड़ी चालाकी से काम लिया, "कुछ नहीं, जाने दीजिए। यह स्वेटर किसके लिए बुन रही हैं?"

"क्या है कि मेरे कॉलेज के एक फ्रेंड हैं, उन्हें मैंने इस साल अपने हाथ से बुन कर स्वेटर देने का प्रॉमिस किया है।" संगीता मैडम ने सोचा, जब सब उजागर ही है तो छिपाना क्या? जीना तो इन्हीं लोगों के बीच है ना। सब खोल कर ही चलना चाहिए ताकि बाद में कोई दिक्कत न हो।

"क्या करते हैं आपके फ्रेंड? मैंने तो सोचा अमित बाबू के लिए..." हेड सर अर्जुन की तरह बस चिड़िया की आंख देख रहे थे।

"नहीं, वो क्या है कि अमित तो रेडिमेड ही पहनते हैं। वैसे भी उन्हें मेरे हाथ का कुछ अच्छा कहां लगता है? मेरे फ्रेंड इधर ही जेठवार में डॉक्टर हैं। जगदीशपुर में रहते हैं।" संगीता मैडम अपना पक्ष स्पष्ट करने लगीं।

"हां, हां अखिलेश बाबू की बात कर रही हैं? बड़े सज्जन आदमी हैं। अच्छा आप उनके साथ पढ़ी हैं। इस गांव में तो आते ही रहते हैं। यहां के लोग दवा दारू के लिए जेठवार ही तो जाते हैं।"

"..."

"अमित बाबू तो बड़े सज्जन मालूम पड़ते हैं। उन्होंने मुझसे कहा था कि मैडम का ध्यान रखियेगा। आपसे लगता है कि जमता नहीं है। मेरे ख्याल से आप लोगों की शादी का भी दो तीन साल ही हुआ होगा..." हेड सर प्रामाणिक जानकारी चाहते थे।

"क्या बताएं सर, तीन साल हुए शादी के और तेरह करम हो गये। मैं किसी से कुछ कहती नहीं, परसनल मैटर है। सर प्लीज आप किसी से कुछ कहियेगा नहीं... आपने छेड़ दिया तो..."

"अरे राम राम, हमारा यही काम रह गया है कि इधर की बात उधर... लगता है कि अमित बाबू के ऑफिसवा में भी कुछ सेटिंग है, नहीं?"

"सर, जब आप पूछ ही रहे हैं तो... उनके यहां एक रजनी नाम की लड़की है। अनुकम्पा के आधार पर उसकी पिछले साल नौकरी लगी है। इन्हीं लोगों ने उसका पेपर वेपर बनवाया था। अपनी मां के साथ ही जगदीशपुर में रहती है... बिचारी का जीवन बर्बाद कर रहे हैं अमित जी। वैसे वह भी कम 'बिच' नहीं है। दफ्तर के बाद पहली चाय अमित उसके घर ही पीते हैं। रोज उसको घर झोंप करते हैं। इधर तो अपने घर भी लाने लगे थे। मना करने पर वही कलह मचता। रोज रोज की कलह से मैंने भी सोचा सर्विस कर लूं। घर पर कम रहूंगी तो टंटा भी कम होगा।" संगीता मैडम की सारी पीड़ा घाव के मवाद की तरह बह निकली, "वे सारी लिमिट क्रॉस कर चुके हैं उस बेहूदी के साथ और एक बार उनकी अनुपस्थिति में अखिलेश जी मेरे घर आ गये तो उन्हें देखते ही वे आग बबूला हो गये। उनके सामने ही मुझे बुरा भला कहने लगे।"

"राम राम... ऐसा तो नहीं होना चाहिए। औरत मर्द को बराबरी का हक होना चाहिए। वह जमाना थोड़े है कि औरत को गाय बना कर जहां चाहियेगा, बांध के दुहियेगा और खुद सांड की तरह जिस खेत में मन करेगा मुंह घुसा दीजियेगा... राम राम..." हेड सर ने संगीता मैडम को इस तरह कुरेदा जिससे पूरी ताप बाहर निकले।

"नहीं, बात दूसरी है, कि सबकी अपनी डिग्निटी होती है कि नहीं? आप किसी को एक हद तक ही 'हर्ट' कर सकते हैं। औरत भी हाड़ मांस की बनी है और मर्द भी। उस दिन तो अखिलेश भी कुछ कह ही देते... मैंने ही इशारा कर दिया..."

“ऐसा थोड़े होता है, आप पढ़ी लिखी महिला हैं। उनको ख्याल तो रखना ही चाहिए।”

“नहीं उनको तो रजनी के सिवाय कुछ दिखता ही नहीं। उसका भी जीवन नासंगे। सर, बात बहुत आगे बढ़ चुकी है। शायद उसकी मां भी तैयार है। मैं ही राह का रोड़ा हूँ। मैं भी अखिलेश के बारे में सोच रही हूँ सीरियसली... कास्ट भी प्रॉब्लम नहीं है। यही है कि अपने यहां औरत की दोबारा शादी का विधान नहीं है। फिर भी देखेंगे। पानी सिर के ऊपर जा चुका है। बिना शादी के ही रह लेंगे...।” संगीता मैडम को हेड सर पर भरोसा हो गया था। वे टूटी हुई थीं। थोड़ी सी सहानुभूति का स्पर्श पाकर बिखरने लगीं।

“ओहो...हो... मर्द जात भी बड़ा चांडाल होता है जी। आपने बिल्कुल ठीक सोचा है। एक दिन उनको भूल का अहसास होगा, जब जवानी का पानी बह जायेगा। अभी लेने दीजिए मजा उनको। आप तो ले लीजिए यहीं किराया पर मकान। यहां की लड़कियां बड़ी सेवा करेंगी आपकी। बड़ा भला गांव है श्रीमती जी।”

“मैं भी यही सोच रही हूँ। उनको तो अच्छा ही लगेगा... राह का रोड़ा हटेगा।”

## 5

**काश!**

**सम्पूर्ण दुनिया**

**नग्न होती**

**तब**

**न नग्नता होती**

**न अश्लीलता (डी.एम. मिश्र)**

रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय, बखेड़ापुर में संगीता मैडम का मन रमने लगा था।

एक दिन स्कूल में संगीता मैडम को ‘दीर्घशंका’ लग गयी। पहले तो शरमाई, किससे कहें? कुछ देर तो थामे रहीं पर आखिर कब तक? स्कूल की छुट्टी तो चार बजे होती थी, पर अभी तो दो ही बज रहे थे। और चार बजे छुट्टी होते ही घर कैसे पहुंच जातीं? कुछ देर बड़ी उलझन में रहीं। कभी कक्षा में जायें, कभी बाहर। कभी बाहर, कभी कक्षा में। पचमा मास्साब बड़े गौर से उन्हें देख रहे हैं। उनसे नहीं रहा गया। पास जाकर बोले, “देख रहे हैं मैडम, कौनो परेशानी है? राम जी की दया से बताइए जो होगा हम देख लेंगे। अपना परिवार ही मानिये हमको।”

“नहीं... नहीं कोई प्रॉब्लम नहीं है।” संगीता मैडम बताएं तो क्या बताएं, कैसे बताएं? वे तो लगी थीं उपयुक्त प्रसाधन स्थल की खोज में जो उन्हें कहीं दिख नहीं रहा था।

इधर पचमा मास्साब हर हाल में मदद करने को बेचैन। मदद हो न हो कम से कम माजरा तो समझ में आये। दरअसल पचमा मास्साब कोई वैष्णव जन तो थे नहीं, जो पराई पीर को अपनी समझते, उन्हें तो दूसरे की समस्या का डिटेल्स जान कर अभूतपूर्व मजा लेने की बीमारी भर थी, बोले, “देखिए मैडम, राम जी की दया से आपको कौनो ना कौनो परेशानी तो हइए है। बताइए चाहे मत बताइए। आप असहीं गरम गाय (वे कहना चाहते थे कि गरम गाय की तरह क्यों इधर उधर आ जा रही हैं। पर लगा कुछ गलत बोल रहे हैं तो चुप हो गये।)”

संगीता मैडम को बुरा लगा। उनकी त्योंरियां चढ़ गयीं। अजब आदमी है। मैं कुछ भी करूं, इसे क्या। बोलने का शऊर नहीं, बड़े आये परेशानी पूछने वाले। उनकी चढ़ी हुई त्योंरियां देख पचमा मास्साब ने भी मदद का विचार त्याग दिया। संगीता मैडम क्लास में आयीं और साक्षी को लेकर बाहर गयीं। कुछ आगे चल कर उन्होंने अपनी समस्या से उसे अवगत कराया। साक्षी ने

उन्हें क्या कहा, पता नहीं। शायद साक्षी ने इस समस्या के सम्बंध में गांव की समस्या से उन्हें अवगत कराया होगा।

इस गांव के पुरुषों के लिए यह समस्या कोई समस्या नहीं थी। वे तो जब चाहते एक लोटा पानी लेकर खुले में खड़े खड़े धोती या लुंगी ऊपर उठा कर... 'बैठ' लेते। गांव में सुबह और शाम का नजारा अलग रोमांचक होता। गांव से खेतों की ओर लोटा लिए हुए लोगों की लाइन लग जाती। किसी खेत में कभी पांच दस लोग ऐसे बैठे मिलते जैसे अति विशालकाय मुर्गे दाना चुग रहे हों। और इस गांव की अधिसंख्य औरतें सूरज के निकलने के बहुत पहले ही या सूरज के डूबने के बाद ही अपनी इस समस्या से निबटती थीं। गांव से सटी एक गड़ही थी। गड़ही के पास एक झाड़ी थी। गड़ही और यह झाड़ी ही इस मामले में गांव की महिलाओं के देवी देवता थे। पर दिन में गांव की कोई औरत अपने इन इष्टों की ओर निकल जाये तो शर्तिया छिनाल। अगर बीच में आपात स्थिति पैदा होती होगी तो क्या करती होंगी गांव की औरतें? कौन जानता है?

लोग बताते हैं कि बहुत समय पहले की बात है। इस गांव के टेंगर पासवान विधायक हो गये। गरीब आदमी थे। वह जमाना दूसरा था। तब गोली बारूद और धन दौलत ही सब कुछ नहीं हुआ करता था। सत का जमाना था। टेंगर पासवान के पास एक जोड़ी धोती थी और एक कुरता था। दस गांवों में घूम घूम कर मालिक लोगों का आशीर्वाद ले लिए और विधायक हो गये। वे विधायक हो गये तो पटना में एक फ्लैट मिला जिसमें कायदे की एक 'लैट्रीन' भी थी। टेंगर पासवान लोटा लेकर पाखाना जानेवाले आदमी ठहरे, वे क्या जानें लैट्रीन वैट्रीन। उन्होंने समझा कोई विदेशी टाइप का चूल्हा है। चार लकड़ियां लाये और बोझ दीं उसी में। पर यह तो पुरानी बात है जब गांव में धोती बहुत कम थी और लोग गमछा लपेट कर ही काम चलाते थे। देह पर कुरते की जगह बहुत हुआ तो जनेऊ पहन लेते थे। नहीं तो वह भी नहीं। जनेऊ भी सबके बूते की न तब थी न अब है। खैर... कुछ सम्पन्न घरों में इधर सुलभ शौचालय या कोई वैकल्पिक टाइप के प्रबंध की कोशिशें शुरू हो चुकी थीं। साक्षी के यहां ऐसा ही कोई प्रबंध था। संगीता मैडम साक्षी के घर चली गयीं।

इधर पचमा मास्साब को उनका कौतूहल उन्हें और बुरी तरह तंग करने लगा था। कुछ देर लड़कों को पढ़ाते रहे, कुछ देर खैनी बनाते रहे पर कौतूहल ने जब तबाह कर दिया, तो वे हेड सर के पास गये, "देखियेगा सर, राम जी की दया से, मैडमवा चालू आयटम लगती है।"

हेड सर रजिस्टर में कुछ 'करामात' कर रहे थे। उन्हें पहले तो झुंझलाहट हुई। इसलिए थोड़ी झल्लाहट के साथ ही बोले, "आप भी न भाई, हद करते हैं। का चालू है? आ चालू होके क्या उखाड़ लेगी?"

"हेहेहे...राम जी की दया से गरमाते काहे हैं? कुछ पेल रहे थे क्या?"

हेड सर जानते थे। यह आदमी बगैर अपनी घुसाये, टलेगा नहीं। इसलिए रजिस्टर में कलम डाल कर बंद करते हुए बोले, "क्या हुआ?"

"अरे सब हो गया... राम जी की दया से। गयी मैडमवा...।"

"आरे कहां गयी भाई...? आपो न कभी कभी हद करते हैं। कहां गयी मैडमवा...?"

कहां गयी, नहीं जानते हैं पर राम जी की दया से गयी सक्छीयो के ले गयी संगे।"

"आरे कहां जायेगी? अभी आये चार दिन नहीं हुए..."

"अरे कहीं चली जायेगी... जवान है और जबरदस्त है राम जी की दया से। जानते नहीं हैं इस गांव के दो तिहाई ज्वान बंड' (अविवाहित प्रौढ़) हैं...। वैसे ऊ उधर गयी है... बाहर निकल लिए उधर...'" पचमा मास्साब ने जेठवार गांव की ओर उंगली उठायी।

"जेठवार की ओर...?"

‘हां हां... उधर गयी। गयी अखिलेसवा के होस्पिटल में...’

‘हम बर्दाश्त नहीं करेंगे। ई ठीक नहीं है कि स्कूल के टाइम में ऐय्यासी हो। हम शिकायत करेंगे अमित बाबू से। ई सचमुच ठीक औरत नहीं है।’

अमित बाबू से शिकायत करके क्या उखाड़ लीजिएगा? अमित बाबू कौन सरीफ के... हैं। राम जी की दया से... वह तो चाहिए न रहा है कि ई गाय कौनो दोसर खेत देख ले कि ओकरो जंजाल छूटे। नहीं तो शहर से अच्छा बड़ा बखेड़ेपुर था... राम जी की दया से आप ही न बता रहे थे...।’

‘नहीं नहीं ऐसे कैसे होगा। हम मीटिंग बटोर लेंगे... ऊपर तक मामला उठा देंगे...।’ हेड सर पता नहीं क्यों तैश में आ गये थे या तैश में आने का अभिनय कर रहे थे जो कि उनके व्यक्तित्व की खास उपलब्धि थी। उन्होंने सुभाषचंद्र बोस की तरह ऊंगली उठा कर ‘दिल्ली चलो’ वाली उनकी भंगिमा भी अख्तियार कर ली थी। और पचमा मास्साब उकड़ूँ होकर एक विदूषक की तरह उनका चेहरा घूर रहे थे। प्रथम दृष्टया दोनों काफी तनाव में दिखाई दे रहे थे। इसी बीच दो घटनाएं घटीं। एक तो यह कि एक उड़ता हुआ कौआ पचमा मास्साब के ठीक नाक पर वह काम कर गया जो काम करने संगीता मैडम साक्षी के घर गयी थीं। दूसरी यह कि उसी पल हेड सर को संगीता मैडम साक्षी के साथ हंसते मुस्कराते आती दिखीं। हेड सर के मुख से तत्क्षण निकला, “धत् साला...।”

पचमा मास्साब को समझ में नहीं आ रहा था कि ये औरत यूँ गयी, तो यूँ आयी क्यों? साली ने अपना तो कुछ नहीं गंवाया, उनके अनुमान का कबाड़ कर दिया। क्या सोचेगा हेडवा? पहले तो उन्होंने हाथ से नाक की सफाई की, फिर हाथ की कुस्ते से। फिर पूरी बेशर्मी से दांत निपोरते हुए बोले, “लगता है मैडम थोड़ा गांव घूमने गयी थीं, नहीं...?”

मैडम क्या बोलतीं? चुप रहीं। हेड सर जल्दी जल्दी थोड़ा आगे चल कर उकड़ूँ बैठ कर खुले मैदान में लघुशंका करने लगे।

स्कूल की छुट्टी हो गयी।

**उस** दिन के बाद दो तीन दिन छुट्टी पर रहीं संगीता मैडम। फिर अगले सप्ताह आर्यीं तो प्रार्थना के बाद हेड सर से पहली चर्चा अपने डेरे को लेकर चलाया उन्होंने। हेड सर रजिस्टर निकाल कर हिसाब किताब देखने लगे। पचमा मास्साब आये ही नहीं थे। एक अगुवई में गये थे। जिन लड़कों के नाजुक कंधों पर पढ़ाई का भार था, उन्हीं में से कुछ ने पढ़ाने का काम संभाल लिया। बाकी पढ़ने लगे या पढ़ने का अभिनय करने लगे। संगीता मैडम हेड सर के पास एक कुर्सी खींच कर बैठते हुए बोलीं, “सर आपको भी कितना बर्देन उठाना पड़ता है, नहीं? सारी जिम्मेदारी आप पर ही है न। यह पेपर तैयार करो, वह पेपर भेजो...”

हेड सर ने चेहरे पर सचमुच के काम का तनाव बिछाते हुए चश्मे के नीचे से अपनी आंखें संगीता मैडम के उन्नत उरोजों में धंसा दीं और बड़े इत्मीनान से सुनाने लगे, “क्या बताएं मैडम। ऊपर से नीचे तक एक जैसा सिस्टम है। सब जाहिल लोग भर गये हैं। किसी को कोई काम नहीं आता। अब्वल तो कोई करना ही नहीं चाहता। सारे पेपर तैयार कर लो और टेबुल के नीचे से माल पकड़ा दो, तो साले चिड़िया बैठा देंगे। कमीशन तो सबको चाहिए पर काम करेंगे हमारे लिंगास्वामी।”

संगीत मैडम समझ गयी थीं कि इस आदमी की बात में वे उलझीं कि गयीं। सारा दिन ले लेगा यह आदमी। बिना मतलब की दुनिया जहान की बेसिर पैर की कहानी सुना देगा। हर दो मिनट पर अपनी तारीफ करेगा और अपशब्दों के इस्तेमाल के बगैर तो कोई दो वाक्य भी नहीं बोल पायेगा।

उन्होंने बिना देर किये अपने मतलब की बात छेड़ दी, “सर, अपने स्कूल में एक बाथरूम तक नहीं है। स्कूल के बच्चों को स्कूल आवर में बहुत परेशानी होती है...”

हेड सर ने बीच में ही बात को पकड़ते हुए कहा, “आरे, नहीं नहीं। काहे के परेशानी गड़ही है न बहरवा। उधरे चले जाते हैं सब।”

संगीता मैडम ने प्रतिवाद किया, “नहीं सर, वो क्या है कि बड़ी क्लास की जो लड़कियां हैं।”

हेड सर तो जैसे ‘हर फिक्र को धुएं में उड़ाता चला गया’ वाले अंदाज में पूरी तरह तैयार थे, “अरे आप भी क्या बात करती हैं मैडम। आप इतना भी नहीं जानतीं, ये गांव गिरांव की लड़कियां हैं। इन्हें हर समस्या झेलनी आती है। कह सकती हैं कि इनके लिए कोई भी समस्या कोई समस्या नहीं है। ये पहले से सजग रहती हैं कि समस्या सामने पड़े ही नहीं। पड़ भी जाये तो ये समस्या के दाएं बाएं से कन्नी काट कर निकल लेती हैं। नहीं समझी?”

संगीता मैडम सचमुच नहीं समझीं। उनके जीवन में अब तक मिले तमाम लोगों में से यह पहला आदमी था जिसे वह सबसे ज्यादा हल्का समझती थीं, उसी ने ऐसी ऊंची बात कह दी कि वे बिल्कुल न समझ पायीं। उन्हें लगा कि उन्हें अपने मतलब भर की ही बात करनी चाहिए फिलहाल। उन्होंने साफ कहा, “सर मुझे प्रॉब्लम हो रही है।”

हेड सर पहले ही जान गये थे कि प्रॉब्लम स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियों को नहीं, इस पढ़ाने वाली को हो रही है। उन्होंने संगीता मैडम की बात सुनते ही कहा, “ओ। वहीं तो कहूं...। देखिए मैडम मैं लाख चाह कर भी स्कूल के शौचालय के लिए फंड नहीं ला सकता। बेटीयाचो... सब ऊपर से नीचे तक दलाल भरा है। पहले कमीशन देना पड़ेगा। बताइए कमीशन मैं घर से क्यों दूं? मैं अपना घर बनवाऊं कि स्कूल की ठेकेदारी करते घूमूं? यही काम रह गया है अब? ठीक है, गांव के लोगों को कोई दिक्कत नहीं है, तो ठीक है। साले लोग खादी के कुरता पजामा झार के ब्लॉक पर रंगबाजी करेंगे। स्कूल में एक ठो पैखाना बन जाये, यह नहीं चाहेंगे। मरने दीजिए...”

संगीता मैडम को लगा कि हेड सर इस तरह तो भाषण के मूड में आ जायेंगे। मैटर को और संक्षिप्त किया उन्होंने, “सर मैं चाहती हूं कि यहीं एक डेरा ले लूं तो सहूलियत रहेगी। जब तक यहां रहना है, तब तक कोई न कोई इंतजाम तो करना ही पड़ेगा, न।”

हेड सर ने संगीता मैडम की समस्या में दिलचस्पी ली, “हां ठीक है। देख लीजिए, आप कह रही थीं कि हसबैंड से पूछना पड़ेगा। पूछ लीजिए...।”

संगीता मैडम न जाने क्यों भावुक सी हो आयीं, “उन्हें क्या दिक्कत हो सकती है? मैं कहीं रहूं, जीऊं या मर जाऊं। मैं तो उनकी राह का रोड़ा बनी हुई हूं। वे तो चाहते ही हैं कि मैं उनकी दुनिया से खिसकूं। उन्हें फिक्र ही होती तो इस गांव में मरने के लिए वे आने देते...”

हेड सर ने आश्चर्य किया, “ठीक है। हम पचमा जी से बात करेंगे। वे इस मामले में काफी भले आदमी हैं। कोई न कोई इंतजाम आपका जल्दी हो जायेगा।”

अगले दिन हेड सर ने पचमा जी को किनारे ले जाकर सारी बात सुनाई तो उन्हें लगा कि उनको उनकी मांगी हुई मुराद मिल गयी है। उसके तीसरे दिन उन्होंने खोज दिया संगीता मैडम का डेरा। सीमा के घर में संगीता मैडम को एक फ्लैट मिल गया। उसके पापा सेना में थे। घर पर मां के अलावा बूढ़े दादा जी थे। दो मंजिला मकान था। ऊपर का फ्लैट खाली था। उसमें सारी व्यवस्थाएं थीं मसलन लैट्रिन, बाथरूम, किचन। गांव में ऐसे मकान एक दो ही थे। किराया भी कुछ खास नहीं। वह गांव का सभ्य घर था। बखेड़ापुर में ‘माया’ पत्रिका सिर्फ उन्हीं के यहां आती थी। सीमा की मां थोड़ा पढ़ी लिखी थी। गांव की दूसरी औरतों के साथ बैठ कर चुगली चर्चा में उनका मन नहीं लगता

था। उन्होंने कमरा इसलिए दे दिया था कि मन लगा रहेगा और मैडम घर में रहेंगी तो सीमा और उसके बड़े भाई रंजीत की पढ़ाई भी बेहतर ढंग से हो सकेगी।

## 6

**आस्था, व्याख्या, कारण,**

**लालच और राजनीति**

**पछतावा और गर्भे**

**इस तरह भी पहचाना जाता है**

**समय और षडयंत्र (नंद चतुर्वेदी)**

संगीता मैडम के जीवन की गाड़ी अब पटरी पर आने लगी थी। घर में पति के साथ जो रोज चिकचिक, झिक्झिक मचती थी, उससे उन्हें निजात मिल गयी थी। यहां का माहौल भी बहुत अच्छा था। सीमा की मां सहयोगी स्वभाव की महिला थीं। उसके दादा जी का स्वभाव भी अलग था। वे टेलीफोन विभाग के एसडीओ के पद से रिटायर हुए थे और धार्मिक स्वभाव के व्यक्ति थे। बिला वजह किसी के मामले में अपनी टांग नहीं अड़ाते थे। प्रायः प्रभु के भजन पूजा और योग आदि में लीन रहते थे। वे संगीता मैडम को संगीता बिटिया कह कर पुकारते और वे उन्हें चाचा जी कहतीं। सीमा की मां को संगीता मैडम दीदी कहतीं और सीमा और रंजीत को भी खूब स्नेह देतीं। उनकी पढ़ाई लिखाई का ध्यान रखतीं। गांवों का जीवन ही ऐसा होता है कि कोई वहां आकर रहने लगे तो अजनबी बन कर नहीं रह सकता। वह परिवार का अभिन्न सदस्य बन जाता है। गांव के सारे सुख दुख, आचार विचार, हवा पानी उसे अपना बना लेते हैं। संगीता मैडम भी इस गांव की होकर जीने लगीं।

इधर पचमा मास्साब अपने बेटे की शादी की तैयारी में लगे हुए थे। घर में दूसरा कोई जिम्मेदार आदमी था नहीं इसलिए उन्हें नाच बाजा से लेकर टेंट, भगोना, आलू परवल तक सब अकेले अपने पुरुषार्थ पर ही जुटाना था। बड़े बेटे की शादी कर रहे थे। वे चाहते नहीं थे कि कोई कल को कहे कि कोई कोर कसर रह गयी। वे जवार को दिखा देना चाहते थे कि उन्होंने भी क्या खूब तरीके से अपने बेटे की शादी की। चाहते थे कि लोग उनके परोजन की मिसाल दें। सालों साल तक भूल नहीं सकें। इसलिए अब कुछ दिन स्कूल के दर्शन के लिए समय निकालना उनके लिए कठिन हो गया।

उधर आरा शहर में हेड सर का नया मकान बन रहा था तो उन्हें वहां भी देखरेख के लिए मुस्तैद रहना था। उनकी अनुपस्थिति में कारीगर और मजदूर ठीक से काम नहीं करते थे। मैटेरियल्स अलग बर्बाद करते थे। वैसे उनका एक नौजवान बेरोजगार लड़का था जो यह काम करा सकता था पर उस पर हेड सर का तनिक भी यकीन नहीं था। उसके बारे में ज्यों ही कोई बात शुरू होती, वे दुखी होकर बस इतना ही कहते, “मारिए लफंडूस हो गया जी।” अगर सामने वाला फिर भी उनके लड़के के बारे में कुरेदने लगे तो बहुत दुख और थोड़े अभिमान से भर कर वे एक किस्सा सुनाते “का बताएं अपने बबुआ के हाल। उनका करम ही लिखा गया है रकटाइल से। ज्वान... दिमाग के तो बड़ा तेज है। बहुत बढ़िया नौकरी लगी थी सेना में। ट्रेनिंग चल रही थी। ट्रेनिंग में तो थोड़ा दुख तकलीफ होता ही है। पर हमारे बबुआ ठहरे माई के दुलरुआ। माई को चिट्ठी लिखी, मार रहा कपतनवा ए माई, निकल जाता है जनवा ए माई। बचा ले आपन ललनवा ए माई। ...बुला लिया माई ने दुलरुवा को। हम तो कुछ जाने भी नहीं जी...। औरत जात का करेजा छोटा होता है।”

बहरहाल, अब ऐसे में स्कूल संभालने की जिम्मेदारी संगीता मैडम के कंधों पर ही आन पड़ी थी। वैसे करना क्या था, संगीता मैडम सफलतापूर्वक स्कूल संभाल रही थीं। बच्चे खुद ही पढ़ते और



पढ़ाते भी। संगीता मैडम कभी स्वेटर बुनतीं। कभी 'गृहशोभा' लेकर पढ़तीं कि अदरक का आचार कैसे डालें, पति करे बेवफाई तो कहां होगी सुनवाई या प्रेम के कुछ हिट नुस्खे आदि। उनकी थोड़ी बहुत साहित्य में भी रुचि थी तो वे 'कादम्बिनी' भी लेती थीं। उसके तंत्र मंत्र विशेषांक को तो वे कभी मिस नहीं करती थीं। कैसे वश में करें पति को, यह उसी पत्रिका के किसी अंक में पढ़ा था। उसको आजमाया भी था। यह अलग बात है कि जब से उन्होंने टोटके शुरू किये उसी के बाद से पति का टांका कहीं और जा अटका था। यों संगीता मैडम के पति का अनुराग संगीता मैडम से भले खत्म हो गया था मगर संगीता मैडम का 'कादम्बिनी' से अनुराग अभी खत्म नहीं हुआ था। वे अभी भी इसे चाव से पढ़ती थीं। कभी कभी 'कादम्बिनी' में छपी किसी कविता को स्कूल के बच्चों के बीच वे स्वस्वर गाकर भी सुनाती थीं। वे कविता लिखने भी लगी थीं। पर उनकी कविताएं उनके लाख प्रयास के बावजूद अभी प्रकाशित होने का सौभाग्य हासिल नहीं कर सकी थीं और वाचिक परम्परा में अपना विस्तार तलाश रही थीं। संगीता मैडम को राजेन्द्र अवस्थी का 'काल चिन्तन' और सरोजिनी प्रीतम की क्षणिकाएं भी खूब भाती थीं। एक दिन वे स्कूल में 'काल चिन्तन' पढ़ने में निमग्न थीं। उन्हें ऐसा मजा आ रहा था कि लड़के जरा भी टोकाटोकी करते तो वे खीझ उठती थीं। शोरगुल से बचने के लिए उन्होंने अपनी कुर्सी उठायी और बाहर आम के पेड़ की छाया में जा बैठीं। अब वे निश्चिंत होकर पढ़ने लगीं... 'काल चिन्तन'। उधर लड़के भी तरह तरह से उधम मचाने लगे। जैसे श्रीकृष्ण अपने साथियों की मदद से ऊपर टंगे दही के मटके तक पहुंचे होंगे; लड़कों ने तय किया कि वैसे ही स्कूल के सबसे छोटे विद्यार्थी को कमरे की छप्पर छुलाई जाये। सबसे छोटी थी रागिनी। पहली में पढ़ती थी। उसे ही चांस मिला। सबसे नीचे लम्बू जी और बड़ी क्लास के लड़के, उसके ऊपर क्रमशः कम लम्बे और हल्के लड़के और सबसे ऊपर रागिनी। रागिनी ने फ्रॉक तो पहना था, पैण्ट नहीं। बाकी के कुछ लड़के नीचे से वही देख रहे थे। इसी बीच अचानक लड़कों के सामने सूट बूट पहने जिला शिक्षा अधीक्षक। ये नये नये जिला शिक्षा अधीक्षक जिले में आये थे। इसके पहले वाले अभी महीने भर पहले ही अपनी सुस्ती और रिश्वत कमाने की चुस्ती की प्रतिभा का कई वर्षों तक लगातार शानदार प्रदर्शन करते हुए सेवानिवृत्त हुए थे। इस नये जिला शिक्षा अधीक्षक के जिले में योगदान करते ही महकमे में हड़कम्प मच गया था। तरह तरह की डरावनी अफवाहें चर्चा में थीं मगर इस स्कूल के शिक्षकों को पूरा यकीन था कि इस स्कूल में अफवाहें या चर्चाएं ही पहुंच सकती हैं, खुद शिक्षा अधीक्षक कतई नहीं। दरअसल जिला मुख्यालय से बखेड़ापुर गांव को जोड़ने वाली सड़क कई सारी सड़क निर्माण योजनाओं की 'छांछ' पीकर भी तृप्त नहीं हो पायी थी। 'छांछ' इसलिए कि असली 'मलाई' पर तो विधायक जी, ठेकेदार जी और इंजीनियर साहब आदि का जन्मसिद्ध अधिकार था।

सड़क को खून की लत लग गयी थी। आयेदिन दुर्घटनाएं आम थीं और लोगों ने इस बात को गम्भीरता से लेना बंद कर दिया था। वे मान कर चल रहे थे कि जब भगवान यही चाह रहा है तो यही सही। इस सड़क पर गाड़ियां भगवान भरोसे चलती थीं। बरसात के मौसम में तो किसी के भी भरोसे नहीं चल सकती थीं पर यह तो अभी वसंत का मौसम था। पर यह न मौसम की मेहरबानी थी न सड़क की, न शिक्षा अधिकारी का बखेड़ापुर से प्रेम बल्कि यह तो कमाल था बखेड़ापुर के रूप चौधरी का।

रूप चौधरी इस इलाके के दलितों के बीच तेजी से लोकप्रिय होता हुआ नेता था। वह स्कूल में आकर कई बार शिक्षकों को चेता चुका था कि वे पढ़ाई लिखाई का माहौल बनायें स्कूल में, अराजकता खत्म करें मगर पूर्व जिला शिक्षा अधीक्षक के रहते इस स्कूल के शिक्षकों को भरपूर यकीन

था कि यह साला दलित उनका कुछ नहीं उखाड़ सकता। पियक्कड़ है साला। माल खेंचना चाहता है पर इहां न लगिहें राउर माया। वे मानते थे कि साले को कामधाम है नहीं, तो बहिनचो अपनी दलितई दिखाने स्कूल में आ जाता है।

स्कूल के सारे शिक्षक सवर्ण थे और इस गांव में सवर्णों का ही बाहुल्य था। और गांव वाले रिश्ते में इन मास्टरों के कुछ न कुछ लगते थे, इसलिए वह कुछ कर नहीं पाता था पर नये शिक्षा अधीक्षक के आते ही रूप चौधरी स्कूल की अराजकता का सारा कच्चाचिट्ठा लिखित रूप में उन्हें सौंप आया था। परिणाम था कि हकीकत अब शिक्षा अधीक्षक के सामने थी। शिक्षा अधीक्षक अपनी सरकारी जीप की जगह मोटरसाइकिल से आ धमके थे।

हो सकता है संगीता मैडम ने उन्हें आते देखा भी हो मगर यह जान कर कि होगा कोई किसी लड़के का गार्जियन वगैरह टाल गयी हों। बहरहाल शिक्षा अधीक्षक लड़कों के सामने थे और लड़के भला उन्हें क्या पहचानते, पर इतना तो लग ही रहा था कि यह कोई बाहर का आदमी है। शिक्षा अधीक्षक कुछ देर चुपचाप लड़कों को देखते रहे और लड़के जो नाटक कर रहे थे उसी के दृश्य में प्रीज होकर उन्हें देखते रहे। फिर बीच में से अचानक कूदा शंकर और गिरते पड़ते दो लड़के शिक्षा अधीक्षक पर भी गिर पड़े और इस आपात स्थिति से अधीक्षक महोदय भी जमीन से जा लगे।

लड़कों को सिखाया गया था कि बाहर से कोई नया आदमी क्लास में आये तो सभी लड़कों को एक साथ 'नमस्ते श्रीमान' कहना था। स्कूल के वातावरण में गूंजा, 'नमस्ते सिरीमान'। शिक्षा अधीक्षक अभी उठ नहीं पाये थे। उन्हें पता नहीं चला कि इस अचानक उठे शोर भरे पुकार के मायने क्या हैं पर उधर बाहर बैठी संगीता मैडम जान गयीं कि उनके 'बछड़ों' ने उन्हें पुकारा है। वे दौड़ती हुई कक्षा में दाखिल हुई तो लड़कों और शिक्षा अधीक्षक को जिस मुद्रा में देखा तो एक बार उनके ठहाके निकल पड़े और वे अनायास बोल पड़ीं, "वाऊ फनी मोर..."

धूल झाड़ते हुए उठ खड़े हुए थे शिक्षा अधीक्षक और संगीता मैडम की ओर मुखातिब होकर गुस्से में तमतमाते हुए बोले, "शटअप। आप टीचर हैं?"

"यस। बट, आप?"

"मैं कोई नहीं हूं। आप लोगों ने स्कूल को मजाक बना रखा है। एजुकेशन डिपार्टमेण्ट की आप लोगों जैसों ने ही ऐसीतैसी की है।" गुस्से में तमतमा रहे थे शिक्षा अधीक्षक।

संगीता मैडम को समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर माजरा क्या है। उन्होंने बेहद सहज तरीके से शिक्षा अधीक्षक को आश्वस्त करते हुए पूछा, "सो तो ठीक है। पर बाय द वे हू आर यू, सर?"

"मैं कौन हूं? मुझसे पूछती हैं, मैं कौन हूं? मैं मैं मैं म ए..."

"हां आप सर, आप। आप ही कौन हैं? आप तो ऐसे कह रहे हैं जैसे कि आप लाट साहब हों।" गुस्सा अब संगीता मैडम को भी आ रहा था।

"हां, हूं मैं लाट। मैं बता दूंगा कि मैं कौन हूं। बाकी के टीचर कहां हैं... क्या गत बना रखी है आप लोगों ने स्कूल की... लाइए रजिस्टर दिखाइए।"

"देखिए, बहुत आये लाट। हम किसी को अपना रजिस्टर नहीं दिखाते। वह सब हेड सर अपनी साइकिल के आगे लटका के रखते हैं। वे आयेंगे तो मिलेगा रजिस्टर।"

"तो आपने अपना अटेंडेंस कहां दर्ज किया... कहां हैं आपके हेड सर..."

"हम आये हैं... सामने दिख रहे हैं आपके। क्या यहीं काफी नहीं है? हम लोग अपना अटेंडेंस रोज नहीं दर्ज करते। हम रोज आने में यकीन करते हैं, पढ़ाने में भरोसा रखते हैं, रोज अटेंडेंस दर्ज करने में नहीं। अटेंडेंस तो कभी दर्ज कर लेंगे पर आप हैं कौन जो इतना हिसाब ले रहे हैं। यह

बखेड़ापुर है बखेड़ापुर ब...खे...ड़ा... समझे कि नहीं? बड़े बड़े कुत्तों की दुमें यहां सीधी हो जाती हैं।” संगीता मैडम अब तक बखेड़ापुर के रंग में पूरी तरह रंग चुकी थीं।

अब शिक्षा अधीक्षक को समझ में नहीं आ रहा था कि वह बोलें तो क्या बोलें और करें तो क्या करें? उन्हें तो एकबारगी अपना माथा पीट लेने का जी किया होगा। इधर सब लड़के व्यवस्थित होकर बैठ गये थे और दूसरे कमरे के लड़के इस कमरे के दरवाजे पर इस अचानक आये अजूबे को देखने के लिए जमा हो गये थे। उन्हें लग रहा था कोई ड्रामा है, मजमा है। शिक्षा अधीक्षक ने दरवाजे पर खड़े लड़कों को डपटते हुए कहा, “क्या ड्रामा हो रहा है?”

एक ठीठ लड़का बोला, ‘कू कूकू कू’ और पूरी बेशर्मी के साथ खड़ा रहा जीभ निकाल कर। एक लड़का अपनी नाक से बह रहे पानी को अपनी जीभ से चाटने लगा। शिक्षा अधीक्षक को लगा कि वह गलत जगह आ गया है। वह संगीता मैडम को धमकाता हुआ वापस चला गया। उसके जाने के बाद संगीता मैडम को थोड़ा डर लगा कि वह तो जिले का अफसर था और उसे पानी तक के लिए उन्होंने नहीं पूछा। उन्हें पता था कि जैसी सड़क थी, उस पर इतनी दूर चल कर कोई भी आदमी पगला कुत्ता बन जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। हालांकि आज जो घटा, उसको लेकर संगीता मैडम को झेंप भी हुई। आखिर पढ़ाई का सचमुच माखौल ही तो उड़ाया जा रहा है यहां। और यह गांव भी अजब है जहां बात बिना बात मुकदमेबाजी हो जाया करती है, बच्चों के चौपट होते भविष्य की परवाह किसी को रती भर नहीं थी। पर फिलहाल उन्हें बड़ी चिन्ता यह सता रही थी कि हेड सर को क्या बतायेंगी वे?

उस दिन लड़के जब अपने अपने घर लौटे तो इस घटना का आंखोंदेखा हाल अपनी अपनी समझ और अपनी अपनी प्रतिभा के अनुसार अपने अपने घरों में सुनाया। संगीता मैडम ने अपनी अलग समझ और प्रतिभा के अनुसार। कुल मिला कर जो बात थी वह नहीं रही। वह एक ऐसी बात बन गयी जिसे गांव अब अपने अपने ढंग से कम से कम महीने भर खुजा सकता था और उसका अपनी अपनी तरह से भरपुर लुत्फ उठा सकता था। गांव में सीधवा माने जानेवाले और मंदिर में पूजेरी का काम करने वाले मनेजर तिवारी ने कहा, “आरे होगा कोई पागल।”

ज्वाला सिंह मुखिया ने कहा, “कोई भी हो का कर लेगा मस्टरवन के, जब तक हम रिपोर्ट नहीं देंगे। असली ताकत तो हमारे हाथ में है न। हमसे न मिलना चाहिए था सार को...”

मुखिया के सामने बोल कर झगड़ा कौन मोलता। रूप चौधरी ने पीछे कहा, “जव्वले जइसा आदमी न नास दिया है जवार को। अपना परिवार भेज दिया शहर में और अपने बच्चों को पढ़ा रहा है डीएभी में। दुनिया जाये तेलहांडा में।”

चर्चाएं कुछ इसी शकल और इन्हीं संवादों में पहुंची पचमा मास्साब तक भी। पर उन्होंने सोचा, “देखा जायेगा। सार, न रहो तो बड़े काबिल लोग आते रहते हैं इसकुल में।”

7

**धूं धूं कर धधकती फैलती आग**

**भाइयों यहां तो पीने के पानी का अकाल है। (चंद्रकांत देवताले)**

आज पचमा मास्साब के बेटे की बारात जा रही थी और उन्होंने जिले की सबसे नामी पार्टी का लौंडा नाच किया था। बारात के पहले जितनी दौड़भाग करनी थी कर ली थी। आज उन्होंने अपने बहनोई को सारी जिम्मेदारी सौंप अपनी बैठक शामियाने में जमा ली। नाच शुरू होने के पहले अंग्रेजी दारु का पौआ भी चढ़ा लिया। अब सामने चार लौंडे थे।

नाच शुरू करने के पहले वे एक साथ देवी वंदना प्रस्तुत कर रहे थे, “रखो भवानी लाज, आज पड़ा है भारी काज। रखो दुर्गा देवी लाज। मां शारदे काली सब बाधा दूर करो। आज का गाना तुम मसहूर करो, मसहूर करो...। रखो मां भवानी...।”

पचमा मास्साब भावुक हो गये, “क्या रूप दिया है दर्द ने। और जीभ पर सरसती विराज रही हैं। राम जी की दया से, पहिला जनम में कौनो पाप किये होंगे कि लवंडा हुए...।”

लड़का का मामा बोला, “चुप ना रहिए पाहुन। आप भी न। दारू भीतर जाते मेहरारू हो जाते हैं। कमर देखिए कमर... माल टूटेगा?”

“चुप न रहो बहिनचो...। दीदीया का कमर न देखते हो। वो सब तुम्हारे दीदीया न लगेंगे।” पचमा मास्साब पर पौच्वा पूरी तरह चढ़ बैठा था।

उधर सामने की चौकी पर चोली में दो टमाटर लिए और घाघरा पहने लौंडा, ‘गवने की रात बीती जाइहो... सइयां हिले ना डोले।’ और शामियाने के लोग बेकाबू होने लगे, ‘जीव... जीव रे झरेला। चल चल धन लिखी तोरा मतारी के चलऽ’

‘जीव जीव...’

“चलऽ लिख दी टोपरा चलऽ चलऽ...।”

दूसरा लौंडा भी आ गया गोगल्स लगाये। जींस टॉप में। गाना बदल गया... ‘चल चल तोरा माई से कहतानी... चल चल... आग लागो राजा तोहरा जवानी में... जाके सुतलऽ खरीहानी में’ सीटी बजा उठा हर नचदेखवा...।

दो ताल नाच हुआ, फिर तीसरा लौंडा आया। वह उससे भी सेक्सी। गाना का बोल निकाला ‘गोली चली जी गोली चली आ राजा गोली चली’ और सचमुच गोली चली और जा लगी इस तीसरे लौंडे को। शोर करना छोड़ लोग भागने लगे। एक के ऊपर एक। एक बूढ़ा गिर गया और उसके ऊपर से छह जवान मुस्टंड गुजर गये। वह अधमरा हो गया।

थोड़ी दूर पर खड़ी थी पुलिस की जीप। नाच में बवाल न हो इसलिए उन्हें न्यूता देकर बुलाया गया था, पर वे तो गांजा पी रहे थे जीप के बगल में गमछा बिछा कर। हल्ला सुन कर वे जीप में बैठ गये और अपनी अपनी बंदूक संभाल ली जो यकीनन जरूरत पड़ती तो न छूटती, न उन्हें छोड़ना ही आता। इसलिए वे हनुमान चालीसा पढ़ने लगे... भूत प्रेत निकट नहीं आवे हनुमान जब नाव सुनावे।

दारोगा ने धीरे से सिपाहियों से पूछा, “आज जान तो नहीं जायेगी भाइयो।”

एक सिपाही ने भुनभुना कर कहा, “बहिनचो तुम पूड़ी जलेबी के लिए एक दिन हमारी जनानियों की मांग धुलवाओगे।”

लोग भाग गये तो पचमा मास्साब थर थर कांपते पहुंचे पुलिस की जीप के पास और हाथ जोड़ कर हकलाने लगे, “आ... आ... आप लोग कुछ करिये... राम जी की दया से...”

दारोगा जान गया कि गये लोग। इसलिए अकड़ कर बोला, “ऐ मास्टर हमसे पूछ के किये थे नाच? अब जाओगे भीतर। वहीं करना तुम समधी मिलन। अगर लवंडा मर गया होगा तो हम क्या हमारा बाप भी नहीं बचाएगा तुमको...।” वह गुस्से से तमतमा गया और पचमा मास्साब के गाल पर अपना तमाचा दे बैठा।

और मौका होता तो अपना गाल पोंछते हुए कड़क कर पचमा मास्साब कहते, “अपना औकात मत भूलिए दरोगा जी। राम जी की दया से... कौनो मास्टर से पढ़ कर बने होंगे दरोगा आप।” पर अभी तो उनकी सचमुच घिग्घी बंधी थी, बोलते कैसे?

दारोगा पचमा मास्साब का कालर पकड़ कर शामियाने की ओर चला। जैसे किसी रंगबाज ने

किसी पाकेटमार को पकड़ लिया हो। पीछे पीछे सिपाही भी पूरी अकड़ में जैसे कोई वीरता का अवार्ड लेने जा रहे हों। शामियाने में पचमा मास्साब के परिवार और बेहद करीबी रिश्ते के ही कुछ लोग बचे थे और लौंडे को घेरे हुए खड़े थे। गोली नहीं लगी थी उसे। गोली छूते हुए निकल गयी थी। वह बेहोश हो गया था। एक आदमी हवा कर रहा था गमछे से और एक आदमी पानी के छींटे मार रहा था उसके चेहरे पर। बाकी के लोग बाकी के लौंडों से सटने के लिए धक्कामुक्की कर रहे थे।

जिस चौकी पर नाच हो रहा था। उस पर नाच का जोकर चढ़ कर माइक के सामने भाषण देने लगा था। वह गुस्से में लगता था। वह कह रहा था, “सांस्क्रितिक महफील का जिनको सहूर नहीं उन समाजविरोधी ताकतों को नहीं आना जाना चाहिए कहीं। अभी नाच चलता तो सबको मजा आता। अंडा देती मुरगी को हलाल करने वालों को सोचना चाहिए कि मुरगी मर गयी तो फिर अंडा खाने का सवाद कइसे मिलेगा...।”

वह अपनी रौ में था कि पीछे से एक मरियल सिपाही ने दिया पूरी ताकत लगा कर उसके चूतड़ पर एक लात। वह संतुलन खोकर जमीन से जा लगा। लौंडे को जिन्दा पाकर दारोगा जी में देखने वाली तेजी से उत्साह का संचार हुआ। वे सबको हड़काने लगे। नाच पार्टी के मालिक ने पैर पकड़ लिया। लोग बीचबचाव करने लगे। बारात में कुछ छुटभइये नेता टाइप प्रभावी आदमी भी थे। दारोगा उन्हें पहचानता था। वे एक किनारे ले गये दारोगा को। वह पांच हजार की जिद कर रहा था। कुछ देर में नानुकुर के बाद दो हजार पर मान गया। पचमा मास्साब से दो हजार लेने के बाद वह कहने लगा, “मास्साब आप इज्जतदार आदमी हैं। जाइये, आगे से ध्यान रखियेगा। लंठ लबार को नहीं न लाना चाहिए बारात में। अब गोली आप ही के आदमी ने चलायी होगी। कोई मर जाता तो आप नहीं जानते हैं बहिनचो... कितना टेंसन हो जाता। आजकल जो नयेका एसीपी है, जानते नहीं हैं... नहीं जानते आप, नो... जमाना बदल गया है।”

दारोगा एक लौंडे को लेकर अपनी टीम के साथ जीप की ओर चला गया। नाच पार्टी दुख, करुणा और असहायता के अनेक भावों से घिरी अपना साजोसामान समेटने लगी।

नाच पार्टी का मालिक जब कुछ कहने गया पचमा मास्साब के पास तो उन्होंने उसे डपट दिया। सचमुच गोली पचमा मास्साब के साले ने ही चलायी थी। वे मन ही मन उस पर बहुत गरम थे। साले ने बैठे बिठाये दो हजार का नुकसान करवा दिया था। शादी जैसे तैसे निपटी।

**बारात** घर लौटी तो त्रिपुरारी पंडित ने धूमधाम से कराया कोहबर पूजन। कथा हुई सत्यनारायण भगवान की। त्रिपुरारी पंडित से बकझक हुई गांव की औरतों की। बकझक की दो बातें थीं। पंडित जब बारात के साथ लौटे तो गांव की लड़कियों ने गीत गाते गाते पंडित को चिढ़ाने के लिए उनके लिए भी गाली गाना शुरू कर दिया, ‘त्रिपुरारी पंडित के मउगी के संगे बबन नउवा के सुताई... आही रे माई...।’ दरअसल त्रिपुरारी पंडित ऐसे थे ही। बात बात पर बमकते थे। वे जितना बमकते थे, उतना ही बमकती थीं गांव की लड़कियां। वे गरम थे और जब गुस्से में अपनी दान दक्षिणा बांध रहे थे कि उन्हें याद आया कि पिछले ग्रहण पर वे स्नान के बाद छूकर निकाली गयी दक्षिणा नहीं ले जा सके थे। मांग कर दी। चिढ़ गयीं बहू देखने आयीं लड़कियां। कहीं ऐसे मौके पर ग्रहण की दक्षिणा मांगी जाती है।

‘जजमान क्या है कि जो आज आये हैं तो सोचते हैं कि लेते ही जायें ग्रहण वाला भी। ऐ जजमानी है कुछ छुआ हुआ...?’ त्रिपुरारी पंडित थे बहुत घाघ।

एक लड़की बोली, ‘ऐ त्रिपुरारी बाबा हमने भौजी को छू दिया था ग्रहण के दिन नहाने के बाद। ले जायेंगे? पर भौजी रोज पान खाती है, खिलाएंगे न?’

इतना सुनते ही गालियों की बाछौर शुरू कर दी उन्होंने। तभी आंगन में आ धमके पचमा मास्साब, “आप भी न बाबा, हद करते हैं। राम जी की दया से... का मार गाली गलौज मचाये हैं अंगना में।” सिटपिटा गये त्रिपुरारी बाबा। लड़कियां भी संभाल में आ गयीं।

**पचमा** मास्साब शादी के काम से फुर्सत पाये तो एजुकेशन डिपार्टमेंट से आये नोटिस पर उनका ध्यान गया। उन्होंने सोचा तो इन सबके पीछे उन्हें एक ही कारण नजर आया कि बेटे की शादी कुलच्छनी लड़की से हुई है। इसीलिए तो बारात में भी बवाल हो गया था। पचमा मास्साब ने सोचा कि थोड़ा टेंसन कम हो तो वे सत्यनारायण भगवान की एक कथा और कहवा लेंगे। देवता लोग भी घूस न दो तो नाराज होने लगते हैं। यही सब सोचते हुए स्कूल की ओर निकल गये कि जरा विस्तार से पता करें कि बात क्या है। उनकी शादी में न संगीता मैडम शामिल हुई थी न हेड सर। दरअसल शिक्षा अधीक्षक ने सबको तलब कर उन पर कार्रवाई कर दी थी। उसी से निपटने में वे शादी में जा नहीं पाये थे पर पचमा मास्साब को अदेशा हो रहा था कि कहीं हेडवा और मैडमवा मिल कर कोई साजिश तो नहीं कर दिये। प्रेम भाव होता तो शादी में आते नहीं ये लोग। कौनो बात के दुख मान लिया है का लोगों ने, राम जी की दया से...?

8

**जहां जहां तक आंखें जातीं**

**दिखता घना तिमिर दिन रात**

**देख देख के आंखें थक गयीं**

**दिखी न अंजुरी भर उजियास। (विजेन्द्र)**

स्कूल में संगीता मैडम से मिलते ही पचमा मास्साब ने शिकायत की, “लगता है कौनो गलती हो गयी है हमसे, कि ना? तबे न आप लोग नहीं आये सादी में, राम जी की दया से...?”

इतना सुनते ही कमरे से बाहर निकल कर हस्तक्षेप किया हेड सर ने, “क्या बात कर रहे हैं साब? यहां सबकी नौकरी जाने की ठेकान थी और आप ऐसे बतियाते हैं। ई न पूछ रहे हैं कइसे मामला सलटाये? ऊपर नीचे एक कर दिये। बड़ा तगड़ा कम्पलेन डाला था रूप चउधरिया ने। माल बहुत लगा। आप शादी में लगे थे तो छेड़ना ठीक नहीं लगा। लेटर तो मिल ही गया होगा। एक फार्मल जवाब बना दीजिए। सब काम हो गया है। दो दो हजार सबका खर्चा बैठा है। साला अफसर माल भी नहीं ले रहा था, नोकरिये लेने के चक्कर में पड़ गया लेकिन सम्हार लिए पर अब थोड़ा ध्यान देना पड़ेगा...”

पचमा मास्साब खुश तो हुए कि बिना भाग दौड़ किये काम बन गया। नहीं तो पता नहीं कितनों के आगे पीछे घूमना पड़ता। होता भी नहीं उनसे यह काम। जिसका मुंह नहीं देखना चाहिए उसको भी सलाम करना पड़ता। पर खर्च का नाम सुन उनको भीतर ही भीतर बहुत गुस्सा आया, “सार का मिला रूपवा के। बहिनचो के सिखाना पड़ेगा। बइठे बइठे दो दो हजार पर पानी फेरवा दिया न। सार के सब बढ़ल मन शांत होगा राम जी के दया से...।”

मामला तो सलट गया पर इस घटना के बाद रूप चौधरी न सिर्फ मास्टर्स की आंखों में चढ़ गया बल्कि गांव के सभी सवर्णों की आंखों की भी किरकिरी बन गया था। गांव का जातीय आधार पर धुवीकरण होने लगा।

ज्वाला सिंह मुखिया स्कूल को और शिक्षकों को अपने हिसाब से इस्तेमाल करते रहते थे। जैसे कभी बरसात में चारा रखने की जगह नहीं होती तो शिक्षकों की कृपा से स्कूल का कमरा उपलब्ध हो जाता। तरह तरह से काम आते थे मास्साब लोग। इसलिए रूप चौधरी का कारनामा उन्हें भी बहुत

बुरा लगा। गांव के दूसरे सवर्णों से भी शिक्षकों ने कोई न कोई नातेदारी जोड़ कर मधुर सम्बंध बना रखा था और उनके घरों में इनका आना जाना था, इसलिए रूप चौधरी के इस काम के बारे में गांव के जिस 'बड़े' ने सुना उसे बुरा लगा। शिक्षकों ने गांव में घूम घूम कर एक हवा भी बनायी। वैसे भी दलितों के हकों की बात करने को लेकर रूप चौधरी के प्रति गांव के सवर्णों के मन में एक खुन्नस थी। इन लोगों का मानना था कि उसने बनहार चरवाहों का मन बढ़ा रखा है।

**गांव** में दो टोले थे। गांव के दक्षिणी हिस्से में रेज (नान्ह) टोल और पूरब में बड़ टोल। रेज टोल में छोटी जाति वाले लोग थे। खासकर अनुसूचित जाति वाले और बड़ टोल में सवर्ण यानी भूमिहार, राजपूत, कायस्थ और चार घर ब्राह्मण। बड़ टोली में दो घर पिछड़ों के भी हैं। वे थोड़े सम्पन्न हैं पहले से ही। इसी में एक घर है बूधन तेली का। पिछड़े इन पिछड़ों को पिछड़ा मानते ही नहीं पर जबसे बूधन तेली के बेटे रूप चौधरी का जमाना आया है, वह बड़ टोली में लंका का विभीषण हो गया है। पिछड़े उसे अपना नेता मान रहे हैं। बाकी पिछड़ी जाति वाले और कुछ मुसलमान गांव से थोड़ा हट कर उत्तर की तरफ एक टोले में रहते थे जो कि इसी गांव का हिस्सा माना जाता था। उसे डीह कहा जाता था। गांव के पूरब उत्तर हिस्से में एक मठ था और पश्चिम में एक मस्जिद थी।

बड़ टोल में सबसे दबंग हैं ज्वाला सिंह और सबसे अबरा हैं लोटी राम। लोटी राम दरअसल पहले लोटन चौबे हुआ करते थे। बताते हैं कि गांव में इनके बाप का बहुत रसूख था। कोठी जैसा घर था और पूरा रेज टोल इनके घर में पकी पूड़ी जलेबी से अघाया रहता था। बाजार का पहला फल और पहली सब्जी इन्हीं के यहां आती थी। लोटन चौबे के बाप भुलेटन चौबे एक नम्बर के ऐय्याश। बाभन होके भी दारू मुर्गा रोज। खाते ही नहीं खिलाते भी थे। कमाते नहीं थे। उनके बाप ने उनके लिए बहुत कमाया था और वे उसका भरपूर उपभोग कर रहे थे। बहुत सुंदर बीवी थी भुलेटन बाबा की पर उनका मन नहीं भरता था उससे। सो रेज टोल में जो लड़की, बहू थोड़ी भड़कदार दिखती उसी पर रख देते थे हाथ और उससे निभाये जाते थे साथ। पता नहीं कितने का 'उद्धार' किया। जिस तरह अनाज के गोदाम में चूहे लग जाते हैं तो बड़ा से बड़ा गोदाम भी निपटा देते हैं, निपट रहा था घर भुलेटन बाबा का। उन्होंने मेहर की परवाह की न संतान की। बीवी ने भी खूब मनायी रंगरेलियां। पीकर रेज टोल में पड़े होते किसी के घर भूलेटन बाबा और उनके घर में उनकी बीवी अपने चरवाहा से दबवा रही होती अपने पैर। बेटी बिना ब्याह के ही पेट से रह गयी। बवाल मचा तो जहर खा ली। फिर भी बहुत खूब पीने जीने को बचा था लोटन बाबा को और उन्होंने भी कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। गांव के ही सरला चमार के मरने के बाद उसकी नौजवान गोरी बीवी को घर बैठा लिया, जिस पर गांव के कई बबुआनों की निगाह थी। अब आगे क्या होना था। लोग बताते हैं लोटन चौबे हो गये एक दिन लोटी राम। रेज टोले से हो गया उनका भोज भात और बड़ टोल के लोगों ने उन्हें 'कुजात' काढ़ दिया।

गांव में ज्वाला सिंह की तूती बोलती थी। धन जन दोनों में वे बीस थे। पैसा पावर सब था उनके पास। वे छह भाई थे। चार भाई गोविन्द सिंह, ज्वाला सिंह, जमुना सिंह और गंगा सिंह का भरा पूरा परिवार था। सबके चार चार, पांच पांच बेटे थे। बाकी दो भाई छेदी सिंह और छांगुर सिंह में छांगुर सिंह की शादी ही नहीं हुई थी। उनके अलग किस्से थे। लोग कहते थे कि छांगुर बाबू रेज टोली के चंदना दुसाध बो से लटपटाये हुए हैं। और छेदी सिंह गांव में 'निरमोही बालम' के नाम से प्रसिद्ध हैं। लोग कहते हैं कि गांजा दारू के डबल नशा में उन्हें न जाने एक दिन क्या सूझा, न जाने उन्होंने क्या देखा, न जाने उनके मन में क्या आया कि अपनी बीवी को काट डाला मछली की तरह

कई खंडों में। सारे भाइयों ने मिल कर बात संभाल ली। सारा क्रियाकर्म हो गया। गांव के बाहर किसी को भनक तक न लगी। छेदी सिंह अब दिन भर परिवार का बागीचा अगोरते हैं। पांच बीघा का आम का बागीचा है और उसी में दो कट्टा में तालाब। उस बागीचे के आम और मछली को जवार भर के पांच गांव खाकर डकारते हैं। वहीं डेरा डाले रहते हैं छेदी सिंह। लिट्टी मुर्गा पकता रहता है। और जवार के दस छंटे लंठ वहीं गोली बंदूक लिए 'बम बम' करते रहते हैं।

उन्हीं के दरवाजे पर पोस्ट ऑफिस। छांगुर सिंह पोस्टमास्टर। गांव के लोगों के मनीऑर्डर गायब होने लगे तो उसकी सुनवाई चंदना दुसाध बो के यहां ही होती। वही पोस्ट ऑफिस का कोर्ट था।

जमुना सिंह और गंगा सिंह खेती संभाले हैं। सौ बीघा खेत हैं। दरवाजे पर दो भैंस और एक जरसी गाय है। दूध दही की नदी बहती है। गोविन्द सिंह बस का हिसाब देखते हैं। दो बसें चलती हैं उनकी। बाजार से परिवार के लिए सौदा सुलुफ भी गोविन्द सिंह ही करते हैं। ज्वाला सिंह परिवार के मुखिया हैं। ब्लॉक के प्रमुख हैं। भाजपा के नेता हैं। गांव के भगवान हैं।

गांव में जब सीलिंग एक्ट का बवाल मचा तो दो सौ बीघा खेत पूरे परिवार को कागजी पर बांट दिया गया। पूरा परिवार हो गया गरीब। जब गरीबीरेखा के नीचे वालों का लाल कार्ड बनने लगा गरीबों के लिए तो ज्वाला सिंह के परिवार वाले भी बनवा लिए लाल कार्ड। परिवार में एक जीप है बर बाजार जाने के लिये बल्कि उसे तो ज्वाला सिंह ही हरदम नेतागिरी में लेकर निकले रहते हैं। दो ट्रैक्टर हैं खेती बारी के लिए और गांव में किसी की शादी विवाह लगे तो आने जाने के लिए या गांव में अचानक किसी की हालत सीरियस हो जाये तो अस्पताल पहुंचाने के लिए।

ज्वाला सिंह के परिवार के कुछ लड़के जिला मुख्यालय में, कुछ राज्य की राजधानी में पढ़ते हैं। कुछ लंठई करते हैं, कुछ नौकरी करते हैं। उनके परिवार का एक लड़का बीडीओ है, एक दारोगा है, एक आरा में डॉक्टर है और वहीं पर एक पत्रकार भी है। ज्वाला सिंह का एक बेटा विदेश चला गया इंजीनियर बन कर। उसका तो पता ही नहीं है। गांव में बाहर से आने वाली चिट्ठियों में छांगुर सिंह रोज उसकी चिट्ठी खोजते हैं, 'सरवा आजो नहीं भेजा। भेजेगा एक दिन।' वह छांगुर सिंह को बहुत मानता था।

गांव में कायस्थों की गिनती नहीं थी। उनसे पूछिये तो वे कहेंगे कि हम लोग तो वैसे ही जी रहे हैं जैसे बत्तीस दांतों के बीच जीभ जीती है पर उनके इस तंज पर चुटकी लेते हैं ज्वाला सिंह कि जीभ न असली स्वाद लेती है जी।

अव्वल तो कायस्थ लोग गांव के किसी भी मामले में पड़ते ही नहीं थे। पता नहीं क्यों? वे कलम दवात की पूजा करते थे। गांव में अलग ही थी उनकी पहचान। खेत साल के शुरू में ही बंदोबस्त कर कलमघिसाई के किसी न किसी काम में लगे रहते थे। गांव के लोग भीतर ही भीतर उनसे डरते थे, लाला जात कलम का बड़ा ताकतवर होता है बाबू। सवा लाख की कोठी में पसीना चुआ देता है। पर बाहर से डराते भी थे, सात ठो लाला मिल कर गया एक मूली उखाड़ने फिर भी नहीं उखाड़ पाया।

सतरोहन लाल के बारे में कहा जाता है कि एक बार वे अपनी मलकिनी को लेकर नदी नहाने गये। उनकी मलकिनी पर नहाते समय एक केंकड़े का दिल आ गया। उसने पकड़ लिया उन्हें। लगी चिल्लाने सतरोहन लाल बो। पर उनका चिल्लाना सुन सतरोहन लाल उन्हें बचाने की जगह सिर पर पैर रख कर भाग खड़े हुए। सतरोहन लाल अब हैं नहीं। गांव से खेत बघार बेच कर परिवार समेत जा बसे यूरोप। वे होते तो बताते कि यह बात झूठ है कि सच?

रूप चौधरी एक पिछड़ी जाति से आता था और न सिर्फ पिछड़ों और मुसलमानों के बीच बल्कि गांव के बहुसंख्यक दलितों यानी छोटी जाति वालों के बीच भी लोकप्रिय हो रहा था। रूप चौधरी थोड़ा



पढ़ा लिखा और तेजतर्रार नेता था। वह गांव के दलितों और पिछड़ों के बीच घूम घूम कर उनके बीच अधिकार और स्वाभिमान की अलख जगाता था और उनका ब्लॉक आदि से छोटामोटा काम करा दिया करता था। यही कारण था कि गांव के पिछड़ों दलितों में वह लोकप्रिय हो रहा था और ठीक यही कारण था कि गांव के सवर्णों की आंखों का कांटा भी बनता जा रहा था। वह सीपीआई (एमएल) का कार्यकर्ता था।

गांव में नौकरी पेशा कम थे या ज्यादातर छोटी छोटी नौकरी वाले थे। कोई ज्यादा पढ़ लिख कर अच्छी नौकरी पा लेता तो वह गांव को बाय बाय बोल कर निकल लेता था। छोटी जाति वाले या पिछड़े लोगों में से भी कुछ परिवारों की स्थिति नौकरी चाकरी की वजह से थोड़ी बेहतर हो गयी थी। ऐसे परिवार दोनों ही खेमों से एक तरह से बना कर चलते थे।

गांव में ज्यादातर लोगों की जीविका का मुख्य आधार खेती थी। सवर्णों के पास खेत थे और छोटी जातियों के पास अपनी मेहनत मजूरी का ही आसरा था इस तरह दोनों खेमों के लोग अपनी अपनी जरूरतों के लिए एक दूसरे पर आश्रित थे। एक के बगैर दूसरे का काम चलने वाला नहीं था। तो एक का दूसरे खेमे से लगाव और तनाव दोनों लगे ही रहते थे। मजदूरी के सवाल पर छोटे मोटे झगड़े होते रहते थे। वैसे पूरा गांव आपसी संकट में परस्पर एकजुटता, परोपकार और समरसता का परिचय देता था। पर भीतर भीतर भयंकर घृणा और भेदभाव भी व्याप्त था।

कोई पिछड़ा या दलित अच्छा कपड़ा पहन ले या वह बाबू लोगों के कहने पर काम करने से मना कर दे तो, उसका सारा 'आकी बाकी' पूरा हो जाना तय था।

जब से स्कूल वाली घटना घटी थी, माहौल भीतर भीतर थोड़ा उत्तेजक हो गया था। वैसे गांव के सब लोगों को गेहूं पिसाने के लिए रूप चौधरी का ही मुंह देखना था। गांव में गेहूं पीसने वाली मशीन सिर्फ रूप चौधरी ने ही लगा रखी थी। जीविका के लिए उसने गेहूं पीसने वाली मशीन के अलावा एक पान सिगरेट की गुमटी भी लगायी थी।

लोग बताते हैं कि वह धीरे धीरे अपनी आटा मिल को अपनी पार्टी के स्थानीय कार्यालय के तौर पर विकसित करने लगा था।

ज्वाला सिंह का बेटा मनोज सिंह जो ज्वार भर में एक नम्बर के लखैरा के रूप में प्रसिद्ध हो रहा था, रूप चौधरी की दुकान पर एक दिन पान खाने गया। उसने अपनी स्वाभाविक ठसक से रूप चौधरी से कहा, “रंगबाज रूपलाल जी जल्दी लगाओ तो दो ठो पान। एक खिला दो और एक बांध दो। और हां थोड़ा रंगबाजी कम किया करो।”

रूप चौधरी समझ गया कि मनोज सिंह स्कूल वाले मैटर की वजह से ही उससे नाराज है। मगर उसे मनोज सिंह का इस तरह बोलना अच्छा नहीं लगा। वह पूछ बैठा, “मनोज भाई, ऐसे काहे बतिया रहे हैं?”

“कैसे बतियाएं? ब्लॉक से डिस्टीक लेभल पर जाने लगे तो तुम्हीं ढेर चाल्हाक हो गये। सबको मस्टरवन मत समझना...।”

“हम कहां कुछ कह रहे हैं? सब तो आप ही कह रहे हैं।”

“कह नहीं रहे हैं। जबान मत लड़ाओ, बता रहे हैं। तुम्हारे बाप का लिहाज करते हैं, नहीं तो तुमसे डर नहीं लगा है। सब हिसाबे हो जाता...”

रूप चौधरी को गुस्सा बहुत आया पर वह सोचा कि ऐसे बदमाशों से बेकार का मुंह लगने से कोई फायदा नहीं है। वह गांव में बदली हुई हवा से भी थोड़ा सचेत था।

**रूप चौधरी** के बाप का नाम था बुधन तेली। उसने अपनी उमर गांव जवार के बड़ी जाति वालों की संगत में ही गुजारी थी। चौहत्तर के आंदोलन में जब गांव जवार के कई सवर्ण लोग जेलयात्रा कर रहे थे तो वह भी उनकी सेवा सुश्रुशा के लिए हमराही बन गया था। बातचीत और व्यावहारिक जीवन में वह बड़ा कुशल समझा जाता था। लोग बताते हैं कि बगल गांव के पचमा मास्साब के पिता शिवबचन सिंह का तो वह लंगोटिया यार रहा है। अभी भी अक्सर वह अपनी लाठी लेकर उनके साथ ही अधिक निकला रहता है। कभी इस गांव में सत्संग हो रहा है, कभी उस गांव में रामायण गोष्ठी हो रही है। दोनों की जोड़ी थी राम हनुमान की जोड़ी।

गांव जवार के लोग दोनों की जवानी के दिनों की कई दिलचस्प गप्पें सुनाते हैं। एक बार शिवबचन सिंह के पीछे पड़ गया बुधन तेली, “मलिकार। चला जाय सलिमा देखने।”

शिवबचन सिंह ठहरे आर्यसमाजी आदमी। उन्हें लगा बुधन तेलिया मजाक कर रहा है। पहले तो उन्होंने उसे फटकारा पर जब वह भी अपनी जिद पर अडिग हो गया तो तैयार हो गये, “चल ससुर सलिमे कौन ‘जिनिस’ चीज है। चल ऊ भी देख के ‘गदहजनम’ छुड़ा लिया जाये।”

दोनों पैदल ही बोलते बतियाते निकल लिए। पास में ही कस्बेनुमा शहर था पीरो जहां नये नये बने सिनेमा हाल में चल रहा था भोजपुरी सिनेमा ‘भऊजी के नैहर’। जब वे शहर में घुसने लगे तो सबसे पहले पड़ता था रेलवे लाइन। इस लाइन को लांघ कर ही शहर में दाखिल होते थे लोग। इस लाइन पर पहुंचे शिवबचन सिंह और बुधन तेली तो रेलवे फाटक बंद था। शिवबचन सिंह ने पहली बार देखा था ये करिश्मा। दरअसल वे पहली बार होश में गांव के सीमाने से बाहर निकले थे। अचरज में पड़ कर पूछा बुधन तेली से, “का रे बुधना। ई तो रस्तवे बंद है। कौनो बात है का?”

“ना मलिकार। ट्रेन पास करने वाली है, इसीलिए फाटक गिरा हुआ है। जैसे ही ट्रेन पास करेगी, फाटक उठ जायेगा, आ रास्ता साफ हो जायेगा। जानवर चाहे आदमी के रखवारी के लिए है ई।”

रेलवे के उस फाटक के प्रति आस्था उमड़ आयी शिवबचन सिंह की। दोनों हाथ जोड़ लिए और पोल पर माथा सटाते हुए बोले, “धन हो फाटक महाराज, धन। आप कैसे बूझ जाते हैं कि गाड़ी आने वाली है? आप न होते तो कितना लोग कट जाता रेल से हो बिसकरमा भगवान।”

बुधन तेली समझ नहीं पाया शिवबचन सिंह की उस आस्था को। मन ही मन भुनभुनाया, “मलिकारो नू कभी कभी बड़ नवटंकी करते हैं।”

जब टिकट लेकर दोनों सिनेमा हाल में घुसे तो अंधेरा देख कर बिदक गये शिवबचन सिंह, “कारे बुधना, कहंवा फंसा दिया मरदे? ई अन्हरिया में कहंवा ले आये हमको? सरवा फंसा दिया तुमने। अइसा सिलेमा के मां की...”

बहुत समझाने के बाद बैठे पर सिनेमा के शुरू में ही पर्दे पर नाग आकर लगा अपना जलवा दिखाने तो फिर बमक गये। कहा, “देख साला सिलेमा देख। बहिनचो जब नाग जान ले लेगा तो सब चला जायेगा रे...।”

कितना भी पकड़ा समझाया बुधन तेली ने पर बिना सिनेमा देखे उसको रास्ते भर गरियाते गांव लौट आये शिवबचन सिंह। बाद में पता नहीं उनका ज्ञान कैसे बढ़ा या क्या हुआ... उनके सामने जब इस घटना की चर्चा कोई चलाता, तो उसे दो गाली देकर वे लजा से जाते।

रूप चौधरी को लेकर गांव के बबुआन लोग कोई ठेन पसारते तो जाकर उनका पांव पकड़ लेते बुधन तेली। और अपने बेटे को धाराप्रवाह गालियां देते हुए कहते, “मलिकार अब कितना दिन रह गया मेरी जिनगी का। सब तो गुजर गया आप ही लोग की संगत में। कुछ दिन और मलिकार। आप ही लोग का दिया खाते हैं और आप ही लोग के आशीर्वाद से मेरा परिवार है।”

मलिकार लोगों के अहम पर जो चोट पहुंचायी होती थी रूप चौधरी ने, बुधन तेली की बातें उस पर दवा सी असर कर जातीं। और जख्म बढ़ नहीं पाता। निबहता चला जा रहा था गांव।

9

**उम्र के साथ बढ़ रहे हैं झोले और टूट रही है बद्धि  
में घर की पगड़ी हूँ, कहीं खुल न जाये ससुरी। (वीरेन्द्र सारंग)**

रूप चौधरी कभी कभी व्यंग्य में कहता था कि इन लफंडूसों के गांव के पास गर्व करने लायक तीन ही चीजें हैं। अधीन-सिपाही, बजाड़ी पागल और लंगटू राम।

बखेड़ापुर गांव के लोग कहीं भी और कभी भी अपने गर्व को प्रकट करने के लिए या किसी भी तरह की ऊब की ऐसी तैसी करने के लिए तीन कहानियां सुनाते थे या तीन में से कोई एक या दो। गांव वालों के पास गर्व या मनोरंजन (जो कह लीजिए, मौके के हिसाब से) की कुल कहानियां तीन ही थीं। जिसमें गांव वाले गजब का प्राण फूंक कर अपनी अपनी प्रतिभा और जरूरत के हिसाब से अभूतपूर्व पाठ प्रस्तुत करने की कोशिश करते थे। यहां उन कहानियों का निचोड़ सुनी सुनाई के आधार पर बताया जा रहा है :

अधीन-सिपाही बखेड़ापुर गांव के एक जमाने के माने हुए चोर और छटे हुए बदमाश थे। दोनों जुड़वा भाई थे। जब चाहते जहां चाहते सेंध लगा लेते। उनके नाम से इलाका थर्राता था। इलाके भर में जो मवेशियों की चोरी होती तो मुकदमे उनके पास ही पहुंचते और पीड़ित से कुछ ले लिवा के चुटकी बजाते वे माल बरामद करवा देते। और क्या मजाल कि पुलिस तक उनकी कोई शिकायत पहुंचे। और पुलिस की क्या मजाल जो उन्हें पकड़ ले। कहते हैं, एक बार पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया तो उन्होंने अपनी अपनी जेब से एक मुट्ठी धूल जिसमें मिर्ची के बुरादे मिले थे, निकाली और पुलिस की आंखों में झोंकते हुए एकदम सामने से नौ दो ग्यारह हो गये। इलाके में उनका पूरा सम्मान था, उनके नाम का डंका बजता था, उनके पेशाब से चिराग जलते थे जैसा कि लोग बताते हैं। एक बार की बात है कि वे दोनों बगल के एक गांव नगरी में रात के दो बजे डाका डाल रहे थे कि थाना में नये नये आये दारोगा को किसी ने इत्तिला कर दी और वह एक चुस्त टीम के साथ आ पहुंचा। अधीन और सिपाही एक छप्पर पर खड़े होकर पुलिस के साथ घंटे भर तक गोलीबारी करते रहे और गांव वालों को गरज गरज कर गालियां देते रहे। गालियों के अलावा वे गांव वालों को धमकियां भी दिये जाते थे कि आज अगर वे बच गये तो गांव के 'बीज' तक को भून कर रख देंगे। तभी एक साथ दोनों की एक एक टांग में पुलिस की एक एक गोली लगी और वे दोनों एक एक छप्पर से लुढ़क कर आंगन में एक जगह गिर गये। ऐसे जैसे कि दो बच्चे आपस में गुत्थमगुत्था होकर सो रहे हों। जब तक पुलिस उन लोगों तक पहुंचती, गांव का बच्चा बच्चा आंगन में जुट कर लाठियों से पीट पीट कर उन दोनों को मार डाला। बखेड़ापुर वाले इस कहानी को पूरी कर नगरी गांव के नाम पर एक बार थूक देते हैं।

**अगली** कहानी के नायक हैं बजाड़ी पागल। वे अभी जिन्दा हैं। पर उनके बारे में जो कहानी है उसकी सफाई देने की स्थिति में वे नहीं हैं क्योंकि वे पागल हैं। उनके बारे में कहानी यह है कि पागल होने के पहले गांव की जिस गली से वे गुजर जाते थे, उसमें विदेशी सेण्ट की मह मह गंध इस कदर फैल जाती थी कि गांव की बहुएं (बेटियां नहीं) कामोत्तेजना से चरमराने लगती थीं। हालांकि अब वे जिस गली से गुजर जाते हैं उसमें नाली की कीचड़ जैसी गंध फैल जाती है पर गांव की बहुओं पर अब उसका कैसा असर पड़ता है, इस बारे में कोई 'कहानी' अभी नहीं बनी है। तो बजाड़ी पागल के बारे

में जो कहानी है, उसमें वे भारतीय सेना के राजपूत रेजिमेण्ट के बांके अफसर हैं और उनकी जैसी ख्याति है उसके अनुकूल ही उनके जैसी ही छह फीट की हेमामालिनी जैसी उनकी बीवी है। जैसा कि स्वाभाविक है बजाड़ी को अपने देश से ज्यादा अपनी बीवी से प्यार है। चीन और भारत से भिड़ंत हो गयी थी। बार्डर पर सन सन गोलियां चल रही थीं और बजाड़ी अपनी जान से ज्यादा बीवी की फिक्र में बेचैन हो रहे थे। उन्हें अपने शहीद होने का कम अपनी बीवी की कामोत्तेजना की आशंका घेरे हुई थी। मौका देखा और अच्छी शराब की चार पांच बोतलों के साथ वे गांव भाग आये। बार्डर से जो भागे तो गांव के सिवान पर ही सांस लिया। और जब सांस लिया तभी एक सांस में एक बोतल चढ़ा गये। जब बोतल चढ़ा कर घर पहुंचे तो उनकी हेमामालिनी जैसी बीवी के संग उनके ही लक्ष्मण जैसे भाई शिवरतन सोये हुए थे। बजाड़ी ने पहले तो भाई की जम कर कूट्टम कुटायी की, फिर बीवी की। उसके बाद उस्तरा उठा कर बीवी के सारे बाल काट डाले जिस पर वह कभी अपनी जान छिड़कते थे। उसके बाद बीवी को घर से भगा दिया और खुद पागल हो गये। अब वे घर से खा पीकर दिन भर गलियों में अश्लील बतरस करते दिन बिता देते हैं। गांव के मनोरंजनहीन संसार में मनोरंजन के अद्भुत साधन की तरह वे उपयोगी हैं। जम कर गांजा पी लेने के बाद बात बात पर उनका तकियाकलाम है 'इतनी किसी की औकात नहीं'। इस पंक्ति को बोलते हुए हर शब्द पर अच्छी खासी ताकत और समय कुर्बान करते हैं। गांव वाले न जाने किस लिहाज में उनके अतीत को अपने हिसाब से गढ़ कर उनका सम्मान करते हैं। और इस पर गर्व करते हैं।

**लंगटू राम** भी गांव की जिन्दा कहानी हैं। वे जिन्दा हैं और ज्वाला सिंह के बनिहार हैं। पर वे परमानेण्ट बनिहारी नहीं करते। लगन के दिन में जलालु लौंडा नाच पार्टी के मुख्य नचनिया का काम करते हैं। मस्तमौला दिखने वाले लंगटू राम जब लौंडे का भेस धरते हैं तो उनकी काया में एक दूसरी ही माया उतर आती है, जो ठुमके मारते हैं कि ज्वाला सिंह साल भर उनके जादू से निकल नहीं पाते। लंगटू राम भले नाच पार्टी के लौंडा हैं पर गांव वालों से पूछेंगे तो वे कहेंगे, नहीं लंगटू राम अब्वल तो ज्वाला सिंह के लौंडा हैं। ज्वाला सिंह बहुत काम नहीं लेते लंगटू से, 'परसनल सेवा' लेते हैं। समझ रहे हैं न आप? बहुत मानते हैं ज्वाला सिंह लंगटू राम को। गांव में जब कोई आदमी किसी आदमी को प्रेम करने लगता है तो उसे वह अधिकार से अपना 'लंगटू राम' कहता है। लंगटू राम को बखेड़ापुर की बड़ टोली की औरतें बहुत मानती हैं। जिसके घर में 'मरद मानुश' कभी न रहे और लंगटू राम पहुंच गये, तो उन्हें औरतों के आग्रह पर अपने गमछे से घूंघट कर एक ताल नाचना पड़ता है। गमछे से घूंघट कर लंगटू जब एक हाथ कमर पर और दूसरा हाथ माथे पर रख कर कमर लचकाते हैं तो उनके मुंह से यह गाना फूट पड़ता है रेंगे रे सखी मोरे अंग अंग पानी... जोबना के भार भइली कमर कमानी...रेंगे रे सखी...।

घर की जवान औरतों के मुंह से सिसकारी फूटने लगती है।

## 10

**एक समय होता है विचारणा का और एक समय होता है ठिठक कर सोचने का  
एक समय होता है उन्नत बनने का और एक समय पतन का भी  
एक समय उन्नति का और एक अवनति का (ताओ तेह चिङ्ग)**

हर साल की तरह इस साल भी रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय, बखेड़ापुर की वार्षिक परीक्षा गांव भर के लिए किसी उत्सव या विशेष अवसर की तरह से आयी थी। खासकर जिनके बच्चे आठवीं में थे, उनके लिए तो यह मौका 'करो या मरो' की तर्ज पर था। यह एक ऐसा निर्णायक मोड़ था जहां से

जीवन के रास्ते मुड़ते थे। जिसकी जैसी औकात। प्रतिभा तो क्या निर्णायक होती, आर्थिक हैसियत ही सब कुछ तय करने वाली थी यहां। फिर भी जो बच्चे आठवीं में थे उनके बापों की आर्थिक और सामाजिक हैसियत चाहे जैसी हो पर उन्हें 'मिर्ची' लगी हुई थी। बिना पढ़े या खेल खाकर आठवीं पास का वह प्रमाणपत्र जो रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय से लड़कों, खासकर लड़कियों को मिलने वाला था, उसका उनके जीवन में बड़ा व्यावहारिक मोल था। उस प्रमाणपत्र के बूते ही इस इलाके में लड़कियों को मनचाहे 'घर वर' मिल सकते थे। जिस लड़की को वह प्रमाणपत्र नहीं मिलता था, उसके बाप को उसकी 'शादी के मामले में इतनी जगह शर्मिन्दगी और इतनी तरह की आर्थिक और सामाजिक परेशानियां उठानी पड़ती थीं कि वह आत्महत्या जैसे अंतिम विकल्प पर भी एक बार विचार करने को बाध्य हो जाता था। आठवीं का प्रमाणपत्र सामाजिक हैसियत का पर्याय था, वह न हो तो संतान गाय, भैंस या घोड़े गदहे के जने की तरह ही थी। यह अनायास नहीं था कि उस पूरे इलाके में रामदुलारो मध्य विद्यालय की पढ़ाई को 'विवाह पढ़ाई' कहा जाता था। 'पढ़ेगा का, बिआह पढ़ रहा है।'

जवार भर में यह लहर एक फैशन या पैशन की तरह बढ़ती चली जा रही थी कि बेटे या बेटी को अनपढ़ से नहीं ब्याहना है। जिसका दामाद या बहू अनपढ़ हो, अनपढ़ होने से मतलब जिसके पास कम से कम आठवीं पास का भी प्रमाणपत्र न हो उसे सब हिकारत से देखते और जिसे 'क' से 'कबूतर' नहीं आता हो वह भी उसकी हंसी उड़ाता था। दामाद को भले अपना नाम रमेसर लिखने में र मे स र पर आठ बार अटकना पड़े पर सूट के ऊपरी जेब में बिना कलम खोंसे अगर वह विवाह के मंडप में चला जाये तो गांव भर की 'गारी गानेवाली' औरतों के ओंठ टेढ़े हो जाने की पक्की गारंटी थी। 'हमार पढ़ल लिखल धीया के घसकटा अइले रे...। और धीया रमेसर को रमेसर पढ़ दें तो पद्मश्री दे दो। शर्तिया वे रामइसर पढ़ेंगी। पढ़ेंगी क्या बिना पढ़े बूझ जायेंगी, पर उस कलाई पर जिसका जोर हमेशा गोबर पाथने या घर लीपने या बर्तन मांजने जैसे कामों में लगाने के लिए इस्तेमाल हुआ होगा, बिना घड़ी बांधें ससुराल चली जायें तो सास और ननद को काला ज्वर तत्काल पटक दे।

और घड़ी बांधने या सूट में कलम खोंसने की हैसियत देता था रामदुलारो मध्य विद्यालय बखेड़ापुर का आठवीं पास का प्रमाणपत्र।

**वार्षिक** परीक्षा का प्रोग्राम घोषित हो चुका है। मास्टर साब लोगों ने लड़कों को चेता दिया है कि इस बार चोरी नहीं होगी। स्कूल की बदनामी बहुत हो रही है। ऊपर से आदेश आया है। सब लड़कों को मेहनत से इम्तिहान देना होगा। पर लड़के जानते हैं, "हर बार मस्टरवा सब असही कहता है। देखना ईहे सब चोरियो करवायेगा।"

"आरे देखना न पचमा मास्साब तो पइसा लेके नम्बर दे देते हैं। उनसे जवन सेट कर लेगा, कौन रोकेगा उसको।"

"आ हेडवा के कम का जानते हैं। बिना उसके साइन किये तुम्हारे साटिफिटिक का कौनो मतलब है? बात बतियाते हैं! असली जोगाड़ तो उसी से लगाना पड़ेगा। पढ़ाई होइबे नहीं किया तो चोरी कइसे रुकेगा रे... सब मामा लोग के नौटंकी है नौटंकी..."

"आरे देखना मैडमवा सीमवा के टप कराएगी एह साल। उसी के घर रह रही है तो कुछ तो करेगी ही देख लेना। हम कह रहे हैं। तुमको विस्वास न हो तो कतही लिखलो कि का कहे थे हम।"

लड़के इम्तिहान होने से पहले, अपनी तरह से रिजल्ट के समीकरण समझने बूझने में लगे थे। उधर उनके अभिभावक अलग परेशान थे, "सार लोग साल भ त मउज कइबे किया तुम सब। अब सालाना इम्तिहान हो रहा है तो इ ना कि चूतर एक जगह टीका के दू अक्षर पढ़ लें तो कूदकड़ी हो रहा है।"

“अरे मैया चो... जैसा करोगे वैसा भरोगे... का लोगे हमनी के? अभी पढ़े के उमिर है पढ़ि लो नहीं तो जिनिगी भर नाक पकड़के रोना पड़ेगा।”

“शाम हो रही है। ससिया के पते नहीं, कहां गया है?” सिपाही अंकल उसकी मां से हिसाब ले रहे हैं।

“ऊ तो बारहे बजे से खेलने निकला है तो लौटा है अभी, उसका संगत खराब होते जा रहा है, बिगाड़ रहा है सब उसको?”

“आने दो आज हम उसका मनोकामना पूरे कर देंगे। तुम्ही लोग उसका आदत बिगाड़ दी हो। लाड़ दुलार में रह गया सरवा देखो पल्टूआ को एह साल उहे टप करेगा...।” अपने बेटे के आचरण से खिन्न भुनभुना रहे हैं सिपाही अंकल। तभी शशि सिपाही अंकल से नजर बचाते हुए घर में घुस रहा था कि वे देख लिए, “ऐ हीरो, इधर आओ इधर आओ। कहां साहेबी हो रही है? पता है कब से इस्तिहान है?”

“हां, पता है।”

एक झापड़ कस कर देते हुए उन्होंने उससे फिर पूछा, “तो किताब कापी का दरसन न करना चाहिए कि दिन भर जवार भर के दौरा करोगे तो हो जाओगे पास, आंय?”

“दौरा करने गये थे? कोटा में किरासन तेल का पता करने गये थे कि नहीं।” चोट से तिलमिलाया शशि गुस्सा सा गया।

“तो कब गये थे? बारहे बजे का गये, पौने छह हो गया। का उहां मराने लगे थे?”

शशि की मां ने हस्तक्षेप किया, “आप भी न लइकन से असही बोला जाता है? का हुआ बेटा? कब तक मिलेगा किरासन?”

“कब तक का मिलेगा, बेच दिया हीरा बबवा सब। कोई पूछने जइबे न करता है तो का करेगा? अउर पूछने प खिसिया भी रहा था।” शशि ने नमक मिर्च लगा कर जन वितरण प्रणाली के ठेकेदार की शिकायत की।

“आह रे रमवा... हरमिया गांव में अन्हार कराएगा का? अबही पूरा महीना पड़ा है।” शशि की मां ने घबराते हुए कहा।

चिन्ता तो सिपाही अंकल को भी हो आयी पर बाहर से बेफिक्री दिखाते हुए बोले, “ना अइसे कइसे बेच देगा? ओकरे मजाल है, देखते न हैं कल जाकर।”

इस गांव की जन वितरण प्रणाली के दुकानदार हीरा बाबा भी कम दबंग नहीं हैं। कोशिश करते हैं कि जगदीशपुर ब्लॉक के गोदाम से माल लाने का झंझट कम से कम पड़े। सरकार चीनी, किरासन (मिट्टी का तेल), गेहूं, चावल सब सामान सस्ते दाम पर कोटे की दुकान से ग्रामीणों को उपलब्ध कराने की कोशिश कर रही है पर हीरा बाबा की माने तो बीडीओ पंचानन राम उनसे कहते हैं, “बांटने लायक रहिएगा तब नू बांटेएगा। हर कदम पर स्पीडब्रेकर बना हुआ है और उहवां एगो देवता बैठा है। पहले उ सबको चढ़ावा चढ़ाइए, तब नू गाड़ी चलेगी। आ पता चलता है कि गांव तक आते आते पूरी गाड़ी का माल त परसादी जैसा बंटता गया। अब आप लोग जान खाते हैं कि गेहूं नहीं आया तो किरासन नहीं आया तो चीनी पर यूनिट कम भेंटा रहा है। त हम क्या करें हमारा मांस खाइये आप लोग। उहो त नहीं खाते हैं। ऊपर में है कोई पूछवइया। सब लोग को हीरे राय लउकते हैं कमजोर... जादा करियेगा तो हम लइबे ना करेंगे माल...।”

सिपाही अंकल घर से किरासन तेल का टीन लेकर आये थे और जिद पर अड़े थे, “बिना लिए आज जायेंगे ही नहीं, लइकन के इस्तिहान है। एहू महीना में नहीं दीजिएगा तब गांव में कोटा

रहे, चाहे तेलहांडा में जाये, का फायदा है?”

“कहाँ से दे दें भाई, अइबे नहीं किया तो? चीनी ले जाइए।”

“चीनी का करेंगे? हमारे यहाँ तो असही गुड़ पसीज रहा है। केहू पूछवइया नहीं है। देखिए आपको किरासन त देना ही पड़ेगा बाबा। नहीं त इस बार बवाल कर देंगे। लइकन का इम्तिहान है।”

“लाइए दू लीटर दे देते हैं घर से। केहू के बताइएगा मत। नहीं त रूप चौधरिया बवाल करवा देगा कि केहू के दे रहे हैं आ केहू के नहीं। अइसे बीडीओ सहेबवा उसका सुनता ही नहीं है, कहता है कि मंगनी में चंगनी बिलइया मांगे आधा। उसको बिल्ली बोलता है बिल्ली।”

भागते भूत की लंगोटी भली। सिपाही अंकल लाचारीवश दो लीटर पर ही राजी हो गये पर उनको हीरा बाबा की बातें तनिक भी नहीं जंची। वे भी एक बोल छोड़ते गये, “देखना हीरा बाबा इहे बिल्ली एक दिन जायेगी दिल्ली। तब तुम आ तुम्हारा चूहा बीडीओ कैसे बिल में घुस जाओगे।”

हीरा बाबा धीमी आवाज में सिपाही अंकल की मां बहन से रागात्मक सम्बंध जोड़ने लगे।

रास्ते में सिपाही अंकल को किरासन का टीन ले जाते कुछ लोगों ने देखा तो वे भी अपने राशन कार्ड और टीन के साथ हीरा बाबा की मड़ई पर जुटने लगे। हीरा बाबा इधर दुकान बंद कर पिछले दरवाजे से नौ दो ग्यारह हो लिए। लोग उनके दरवाजे से गालियां भुनभुनाते हुए लौट आये। बाद में पता चला कि हमेशा की तरह, जिनसे हीरा बाबा को डर था कि वे या तो ब्लॉक पर जाकर हंगामा कर सकते हैं या यहीं उनके दरवाजे पर ही हीरा बाबा की बांह मरोड़ सकते हैं, उनको कमवेशी किरासन तेल मिल गया बाकी गरीब लाचार लोग काम चलाने के लिए बाजार से खरीदने या अंधेरे में रहने को ही अभिशप्त रहे। वे सरकार को और देश की आजादी को गाली देते रहे अपने घर में।

यहाँ चलाचली की बेला में जी रहे लकुड़ी सिंह से आजादी और लोकतंत्र के बारे में बात कीजिए तो वह कहेंगे, “लोकतंत्र माने फोद। अंगरेजवने के राज अच्छा था बबुआ। एतना अनेत नहीं नू था। अब त सब लोग हाकीमे बन गया है। कमजोर आदमी के का मिला, ओकर खोपड़ी तो अभीओ सबके जूता खाइए न रही है।”

लेकिन सरकार पर ही हर तोहमत थोपने वाले लोगों से पूछिये कि गांव अंधेरा में काहे जी रहा है, तो मुस्का के चल देंगे।

इस गांव में करीब दस साल पहले बिजली के खम्भे गड़े तो लोग खुश हुए कि अब समय बदलेगा। खम्भे पर तार बिछे। बिजली आयी। खेतों में पम्पिंग सेट हरहराने लगे पर जब बिजली का बिल आया, तो बाबू लोग महटिया गये। बिजली का बिल आता रहा लोग महटिआये रहे। एक दिन कनेक्शन कट गया तो लोगों को उत्पात सूझा और धीरे धीरे बिजली के पोलों पर लगे तार से लोगों ने अपने अपने आंगन में अलगनी टांग दी। बिजली के लकड़ी वाले खम्भों पर दालान छा लिया। अब अंधेरे का बहाना बना कर बच्चे पढ़ने से मना कर रहे हैं। सिंचाई के अभाव में खेत में जब फसल सूखने लगती है तो लोग सरकार की मइयाचो की बात कर संतोष कर लेते हैं। लोगों को गाली देने में ही अपनी आजादी का लुत्फ मिलता है। मंत्री घोटाला कर रहे हैं तो करें। इस गांव के लोग कहेंगे कि मंत्री घोटाला नहीं करेगा तो आपके खेत में हल जोतेगा? अफसर से मिलने जाने पर बात नहीं सुनता या मिलता ही नहीं तो इस गांव के लोग, इस पर कहेंगे कि आप ही का मुंह हुआ है अफसर से मिलने का? आप जैसे लोगों की समस्या सुनता रहा तो हो गयी अफसरी। गांव में कोई सिपाही भी आ जाये, तो इस कोने से उस कोने तक आतंक की लहर फैल जाती है। लोग सरकारी आदमी से बहुत डरते हैं। लिखा पढ़ी से तो और ज्यादा। पर पानी जहां सिर से ऊपर गुजरता मालूम पड़े तो लात जूता की भाषा में लिखा पढ़ी कर लेते हैं।

तुम शोर में अपने आपको भूल रहे हो  
क्या बिल्कुल भूल कर अनजान हो जाओगे? (आर. चेतनक्रांति)

रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय, बखेड़ापुर की परीक्षा बड़े जोशोखरोश के साथ हुई। परीक्षा के पहले ही संगीता मैडम ने सारे प्रश्नपत्र निकाल कर सीमा को सारे प्रश्नों के उत्तर रटा डाले थे। पचमा मास्साब ने प्रश्नपत्रों का फटा बंडल देखा तो भीतर से तो बहुत गरमाये पर समझ गये कि मैडमवा का ही काम है, इसलिए कुछ बोले नहीं, मुस्का कर संगीता मैडम को कनखी मार दिये। मन ही मन सोचा उन्होंने, कर लो मेरी जान, तुम भी कर लो खेल। एक दिन तो धरेंगे ही हम तुम पर हाथ।

हेड सर को इस बात से कोई लेना देना नहीं था कि कहाँ गया प्रश्नपत्र और कहाँ गयी उत्तर पुस्तिका। उनका तो अपना फंडा था, बिना सौ का पत्ता लिए एसएलसी देवे नहीं करेंगे। और जिसको बिना स्कूल का दर्शन किये ही एसएलसी चाहिए, ऊ इहाँ रख जाये पनसौआ (पांच सौ)।

“माट्साब पांच सौ जादा हो रहा है।”

“जादा हो रहा है तो मत दीजिए। हम आपको बुलाने गये थे क्या? बच्चा को स्कूल का दर्शन कराये बिना ही एसएलसी ले रहे हैं। जानते हैं एसएलसी का मतलब? ई स्कूल छोड़ने का प्रमाणपत्र है। बच्चा स्कूल अडबे नहीं किया तो छोड़ कइसे दिया भाई? इसी जादू का लग रहा है पांच सौ, तो आपको जादा बुझा रहा है।”

“माट्साब समझ रहे हैं पर लइकी जात है। स्कूल आके का करती? ई तो नया जमाना चल गया कि बिना साटिकफिटिक देखे अब बियाहे नहीं कर रहा है कोई। नहीं तो का जरूरत था? अब लइकी का कुछ उद्धार हो, देखिए अढ़ाई सौ ले लीजिए।”

“ए महाराज बनिया का दुकान समझ लिए है का? नामो गांव लिखना जानती है आपकी लइकी? नहीं नू? हम इहाँ अठवां पास के साटिफिकेट दे रहे हैं। के फंसेगा जी, कुछ हो गया तो? आप त भाग न चलिएगा, जवाब तो हमीं न देगे।”

“माट्साब जवन लइका पढ़ने आ रहे हैं सब, ऊ कवन पढ़ के मार अंगरेज हो गये? बात बतियाते हैं, हम जानते नहीं हैं आप लोग जवन पढ़ाई पढ़ा रहे हैं? देखे ना का इम्तिहनवा में। सब तो किताब से देखिए देख लिख रहा था। कवन अपना मन से लिख रहा था। आदमी जातो बेरादरी का तनी खेयाल रखता है।”

“जाते बेरादरी हैं तभीए एतना बोलिओ ले रहे हैं नहीं तो हमको ज्यादा बात करने नहीं आता। बहस कर रहे हैं। जाइए महाराज।”

“कहाँ जायें जी साटिकफीटीक लेने आये हैं तो लेइए के जायेंगे? आपो लोग आदमी चिन्हते हैं, बरियारा होता, तो जवन देता चुपचाप रख लेते बगली में।”

“आरे आप समझ नहीं रहे हैं न सहजा भाई। इसमें बड़ा मेहनत है। पुरनका रजिस्टर में दूसरे क्लास से नाम लिख के आठवां तक लाना पड़ेगा। नहीं तो कोई इन्स्पेक्शन हो गया तो आपका भी काम बिगड़ेगा और हम भी फंसेंगे। समझ रहे हैं न?”

पचमा मास्साब की नजरें भी हेड सर की कमाई पर अटकी रहती हैं पर उनके चुप रह जाने के दो कारण हैं :

“एक तो बेचारा स्कूल में रहो न रहो, टोकता नहीं है। हाजिरी बना के निकल लो। सब संभाल लेता है जवान। दूसरे इम्तिहान के बाद हस्तकला दिखाने के नाम पर लइके जो झाड़ू, रूमाल, आईना, कंधी, फूल, खिलौने लाते हैं, उसे हाथ नहीं लगाता। खूब हुआ तो दू ठो झाड़ू ले लिया आ एक ठो



कंधी। शौखिन बहुत है जवान। जेब में हरदम एक ठो कंधी रखता है। आ मैडमवा के तो इ सबसे मतलबे न रहता है। ओठ बिचकाती है ई सब देख के।” पचमा मास्साब कुछ रख कर कुछ बेच देते हैं सोना साह की दुकान पर। हजार बारह सौ का हो ही जाता है।

**परीक्षा** सम्पन्न हो जाने पर सारा तनाव जाता रहा। लड़के भी बम बम। स्कूल भी बम बम। गांव भी बम बम। नीचे के क्लास में तो एकाध फेल भी हुए पर आठवीं में चौबीस छात्र थे, इतने ही पास नहीं हुए, गांव की कुछ और लड़कियां भी पास हो गयीं। जो यह तक न जानती थीं कि पास क्यों हुआ जाता है और फेल कैसे? वे यह भी नहीं जानती थीं कि किताब को किस तरफ से पढ़ा जाता है। यह भी नहीं कि किताब को पढ़ा ही क्यों जाता है।

आठवीं में चौबीस छात्रों में जो कुल आठ लड़कियां थीं उनमें से भी पांच ने पढ़ाई छोड़ दी। एक अपने चाचा के पास जाकर आरा शहर में रहने लगी। वहां उसके चाचा नौकरी करते हैं। कम्पाउंडर हैं अस्पताल में। कहा गया वहीं रह कर पढ़ेगी। गांव ने समझ लिया, वहां रह कर बरतन मांजेगी और तब तक मांजेगी, जब तक विवाह नहीं हो जाता। सोलह लड़कों में से भी छह ने पढ़ाई छोड़ दी। सुदामा और धीरू दोनों के बाप ने पीरो शहर में घर बना लिया था। उन दोनों का परिवार पीरो शिफ्ट कर गया और उनका वहीं रामस्वारथ साहू हाई स्कूल पीरो में नाम लिखा दिया गया।

उस स्कूल के बाकी लड़कों और साक्षी तथा सीमा का नाम पौने चार किलोमीटर दूर हसनगंज कस्बे के हाई स्कूल में लिखाया गया। वह उस इलाके का बड़ा माना हुआ हाई स्कूल था। लोग कहते उसका हेड मास्टर हाथी पर बैठ कर आता है। वैसे स्कूल में किसी ने हाथी बंधा देखा नहीं था पर चूकि हेडमास्टर के संयुक्त परिवार में एक हाथी था तो लड़के उसे हाथी वाला मास्टर भी कहते थे। उसकी दबंगई के तमाम किस्से थे। उस स्कूल में आसपास के गांवों की लड़कियां और दूरदराज तक के गांवों के लड़के साइकिल पर बैठ कर पढ़ने आते थे। एकाध लड़कियां भी यहां साइकिल से पढ़ने आती थीं, जिनका जिन्न कर इस स्कूल के अधिसंख्य लड़के बड़ा रस लेते थे। वे स्कूल में एडवांस मानी जाती थीं। बाकी थोड़े पास की लड़कियां पैदल चल कर और थोड़ी दूर की लड़कियां अपने भाइयों की साइकिल पर पीछे बैठ कर और कोई एकाध अपने चाचाओं की मोटर साइकिल पर पीछे बैठ कर स्कूल आती थीं।

**जिन** लड़के लड़कियों का आगे नाम नहीं लिखाया, वे घर गृहस्थी में जुट गये। वैसे भी बखेड़ापुर का रेकार्ड पढ़ाई लिखाई के मामले में अपनी तरह से अलग ही रहा है। दो ढाई सौ घरों में मुश्किल से पांच लोग एम.ए. पास हैं, अठारह लोग बी.ए.। नौकरी करने वाले कुल बीस लोग हैं जिसमें अधिसंख्य या तो सिपाही हैं या मास्टर। अपने बैच के सबसे तेज छात्र समझे जानेवाले कृष्णकांत ने इंटर करने के बाद एक प्राइवेट स्कूल खोल लिया है जिसमें गांव के कुछ नौजवान और कुछ प्रौढ़ बेरोजगार पढ़ाने लगे हैं, सात सौ रुपये महीने पर, अगर उन्हें भी नौकरी पेशा मान लें तो गांव में नौकरी करने वालों की संख्या कुछ और बढ़ जायेगी।

गांव में एक नया नया डेयरी फार्म खुला है। ललू राय के प्रयास से। वे ही कर्तार्थता हैं। सुबह शाम उनके दरवाजे पर मजमा लग जाता है। गांव भर का दूध वहां इकट्ठा होता है और पीरो से ट्रक आता है डेयरी फार्म का। उसमें सब केन लदा के चला जाता है। सुमेसर तिवारी का मन पिनपिनाता है तो कहते हैं, “गांव के लोग को पोलियो का शिकार बना कर छोड़ेगा ललुआ। अब जे एको जवान को पाव भर भी दूध भेंटा जाये तो कहिए। लोगों के दरवाजे पर चार चार ठो लगहर बन्हा गयी लेकिन दूध का दरसन दुरलभ हो गया। नौजवानन के राह चलते झाई मार रहा है। एकरा मइया चो का होगा पइसा रे... है कोई पूखइया?”

पर डेयरी फार्म खुलने से बहुत लोग खुश हैं। जिसके घर कोई नोकरिहा आदमी नहीं है, उसके घर भी आने लगी मंथली इनकम। हर महीने की पहली को दूध का हिसाब होता है। किसी को दो हजार, किसी को चार हजार, सबको कुछ न कुछ भेंटा रहा है। ललू राय गाय खरीदने के लिए ब्लॉक से लोन भी दिलवा रहे हैं। हर आदमी ने बांध लिया है दरवाजे पर लगहर। ललू राय को भी रुतबा मिला है। अब हर आदमी थोड़ी तमीज से पेश आता है उनसे।

हर आदमी होड़ में लगा है कि कौन कितना अधिक से अधिक दूध डेयरी को दे दे। पहले स्कूल छोड़ने वाले नौछटिहे खेती के काम में सीधे लगने से कुनमुनाते थे पर दूध से सीधे हाथ में कैश आ रहा है तो गाय भैंस की चरवाही करने से किसी को परहेज नहीं। बाबाजी हो चाहे बाबू साहेब चाहे रविदासी, सबके लड़के बारह बजते न बजते खा पीकर गाय भैंस के साथ सोन की ओर प्रस्थान कर जाते हैं, तो सात बजे से पहले नहीं लौटते हैं। उधर सालों भर चरी का इंतजाम रहता है। वहीं मवेशी चरते रहते हैं और लड़के रेडियो पर गाना सुनते रहते हैं। जब मधुबाला गाती है तो लम्बू जी लंगटे नाचने लगते हैं। कुछ लड़कों की ताश जमती है। कुछ जुआ उआ भी खेल लेते हैं।

जैसे गांव के समाज में ऊंच नीच है, वैसे चरवाही में भी है। चरवाही के नेता हैं रमेश काका। सब नौछटिया चरवाहों में वे ही उपद्राराज हैं। लड़के रोज उनको घेर लेते हैं, “काका सुनाइये तनी, का हुआ सुहागरात के दिन?”

“अरे दुर, तोहनियो सब न रोज एके बतिया करता है।”

“काका बतिया तो एके नू है, रतिया के बतिया, कि दू ठो है, तो दूनो सुनाइये।”

“पैर दबायेगा न रे तेलिया?”

“आरे काका शुरू न करिये, तेली रामा रोज दबाते हैं, आज कोई नया है?”

“जानते हो गये, न तो तुम्हारी ककिया तो समझो नखड़ा करने लगी लेकिन उधार के...”

एक लड़का मस्तराम की किताब लाया था। काका को चुप करा कर उसका पाठ करने लगा। एक लड़का चुप करा कर उससे पूछने लगा, “आरे सरवा गरमा जाते होंगे तो बंड राम का करते होंगे?”

एक तीसरा बोला, “अपना भइसीए के...”

मवेशियों को धोने का समय हो रहा था। कुछ लड़के अपने जानवरों के साथ सोन में उतर लिए। रमेश काका ने मुस्करा कर पूछा, “कौन डूब के पानी पी रहा है?”

एक की भैंस नहर से बाहर भागने लगी। उसका चरवाहा अपनी भैंस को बेतहाशा पीटने लगा।

एक की भैंस पानी में बैठी हुई थी और उसका चरवाहा उसकी पीठ पर मौज मना रहा था।

## 12

**अधूरी भूख सपने अधूरे अधूरी सफलताएं**

**दोस्ती अधूरी प्रेम अधूरा अधूरी पूजा**

**अधूरी इच्छाएं दुश्मनी अधूरी**

**अधूरी अधूरी हर चीज**

**कौन जाने**

**अधूरापन ही**

**जीवन की सम्पूर्णता हो पूरी (हेमंत शेष)**

गांव में रबी फसलों की बुआई के बाद लोगों में आलस छाने लगता है। हवा कुछ बदल जाती है। लोग थोड़ी फुर्सत में आ जाते हैं। वे यहां वहां बैठ कर गपकुचन करते हैं। यहां प्रौढ़ लोगों और थोड़े

से बुजुर्गों की बैठकी का प्रसिद्ध अड्डा हीरा बाबा की 'मड़ई' है। पहले यह फूस की एक बड़ी सी झोपड़ी हुआ करती थी। अब ईंट की वैसी ही दालान है, लेकिन कहते उसे अभी भी मड़ई ही हैं। इस मड़ई में कभी रामायण, महाभारत का किस्सा चलता है, कभी कोई बुजुर्ग रामचरित मानस गाकर सुनाता है, कभी आल्हा ऊदल। कभी देश दुनिया की राजनीति पर बड़े दिलचस्प किस्से। समाज परिवारों की रामकहानी तो खैर यहां रोज चलती ही रहती है। कभी लोग बात बात में झगड़ा टंटा भी कर लेते हैं, लेकिन यहां का झगड़ा बहुत चलता नहीं है, यहीं निबट भी जाता है। यहां फिक्रमंद लोगों की एक बेफिक्र दुनिया बसती है। इस दुनिया में आमतौर पर बच्चों और नौजवानों का प्रवेश निषेध होता है। दरअसल गांवों में बाप दादों से बच्चों का बहुत अंतरंग होता नहीं है, जैसा कि महानगरों में होता है। महानगरों में तो खैर बहुएं भी ससुरजी से चटर पटर करती हैं।

हीरा बाबा की मड़ई में आज भी आठ दस लोग जुट गये हैं। बिल क्लिंटन को लेकर बतकुचन हो रही है, "क्लिंटनवों साला लड़भके बुझाता है जी।"

"... अरे छोड़िए, आपको राजनीति बुझाने लगेगा त नेता सब का... उखाड़ेगा। ऊ सब कौनो कोदो दे के पढ़ा है।"

"... अरे जबान संभाल के बोलिए, जब पढ़ना था, तब तो रहर के खेत अगोर रहे थे। अब काबिल बन रहे हैं।"

तभी ललन बाबा आ गये। ललन बाबा की उमर कोई खास नहीं है। यही चालीस पचास के बीच के होंगे। गांव में उनके वंश की खूंटी ऊपर होने से वे गांव भर के बाबा लगते हैं। यही बात हीरा बाबा के साथ भी है। ललन बाबा के मड़ई में घुसते ही हीरा बाबा ने टोका, "काऽ हो ललन भाई। केने चकलस काट रहल होऽ। तोरा मरदे बइठकियों में छुट्टी ना मिलिस है।"

ललन बाबा ने माथ पर से गमछा उतार कर पसीने से चिपचिपा आये अपने चेहरे को रगड़ कर पोंछा और चौकी पर बैठ गये, "का बताएं भाईजी, बनियवा आ गया था, उसी को चावल तौलाने लगे, बेंच दिये सहत भा महंग। पइसा का जरूरत था। लइकवा मेरा बी.ए. कर लिया। अब एम.ए. में नाव लिखा के कम्पटीसन देगा। त खरच बढ़ गया, कौनो इंतजाम त करना ही था न।"

ललू राय भीतर से सुलग गये। उनका लइका इस साल बी.ए. फाइनल में फेल कर गया था। वह भी ललन बाबा के लइके की तरह ही पटना में रह कर पढ़ता है। ललू राय ने सोचा था कि इस बार बेटा बी.ए. कर ले तो कोई बढ़िया पाटी देख के दो तीन लाख हगा लेंगे। उन्हें मालूम है कि वह आगे अब पढ़ेगा नहीं, बिगड़ रहा है। ब्याह हो जाये तो शायद लाइन पर आकर कुछ काम धंधा में जुटे।

उन्होंने भीतर का भाव दबाते हुए ललन बाबा से कहा, "ललन बाबा, तोहरा तो मिठाई खिलाना चाहिए। लइका सोना हुआ जा रहा है।"

ललन बाबा ललू राय की सब बात बूझते हैं, इसीलिए उनकी टिप्पणी उन्हें अच्छी नहीं लगी, "हं जी, आप नहीं गपिएगा तो अउर कौन गपेगा। इहां खर्चा के मारे मेरा गांड फट रहा है और आपको मिठाई सूझ रहा है।"

ललू राय ने कुछ कहने के लिए मुंह खोला ही था कि मंगल तिवारी ने बात बदल दी, "अरे छोड़िए भाई, का आप लोग उहे जंजाल पुराण लेके बैठ गये। अरे कुछ चटक मटक कहिए। लगन पताई का दिन आ रहा है। कुछ शुभसाभ बात हो कि..."

ललन बाबा मुस्कराये। लगा कि आज वे मिजाज बना के आये हैं और पूरी फुर्सत में हैं। हाथ पर मसली हुई खैनी को जोरदार ताली देकर फटका, फिर उसे होंठ के नीचे डाल कर इल्मीनान में होते हुए बोले, "अरे भाई लोग राम कहिए, आज हम जवन खिस्सा आप लोगिन को सुनायेंगे कि

आप लोग दाँते अंगुरी दबाइएगा। आरे शहर में इज्जत लाज, हया माया सब बह गया है। एकरा... जतना नयेकन लइकवन आया है, ऊ सब त अउर बह गया है... आरे हमरा एगो अइसा स्टोरी मिला है कि आप लोग को हंसीओ आवेगा, मिजाजो गरमाएगा... आरे हमको त समझिए कि विश्वासे नहीं हो रहा है... कहां दुनिया जायेगी मालूम नहीं।”

सभी लोग ललन बाबा का बकर बकर मुंह देखने लगे। छोटे बच्चे चटोरन और पप्पू ने लूडो खेलना बंद कर दिया। जो लोग तास खेल रहे थे, पत्ते समेटने लगे। ललन बाबा ने पहले सभी छोटे बच्चों को डपटा, “जतना अंडर एज बच्चा लोग है, सब घर जाये। ससुर दिन भर लिडो गोटी खेलेंगे। पढ़ने लिखने में नानी मरेगी। जाओ सब घर। खेल के चक्कर में ससुरा सब खाना पीना भी भुला जाता है। घर में औरत सब छटपटा रही होगी, आ इ सार लोग दिन दिन भर मजा मारेगा। भागो सब।”

बच्चों को दालान से भगा दिया गया। हीरा बाबा ने अपने लड़के को घर से दस कप चाय बनवा लाने के लिए भेज दिया। अब सुमेसर तिवारी ने कहा, “शुरू कीजिए बाबा। अब कवना बात के देर। तनी हम लोग भी सुनें...”

ललन बाबा खैनी थूकने के लिए मड़ई से बाहर निकले तो लड़के बाहर मजमा लगाये हुए थे। उन्होंने खैनी थूकने के पहले लड़कों को डपटा, “भागते हो तुम लोग कि नहीं। जाओ सब अपना अपना घर में जाकर पढ़ो लिखो।” लड़के हंसते ठहाका लगाते सरपट भागे। ललन बाबा ने पच से खैनी का पीक फेंका और मड़ई में आये, “आजकल लड़िकनों सब कम चार सौ बीस नहीं है।”

“का कहते हैं बाबा, जमाना बदल गया। बीत भर का होते होते सब ससुर सब बात बूझने लगता है।” रमेश काका ने चिन्ता जाहिर की।

खैर छोड़िए अब कथा शुरू भी हो।” सहजा भाई ने आग्रह किया।

ललन बाबा ने भी जल्दी निपटाना ही अच्छा समझा क्योंकि चार बजे भैंस खोल कर चराने ले जाना था। उसे धोना था। दुहना था। उनके अनुसार इन दिनों सब चरवाहा बनहारों का मन बढ़ गया था। अब अपना काम खुद देखना पड़ रहा था। आटा पिसाने ले जाना था। फिर बाजार से जाकर सब्जी लाना था। रोज दो चार अगुआ पताई गिर रहे थे। इसलिए बिना हरी सब्जी के काम कैसे चलता। ललन बाबा ने शर्त रख दी, “बीच में टोकियेगा मत भाई, मजा नहीं आता है। हां, तो पटना शहर में एक मुहल्ला है राजेन्द्र नगर। एक मुहल्ला है कदमकुंआ। राजेन्द्र नगर में रहते थे रामगगन चौधरी और कदमकुंआ में पारसनाथ गुप्ता। रामगगन की दो संतान, पारसनाथ की भी दो। दोनों को एक एक बेटे और एक एक बेटियां। रामगगन का बेटा प्रमोद और बेटा कविता। पारसनाथ का बेटा बीरेन्द्र और बेटा रीमा। बीरेन्द्र और प्रमोद दोस्त हैं, कहिए थे। अब तो दुश्मनी भी बहुत बुरी चला रहे हैं। रीमा और कविता शुरू से सखी हैं। अब भी रहना चाहती हैं। मगर लड़कियों की कोई सुनता कहां है, उनका वश ही कहां चलता है। रामगगन चौधरी और पारसनाथ गुप्ता सचिवालय के कर्मचारी हैं। शुरू से ही उनकी गाढ़ी दोस्ती रही है। आज बेचारे हैं। चाह कर भी न दोस्ती रख पा रहे हैं न दुश्मनी चला पा रहे हैं।

रामगगन चौधरी और पारसनाथ गुप्ता पटना में साथ साथ पढ़े लिखे और साथ साथ नौकरी पकड़ ली। इन दोनों की दांतकाटी रोटी निबहती रही है। शुरू से एक दूसरे के घर जाना और अपने घर की तरह रहना होता आया है। दोनों ने साथ साथ शादी की और दोनों की पत्नियां अपने पतियों से ज्यादा एक दूसरे के पतियों को मानती जानती रही हैं। बड़ा चटक मटक मामला रहा है। ये अपनी संतानों में भी अपना पराया नहीं मानते। वे सब आपस में शुरू से बड़े मिलजुल कर रहे भी हैं। लगता ही नहीं था कि अलग अलग घरों के लड़के हैं। दोनों लड़कों और लड़कियों की उम्र भी लगभग बराबर रही है। जब जवान हुए, क्या चारों का रूप निखरा। आप लोगों ने सिनेमा कभी देखा हो तो समझिए

एकदम हीरो हीरोइनों की तरह। पढ़ने लिखने में भी बहुत जहीन। लेकिन जवानी क्या है कि भाई अच्छे अच्छों को अंधा बना देती है। ऊंच नीच बुझाता ही नहीं है। आग पानी एक जैसा लगता है। ये लड़के आपस में ससुरे लटपटा गये।”

लोग सांस थाम कर कहानी सुन रहे थे। तभी हीरा बाबा का लड़का चाय लेकर आ गया। प्लास्टिक के कप में चाय ढाल कर सब चाय पीने लगे। चाय पीने के बाद रमेश काका ने खैनी बना ली। उन्होंने मालगुदन भाई और पंचरोपन भाई के अलावा ललन बाबा को भी थोड़ी सी खैनी दी। हीरा बाबा ने बीड़ी सुलगा ली। कोई हिलना नहीं चाहता था। आज बड़ी अजगुत बात छिड़ी थी। हीरा बाबा का लड़का चाय का मग्गा लेकर चला गया तो मालगुदन भाई ने टोका, शुरु करऽ बाबा। बड़ा भीतरिया बात है हो।”

ललन बाबा ने तब तक बात गढ़ ली थी, “अरे एकरा बहिन से ऊ फंस गया आ ओकरा बहिन से ऊ। एकरा बहिन संगे ऊ सिनेमा जाने लगा आ ओकरा बहिन संगे ऊ होटलबाजी करने लगा। जहां मौका मिला लगने लगा संधं। पहिले तो ई बात भितरिया थी लेकिन आखिर कब तक ई बात छिपती जी। अइसा बात भी कहीं छिपता है। नहीं, उनकी भी नहीं छिपी। भाइयों ने अपनी बहिनों का जीना मुश्किल कर दिया जी। प्रमोद और बीरेन्द्र एक दूसरे की जान के प्यासे हो गये। वे जहां मिलते बड़े तेवर में मिलते और एक दूसरे को जान से मार देने की धमकी देते। दोनों आग के पुतले बन गये। एक दूसरे के घर आना जाना बंद। जो इनकी दोस्ती नहीं भी जानते थे, इनकी दुश्मनी जान गये। लड़कियां अपने अपने भाइयों द्वारा अपने अपने घरों में नजरबंद कर दी गयीं। जैसे इन लड़कों ने जो कुछ किया वह बिल्कुल जरूरी था, लड़कियों ने जो किया वह नाजायज ही नहीं घृणित और कबो नहीं माफ करने वाला पाप था। शहर की लड़कियां थीं भाई, पढ़ी लिखी। जवानी में दिल क्यों नहीं डोलता और आग आ खर एक जगह रहेगा तो आग लगवे न करेगी। जवान लड़की के घर में पराया जवान लड़का घुसा रहेगा तो खेला नहीं होगा...? मामला तो उलझवे न करेगा जी...। खैर भोगना तो बेचारे रामगगन चौधरी और पारसनाथ गुप्ता को पड़ रहा था नऽ...। उन्हें तो समझे में नहीं आ रहा था, ई का हो गया...। वे दोनों पहले की तरह काम पर जाते पर एक दूसरे की ओर ताकते तक नहीं। कहीं रास्ते में मिलते तो साइड बदल लेते। या तेजी से अगलबगल से गुजर जाते। हांलाकि उनके भीतर गुदगुदी उठती कि अचानक गले मिल लें। अपने नाशते के डब्बे एक दूसरे में मिला लें और साथ बैठ कर खाना शुरु करें। वे छुप छुप कर बहुत हसरत से एक दूसरे को ताकते। सोचते जाकर अचानक टकरा जायें और ठहाके लगाते हुए एक दूसरे को इस बनावटी दुश्मनी के लिए गरियाएं, पर बेटों ने हवा बदल दी थी, अरे अइसा दुश्मनी कि का बताएं, गोली गंडा वाली बात हो गयी थी जी...। समय को उल्टा घुमा दिया था सालों ने।”

गांव वालों को ललन बाबा के इस तरह किस्सा सुनाने पर अचरज हो रहा था। उन्हें पहली बार महसूस हुआ कि बबवा पढ़े में कितना तेज होगा। ललन बाबा एक संस्कृत हाई स्कूल में कुछ दिन तक पढ़ाये भी थे, पर अपने बाबूजी के कहने में पड़ कर उन्होंने पढ़ाना छोड़ कर खेतीबारी शुरु कर दी थी। खैर यह तो अब पुरानी बात है।

ललन बाबा रामगगन चौधरी और पारसनाथ गुप्ता का जो हाल हुआ उसकी चर्चा करने लगे, “अरे समझिए कि भाई दूनो शहर में नौकरी करने वाला जीव, बहुत सौखिन था जी ऊ लोग। रोज दाढ़ी बनाता था, पाउडर वाउडर भी लगाता हो तो कोई अचरज नहीं। जूता पर रोज पालिस करने वाला। लेकिन भइया दुर्गत हो गया जी ऊ लोग का। दाढ़ी बढ़ा के दूनो साधू झूठ करने लगा। देह मिरमिरा गया। चेहरा से चोंइटा छूटने लगा। वोही हाल ऊ सब के मेहरारू के। अगल बगल वालों

को तो कुछ समझाने बुझाने का भी हिम्मत नहीं करता। चिन्हना मोस्किल हो गया। घर में रोआयीन पटायीन मच गया। दूनों के बेटा बेकहल निकल गया था। कब कांड हो जाये, कहना मोस्किल रे भाई। लड़किन के त घर में और दुरगत। दूनो लड़का सोचता अपना बहिन के कहीं सेटल करा के उसकी बहन को ले भागेगा कौनो दोसर शहर में। धीरे धीरे मामला पटिया जायेगा।”

ललन बाबा यहां तक पहुंचे थे कि रमेश काका ने अपना ज्ञान बघार दिया, “ई सब टीवी सिनेमा के असर है जी। सब गंदगी ऊहे फैला रहा है। सरकार भी भठिहारा हो गयी है, ए सब पर ध्याने नहीं दे रही है।”

तब तक ललन बाबा का सबसे छोटा लड़का पिण्डू आ गया, “चलिए अम्मा बोला रही है आपको। एगो आदमी आया है दुआर पर।”

ललन बाबा ने कहा, “ठीक है भाई देखते हैं, काहे हाई कोर्ट से हुकुम आया है। किस्सा फेर कभी।”

“...हं,हं... देखिए कौनो आदमी आया है, क्या बात है।” यह थे शिवपूजन सहाय। वे पटना में हाई कोर्ट में पेशकार हैं। छुट्टी में कभी कभी गांव आते हैं, तो यह मड़ई ही उनका अता पता होती है। यहां होने वाली बातें उन्हें पसंद नहीं, लेकिन समय काटने के लिए ठीक है। आखिर कहां जायें? बड़ी जाति वालों की बैठकी का अड्डा यह मड़ई ही है। गांव में दोनों टोल में अब बड़ा ऊंच नीच है। इसलिए वे इस मड़ई में ही बैठते हैं।

“आरे शिवपूजन जी, आज आपे कुछ कह सकते हैं। ललन बाबा जवन किस्सा सुना रहे थे, उसे आप खत्म कीजिए। आपको तो कुछ मालूम होगा ही।” रमेश काका पूरा मजा लेना चाहते थे।

शिवपूजन जी जानते थे कि ललन बाबा जो किस्सा सुना रहे थे, उसमें बात छोटी थी, उन्होंने मजा लेने के लिए बात लम्बी खींच दी थी। उन्होंने भी सोचा जब बात निकल ही गयी है तो एक बढ़िया समापन इसे दे ही दूं। उन्होंने बात में बात जोड़ी, “एक दिन कविता ने बीरेन्द्र को लेटर लिखा कि अगर कल तक तुम मुझे नहीं मिले तो मैं छत के पंखे से लटक कर फांसी लगा लूंगी। तुम नामर्द मेरा मरा मुंह देखोगे। तुम कल मिलो। मैं कल अपने बगलवाले इंजीनियर साहेब के बेटे की शादी में शामिल होने के बहाने मां के साथ घर से निकलूंगी। तुम वहां चौराहेवाले पोल के नीचे रहना। हम भागेंगे। तुम सोचो कहां? अब रहा नहीं जाता इस शहर में। भाई ने जीना मुश्किल कर दिया है। इस खत को बगल के एक बारह साल के लड़के को देते हुए उसने कहा, ‘जाओ इसे बीरेन्द्र को दे देना उसके घर। दूसरे किसी को मत देना, छिपा लो किसी को दिखाना मत, लो पांच रुपया कुछ खरीद लेना अपने लिए।’

“रीमा ने वैसा ही लेटर प्रमोद को लिखा। कल तुम तीन पचपन पे पटना जंक्शन पर मिलना, प्लेटफार्म नं. दो पर मैं टायलेट के पीछे रहूंगी। चलो यार कहीं चलें, जीवन नरक हो गया रे। “दोनों ने लेटर अपने विश्वस्त सूत्रों से अपने प्रेमियों को भेजा था, जो सुरक्षित तरीके से अपनी अपनी जगह पहुंचे। दूसरे दिन दोनों जोड़ों का मिलन हुआ। एक जोड़ा कलकत्ता रवाना हुआ। एक जोड़ा दिल्ली।

“दोनों लड़कों ने अपने अपने घर फोन कर दिया। दोनों घरों में रोना पिटना मच गया। दसके दिन बाद दोनों घरों में एक दो दिन के अंतर से एक एक चिट्ठियां आयीं। मजमून भी लगभग एक जैसा। बीरेन्द्र ने अपने बाप को लिखा था कि रीमा के लिए कोई लड़का देख कर जल्दी शादी ठीक करें और खबर करें। घबराने कि कोई बात नहीं मैं बिल्कुल ठीक हूं, एक काम भी मिल गया है, मजे में हूं। गलती सही माफ करेंगे, जो हुआ सो हुआ। हां, डरने कि कोई बात नहीं, कोई बात हो तो खबर करेंगे। रीमा को घर के बाहर नहीं निकलने दीजिएगा। प्रमोद ने भी बिल्कुल ऐसा ही कुछ अपने बाप को लिखा था। वह भी खुश था, जहां था। उसे भी अपनी बहन की चिन्ता सता रही थी।

“रामगगन चौधरी और पारसनाथ गुप्ता अब और नाटक नहीं कर सकते थे। वे आपस में

मिले। एक जैसा मजमून बनाया और अपने अपने बेटों को लिख दिया कि तुम जहां हो, निश्चिन्त रहो। यहाँ लड़का ढूँढा जा रहा। डरने जैसी कोई बात नहीं, सब ठीक चल रहा है। फिर दोनों ने सम्मिलित पार्टी की। सभी जानने वालों को बुलाया और सबके सामने गले मिल लिये। अब उनकी जिन्दगी फिर से पटरी पर आ गयी है। वही दोस्ती वही मोहब्बत...।”

अब तक चुप्पी साध कर बहुत ध्यान से किस्सा सुन रहे भुनेश्वर सिंह बोल पड़े, “अजी कैसा भठिहारा था दूनो जी। बेटी दोसर जात के लड़िका संगे भाग गयी, आ कौनो फिकिर नहीं। शहर में सब ऐसा ही बहाइल बसाइल रहता है का जी? इ तो अपने रेज टोली की कहानी है।”

लोग अब निकलने लगे थे कि हल्ला सुनाई पड़ा। सब लोग साथ ही बाहर निकले। पता चला कि भुनेश्वर सिंह की जवान बेटी संगीतवा को दीपुआ दुसाध के बेटा पलटनवा के साथ, जो उनके यहां चरवाहा था, रमेश काका के लड़के ने पुआल के टाल के पीछे घुघुआमाना खेलते हुए देख लिया था। उसके हल्ला करने पर बड़ी जातियों के टोल के लड़के मार मार मचाये हुए थे। दीपुआ का बेटा पता नहीं कहां परा गया था। लोगों ने सिंह साहब की लड़की को देखा, वो सिर नीचे किये घर की ओर लौट रही थी जैसे जमीन में समा जाना चाहती हो। उसके बाल बिखरे थे। कपड़ों पर सिलवट पड़ी थी। पर उसकी आंखों में कुछ था, कुछ अलग किस्म का। लेकिन गप हांकने वाले उसे क्यों देखते, कैसे देखते। वे तो क्रोध में अंधे हुए जा रहे थे। मार मार मचाए हुए थे। हरवे हथियार निकाल रहे थे। छोटी जातियों के टोल में अचानक बर्फीली हवा घूम गयी थी। गांव में तनाव फैल गया। लगा मौसम अचानक बदल गया हो। लगा बारिश होगी। अगर खून की ही हो तो भी कोई अचरज नहीं।

**दीपुआ** दुसाध का परिवार अचानक गायब हो गया है गांव से। उसके घर को, नहीं घर कहां है उसका, एक झोपड़ी है और उसमें एक बंसखट है। एक दो लेदरा है। उसके घर के नाम पर जो घर था उसको फूंक दिया बाबू साहेब लोगों ने। किसी ने चूँ तक नहीं किया। कई दूसरे दुसाधों की भी मरम्मत हुई पर मार खा कोई रोया नहीं और गांव में शांति है। कुछ दिन शांति रहेगी। पर पता नहीं कब तक शांति रहेगी?

### 13

**काट रहे हैं घोर अंधेरा छोटे छोटे लोग**

**तपता सूरज लम्बा रस्ता छोटे छोटे लोग । (शोधनाथ फँजाबादी)**

खेतों में कटनी शुरू हो चुकी थी। इस साल रबी की अच्छी फसल हुई थी। गांव वाले खेतों में खड़ी सम्पत्ति को देख कर पगलाए हुए थे। चैता अभी शुरू नहीं हुआ था गांव जवार में लेकिन रात में लोग सोते तो सपने में चैता गाते हुए ही रात कट जाती। एकदम भोर होते ही लोग हसिया लेकर खेतों में निकल पड़ते। वहीं नहर के किनारे ‘दिसा मैदान’ करते और जब दो चार कट्टा हर आदमी काट चुका होता तब पूरब में ललकी किरण दिखती। बारह बजते बजते तो खेतों में आग लगने लगती, किसकी मजाल जो टिके। हे प्रभु, इस साल कितनी गरमी पड़ेगी? जितनी फसल हुई है, उतना ही रंग दिखा रहे हैं सूरज देव भी। अभी तो चैत शुरू ही हो रहा है और ये हाल है।

उधर महुआ भी इस साल खूब चू रहा है। आमों पर मोजर भी खूब आये हैं। लगता है ईश्वर इस बार गांव पर दिल खोल कर मेहरबान है। खेतों में कटाई का काम मरदों के जिम्मे और महुआ बीनने का काम औरतों और बच्चों के जिम्मे। पर रेज टोल की औरतें महुआ बीनने लगे तो साल भर रोटी कैसे खायें? और महुआ के पेड़ के मालिक भी तो बड़ टोल के लोग ही हैं। भाड़े पर महुआ

बीनो तो चौथाई मिलता है। इससे अच्छा तो कटनी ही है। सोलह बोझा काटो तो एक बोझा अपना हो जाता है। वैसे लड़ाई चल रही है कि चौदह बोझों पर ही एक बोझा मिलना चाहिए पर मालिक लोग मान नहीं रहे हैं। जिनके दस बारह बीघे खेत हैं और वे सवंगर हैं तो अपना खेत खुद ही काट रहे हैं। मजूर नहीं लगा रहे हैं। उनका मानना है कि लूट मची है लूट। कटनीहार मजूर खेत वाले का बोझा छोटा बनाते हैं और अपना बोझा चलने भर का बांध लेते हैं बल्कि वे उसे बाद में दो बार में ढोते हैं।

गेहूँ की कटनी ही लोग मजूरों से करा रहे हैं बाकी दलहन और तेलहन की फसलों की कटनी तो खुद ही कर रहे हैं। ये नगदी फसलें हैं। इनको किसी और के हवाले नहीं किया जा सकता। गरीब लोग क्या जानें दाल भी क्या चीज होती है। यह तो भला हो कुछ दयानतदार मालिकों का कि वे अपने आदमियों को भी काम के दिनों में कभीकभार दाल खिला देते हैं। सरसो का तेल भी रेज टोली में आकाशकुसुम है। जब महुआ के नशे में आता है भूअर दुसाध तो तेल और दाल की मां बहन एक कर डालता है।

रेज टोल की तरफ ही महुआ के सारे पेड़ हैं। उस टोले की औरतें और बच्चे महुआ के दिन में चौकन्ने सोते हैं बल्कि सोचते हैं कि इस समय सोये तो समझो कि भाग्य सोया। वे जागते रहते हैं कि कब गांव सोये और वे महुआ के पेड़ों की ओर निकल लें। बरसात में महुआ को गुड़ के साथ भून कर खाने का अलग ही मजा है। गरीब आदमी का मेवा मुनक्का। वे इससे दारू भी बना लेते हैं और मलिकार लोगों को पिला कर अपने वश में कर लेते हैं। रेज टोल में जो एक दो घर आधे अधूरे सीमेण्ट ईंट के बने दिख रहे हैं, लोग झूठ कहते हैं कि वे इंदिरा आवास योजना से बने हैं। सब इसी महुआ की दारू के जादू से बने हैं। बाबू लोगों को जब महुआ की दारू और दूसरे की मेहरारू दिखती है तो सब वैर भाव भुला कर 'परमात्मा' बन जाते हैं। क्या गैर क्या अपना। लगता है कि सही ही कहा गया है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। पूरी धरती ही घर है, परिवार है। गांव में महुआ की दारू की डिमांड हरदम बनी रहती है। रेज टोल के लोगों के लिए नगद आमदनी का वह एक बढ़िया तरीका है।

भूअर दुसाध की बनायी महुआ की दारू इस गांव में ही नहीं बल्कि पूरे जवार में नामी है। 'बाबू साहेब' या 'बाबा जी' लोग के यहां जब कोई मेहमान आये तो बिना दारू पीये नहीं लौटता बल्कि मन करे तो कह सकते हैं कि बखेड़ापुर में कोई मेहमान महुआ की दारू पीने ही आता है।

भूअर दुसाध का बड़ा छोटा परिवार है। वे हैं और उनकी जोरू लछमिनिया है और बेटी परवतिया। परवतिया जवान हो गयी है। सोलह साल की। उसकी जवानी का एहसास भूअर को उनकी दारू की मांग में एकाएक आयी उछाल से भी हो रहा है। गांव के नौछटियों को दारू की तलब इधर कुछ ज्यादा ही जोर मार रही है। रात बिरात कोई जवान उनके दरवाजे की किवाड़ थपथपाने लगता है, "भूअर, भूअर, आरे भूअरा, दारू है का?"

भूअर इस चैत में दारू कहां से बनायें? इस मौसम में वे और उनकी लछमिनिया मिल कर रबी की कटनी कर रहे हैं। अनाज घर में आये तभी तो पेट चलेगा। सिर्फ दारू बेचने से क्या होता है? वह भी मालिक लोग कभी पैसा देते हैं, कभी डांट देते हैं, "सरवा, हमी लोग के महुआवी बीन के हमी लोग से पैसा मांगता है, पगला गया है का रे?"

भूअर बहुत विनम्रता से मना करते हैं, "मलिकार, ई तो ताड़ी का मौसम है।" जब जवान विदा होने लगता है तो उसकी पीठ पर अपनी घृणा पूरी ताकत से थूकते हैं भूअर। वे सब समझते हैं पर किसी से पंगा नहीं लेते। पंगा लें तो गांव छोड़ें पर गांव छोड़ कर कहां जायेंगे वे? गरीब का निबाह कहां है?

भूअर कटनी में परवतिया को भी ले जाते थे पर पिछले साल वाले कांड की वजह से अब नहीं ले जाते। पिछले साल यहीं चैत की कटनी हो रही थी। भूअर को ठंड के साथ बुखार आ रहा



था। काम पर जा नहीं सके थे। नहीं तो वे या लछमिनिया में से कोई एक परवतिया के साथ ही रहते थे। पर उस दिन लछमिनिया ललन बाबा के खेत में कटनी कर रही थी और परवतिया दूसरे बंधार में रमेश काका के खेत में गयी थी। लहालह दोपहरिया थी। मजूर अब अपने घर लौटने लगे थे। परवतिया भी अपना काम खत्म कर चुकी थी। रमेश काका परवतिया से प्यार से बोले, “पारवत, ए पारवत, थक गयी हो रे, आकर थोड़ा बैठ लो बगीचा में। आओ थोड़ा पानी पी लो, थोड़ा सुस्ता लो, तब जाना बेटा।”

प्यास तो लगी ही थी परवतिया को। रमेश काका के मीठे बोल ने उसे भावुक भी बना दिया। वह चली गयी बागीचा में। रमेश काका ने बागीचे में एक कुआं भी खुदवा रखा था। उसका पानी बंधार में पीने के काम भी आता था और उससे खेतों की सिंचाई भी होती थी। गरमी में उसका पानी मीठा और खूब ठंडा हो जाता था। परवतिया का कंठ ललचा गया। रमेश काका गांव में रसिक तो गिने जाते थे पर परवतिया को इस बात का दूर दूर तक अंदेशा नहीं था कि उसके बाप की उम्र के बराबर के रमेश काका की रुचि उसमें भी हो सकती है। पर रमेश काका बूढ़ी औरतों में रस लेकर तो रसिक के रूप में ख्यात हुए नहीं थे, हां परवतिया को इसका इल्म नहीं था।

रमेश काका जमीन पर बैठे थे। उनके पास एक डोर से बंधी बाल्टी रखी थी और एक लोटा। खेत में जहां आग लगाने वाली गरमी पड़ रही थी, वहीं इसके विपरीत बागीचे में सुहानी हवा चल रही थी। रमेश काका के पास से बाल्टी लेकर कुएं से एक बाल्टी पानी निकाल लायी परवतिया। पानी उनके पास रख कर सोचने लगी, बाल्टी से पानी कैसे पिये? रमेश काका ने अपना लोटा बढ़ाते हुए कहा, ‘लो इसमें पानी निकाल कर पी लो।’

परवतिया को अब थोड़ा काला लगा कि मालिक उससे घिना क्यों नहीं रहे हैं? अपना लोटा क्यों दे रहे हैं? खैर वह प्यास की मारी थी। लोटा में पानी निकाल कर ऊपर से उसकी धार मुंह में उड़लते हुए पानी पीने लगी। और रमेश काका गौर से उसकी छलियां घूरे जा रहे हैं। पानी पीकर वह चलने लगी, तो रमेश काका ने इसरार किया, “थोड़ा सुस्ता लो तो जाना। घर ही तो जाना है।”

“नहीं, काका घर लौटने में देर हो जायेगी। बाबू बीमार हैं।”

“बीमार है भूआरा? कहे कि दिखा नहीं? तो कौनो चिन्ता हो तो बताना।” अपनापन दिखाते हुए उसे अपने निकट बुलाने लगे रमेश काका, “आओ ना इधर तनी पसवा में। एगो बात कहनी है।”

चली गयी वह उनके थोड़ा पास और उन्होंने बाज की तरह झपट कर उसे अपनी गोद में बैठा लिया। एक हाथ से छाती दबाने लगे। दूसरे से उसकी कमर कस कर पकड़े रहे। वह उनकी गोद में जल से बाहर निकाली मछली की तरह छटपटाने लगी।

“काका, छोड़िए ना। का कर रहे हैं ई? आही रे रामा केहू आ जायेगा?”

“केहू नहीं आयेगा परवतिया। ई दुपहरिया में इधर केहू नहीं आयेगा। बिता लो मजिगर दुपहरिया। हमरो दिन बना दो, अपनो बना लो, फिर जो कहोगी, सो... खुश कर दो हमको, हम तुमको भी खुश कर देंगे।”

“छोड़िए न काका।” रोने लगी परवतिया।

“हसनगंज से सोना के नकबाली ला देंगे तोरा के।” प्रलोभन देने लगे रमेश काका।

परवतिया ने और कोई चारा नहीं देखा तो दांत गड़ा दिया उसने रमेश काका की बांह में। बिलबिला कर पकड़ डीली की उन्होंने और वह पिंजड़े से भागे पंछी की तरह उड़ी। रमेश काका ने पीछा नहीं किया, “देखते हैं हरमजादी कब तक तरसाती हो? सतवंती बनती है साली। देखेंगे कब तक कंठी माला फेरती है।”

रोते हुए घर पहुंची वह और लेदरा में मुंह छिपा के रोने लगी। लछमिनिया घर पहुंची थी पहले से ही। उसने ऐसा देखा तो, गरमायी, “अरे रांडी, का हुआ बताओगी कि टेसुना बहाओगी?” पर जब परवतिया रो रोककर सुनाने लगी हाल, तो लछमिनिया भी उससे जा लिपटी और रोने लगी। बहुत देर तक दोनों रोती रहीं। भूअर ओसारे में पड़े खांसते रहे। उन्हें लग रहा था कि अब बहुत बूढ़ा गये वे, जियेंगे नहीं ज्यादा। हालांकि वे अभी पचास के भी नहीं हुए। पर भुअर को अपनी उम्र कहां याद है। यह तो उनका शरीर बता रहा है कि चलो बहुत हुआ, अब चोला बदलो।

**ज्वाला सिंह** के खेतों की कटनी के लिए हार्वेस्टर आया है। नोनार के रघु मिसिर का है हार्वेस्टर। वे इलाके के सबसे बड़े खेतिहर हैं। दो सौ बीघा के करीब खेत हैं उनके जिम्मे। उन्होंने समय पर मजूर न मिलने और हर साल उनके मजूरी बढ़ाते जाने से तंग आकर हार्वेस्टर ले लिया है। उनका अपना भी काम आसान हो गया है और वह भाड़ा अलग कमा रहा है। जवार भर में हाथी की तरह रौंदता हुआ घूम रहा है हार्वेस्टर। जवार भर के मजूरों ने उसका नाम ‘राकस’ रख दिया है। वह राकस ही तो है, मजूरों की रोजी को हड़प रहा है। उसने किसान मजदूरों के आपसी रिश्ते को तहसनहस करने की ठान ली है। यह तो भला कहो छोटी जोत वालों का कि वे अभी भी हाथों से कटनी करा रहे हैं पर कब तक? हार्वेस्टर आने से गांव के गरीब लोगों में हाहाकार मचा है। इस साल जो लोग मजूरों से खेत कटवा भी रहे हैं, वे भी मजदूरी पिछले साल जितनी नहीं दे रहे हैं। लगता है गरीबों का निवाह अब गांव में नहीं होगा। कटनी बीते तो कुछ लोग सूरत चले जायेंगे कपड़ा बीनेंगे और राज करेंगे। कुछ आसाम चले जायेंगे और चाह के बागान में काम करेंगे और वहां से खूब पइसा लेकर लौटेंगे। कुछ दिल्ली या पटना चले जायेंगे रिक्शा चलायेंगे और सिनेमा देखेंगे। एक से एक माल पीछे बैठेगी और भइया भइया कहेगी। तरह तरह के सपने देख रहे हैं रेज टोली के जवान।

**राजबलम राम** ने मीटिंग बटोरा है रेज टोली में। मजदूरी बढ़ाने के लिए। ...और जो मिसिर का यह राकस दनदनाता फिर रहा है पूरे जवार में उसका क्या इलाज हो? राजबलम राम आईपीएफ के नेता हैं। सीढ़ी छाप। कहते हैं नीचे रहोगे तो लोग नीच कहेंगे। दब के रहोगे, तो लोग और दबायेंगे। सीढ़ी लगाओ और लोगों के कपार पर चढ़ जाओ, लोग भय खायेंगे। राजबलम को अन्याय बर्दाश्त नहीं होता। वे खुद मजदूरी करते हैं और मजदूरों के हक हुकूक की बात करते हैं। मीटिंग में डीह पर के महतो, यादव और मौलाना लोग भी बुलाये गये हैं। हालांकि इनमें से कइयों के पास दो चार बीघे अपने खेत भी हैं पर हैं दरअसल वे मजदूर ही। यादव जी लोगों का दूध का कारोबार मंदा पड़ गया है, जबसे गांव में बड़ टोली के ललू राय ने डेयरी खोली है। महतो जी लोग भी बड़का लोगन से नाराज हैं कि बाजार के दिन सब्जी बेचने वालों से वसूली की रकम वे लगातार बढ़ाते जा रहे हैं। महीने में एकाध बार बाजार से देर रात सब्जी बेच कर घर लौटने वाली सब्जी बेचने वालियों से बदसलूकी और छिनछोर अलग। अनेत बढ़ता जा रहा है। कब तक सहा जाय और कैसे निपटा जाये? मौलाना लोग की मुर्गियां और बकरियां सुरक्षित नहीं। जब मन आता है दाम दिये न दिये उठा ले जाते हैं बाबू लोग।

घुरी राम ने एक अलग सवाल उठा दिया कि इस साल मालिक लोग को मजूरों के बोझे देख कर आंखें फट रही हैं। उनके खलिहान में बोझे रखने पर खतरा है। उन्हें अपने पहाड़ जैसे बोझे के टाल नहीं दिखते। मजूरों के दस बीस बोझे उनकी आंखों में गड़ते हैं।

“गड़ने दीजिए। का कर लेंगे लोग? कौनो चुरा के ला रहे हैं हम लोग? पसीना बहा कर कमा रहे हैं।”

“हां उन लोगों का तो सिर्फ खेत ही है। उपजा तो हम ही रहे हैं।”

“बहुत राजपूत भूमिहार लोगों को तो अपना खेते नहीं नहीं मालूम है जी। हम जोतते कोड़ते, उपजाते हैं और वे लोग खाकर सिरिफ झाड़ा फिरते हैं।”

“ए काका, गांव में रहना मोसकील हो गया है। हम लोग भी आदमी हैं पर हमारा कोई इज्जत ही नहीं है। हमारी जनानियों को वे लोग दिन दुपहरिया बेइज्जत करते हैं।”

“बिना मतलब हमसे मारपीट करते हैं। रास्ता चलते गाली देते हैं।”

“टाइम पर मजूरी नहीं देते। मजूरी मांगने जाओ तो ऐसे करते हैं जैसे हम भीख मांग रहे हों।”

“हमने सहजा सिंह के खेत में बंटाई पर सब्जी की खेती की है। मेहनत से खून पसीना बहा के सिंचाई निराई करते हैं पूरा परिवार मिल कर। वे बिना कहे बताये जब मन करे, सारी सब्जियां तोड़ ले जाते हैं। एक दिन टोक दिया तो खेत में ही उन्होंने हाथ छोड़ दिया। गाली देने लगे।”

“पिछले इतवार को मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। मुझे दस्त हो रही थी। मैं अपने घर के आगे बैठा था। मालगुदन जी आये और कहने लगे बरिसवन पाहुन के घर पाहुर पहुंचा आओ। जब मैंने उनसे कहा मलिकार मुझे दस्त हो रहा है, ठीक हो जाऊंगा तो एक दो दिन में चला जाऊंगा या फिर किसी और को देख लीजिए तो मुझ पर उन्होंने लात चला दी और कहने लगे, कमकर राम तुम्हारा पिछवाड़ा तोड़ देंगे। नेता बनते हो।”

“अब हम नहीं सहेंगे जुलुम। हम भी आदमी हैं।”

“लड़ने के लिए एक होना पड़ेगा।”

“एक कहां हो रहा है कोई। देखिए, आज मीटिंग है और कितने लोग नहीं आये हैं, काम पर गये हैं।”

“पिछली हड़ताल में भी हमारी एका नहीं रही थी। कुछ लोग काम करते रहे।”

“लड़ाई के लिए एकता जरूरी है।”

“ऊ लोग सुनते हैं कि मीटिंग में गया था तो गाली देते हैं...।”

“गाली से निजात पाने के लिए भी गाली सुननी होगी।”

“इंकलाब जिन्दाबाद...।”

“हर जोर जुलुम के टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है।”

“जो हमसे टकराएगा, चूर चूर हो जायेगा।”

“लालकिला पर लाल निशान, मांग रहा है हिन्दुस्तान।”

रुकिये रुकिये। राजबलम राम अध्यक्षीय भाषण करेंगे।

“कामरेडो, आज नहीं जगे, तो जीवन भर लात खाना पड़ेगा। आपके बच्चों को भी खाना पड़ेगा। पिपरा, पारसबीघा, मसौढ़ी, अरवल, कंसारा, बेलछी सब जगह गरीबों को जिन्दा जलाया जा रहा है। गरीब लोगों पर सामंती ताकतें क्रूरतापूर्वक अत्याचार कर रही हैं। हमारा हक मारा जा रहा है। हमारी लड़ाई किसी जाति विशेष से नहीं है। हमारी लड़ाई उन सभी लोगों से है जो गरीबों का हक मार रहे हैं। अगले चुनाव में हमें जान पर लड़ कर संघर्ष करना है। हमारी आवाज को विधानसभा में उठाने वाला कोई होगा, तो दरोगा बीडीओ भी हम पर अत्याचार नहीं कर पायेंगे। हमें अपनी रक्षा खुद करनी होगी। किसी दिन हम लोगों पर कहीं भी हमला हो सकता है। राज्य में माहौल ठीक नहीं है। सत्ता सामंतों से मिली हुई है... लाल सलाम।”

जिन्दाबाद... जिन्दाबाद...। विनोद मिसिर जिन्दाबाद। कामरेड नागभूषण पटनायक जिन्दाबाद। जिन्दाबाद... जिन्दाबाद...

सुनिये सुनिये रूप चौधरी जी एक गाना पेश करेंगे, तब मीटिंग खत्म होगा

काहे गोलिया चलेला दनादन भइया  
तनि खड़ा होके सोचा एक छन्न भइया  
केहूके भरल सूटकेस, भांति भांति के डरेस  
केहूके मरले मिले ना कफन्न भइया...

जिन्दाबाद... जिन्दाबाद... जिन्दाबाद... जिन्दाबाद...

बड़टोली में भी बहुत गहमागहमी है “नान्ह सब मीटिंग करने लगा है। ऊ सब के सबक सिखाना पड़ेगा, मनबदू हो गया है सब। चार चार जूता लगेगा चूतर पर तो इंकलाब नीचे से निकलने लगेगा।”

निर्माही बालम तक खबर पहुंची तो कहने लगे, “चल लेके ट्रैक्टर रउंद दीया जाये सार सब को। कमनिस्ट बनले भुला जायेगा।”

आरा से आया उनका पत्रकार भतीजा अजय सिंह वहीं बैठा था। वह बोला, घबराने की जरूरत नहीं। ई सरवा सब अपने में एक नहीं है विनोद मिश्रा गुट, पार्टी यूनिटी, नंदी राणा गुट, सतनारायण गुट, रेड्डी गुट... तरह तरह के गुट।...”

निर्माही बालम ने गांजा का धुंआ उगलते हुए कहा, “आ हम लोग एक हैं क्या... बाभन गुट, भुईंहार गुट, रजपूत गुट, लाला गुट कौनो के मुंह उधर है, कौनो के उधर... तबे नू नान्ह सब चढ़ा आ रहा है। एही में कौनो उस सबको माल पता भी दे रहा है, ना त ऊ सब के पास भूंजल भांग नहीं है, कहां से हथियार खरीदता, आ के लड़ता।... विनोदो मिसिरवा एगो बाभने न है... उसकी...”

14

**कैसी होती जा रही है**

**यह दुनिया**

**यहां**

**सपनों के डर से लोग**

**रात रात भर सोते नहीं हैं। (रामकुमार तिवारी)**

आज ललन बाबा के दुआर पर सुबह सुबह मजमा लगा है। पूरी बड़ टोली जुट गयी है। ललन बाबा की माई धाराप्रवाह गालियों का स्वस्तिवाचन कर रही हैं। वे हैं एक नम्बर की पिड़काह। गाली देने की गजब की प्रतिभा है उनके पास। राह चलते कोई मिल जाये और उसे वे दो गाली न दे दें, ऐसा हो ही नहीं सकता। लोग बचते हैं। गली में लोग उन्हें देख कर रास्ता बदल लेते हैं। पर गांव के लड़कों को उनसे उलझते हुए शायद बहुत मजा मिलता है। वे जितनी गालियां देती हैं, उतना ही उन्हें चिढ़ाने में इन्हें मजा मिलता है। ललन बाबा आजिज आ गये हैं गांव के लौंडों से और अपनी माई से। तरह तरह का यत्न कर चुके हैं पर किसी का कोई इलाज नहीं।

आज सुबह सुबह गांव के जगने से पहले ही उनके दरवाजे पर कुछ लड़कों ने सिन्दूर, एक छोटी शीशी सरसो तेल, एक जोड़ी रिबन और गेंदे के चार बड़े बड़े फूल रख दिये हैं। जिन लड़कों ने यह काम किया है, वे अपने अपने घरों में जाकर इत्मीनान की नींद ले रहे हैं। और उनके कृत्य ने बड़ टोली में तूफान खड़ा कर दिया है। ललन बाबा की माई को जिस जिस पर संदेह हो रहा है, उसके सात पुश्र्तों को एक किये दे रही हैं और जिनको गालियां दी जा रही है, वे जुट कर सफाई दे रहे हैं या गुस्से में मारने मरने पर उतारू हैं। कुछ लोग बीचबचाव कर रहे हैं। ललन बाबा का पूरा परिवार डरा हुआ है कि रात में किसने आखिर उनके दरवाजे पर भूत प्रेत रख दिया है। कुछ लोग

यह भी कह रहे हैं कि अरे किसी की शरारत भी तो हो सकती है, पर अधिसंख्य लोग इसे शरारत मानने को कतई तैयार नहीं हैं। कोई कह रहा है कि देख नहीं रहे हो कि सिन्दूर और रिबन रखा है, जरूर कोई प्रेतीन सटा गया है। देख लेना महीना नहीं लगेगा, घर हिला देगी यह। कोई कुछ, कोई कुछ। जितने मुंह उतनी बातें। तरह तरह की आशंकाएं और तरह तरह के डर। ललन बाबा जाकर लोटन बहू को उसके घर से पीटते गलियाते खींच लाये हैं। लोटन बहू उनके पैरों पर गिर कर सफाई दे रही है कि उसका काम नहीं है पर कौन सुने? उसने आकर दरवाजे का सारा तामझाम उठा लिया है। ललन बाबा धमका रहे हैं कि जाकर सोन में फेंक आओ इसे और अगर घर में कुछ 'खड़मंडल' हुआ तो तुम भुगतोगी। वह रोते हुए सब सामान लेकर चली गयी है। भैरव को अच्छी नहीं लगी है लोटन बहू के साथ ललन बाबा की बदतमीजी। वह किसी से कह रहा है कि इस गांव में अबरा की कोई इज्जत नहीं है। बड़टोली के किसी ने उसकी दलील सुन ली है और गाली बकते हुए कहा, “हं नान्ह राम, अबरा के इज्जत नहीं है पर जल में रह कर मगर से बैर भी कौनो अच्छा चीज नहीं है। आज ज्वाला सिंह के दुअरिया पर कोई भूत रख के देखे, गंडीए फट जायेगी।”

भैरव ने इस बड़बड़ाहट को सुना नहीं है। वह किसी जल्दबाजी में था, निकल गया है। शायद 'मैदान' होने जा रहा था। लोटा लिए हुए तेजी से खेतों की ओर चला गया है। ललन बाबा को कोई सलाह दे रहा है कि घुरिया को बुला के कुछ झाड़फूंक करा लीजिए। कौनो भरोसा है, कुछ हो हवा गया तो अउर महंगे पड़ेगा।

लोटन बहू के सामान समेट कर ले जाने के बाद ललन बाबा की माई दरवाजे पर जुटी भीड़ को ही गाली देने लगी हैं, “का इहां पतुरिया का नाच हो रहा है? तुम सब के घर माई बहिन नहीं है का रे? इहां तमासा हो रहा है? धर के मुड़ीए ममोर दूंगी..।” भीड़ तितर बितर हो गयी है।

घुरी राम गांव का माना हुआ 'ओझा' है। बहुत ख्याति है उसकी। जवार भर के पांच छह गांवों में जबरदस्त पूछ है। किसी को कोई 'हवा बयार' लग जाये, किसी को भूतिन प्रेतिन पकड़ ले, किसी को बेटा चाहिए, किसी का मरद नहीं मान रहा है, किसी का सवांग कलकता से लौटा नहीं चार साल से दौड़ो घुरिया के पास, पकड़ लाओ। किसी को भभूत देता है, किसी को फूल देता है, किसी से अंग्रेजी दारू और मुर्गा लेके श्मशान में जाकर साधना करता है और सबकी बाधा दूर कर देता है। दूर न भी करे तो मुसीबत हलुक कर ही देता है। उसकी ओझाई से परेशान रहते हैं सुमेसर तिवारी। वह उनका बनिहार है। कई बार काम अकाज होता है उनका घुरिया के ओझाई से, पर सुमेसर तिवारी झेले जा रहे हैं। गांव के नान्ह टोली का कई 'टॉप माल' चखा चुका है उन्हें। यह बात कौन नहीं जानता। मुर्गा दारू की कभी कमी नहीं होने दी। सुमेसर तिवारी की चार बात सह भी लेता है। गांव जवार में उसकी इतनी प्रतिष्ठा है फिर भी सुमेसर बाबा सबके सामने उसे चार बात कह लेते हैं, यह कम है क्या? तिवारी बाबा इसी बात की लाज निबाहते हैं और बर्दाश्त किये जा रहे हैं घुरिया को। दोनों परस्पर एक दूसरे को लाभान्वित कर रहे हैं।

घुरिया के बारे में कई किस्से मशहूर हैं जवार भर में। बखेड़ापुर के मंदिर के पुजारी मनेजर तिवारी ने एक किस्से का काफी प्रचार किया है। वे इसे सौ फीसदी हकीकत कहते हैं, जबकि घुरिया इसे सौ फीसदी झूठ कहता है। गांव में इस पर मिलीजुली राय है। पचमा मास्साब के लड़के की शादी के चार साल हो गये और कोई बालबच्चा नहीं। पूरा परिवार चिन्तित। टोला जवार चिन्तित। हितई नतई चिन्तित। लड़की बांझ है। नहीं का बात करते हैं मरदे, लड़की तो हीरोईन है रे, मुअल बिया छीट दो तो फसल लहलहा जायेगी, लड़कवे नामरद लगता है। आरे नहीं जाइएगा, एक से एक सुभेख गाय गांव में बहिला नहीं निकल गयी हैं क्या। सुभेख होने से क्या होगा, खेत बंजर है। मरद में कभी

दोस होता है? आरे आपको मालूम है, उसका 'हथियारे' काम नहीं करता है, तो खेत उपजाउए होके क्या उखाड़ लेगी। ए मरदे कइसन बात कर रहे हो, देखे हो उसका 'हथियार'? तरह तरह की बातें। कुछ चिन्ता में, कुछ रस लेने के लिए 'विचार गोष्ठियां' जगह जगह। इन विचार गोष्ठियों की खबरें पचमा मास्साब तक भी पहुंचतीं। फलाने ने ये कहा, अलाने ने ये कहा। तरह तरह की दवाई, तरह तरह के उपाय। कथा मनौती सब। पर सब बेकार।

हार कर घुरी को बुलाया पचमा मास्साब ने, "घुरी तुम तो जानते ही हो। राम जी के दया से चार साल हो गया। घर में बाल बुतरू न हो तो मनहूसी जैसा लगता है।" घुरी थोड़ा कहना, ज्यादा समझना की तर्ज पर सब समझ गये, "बस बस मलिकार। घबराने की बात नहीं है। कब काम आयेगा घुरिया। मलिकार दसहरा आने दीजिए।"

दशहरा आया। दिन में दुर्गा सप्तशती का पाठ करते मनेजर तिवारी। रात में घुरिया पचमा मास्साब की बहू को एक कमरे में बंद कर ना जाने कौन 'टोटरम' करता। मुर्गा का मांस बनवा कर और अंग्रेजी दारू का पौच्चा, दो पाकेट अगरबती, एक शीशी सेप्ट और एक सोटा लेकर घुस जाता कोठरी में। कोठरी का दरवाजा बंद। कह दिया था, मलिकार जेतना दिन चलेगा मनेजर बाबा के पूजा, ओतने दिन चलेगा हमरा भी टोटरम। रात रात भर हमको भगवती काली, कौड़ी कमछेयावाली के सुमिरन करना होगा। मलकिनी नहा धोके रात नौ बजे तैयार हो जायें। बारह बजे कोठरी बंद करता था घुरिया। उसने पूरे परिवार को चेता दिया था कि सब लोग अपना इत्मीनान से सोयें। खबरदार रात में कोई ढुका नहीं लगायेगा। कवाड़ी नहीं खटखटायेगा। अंदर से मलकिनी का भूत चिल्लाए तो खबरदार, आना नहीं है। तरह तरह की शर्त। संतान के लिए छाती पर पत्थर रख कर मान लिया पूरे परिवार ने।

पहला दिन तो परिवार के सब लोग जागते रहे। दूसरे दिन पूरा परिवार सो गया, जिसकी बीबी की ओझाई हो रही थी, वहीं जागता रहा और बेचैन रहा। अगले दिन पूछा उसने अपनी मेहरारू से, "आ हो का करता है घुरिया भीतरवा?"

वह बोली, "कुछ नहीं जी। आसनी बिछा के बैठ जाता है। अगरबती जलाते रहता है और दारू जमीन पर ढरकाते रहता है। का तो बुदबुदाते रहता है। कभी मीटवा खाता है और कभी सोटवा जमीन पर पटकता है। इहे भर रात। बारह बजे अइबे करता है, तीन बजे भोरहरिए निकल लेता है। तीन घंटा पूजा बस।"

"आ तुम का करती हो?"

"हम का करेंगे, हम खटोलवा प सुत जाते हैं अउर सपना देखते हैं।"

पूरा परिवार आश्वस्त होकर सोने लगा अगली रात से।

छठ बाद सुनाई पड़ा कि पचमा मास्साब दादा बनने वाले हैं। धूमधाम से छठ करवाया मनेजर तिवारी ने। पर मनेजर तिवारी कहते हैं कि घुरिया साला हरामी है।

लोग पूछते हैं, कइसे, तो जो किस्सा सुनाते हैं उसके पहले कहते हैं, किसी से कहना मत। पर मनेजर तिवारी के जलने से का होता है। घुरिया भी बाभन का ही बेटा है। नान्ह के घर जन्मा है, बीज बाभन का है। देखते नहीं हैं कइसे बरता है उसका चेहरा। भक भक। छह फीट का सुडौल शरीर दिया है परमात्मा ने और परमात्मा की दया से उसका जस बढ़ता ही जा रहा है। कोई कुछो कहे। नान्ह से बड़ तक चलती है उसकी पुरोहिती। जहां दवा दारू दुआ, पूजा पाठ सब फेल, उहां घुरिया। घुरिया कोई न कोई जुगत निकाल देता है। गांव में घुरिया नहीं होता तो लोटन बहू कितनों को खा गयी होती। मनेजर तिवारी जोड़ते हैं, घुरिया लोटन बहू को 'खाता' है। 'खाता है' माने बूझते हैं ना?

नहीं! नहीं कह सकते न आप

पूरे यकीन के साथ

कि ये आपका ही घर है

कि है ये आपका ही गांव

कि अंचल यह आपका ही (बंदेश्वर)

भूअर दुसाध चार दिन से बीमार पड़े हैं। पेट चल रहा है और बुखार टूट नहीं रहा है। लेदरा ओढ़ के सोये हैं और कंपकपी छूट रही है। गांव में सरकारी 'होस्पिटल' है। होस्पिटल क्या है, भुवनेश्वर सिंह के दालान की एक कोठरी है जो नियम से खुल जाये तो महीने में तीन दिन खुलती है, नहीं तो भगवान जब चाहते हैं, तब खुलती है। पीरो से एक 'कम्पोडर साब' आते हैं। जिस दिन कोठरी खुलती है, उस दिन उसमें झाड़ू लगा देता है रमचरना। रमचरना कमकर भुवनेश्वर सिंह का चरवाहा। वह होस्पिटल का चपरासी भी है। तीन सौ दरमाहा पाता है। कोठरी में रखे जग को मांज कर पानी भर देता है। कम्पोडर साब पीरो के बड़का अस्पताल से फुकौना लाते हैं और जो उनसे मिलने आता है, उसको देते हैं। कहते हैं ई 'हथियार' में पहिन के 'खेला' करने पर बच्चा नहीं होता है। पीठ पीछे पूरा गांव उनका मजाक उड़ाता है और उन्हें 'फुकौना डाक्टर' कहता है। सामने लिहाजवश सब कम्पोडर साब कहते हैं। उनके फुकौने को बच्चे गांव में फुला फुला कर खेलते रहते हैं। एक दिन उन्होंने सिपाही अंकल को टोका, "आप लोग फुकौनवा का इस्तेमाल नहीं करते हैं का? देखते हैं कि बच्चा सब दिन भर उसी से खेलता रहता है।" सिपाही अंकल बिगड़ गये कम्पोडर साब पर, "आरे मरदे का मजाक करते हैं। ई फुकौना पेन्ह के ऊ कुल्ह काम होगा? मजे नहीं आयेगा। आ बच्चा तो भगवान जी नू देते हैं। ई फुकौना रोकेगा जी भगवान जी के देल? सरकारो बहिनचो गजबे चीज है। एगो मैडम बनी थीं प्रधानमंतरी तो लोगिन के धर धर के बधिया बनाने लगी थीं। आ अब फुकौना बंटवाया जा रहा है। एकरी बहिन के सरकार..."

खैर लब्बोलुआब यह कि कम्पोडर साहब तो गांव वालों के लिए 'दर्शन' के भी दुर्लभ थे और कभी 'दर्शन' देते भी थे तो लोग जानते थे कि फुकौना ही उन्हें मिल सकता है, और कोई फायदा नहीं...। इस प्रकार होस्पिटल गांव में हेल्थ की दृष्टि से नहीं, मनोरंजन के लिहाज से अपनी थोड़ी बहुत उपयोगिता सिद्ध किये हुए था। गांव से होस्पिटल का ऐसा कोई समझौता तो था नहीं कि जिस दिन कम्पोडर साब आते उसी दिन गांव के लोग बीमार पड़ते और आते ही खटाखट दवा लेकर निरोग हो जाते। लोग सालों भर बीमार पड़ते रहते थे और वे गांव के नीम हकीम देवनारायण सिंह के भरोसे बीमार होते रहते थे और उनकी दवा खाकर अक्सरहां रोग से ही नहीं बल्कि जीवन से भी मुक्ति पाते रहते थे। जो थोड़े समर्थ थे, वे ज्वाला सिंह की जीप में लेट कर जेठवार जाकर इलाज कराते थे। वहां के डॉक्टर तो रोज लगभग उपस्थित हो जाते थे पर कब आयेंगे और कब चले जायेंगे उनका भी ठिकाना नहीं था। खैर लोगों को भी बहुत फर्क नहीं पड़ता था। उनका तो यह मानना था, "देखिए खोखी सरदी छोड़ दीजिए तो कवनो बड़हन बीमारी असही नहीं हो जाती है। कवनो पाप किये होंगे, तबे होती है। एह जनम में नहीं तो पिछला जनम में किये होंगे। अ जब पाप किये हैं तो डॉक्टर मैयाचो क्या करेगा जी, आपको सजाय तो भोगना ही न पड़ेगा। चलिए ठीक है गांव में होस्पिटल है, भुनेसर भाई के दुआर पर खुल गया है। किरयवा तो मिल रहा है। कवनो बढ़िया काम किये होंगे पूरब जनम में आज फल उठा रहे हैं।"

प्रतिकार करते भुवनेश्वर सिंह, "आरे का बढ़िया काम किये होंगे। नौ महीना से किराया नहीं

मिला है। आप लोग जो खूब फुकौना फूला रहे हैं, एक दिन भगायेंगे कम्पोडर राम के तब बुझाएगा।”

छांगुर सिंह ने कहा, “आरे महाराज ऐसा होइए नहीं सकता, नौ महीना में तो जनानी बाचा दे देती हैं। सरकार छिनरी कैसे नहीं देगी। लेने का लूर नू चाहिए।”

भुवनेश्वर सिंह ने बोल छोड़ा, “चंदना दुसाध वो बूझ रहे हैं का गोवरनमिण्ट को?”

**इधर** लोग सरकार की ‘मइया बहिन’ को याद कर रहे थे। डॉक्टर, हॉस्पिटल को फालतू करार दे रहे थे। उधर गांव के एक कोने की टूटी और फूटी हुई कोठरिया में लेदरा ओढ़ के भुअर दुसाध एक सौ चार डिग्री बुखार से तड़प रहे थे। उल्टी कर रहे थे। बिस्तारा गंदा कर रहे थे। लछमिनिया रो रही थी, परवतिया रो रही थी। अपनी ढही हुई और खाली नाद पर खूंटे से बंधी रंभाती छटपटाती उनकी भंडसिया रो रही थी। परवतिया कपड़ा भिगो लायी थी और उनका चेहरा पोंछ रही थी, “बाबू, ए बाबू अंखिया तनी खोलो ना। तनी ताको ना। कइसन तबीयत है बोलो बाबू।” बोलते बोलते खुद ही रोने लगी परवतिया। परवतिया रो रही और भूअर के चेहरा पोंछ रही है। लछमिनिया तलवे में तेल मल रही है। अचानक लछमिनिया भी बोकार फाड़ कर रोने लगी। परवतिया भागी देवनारायण सिंह के यहां, “माई डगडर साहेब के लिआ के आते हैं, बाबू आंख नहीं खोल रहे हैं।”

देवनारायण सिंह बिहिया बाजार जाने के लिए धोती पहन रहे हैं। जाकर पैर पर गिर पड़ी परवतिया, “जान बचा लीजिए ए डगडर चाचा, बाबू कइसे कइसे तो कर रहे हैं। लगता है बचेंगे नहीं। आप ही भगवान हैं ए डगडर चाचा। जान बचा लीजिए बाबू के। बाबू बिना हम लोग कइसे जियेंगे, कइसे उबार होगा हो डगडर चाचा।”

“धत् साली, कुछो नहीं होगा भुअरा के। नान्ह कठजीव होता है, जल्दी मरता नहीं है। आ रहे हैं बिहिया से त चल एगो सूई देंगे टनमना जायेगा।”

“ना ए डगडर चाचा। बाबू अंखियो नहीं खोल रहे हों डगडर चाचा। चल के तनी देख लीजिए हो चाचा।”

“धत् साली, जतरा प चोन्हा का कर रही है। कह रहे हैं न कि आ रहे हैं बिहिया से। ऊ मरेगा एतना झट से? बिहिए बड़ा विदेश में है! दू चार घंटा में आ रहे हैं, चल...”

“ना ए चाचा जनवा बचा लीजिए बाबू के। बाबू बचेंगे ना ए चाचा...”

देवनारायण सिंह की पत्नी बोलीं, “जाके देख काहे नहीं लेते हैं, गरीब को। बेचारा सीरियस होगा। रो रही है बेचारी तो बड़का डगडर बन रहे हैं, अइसा गजब आदमी होता है?”

“तुम औरत सब न, नाक नहीं होता तो मइला खाती। तुम्ही जानती हो कि मर जायेगा? डेर मोह आ रहा है तो जाके तुम्ही देख लो ना...” अपनी जनानी को डांटा देवनारायण सिंह ने।

“ए महाराज, मत जाइए बाकी घर में लड़ाई झगरा मत कीजिए। अइसा निसरधी आदमी होता है...” भुनभुना रही हैं वे।

आकाश पाताल एक कर के रो रही है, रोये जा रही है परवतिया।

देवनारायण सिंह ने दवाई वाला चमड़े का बैग उठा लिया है, “चल देख लेते हैं, नखरा मत पसार।”

घर से निकल कर गली में सुनसान पाकर परवतिया को दबोच लेते हैं देवनारायण सिंह।

“छोड़िए हो चाचा। केहू देख लेगा हो चाचा।”

“चुप्प साली। माल तो मजिगर हो गया है।” उसको छोड़ कर पीछे पीछे चल रहे हैं देवनारायण सिंह। आगे आगे भाग रही है परवतिया।

भूअर के घर पहुंचते ही नाक ढंक लेते हैं देवनारायण सिंह। बैग में काफी देर उटकेर कर एक



पुराना सीरिंज और निडिल निकाल कर एक छोटी शीशी में दवा भर कर कहते हैं, “चूतर पर लगेगा। कपड़ा हटाओ।”

“मालिक गंदा किये हुए हैं सब।” जवाब देती है लछमिनिया।

जाने दो, कह कर भूअर की बांह में सूई लगा देते हैं वे।

भूअर में कोई हरकत नहीं।

“लाओ, जल्दी निकालो पचास रुपया। बिहिया जाना है। लेट मत करो।”

“मलिकार हम दे देंगे। परवतिया के बाबू ठीक हो जायेंगे, तो दे देंगे कमा कर।”

“तोहनी सब में इहे कमी है। इसीलिए मैं जल्दी दवादारू नहीं करता। जल्दी ले आओ। नेटुअई मत पसारो। लाओ बाजार जाना है।” डांटते हैं देवनारायण सिंह।

“मलिका...र...”

“ए जादा चालू नहीं। निकाल...”

पुराना टिन का बक्सा हिलकोर के एक, दो, पांच, दस के कई फटे पुराने नये नोट मिला कर वह सब देवनारायण सिंह के हाथ में रखती है।

भूअर गों गों गों कर उल्टी कर रहे हैं।

देवनारायण सिंह इत्मीनान से रुपया गिन रहे हैं, “हां बयालिस रुपया है। आठ रुपया बकाया है ध्यान रखना।” वे पैसे लेकर चल देते हैं।

भूअर की हालत बिगड़ती जा रही है। शाम चार बजे तक वे मुंह से अजीब ढंग की आवाज निकालने लगे हैं। नाक से पानी बह रहा है और शरीर कांप रहा है। नन्ह टोली के काफी लोग इकट्ठा हो गये हैं।

“ए परवतिया के माई कौनो ओझा से दिखाओ हो। लगता है, ई कौनो भूत उत धर लिया है इनको। देख नहीं रही हो कइसे बोल रहे हैं।”

“हं हो लगता है उतरवारी अलंग वाला प्रेतवा धर लिया है।”

“आ दुर, बुलवा काहे नहीं लेती हो घुरी बचवा के। जान लोगी का तुम लोग, भुअर बेचारू के।” एक बूढ़ी महिला ने सलाह दी है।

घूमते फिरते खुदे आ गये हैं घुरी। एक हाथ पर खैनी रख कर दूसरे हाथ के अंगूठे से उसे इत्मीनान से मसल रहे हैं। वे बहुत ध्यान से देख रहे हैं भुअर को। काफी देर देखते देखते अचानक बोले हैं, “उतरभर के बर्ह्म बाबा हैं। काफी नाराज हैं। अकेले नहीं होगा। नोनार के रामचनर को भी बुलाना पड़ेगा।”

कोई रामचनर को बुलाने भागा है। कुछ देर बाद हाथ में सोटा लिए रामचनर और घुरी आ गये हैं, खटोला पर से जमीन पर उतारो बर्ह्म को।

शुद्ध घी मंगाया गया। घर में ही था एक पाव। एक पाव से नहीं होगा। चलो शुरू करते हैं, फिर देखा जायेगा। गाय के गोबर से बना गोइठा चाहिए। बगल के घर से आ गया है। परवतिया भाग के बलेसर साह की दुकान से लौंग और बाकी सामग्री ले आयी है, जो जो घुरी और रामचनर ने बताया है।

कोठरी में आग जला दी गयी है। उसमें घी, सामग्री, लौंग डाला जा रहा है। सब देखनिहार लोगों को भगा दिया गया है। कोठरी का दरवाजा भिड़का दिया गया है। दोनों ‘सयाने’ नशे में हैं। टोटरम शुरू करने के पहले लछमिनिया से मांग कर वे दम भर महुए की दारू चढ़ा चुके हैं। रामचनर ने जलती आग में चार पांच सूखी लाल मिर्चें झोंक दी हैं। भूअर का दम घुटने लगा है। वे छटपटाने लगे हैं। दोनों ‘सयाने’ झूम रहे हैं, तरह तरह का अभिनय कर रहे हैं। और जब जब भूअर छटपटा

कर कुछ कहना चाह रहे हैं, कभी उनके पैर, कभी हाथ पर सोटे से ठोक रहे हैं। भूअर दर्द से कराह रहे हैं। दोनों भूत उतारने वाले धीरे धीरे और क्रूर होते जा रहे हैं, “मारो साले बर्स्म को ऐसे नहीं उतरेगा। चमड़ी खींच लेना पड़ेगा।” उन दोनों की निर्दयता देख कर परवतिया छटपटा रही है, “कब ठीक होंगे हमार बाबू हो भइया? इनको का हो गया हो भइया?”

लछमिनिया कभी कभी उन दोनों को मारने से मना भी करती है, हाथ जोड़ती है तो वे उसे डपट देते हैं।

दोनों मां बेटी छाती पर पत्थर रख कर ये सब झेल रही हैं। इसके पीछे यह अंधविश्वास है कि जो मार पड़ रही है वह भूअर पर नहीं बर्स्म पिचास पर पड़ रही है। पर हर चोट के बाद भूअर कराह उठते हैं। वे उसी तरह निरुपाय हैं जैसे हलाल किया जा रहा बकरा।

सुबह होने को है। सयानों को लग गया है कि भूअर अब कुछ ही घंटों के मेहमान हैं। आपस में आंखों के इशारे से दोनों ने बतिया लिया। घूरी बोला, “लछमिनिया, भूअर के बचे के चानस कम है। अब तैयारी कर लो। लगता है कि अब चलाचली की बेर आ रही है।”

उसके इतना कहते ही भूअर से लिपट के लछमिनिया और परवतिया विलाप करने लगीं। लगा जैसे अपने विलाप से यमराज को मजबूर कर देंगी। भूअर को मरने नहीं देंगी। उन दोनों के हृदय विदारक को विलाप सुन कर दोनों ‘सयाने’ तेजी से खिसक लिए।

सुबह मैदान होने के लिए हीरा बाबा नान्ह टोली की ओर से ही निकल रहे थे कि उन दोनों का विलाप सुन कर ठिठक गये। चोरीओरी हो गयी का? परवतिया के साथ कौनो कुछ खेल गया का? भूअरा की आवाज नहीं आ रही है, भूअरा बीमार था, मू गया का? उनसे रहा नहीं गया। चले गये उसके घर की ओर। वहां के हालात देखे तो उनका मन करुणा और क्रोध से एक साथ भर गया। नब्ब टटोली भूअर की...। और लगा कि अभी जिन्दा है तो बिगड़ पड़े लछमिनिया पर, “मुआना चाहती है का रे इसको? ई अबतब कर रहा है, आ तुम सब बड़ठ के रो रही है। आरे ले के भागो जेठवार, उहां होगा डाक्टर, नहीं तो मर जायेगा बेचारा। जल्दी करो।...” और पता नहीं क्या बड़बड़ते हुए वे वहां से निकल गये। रास्ते में नान्ह टोली का जो दिखा, उसको गलियाते हुए और भूअरा को जल्दी अस्पताल ले भागने की नसीहत देते हुए वे मैदान की ओर निकल गये।

धीरे धीरे भूअर के दरवाजे पर भीड़ जुट गयी। उसके कपड़े बदल कर उसे खटोला पर लिटाया गया और चार लोगों ने उठा लिया। पीछे पीछे लछमिनिया लोटा में पानी लिए हुए और कुछ कपड़ा लत्ता और एक गठरी संभाले परवतिया। दोनों सुबकते हुए चल रही हैं। खटोला पर भूअर को संभाले लोग जल्दी पहुंचने के लिए दुलकी चाल से चल रहे हैं। ज्योंही गांव से बाहर कुछ आगे निकले थे कि भूअर ने अजब ढंग से आवाज निकाली। देखने के लिए खटोला जमीन पर रखा गया और देखते देखते भूअर ने छटपटा कर प्राण त्याग दिये। उनका चेहरा एक ओर झूल गया।

छाती पीट पीट कर और भूअर की लाश पर माथा पटक पटक कर विलाप करने लगीं लछमिनिया और परवतिया।

बीच बीच लछमिनिया विलाप करते हुए बोलती जा रही थी “आरे कौन दुसमनिया निकाले हो परवतिया के बाबू। आही हो रामा...। अब के हम लोगों को देखेगा हो रामा... चारू और अन्हार हो गया हो रामा...। ए परवतिया के बाबू, ए परवतिया के बाबू अंखिया तनी खोल...।” परवतिया भी बाबू बाबू चीखते हुए भूअर को जगाने का यत्न करने लगी।

जो लोग ले जा रहे थे, उनमें से भी दो की आंखें छलछला आयीं और उन्होंने गमछे से आंसू पोंछ लिया।

सुबह का समय था। गांव के और लोग भी इकट्ठा होने लगे। लाश गांव में वापस लायी गयी।

दाह संस्कार की तैयारी होने लगी। कोई कफन लाने भागा। ललन बाबा ने कहा कि टिकठी के लिए उनके बंसवार से बांस ले लिया जाये। कोई किसी के घर से रस्सी मांग लाया। पूरा गांव गमगीन। भूअर के सीधेपन और परिश्रमी व्यक्तित्व की चर्चा होने लगी। जगह जगह लोग उनसे जुड़े अनुभवों को आपस में बांटने लगे। ऐसे थे भूअर वैसे थे भूअर। भूअरा गौ आदमी था। बड़टोली में भी मातम पसर गया।

पचमा मास्साब ने सब कुछ सुना, तो अपना सिर पकड़ कर बैठ गये। संगीता मैडम ने पूछा, “क्या हुआ मास्साब?”

“क्या होगा, जमाना कहां से कहां चला, मगर हमारा गांव ज्वार को दवाई बीरो का सुविधा नहीं है। आदमी जैसे जंगल में रह रहा है। कीचड़ में जांगर खटाते खटाते कीचड़ में ही समा जाना ही जीवन है। कहीं किसी को कोई सुख आराम नहीं। शहर में सब लोग मऊज मार रहा है। ऊंहा अस्पताल, बिजली, एक से एक स्कूल, पार्क का नहीं है... गांव में जिसको दू पइसा होता है, ऊ शहर भाग जाता है। गांव में काहे रहे भाई कोई... हम लोग सब्जी उगाते हैं, सब्जी का पहला भोग शहर में रहने वाले लोग लगाते हैं... हम लोग मवेशी पालते हैं, गोबर से हाथ गंधाये रहते हैं, सब दूध केन में भर कर ट्रक पर लदा कर शहर चला जाता है। शहर के लोग दूध पीता है। हम लोग आपस में जाति पाति के नाम पर लड़ते हैं, शहर में बैठा हाकिम हमारा न्याय करता है। हम लोग वोट देते वक्त आपस में मारकाट करते हैं... हमारा नेता जीत कर शहर में मौज करता है, दारू पीता है, गुलछर्छे उड़ाता है, बड़ी गाड़ी में घूमता है अदम गोंडवी सहीए लिखे हैं काजू प्लेट में, भिसकी गिलास में... उतरा है रामराज विधायक निवास में। ...गरीब...अमीर...बड़...नान्ह...हम लोग...वे लोग...बेचारा भूअरा...”। पता नहीं क्या क्या बोलते, क्या क्या सोचते भोंकार पार कर रो पड़े पचमा मास्साब।

स्कूल की छुट्टी कर दी गयी।

## 16

**देखो तो डरो कि एक दिन तुम पर भी यह न हो  
न देखो तो डरो कि गवाही में बयान क्या दोगे (विष्णु छरे)**

भूअर का ‘क्रियाकर्म’ करने में लछमिनिया के ऊपर बलेसर साह का बारह सौ रुपया कर्जा चढ़ गया है। जबसे ‘काम’ निपटा है वह बार बार टोकने लगा है। इधर घर में अनाथ मां बेटी के ऊपर जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा है। पहले कमाने वाले दो लोग थे, तो तमाम संकट और अभाव रहते थे और अब तो खैर, वैसे भी घर में मरद मानुख न हो तो फिर घर, घर कहां रह जाता है, वह खुला मैदान हो जाता है, जहां आवारा पशु टहलने लगते हैं, ना जाने कैसे कैसे पेड़ पौधे उग आते हैं। वही हाल हुआ है भूअर के घर का। घर में जवान लड़की और बहुत थोड़ी उम्र में ही असहाय और बूढ़ी हो गयी एक विधवा औरत...। जिसका मन करे, वही भूअर के घर चला आ रहा है। कोई पूछहार करने, कोई कुछ लेने, तो कोई कुछ देने ही, सबके अपने अपने स्वार्थ हैं, बहाने हैं और बहानों की कोई कमी नहीं। भूअर के घर में अब दारू नहीं बनती, मगर बड़ टोली के बाबू भैया लोग अभी भी रातबिरात दरवाजा खटखटाने लगते हैं “आरे भूअरा बो, भूअरा बो... लछमिनिया, परवतिया दारू मिल जायेगी का... एगो कुटुम्ब आये थे, देख एक पउवा ही मिल जाती...”

“मलिकार अब हम लोग दारू नहीं बनाते।” बंद दरवाजे के भीतर से ही मुलायम कांपती आवाज आती है।

“आ दूर छिनरी, ओहारे में से बोलेगी... बहरवा ना निकल सकती हो।”

भीतर से कोई आवाज नहीं आती। बाहर से आवाज लगाने वाला कसमसा कर रह जाता है। जितने भी ‘गिद्ध’ हैं और बहुत सारे ‘गिद्ध’ हैं, सब नजर गड़ाए हुए हैं। बलेसर साह भी सूद में ‘कुछ और’ मिल जाये, तो काम चला लेने के लिए सोच रहा है। वह सोच तो यह भी रहा है कि रोबदाब दिखा कर दोनों को गांव से खदेड़ दे और उनके घर की जमीन पर कब्जा कर वहां टमाटर और गोभी की खेती कर दे। बहुत सही जमीन है वह। बिना घूरपात फेंके खेती लहलहा जायेगी। बलेसर सोच तो यह भी रहा है कि परवतिया को रखल रख ले और लछमिनिया को अपने घर में लौण्डी का काम सौंप दे। गाय चरायेगी, गोबर पाथेगी। घर लीपेगी। बोझा ढोयेगी। छूटा बचा सब काम करेगी और दो रोटी और एक धोती पर अपना निवाह करेगी। पर पता नहीं लछमिनिया माने या न माने। करने को वह जबरिया भी कर लेता, मगर बड़ टोली के बाबू भैया लोगों का बहुत डर है। जीने नहीं देगा सब। चमड़ी खींच लेगा। लछमिनिया सोचती है कि उसकी देह की चाहे जैसी दुर्दशा हो जाये, मगर परवतिया को कोई खरोंच तक न महसूस हो। मगर दोनों की जिन्दगी कांटों से भरपूर घिर गयी है। औरतों को जल्दी कोई काम पर भी नहीं लगाना चाहता। जबसे भूअर का इंतकाल हुआ है, सब बाबू भैया लोगों ने नजरें फेर ली है, जिनकी नजरें टिकी हैं, बस वह परवतिया के जवान जिस्म पर ही।

अभी गांव में बैठा बैठी का सीजन चल रहा है। काम धंधा कुछ खास नहीं। किसी के घर जाकर झाड़ू पोंछा कर दो, गोबर पाथ दो, तो एक आदमी का भोजन मुश्किल से मिल जाये, मगर दो प्राणियों का उसमें भी निवाह नहीं। और जरूरी नहीं कि दोनों को साथ साथ काम मिल ही जाये। एक को अगर कहीं से पेट भर का किसी दिन मिलता है, उसी में दोनों का निवाह होता है। वह भी कई बार दोनों को ही कहीं से कुछ नहीं मिलता, तो घर में फांके की स्थिति पैदा हो जाती है। कई बार सुबह चबेना पर तो रात पानी पर गुजारनी पड़ती है। बाबू लोग परवतिया को बहुत इशारा करते हैं कि वह अगर ‘राजी’ हो तो उसे वे पूड़ी जलेबी तक खिला दें, बाजार से कपड़ा लत्ता भी ला दें, मगर परवतिया भी जानती है कि यह ‘सुख’ भी चार दिन की चांदनी ही रहने वाला है, जल्दी ही बाबू लोग एक बार ‘भोग’ लेने के बाद फिर किस तरह बिना कुछ दिये ही इस्तेमाल करने लगेंगे या इस्तेमाल करने के बाद दुरदुराने लगेंगे, उसे पता है। ऐसी घटनाएं बहुत हुई हैं। रड़ टोली में ‘रखेलिनों’ की कमी नहीं है। यह मुफ्त में ही देह नोचवाना है। रात के अंधेरे में नाभी चाटने वाले किस तरह दिन की रोशनी में दुरदुराते हैं, परवतिया क्या जानती नहीं है। तो भूख और दुख झेलते हुए इज्जत बचा कर इस गांव में परवतिया और लछमिनिया को वैसे ही जीना है, जैसे बतीस दांतों के बीच जीभ रहती है, जैसे पिजड़े में मैना रहती है, जैसे जाल में मछली रहती है...।

दो दिन से लछमिनिया के घर चूल्हा नहीं जला है। दोनों प्राणी एक कोने में गुड़ीमुड़ी होकर बैठे हैं। भादो आधा बीत रहा है। मूसलाधार बारिश हो रही है जो छूटने का नाम नहीं ले रही। घर का छप्पर बहुत दिन हुए मरम्मत किये जो इस बरसात की शुरुआत में ही चूने लगा था, पर रोजी रोटी की भागदौड़ और मरम्मत के लिए बांस आदि का प्रबंध न हो पाने के कारण मरम्मत नहीं कराया जा सका। अगले साल किसी भी हालत में कराना होगा, नहीं तो घर गिर जायेगा। इस बरसात की सारी रातें दोनों ने जाग जाग कर गुजारी हैं। पेट भरने को ही जब लाले पड़े हों, तो बाकी दुख छोटे लगने लगते हैं।

आज बारिश छूटे तो लछमिनिया और परवतिया चली जायेंगी गांव के बाहर पोखरे की ओर और उधर से केकड़े, कछुए या मछली जो भी मिले, लाकर उपले की आग में भूनेंगी और पेट की

आग शांत करेंगी। पर निगोड़ी बारिश छूटे तब तो। लगता है आकाश ही जैसे टूट पड़ेगा। रह रह कर बिजली कौंध रही है और जम कर उसकी गर्जना सुनाई पड़ रही है। आज हवा भी काफी तेज है। भादो में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। हे इंद्रदेव, यह आप कौन सी परीक्षा ले रहे हैं। थोड़ी देर मोहलत तो दें।

पूछती है लछमिनिया परवतिया से, “तुम दो दिन से खायी नहीं हो, भूख तो बहुत लग रही है।”

परवतिया झूठ बोल देती है, “माई हम एक ठो रोटी खाए थे कल सुबह, मालगुदन बो चाची दी थीं। तुम्हारे बारे में हम सोच रहे हैं। बारिश जल्दी ना छूटी तो क्या करेंगे?”

लछमिनिया कोई गीत गाने लगती है। आधा गाती है, तब तक बिजली कड़कती है और वह चुप हो जाती है।

परवतिया कहती है, “माई कितना अच्छा होता कि बिजली गिर जाती हम लोगों पर और हम लोग भी बाबू के पास चले जाते।”

लछमिनिया के चेहरे पर पता नहीं किस भय की भयानक परछाईं नाच रही है। वह परवतिया को डांटती है, “का कुभाखा बोलती है रे। आदमी का जनम चौरासी लाख जोनी पार करने के बाद होता है। चौरासी लाख तरह के जीवों में जनम लेने और मरने के बाद बहुत भाग से आदमी का तन मिलता है बुचिया।”

“माई आदमी होने से अच्छा था हम लोग चिरियां चुरंग होते। कम से कम जिस पेड़ पर चाहते बैठते। जहां पक्का फल मिलता खाते। जहां चाहते घोंसला बना लेते और जब मन करता उड़ लेते।”

“कवनो जीव के जीवन आसान नहीं होता होगा बुचिया। ऊ सब के दुख हम लोग कइसे बूझ सकते हैं? जब आदमी का दुख आदमी ही नहीं बूझता, तो चिड़िया के बारे में कौन जानता है?”

“अच्छा माई, बता तो आदमी में कोई बड़ जात क्यों होता है और कोई छोट जात क्यों होता है?”

“हम का जाने रे, हम तो पढ़े लिखे भी नहीं। भगवाने बनाता होगा, कवनो पाप किये होंगे हम लोग पिछला जनम में।”

“माई अच्छा भगवान ने हम लोग को गरीब काहे बना दिया और जवाला सिंह को अमीर काहे बना दिया?”

“तुमको का हो गया रे आज? का का बतिया रही हो, दिमाग तो नहीं सनक रहा है?” परवतिया के पास खिसक आयी है लछमिनिया। उसका माथा सहलाने लगी है।

“माई एक बात बताओगी, हम लोग पिछला जनम में कौन सा पाप किये होंगे, क्या आज बड़ टोली के लोग जिस तरह किसी के बहू बेटी को जबरन जो मन करता है, कर लेते हैं, हम लोगों को बेवजह मारते पीटते हैं, पूरी मजूरी नहीं देते, हम लोग से छूआछूत मानते हैं, यह पाप है कि नहीं?”

“भैं का जानूं रे... ई पाप पुन तो भगवान के, पंडी जी लोग का बनाया हुआ है। पता नहीं किसे उन लोगों ने पाप माना है, किसे पुन? मुझे कुछ नहीं मालूम बुचिया कि अगिला जनम में भी हम लोगों को निजात मिलेगा कि नहीं, कुछ नहीं मालूम...।”

परवतिया के सवाल आज उसकी माई लछमिनिया को असमंजस और असुविधा में डाल रहे थे। वह एक बहुत दुख भरा गीत गाना चाहती थी, पर भूख ने शरीर में ऐसा उत्पात मचाया था कि उससे गाया नहीं जा रहा था। रात हो चुकी थी और बारिश छूट नहीं रही थी। अचानक तेज बिजली कौंधी और उनके एकदम सामने दो लम्बे चौड़े मरद मुंह पर गमछा लपेटे और पानी से तरबतर लुंगी

और बनियान पहने उनकी ओर बढ़ते उन्हें दिखे। वे हक्काबक्का रह गयीं। वे कुछ बोलतीं या चिल्लातीं, इसके पहले दोनों ने एक एक को पकड़ लिया और मुंह पर हाथ रख कर दबा दिया।

“साली आवाज निकाली, तो कल्ल हो जायेगा। छिनाल, जवानी का सुख भोगने दे बरसात बहुत हो रही है।”

दोनों गों गों करती रहीं। छटपटाती रहीं जैसे जाल में मछली छटपटाती है, जैसे पिंजड़े में फंसा चूहा पानी में पिंजड़ा समेत डुबोने पर छटपटाता है, जैसे चुटकी के बीच फंसी तितली छटपटाती है।

दोनों जवान और मुस्टंडे थे। दोनों ने भरपूर पकड़ कर दोनों को जमीन पर पसार दिया था और ऊपर सवार थे। दोनों काम भर नशे में थे। दोनों के सिर पर सनक सवार थी। रोती रही लछमिनिया और परवतिया और दोनों दरिन्दे मांस पर जैसे बाज टूटते हैं, चूहे पर जैसे बिल्ली टूटती है, टूटे और जुटे रहे। बाहर हहरा कर बारिश होती रही। बिजली चमकती और गरजती रही। निगोड़ी रात बेशरमी से खामोश बनी रही। आंधी चलती रही।

“आरे माई रे... आरे बापा रे... आही रे रमवा... छोड़ द जा हमरा हो... तोहार गोड़वा धरी हो भइया... काहे मसवा नोच तार हो भइया... कौन दुसमनिया निकाल तारु हो भैया...हमार करेजवा के छोड़ द जा हो भइया... हमार माई के छोड़ दऽ जा...” सिसकियों और आंसुओं की धार के बीच ये कुछ शब्द भी सहमे सहमे, कांपते हुए, आतंक और अत्याचार के बीच खड़े होते रहे थे।

जाते जाते दोनों मारपीट और बलात्कार से परवतिया को बेहोश और लछमिनिया को अधिक प्रतिरोध का फल मौत देकर चले गये। उन्होंने लछमिनिया की गरदन दबा दी थी। वे कौन थे, कहां से आये थे, किस यमराज ने भेजा उन्हें, धरती से पैदा हुए थे कि आसमान से टपके थे किसी को आज तक पता नहीं चला।

खैर, उस रात की जब सुबह हुई तो खूब अच्छी धूप खिली। गांव चहक कर जागा और लम्बी बारिश के बाद की धूप में जीवन खिलखिला उठा। जब दसबजिया फूल खिल कर अपने नीलेपन से कहर ढाने लगा, तो एक मनचले को शरारत सूझी और वह सोचा कि परवतिया का हालचाल ले ले। भूअर के घर के खुले दरवाजे से सनसनाते हुए भीतर घुसा और सन्न हो गया “आरे बाप रेऽऽ...” चिल्लाते हुए वह लोगों को बुलाने भागा... “ए हो सुनो... सुनो मर्डर हो गया परवतिया का, लछमिनिया का... मर्डर हो गया गांव में... बखेड़ापुर में मर्डर हो गया... लाश पड़ी है घर में...।” उसकी आवाज नहीं निकल रही थी। उसकी टांगें कांप रही थीं जैसे उसका ही मर्डर करने के लिए किसी ने उसे दौड़ा लिया हो।

रेज टोल की तमाम औरतें, मर्द और बच्चे जमा होने लगे भूअर के घर में। जिसे जहां जाना था, उसने वहां जाना रद्द कर दिया। काम पर कोई नहीं गया। कुछ लोग शौच करने भी नहीं गये। सब जमा होने लगे भूअर के घर के बाहर भीतर। राजबलम राम को पता चला तो कुरता पजामा पहन के लाल झंडा लेकर पहुंचे। राजबलमा “लाल झंडा” लेकर पहुंचा है, यह पता चला तो बड़ टोली के जो लोग भूअर के घर जाने के लिए निकले थे, वे बाजार की तरफ निकल गये या अपने घर की तरफ लौट गये।

“लाशें ऐसे नहीं उठेंगी, दारोगा जी और बीडीओ साहब आयें, तब उठेंगी।” ऐलान कर दिया राजबलम नेता ने, “इंकलाब जिन्दाबाद। अन्याय अत्याचार नहीं सहेंगे। एक का बदला दस से लेंगे।”

रूप चौधरी भी आ गया है। वह सबसे पहले भागा है लाश देखने, “हटो, हटो... नेता जी को लाशें देखने दो। जगह दो...”। भीड़ ने रूप चौधरी को जगह दी है। वे भीतर गये। दोनों शरीर नंगे पड़े हैं। बगल में नुचे फटे चिथड़े पड़े हैं। पहले रूप चौधरी ने भीड़ से दो गमछे मांग कर दोनों नंगे शरीरों को ढंका है। परवतिया का शरीर धड़क रहा है। उस पर छींटें मारी जा रही हैं पानी की। उसके शरीर के नीचे के हिस्से से खून बह रहा है। रूप चौधरी बाहर निकल कर कुछ लोगों को बुला लाता

है। एक औरत परवतिया को कपड़ा पहनाती है। उसे जेठवार अस्पताल ले जाया जा रहा है। रूप चौधरी उसे अस्पताल ले जाने वाले लोगों के साथ जेठवार निकल लेता है।

राजबलम राम ने प्लान बनाया है कि जब तक बीडीओ और दारोगा आ नहीं जाते, तब तक लाश को गांव में घुमाया जायेगा। चंदा बटोर कर कफन मंगाया गया है। कफन में लपेटा गया है लछमिनिया की लाश को।

आईपीएफ के नेता जुटने लगे हैं। दुखी राम, घमाड़ी राम, सुखाड़ी यादव, तेजनारायण महतो आदि आदि।

नारा लग रहा है, “एक का बदला दस से लेंगे। सामंती ताकतें होश में आओ। इंकलाब जिन्दाबाद... जिन्दाबाद जिन्दाबाद... हर जोर जुल्म के टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है...। लछमिनिया देवी अमर रहें... अमर रहे अमर रहें।”

गांव भर में लाश को घुमाया गया है। हर मुख्य रास्ते से होकर गुजरी है लाश। मनोज सिंह घर में बैठ कर दोनाली बंदूक साफ कर रहा है। गोली बंदूक में डाल रहा है, निकाल रहा है। ज्वाला सिंह ने अपनी कसम दे दी है। घर से निकलना नहीं है, नहीं तो मेरी लाश देखोगे। वे खुद को गोली मार लेने के लिए दुआर पर पिस्टल लिए बैठे हैं। मनोज सिंहवा का खून खौल रहा है। खून तो ज्वाला सिंह का भी खौल रहा है पर वे वक्त की नजाकत भांप रहे हैं। पूरा गांव सोच रहा है, ये जो कांड हुआ, किसका काम होगा? एक दूसरे पर सबका शक है। कोई किसी का नाम नहीं ले रहा है।

बीडीओ और दारोगा साहब गांव में आ गये हैं। बीडीओ पंचानन राम मुर्दाबाद... मुर्दाबाद मुर्दाबाद। दारोगा बखोरा सिंह मुर्दाबाद... मुर्दाबाद मुर्दाबाद। राजबलम जी को भीड़ से अलग किनारे ले जाकर दारोगा साहब और बीडीओ साहब कुछ समझा रहे हैं। एक जीप बंदूकधारी पुलिस वाले आये हैं, वे हाथ जोड़ कर भीड़ को शांत कर रहे हैं... शांत हो जाइए... शांत हो जाइए। राजबलम जी से बात चल रही है बात चल रही है...। बवाल करने से कौनो फायदा नहीं होगा...। खूनखराबा का माहौल नहीं पैदा कीजिए...। शांति में ही तरक्की है...। धैर्य मत छोड़िये...गया आदमी अब नहीं लौटेगा... समझदारी से काम लीजिए... आरे हट क्या बतिया रहा है... चल पीछे...ए लड़का तुम घर जाओ... जाओ पढ़े लिखो, भागो...

राजबलम नेता लौट कर भीड़ को सम्बोधित कर रहे हैं, “साथियो, हमारी बात हुई है दारोगा साहब और बीडीओ साहब से। कामरेड लछमिनिया देवी के परिवार को पूरा न्याय दिलाने का भरोसा दिलाया गया है। इंदिरा आवास के तहत जल्द से जल्द लछमिनिया देवी का नया मकान बनाने का काम करेगा प्रशासन और दोषियों को शीघ्र गिरफ्तार करने का वायदा दारोगा साहब ने किया है। एफआईआर लिख लिया गया है। हत्यारों पर सख्त से सख्त कार्रवाई होगी। सरकारी खर्च से पारवती का इलाज कराया जायेगा। इन आश्वासनों पर भरोसा करते हुए हड़ताल खत्म की जाती है। अब हम लोगों को लछमिनिया देवी के अंतिम संस्कार में जुटना होगा। कफन का पैसा बीडीओ साहब ने दिया है।”

“कामरेड राजबलम जिन्दाबाद... जिन्दाबाद जिन्दाबाद। कामरेड घमाड़ी राम जिन्दाबाद... कामरेड दुखी राम जिन्दाबाद... जिन्दाबाद जिन्दाबाद... कामरेड सुखाड़ी यादव जिन्दाबाद... जिन्दाबाद जिन्दाबाद... तेजनारायण महतो जिन्दाबाद... रामजी भाई जिन्दाबाद... जिन्दाबाद जिन्दाबाद, विनोद मिसिर जिन्दाबाद... लछमिनिया देवी अमर रहे... अमर रहे अमर रहे पारवति कुमारी जिन्दाबाद... जिन्दाबाद जिन्दाबाद... बीडीओ साहब जिन्दाबाद... दारोगा साहब भूल न जाना... अपना वादा तुम निभाना... सामंती ताकतें होश में आओ... होश में आओ होश में आओ...।” नारों से गांव का वातावरण गुंजायमान हो गया। खूटे पर बंधे मवेशी हंकड़ने लगे...ओबाड...बांड...

**बजाड़ी पागल** दिन भर बखेड़ापुर की गलियों में टहलते रहे और गरजते रहे... इतनी किसी की औकात नहीं...। उनकी आंखें लाल थीं। शायद अत्यधिक गांजा पी लेने के कारण या पता नहीं क्यों...। उनकी ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। वे कागज लिए हुए थे, कहीं बैठते तो उस पर कुछ लिखते, फिर उसे काटते, फिर कुछ लिखते, काटते... लिखते काटते अपने बाल नोचने लगते... कुछ लोगों ने उन्हें नारा लगाते हुए भी देखा, इंकलाब जिन्दाबाद... इंकलाब जिन्दाबाद... देश की जनता भूखी है, शर्म करो जो सुखी हैं... इतनी किसी की औकात नहीं... कोई किसी की लेगा नहीं, जब तक वो देगा नहीं... इंकलाब जिन्दाबाद...

**परवतिया** को जब जेठवार अस्पताल में लेकर पहुंचे बखेड़ापुर के लोग तब तक उसे होश आ गया था। वह अब कराहने लगी थी। संयोग से अखिलेश डाक्टर मिल गये। उन्होंने उसे पूरे यत्न से जांचा देखा और समुचित इलाज किया। एक बोतल पानी चढ़ाया। खिलाने के लिए कुछ दवाएं और जख्मों पर लगाने के लिए मरहम दिया। उसे एक सप्ताह आराम करने और बीच में कोई दिक्कत हो, तो खबर करने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि चिन्ता की कोई बात नहीं, जल्दी घाव भर जायेंगे। जब रूप चौधरी उन्हें चलते समय कुछ पैसे देने लगा, तो उन्होंने हाथ जोड़ लिये, “कैसी बातें करते हैं, सरकारी सेवक हूं। लोगों के साथ ठीक से पेश आना और उनके कष्टों को दूर करना तो मेरा दायित्व ही है। संयोग कहिए कि सारी दवाएं अस्पताल में ही मिल गयीं। कई बार मरीजों के लिए समुचित सरकारी दवाएं उपलब्ध न करा पाने पर मुझे खुद ही कोफ्त होती है। अक्सर ऊपर से दवाएं कई बार एक्सपायर्ड भेज दी जाती हैं, तो कई बार जरूरी दवाएं भेजी ही नहीं जातीं। सिस्टम काफी खराब हो गया है, मगर इसी सबके बीच हमें लोगों का खयाल रखना पड़ता है। जिनके पास पैसे हैं, वे तो शहर के बड़े अस्पतालों या निजी क्लीनिकों में चले जाते हैं, मगर गरीब लोग कहां जायेंगे? अच्छा किये आप लोग, बिना देर किये इन्हें लाये, समय पर इलाज हो गया, नहीं तो हालात खराब भी हो सकती थी।”

सब लोग लौटते हुए सिस्टम को गाली दे रहे थे। किसने ये कांड किया ये बात वे भूल गये थे। लछमिनिया की मौत के बाद परवतिया का आगे क्या होगा, असली चिन्ता अब यह थी। लोग सोच रहे थे, कौन करेगा परवतिया की देखभाल...। कुछ लोग यह सोच रहे थे कि गांव का माहौल अब सही नहीं रह गया है, गांव अब छोड़ना होगा। गइया चाचा ने कहा भी, गांव अब पहले वाला गांव नहीं रह गया है बचवा, यहां अब गरीब आदमी का निबाह नहीं होगा...।”

रूप चौधरी ने चिढ़ कर प्रतिक्रिया दी, “गरीब और लाचार आदमी का धरती पर कहां निबाह है... कहीं नहीं। गांव, शहर की बात नहीं है, खुद को मजबूत बनाना होगा। जागरूक होना होगा, संगठित होना होगा... लड़ना होगा...”

17

**मन के कोने में छिपा अपराधबोध**

**अश्रुधारा में बहा सकते हैं आप (जहीर कुरेशी)**

जब तक लोग परवतिया को जेठवार अस्पताल से लेकर बखेड़ापुर पहुंचे, तब तक विधायक खखोरन चंद्र यादव (जो नेतागिरी जमाने के बाद अब केंसी यादव हो गये थे) वहां पहुंच चुके थे और लछमिनिया के अंतिम संस्कार की तैयारी करवा रहे थे। विधायक जी को ज्वाला सिंह अपने दालान पर लेते गये थे। वे वहां बैठ कर पान खा रहे थे और अपने चारों तरफ जुट गयी भीड़ से मुंह घुमा घुमा कर बतिया



रहे थे। गांव में जो कांड हो गया था, उस पर कोई बात नहीं हो रही थी। वहां यह बात होने लगी थी कि विधायक जी कब मंत्री बन रहे हैं और कौन विभाग उनको मिल सकता है और किस विभाग में उनकी कितनी दिलचस्पी है और किस विभाग को वे 'अनेरिया' समझते हैं। जब वे मंत्री बन जायेंगे, तो किस तरह गांव को शहर और शहर को स्वर्ग बना देंगे, वे इसका बखान सुना रहे थे और लोग मुंह बाकर और आंखें फाड़ कर उनकी बातों को सुन रहे थे, "अईसा भी हो सकता है, ना?"

विधायक जी ने अपनी बंडी से निकाल कर पांच पांच सौ के तीन नोट लखमिनिया के क्रियाकर्म यानी जलाने की लकड़ी और कफन आदि का इंतजाम करने के लिए दे दिये थे। रड़ टोली के कुछ लोग अंतिम संस्कार की तैयारी कर रहे थे। लाश को कफन में लपेटा जा रहा था। सब सामान जुटाया जा रहा था। रड़ टोली की कुछ महिलाएं सुबक रही थीं, "घर उजड़ गया बेचारी का। अब परवतिया का का होगा? बियाह शादी भी नहीं हुआ है बेचारी का। आही रे राम ई कवन न्याय है जी? अइसे किसी को विपत्त में डाला जाता है..."

गांव में पहुंचने तक चैतन्य हो गयी थी परवतिया। वह अपनी माई को ढूँढ रही थी, "हमरा के हमरा माई के पास ले चलऽऽ जा हो भइया। हमार माई कहां है हो भइया।" वह विलाप करने लगी थी।

रूप चौधरी ने कहा कि इसको सीधे मेरे घर ले चलो। अपनी मां की लाश देखेगी तो बेहोश हो जायेगी। बहुत कठिनाई में है यह। इसको लाश दिखाना ठीक नहीं। रूप चौधरी ने परवतिया को समझाया, "तुम्हारी माई एकदम ठीक है। उसको हल्की फुल्की चोट लगी है। अस्पताल ले जाया गया है, अभी आ जायेगी।" पर परवतिया समझने को तैयार नहीं हुई और जोर से रोने लगी। छाती पीटने लगी। लोगों के पैर पकड़ने लगी, "तोहार गोड़वा धर तानी होऽ भइया, आही हो चाचा... माई से हमरा के मिला दऽ जा हो...हम माई बिना कइसे जीअब हो भइया...।"

किसी की एक नहीं सुन रही थी परवतिया। लगता था कि अगर उसको उसके घर नहीं ले जाया गया, तो जान ही दे देगी। आखिर उसको उसके घर ही ले चलना पड़ा। वहां उसने जब कफन में लिपटी लाश को देखा, तो देखते ही पछाड़ खाकर गिरी और बेहोश हो गयी। उसको कुछ महिलाओं ने अलग किया। उसके चेहरे पर पानी के छींटे मारे गये। उसकी हालत देख कर उसकी देखभाल करने वाली महिलाएं और जोर से रोने लगीं।

परवतिया के आने की बात सुन कर ज्वाला सिंह के दालान से उठ कर विधायक जी भी वहां पहुंच गये। उन्होंने परवतिया के पास जाकर उसके माथे पर हाथ फेरा और उसे अपने फंड से पचास हजार का मुआवजा देने की घोषणा की। उन्होंने कहा कि इसको किसी बात की कोई कमी नहीं होने दी जायेगी। पचास हजार मैं अपने फंड से दूंगा। इसको सरकारी नौकरी दिलवाने का भी काम करूंगा। दोषियों को शीघ्र गिरफ्तार किया जायेगा। चाहे कोई भी हो, बख्शा नहीं जायेगा। कानून अपना काम करेगा।... उच्चस्तरीय जांच करायी जायेगी, दोषी जहां भी हो उसे खोज निकाला जायेगा... हम न्याय दिलाने का काम करेंगे..."

समर्थक विधायक जी की जय जयकार करने लगे। नारे लगाने लगे।

लोगों ने विधायक जी के ओजस्वी भाषण को सुनते हुए भौंचक्क सा होकर खुद से सवाल किया, "अईसा भी हो सकता है, ना?"

मेला मजमा जल्दी ही उठ गया। लखमिनिया का अंतिम संस्कार बिना किसी भोज भात के सम्पन्न हो गया। परवतिया को उसके पड़ोसियों ने आठ दस दिन संभाला, इस बीच रूप चौधरी और राजबलम नेता लगभग रोज आकर हालचाल ले जाते। वह जब ठीक हो गयी तो रूप चौधरी ने प्रस्ताव किया कि परवतिया चाहे तो उनके घर चल कर रहे। उनके घर में बुधन तेली और स्वयं उनके अलावा

और कोई आदमी है नहीं, घर में कोई औरत भी नहीं है तो घर का कामकाज करने के लिए एक आदमी की जरूरत है ही, वहां यह पूरे सम्मान और सुरक्षा के साथ रहेगी। उनके इस प्रस्ताव को सुन कर रड़ टोली की महिलाएं आपस में मुस्कराने लगीं और एक दूसरे को कनखी मारने लगीं। परवतिया को यह प्रस्ताव जंच गया। उसने सोचा अपने घर में अकेले रहना खतरे से खाली नहीं है। गिद्ध सब कब मांस नोच ले, क्या ठिकाना। माई के रहते तो ई हाल हो गया। अब क्या होगा। रूप चौधरी के घर रहेगी तो कम से कम एक बरियारा की आड़ तो मिलेगी। दूसरे इधर रूप चौधरी द्वारा लगातार देखभाल और सहानुभूति के कारण उसके भीतर उसके प्रति एक सहज अनुराग भी पैदा होने लगा था। वह तैयार हो गयी।

रूप चौधरी के घर परवतिया के आने की बात सबसे अधिक खटकी रूप चौधरी के पिता बुधन तेली को ही। उन्होंने तत्काल अपना कम्बल गोल किया। फुलहा लोटा लिया और निकल पड़े, “बबुआ जवन जवन सौख अरमान हो पूरा कर ले। एही दिन देखने के लिए तुमको हम पैदा किये थे रे चांडाल। अब दुसाधिन घर में रहेगी और उसके हाथ का बना खायेगे बुधन। ए तोरी मैया के घोड़ा धांसो... का जमाना आ गया... अब लगता है जात धरम नहीं बचेगा रे। कर ले बबुआ जो करना हो, हम चले अब अजोध्या जी। ऊहे राम जानकी जो करना होगा करेंगे। आपन देखना बबुआ, हमार तो जिनिगी गुजर गयी। एह बबुआनन के गांव में गुजार लिए बबुआ भैया कह के जिनिगी, आ तुम तो जवानिये में जाति धरम नासने लगा रे पातकी, नीच... जय बजरंग बली... जय काली माई... जय डिहवार बाबा...।”

बहुत समझाया रूप चौधरी ने, “बाबू जी, जमाना बदल गया। देखिए इसका रूप किसी ठकुराइन से कम है का। साफ सुथरा रहेगी, खाना बनायेगी तो आपको काहे नहीं घोटायेगा। मत जाइए घर छोड़ कर। कहां जाइएगा। राम जी बाबरी के जूठा बैर नहीं खाये थे, बोलिए? जाति पांति भगवान का बनाया नहीं है, और भगवान का होता है... भगवान को आदमी ने बनाया है। अंधविश्वास में मत फंसिये। जमाना बदल रहा है...”

“अपना जमाना तुम अपनी मइया के उसमें रख ले रे नीच। तुम राम जी हो गया? वाह रे हमारे राम जी... ससुर सब रामजी बनल निकल जायेगा नीचे से। जब गांव के बबुआन सब तुम्हारा घर रंडीखाना बना देगा...।” नहीं माने बुधन तेली। निकल गये पैदल ही अजोध्या जी। वे जब चले तो कुत्ते भूंकते हुए उनके पीछे पीछे उन्हें छोड़ने सिवान तक आये। जैसे वे कुत्ते भी रो रहे हों और जोर जोर से समझा रहे हों, ‘कहां जा रहे हैं, जमाना बदल रहा है...।’ पर वे कांपते हुए डेग भरते चलते चले गये। भगवान जाने कैसे पहुंचेंगे, कब पहुंचेंगे, कहां पहुंचेंगे...?

## 18

**चीखें हों या चुपियां**

**सिसकियां या हिचकियां**

**अब अर्थ इनके**

**जरा नहीं खनकते (वसंत सकरगाए)**

संगीता मैडम के जीवन की गाड़ी अब संतुष्टि के जीटी रोड पर दौड़ रही थी। हथेली में घिचपिच लिखावट की जो लकीरें थीं वे अब सम्भवतः स्पष्ट और सीधी हो गयीं थीं। वे चार बार नैहर हो आयी थीं और चार बार पति के पास भी। उनका पति भी चार बार यहां उनसे आकर मिल चुका था। वह अब जिद करने लगा था कि वह अब चल कर उसके पास ही रहें और जगदीशपुर में ही पोस्टिंग ले लें। उसका कहना था कि अब साथ मिल कर सपनों का महल बनाना चाहिए। पर संगीता मैडम यह सपना देखना तो दूर इस सपने के बारे में अभी सोचती भी न थीं। वे अभी कौन सा सपना

देख रही थीं, इस बारे में कोई ठीक ठीक अनुमान उपलब्ध न था। वे कोई सपना देख भी रही थीं कि नहीं इस बारे में भी निश्चयपूर्वक बता पाना कठिन था। उनको जानने वाले तो बस यही कहते थे कि मैडमवा 'मउज' मना रही है। नौकरी ने उन्हें आर्थिक ही नहीं बल्कि मानसिक और शारीरिक आत्मनिर्भरता प्रदान की थी और अपने को वे सामाजिक, नैतिक व आर्थिक रूप से परम स्वतंत्र महसूस कर रही थीं। वे प्रेम और दाम्पत्य दोनों का एक साथ लुप्त उठा रही थीं। वे अपने प्रेमी अखिलेश डाक्टर के साथ अभी अभी मांडू से लौटी थीं और बहुत खुश थीं।

इधर साहित्य में भी उनकी दिलचस्पी काफी बढ़ गयी थी। धर्मवीर भारती की किताब 'गुनाहों का देवता', सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास 'मुझे चांद चाहिए', मनोहर श्याम जोशी का 'हमजाद' और राजेन्द्र यादव का 'आदमी की निगाह में औरत' आदि किताबें कभी तकिया के नीचे और कभी तकिया के बगल में रख कर सोती थीं। जिस तरह 'कादम्बिनी' से वे अब 'हंस' पर उतर आयीं थीं, उसी तरह इधर वे कविता से कहानी पर भी उतर आयी थीं। अभी हाल ही में दिल्ली के दरियागंज से प्रकाशित होने वाली एक चिड़िया नामधारी पत्रिका में उनकी लम्बी कहानी 'दो टांगों के बीच' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी, जिसकी जबरदस्त चर्चा दिल्ली के मंडी हाउस नामक जगह के आसपास हो रही थी और यह सम्भावना जतायी जा रही थी कि नामचीन रंगनिर्देशकों के निर्देशन में उसका कभी भी और कहीं भी मंचन हो सकता है।

उस कहानी के बारे में जिला स्तर के विद्वानों की मिलीजुली प्रतिक्रिया थी। कुछ का मानना था कि यह कहानी लेखिका के अत्यधिक सुंदर और कमनीय होने के कारण प्रकाशित हुई है और इसका पुनर्लेखन स्वयं पत्रिका के सम्पादक द्वारा सम्पन्न हुआ है। इस तर्क के प्रमाण के तौर पर वे पत्रिका में प्रकाशित लेखिका के श्वेत श्याम चित्र को दिखाते थे। चित्र में लेखिका के उरोज चित्र से बाहर कूद जाने को बेचैन मालूम होते थे। कुछ विद्वान इस तर्क को बकवास बताते हुए मानते थे कि उस कहानी में 'काम कला' के सर्वोत्तम विवरण उपस्थित थे, इसलिए वह उस 'जनचेतना के प्रगतिशील मासिक' में प्रकाशित होने के सर्वथा योग्य कहानी थी। बहरहाल उस कहानी को लेकर लखनऊ, भोपाल और पटना के तमाम वरिष्ठ और कनिष्ठ कथाकारों, कवियों और आलोचकों की चिट्ठियां भी संगीता मैडम को लगातार प्राप्त हो रही थीं। उन अधिसंख्य चिट्ठियों में कहानी के बारे में राय कम संगीता मैडम के बारे में पर्याप्त जिज्ञासाएं व्यक्त थीं और उनके उज्वल भविष्य की कामनाएं व्यक्त करते हुए यह कहा गया था कि इतनी कम उम्र में इस तरह की कहानी लिख लेना काफी मायने रखता है और विषयसम्बंधी पर्याप्त अनुभव उन्हें बेझिझक प्राप्त करते रहना चाहिए, क्योंकि सम्बंधित क्षेत्र में 'स्वानुभूति' का पुट और रचनात्मक निखार ला सकता है। जाहिर है संगीता मैडम इससे बहुत उत्साहित थीं और इस कदर उत्साहित थीं कि अपने उत्साह और हर्ष को किसी के साथ बांटना चाहती थीं पर उस गांव में वह ऐसा किसके साथ कर सकती थीं। उन्होंने बारी बारी से अपने पति, प्रेमी, सहकर्मी सबके बारे में विचार किया मगर उन्हें निराशा ही हाथ लगी। वे जानती थीं कि पति को उस कहानी के बारे में बताने पर वह पढ़ना तो दूर छूटते ही यही कहेगा कि क्या चूतियापे में पड़ी रहती हो, कविता लिखने वाली मीरा सनक गयी थी और पति को छोड़ कर पत्थर के भगवान को ही पति मानने लगी थी। फिर आगे कहेगा कि अच्छा बताओ ये सब लिखने पर कितना टका मिलता है? एको टका नहीं न? फिर काहे को टाइम खराब करती हो और दिमाग को दही बनाये रहती हो! और अगर पढ़ गया तो छिनाल से नीचे कम गाली नहीं देगा। हो सकता है झोंटा पकड़ के कुटम्मस भी कर दे। इन सारी बातों का खयाल करके उन्होंने उसे पति को पढ़ाने का खयाल छोड़ दिया। मगर अपने प्रेमी अखिलेश डाक्टर को अंततः पढ़ा ही दिया। पढ़ने के बाद उसने लेखिका की रचनात्मक क्षमता के बारे में या कहानी की कला और कथ्य पर कुछ कहने की जगह संगीता मैडम के नितम्ब में चूटी काटते हुए

कहा कि डियर तुमने तो हम लोग जैसे जैसे करते हैं, सब हू ब हू लिख दिया है बल्कि इसमें तुमने मुझे बिल्कुल 'कामदेव' का अवतार साबित कर दिया है। वह कहानी या कहानीकार की जगह अपनी तारीफ करने लगा और इस तरह संगीता मैडम के लेखकीय व्यक्तित्व को टेंगे पर रख दिया।

इस तरह हताश निराश संगीता मैडम ने हेड सर और पचमा मास्साब को कहानी पढ़ाने की सम्भावनाओं के बारे में सोचा और पचमा मास्साब को कहानी पढ़ाना उन्हें खतरे से खाली नहीं लगा तो अंततः हेड सर को ही पढ़ाने के लिए निर्णय लिया। उन्होंने पत्रिका की एक कॉपी हेड सर को दी जिसे पढ़े बिना ही उन्होंने संगीता मैडम का जम कर प्रोत्साहन किया। जैसे कि उन्होंने कहा, “हां लिखते रहिए, यह बहुत बढ़िया काम है। हम लोगों को तो समये नहीं मिलता नहीं तो बहिनचो के एक दिन बड़ठ के कस के लिख दिया जाये तो क्या लेखक सब लिखेगा। हमारे गांव के भरत सरमवा असही झूठ सांच लिखते लिखते अब बाम्बे पहुंच गया। जवान अब उहां भोजपुरी सिनेमा में गीत लिख रहा है। 'मउगा मरद' सिनेमा में सब गीत ओकरे लिखल है। आजकल जवान फाड़े हुए है बम्बइया लोग के।”

पत्रिका तो रख ली हेड सर ने पढ़ने के लिए मगर उन्हें उस पत्रिका को खोल कर देखने का भी न समय मिला, न इसके लिए उनकी कभी दिलचस्पी जगी।

बावजूद इसके संगीता मैडम को क्या फर्क पड़ता था। अब तो उनके पाठक और प्रशंसक देश भर में फैले हुए थे। कई पत्रिकाओं से उनकी रचनाओं की मांग होने लगी थी। मगर गांव संगीता मैडम की इस प्रतिभा और उपलब्धि से अभी सर्वथा अनभिज्ञ था। वे गांव के बुजुर्ग किस्म के लोगों के लिए 'महटराइन जी', नौजवानों के लिए 'बोलेरो' और प्रौढ़ लोगों के लिए 'विदेशी आइटम' थीं। गांव अपनी फुरसत में उनके बारे तरह तरह की चर्चाएं कर तरह तरह के रस लेता था। कुल मिला कर गांव के लिए वे रसभरी थीं जिसके लिए पचमा मास्साब समेत अनेक लोग अनवरत लार टपकाते रहते थे।

पचमा मास्साब निरंतर इस जुगाड़ में रहते थे कि कैसे 'मैडमवा' से उनकी निकटता बढ़े। वे अपने घर से कभी पांच किलो गुड़, कभी दस ठो ईख, कभी दो किलो चना तो कभी कुछ, कभी कुछ लाकर संगीता मैडम को गिफ्ट करने लगे थे जिसे संगीता मैडम बहुत अनिच्छा से ग्रहण करती थीं। पर पचमा मास्साब इस तरह कामांध थे कि उन्हें उनकी अनिच्छा तो कभी नहीं दिखती थी उनका जवान सुंदर और सुडौल शरीर ही दिखता था।

संगीता मैडम हंसती तो उनको लगता वह उनके लिए हंस रही हैं। संगीता मैडम मुस्करातीं तो उनको लगता वह उनके लिए ही मुस्करा रही हैं। संगीता मैडम गुनगुनातीं तो उनको लगता कि वह उनके लिए ही गुनगुना रही हैं। संगीता मैडम खातीं तो उनको लगता वह उनके लिए ही खा रही हैं। संगीता मैडम चलती फिरतीं, हगती मूतती कुछ भी करतीं तो पचमा मास्साब को यही लगता वह उनके लिए ही सब कर रही हैं और एक दिन वे उनका शरीर पा लेंगे तो संगीता मैडम का सब कुछ करना सार्थक हो जायेगा। पचमा मास्साब कतई यह खयाल नहीं पालते थे कि संगीता मैडम उनसे परम नफरत करती हैं। उन्हें उनकी नफरत ही नहीं दिखती थी, बाकी सब कुछ दिखता था।

## 19

**एक टहनी एक दिन पतवार बनती है  
एक चिनगारी दहक अंगार बनती है  
जो सदा रौंदी गयी मिट्टी समझ कर  
एक दिन मिट्टी वही मीनार बनती है (चंद्रभान भारती)**

रूप चौधरी के साथ परवतिया अब पार्टी की तमाम मीटिंगों में जाने लगी। पहले कुछ दिन तो लुईमुई बनी रही वह, पर रूप चौधरी से मिले पर्याप्त प्रोत्साहन, स्नेह और सम्मान ने उसके भीतर की झिझक

को भगा दिया। जहां भी जाना होता, वे दोनों साथ साथ रहते। रूप चौधरी ने एक सेकेण्ड हैण्ड मोटरसाइकिल ले ली थी, वह जहां जाता पीछे परवतिया को बैठा लेता। गांव के लोग पीठ पीछे दोनों पर हंसते, मगर सामने बोलने की हिम्मत नहीं होती किसी की। चारों तरफ माहौल बदलने लगा था। रूप चौधरी को पार्टी की पैरवी से लाइसेंस हथियार भी मिल गया था, जिसे वह अक्सर लिए रहता। गांव की बड़ टोली के लोग दोनों को मोटरसाइकिल पर बैठ कर कहीं आते जाते और रूप चौधरी को हथियार लेकर घूमते देखते, तो उनका खून खौलने लगता। उन्हें लगता कि गांव में छोटी जाति के लोग अब पूरी मजदूरी के लिए जो अड़ने लगे हैं, उसके पीछे इसी रूप चौधरी के बहकावे का हाथ है। यही उन लोगों का मन बढ़ा रहा है, साहस और सहारा दे रहा है। इसीलिए वे अब जो दे दिया जाय, उसी पर सब्र न कर अपने हक की बात करने लगे हैं। इस गांव ने अब तक मजूरों को काम के बदले उनकी वाजिब मजदूरी के हक को समझा ही नहीं था, सो नयी स्थितियां बहुत अटपटी लग रही थीं। मनेजर तिवारी इस पर सोचते तो कहते, “पगला गया है नन्हवा सब...! ऊ सबके आजकल बोलिए बदल गया है...”। खेत मालिकों को लग रहा था कि नान्ह सब बिगड़ रहा है। अगर उनके बिगड़ने पर काबू नहीं पाया गया, तो एक दिन वे लोग इतना बिगड़ जायेंगे कि सारे खेतों पर जबरन कब्जा कर लेंगे और मालिक बन कर उनको आंखें दिखाने लगे। गांव से खदेड़ देंगे। रहना मुश्किल कर देंगे। आकर दरवाजे पर पखाना करने लगे। घर में घुस कर रसोई के बरतन छू देंगे साले सब। भीख मांगना पड़ जायेगा बाभन राजपूत सब को। बीपी सिंहवा आरक्षण देके सरवा सब के पहिलही मन बढ़ाए हुए है।

ललन बाबा छांगुर सिंह से पूछते, “ए हो, बीपीओ सिंहवा राजपूते है?”

जवाब में छांगुर सिंह पहले दिल खोल कर अपनी जाति का अपमान ढंकने के लिए हंसते, जैसे कि कलंक के दाग पर सफेदी पोत रहे हों, फिर एक सवाल उछाल के चुप हो जाते, “आपको का लगता है, आपको वो राजपूत बुझाता है विधाता?”

पार्टी (माले) के कार्यकर्ता जगह जगह दूसरे गांवों में लम्बी चौड़ी जोतवाले “भू सामंतों” के खेतों पर लाल झंडा गाड़ कर हथियारों के बल पर कब्जा कर रहे थे जिसकी खबरें बखेड़ापुर के लोगों को डरा रही थीं। आये दिन अब अखबारों में छप रहा था माले समर्थित लोगों ने किया ठाकुर भीम सिंह के खेतों पर कब्जा दोनों तरफ से गोलीबारी में दो माले कार्यकर्ता समेत छह ढेर। फलाने गांव के किसानों की आर्थिक नाकेबंदी की नक्सली कार्यकर्ताओं ने। इसी सबके बीच ये खबरें भी आ रही थीं कि फलाने गांव के दलितों की बीस झोपड़ियां जल कर स्वाहा...। दलितों का नरसंहार, बच्चों और बूढ़ों समेत बीस को मारी गोली।

पूरे ज्वार भर में दहशत फैल गयी थी। तेजी से जातीय अविश्वास और हिंसा फैलने लगी थी। बखेड़ापुर के रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय में आसपास के सात आठ गांवों के बड़ी जाति वाले लोगों का रात में अचानक जुटान हुआ। इस मीटिंग में सबने इस बात पर चिन्ता जाहिर की... अब बड़े लोगों की इज्जत बचनी मुश्किल है। पचमा मास्साब ने भी इस मीटिंग में भाग लिया। उन्होंने विस्तार से चार पांच गांवों की सुनी सुनायी और कुछ देखी घटनाओं का जिक्र कर बताया कि किस तरह नान्ह लोगों का मन बढ़ रहा है। उनके नेता किस तरह दबंगई और गुंडई और लंठई पर उतर आये हैं। किस तरह उन लोगों ने बड़े लोगों का कुछ भी बोलना या थोड़ा भी कड़ा होना बंद कर दिया है। पहले हम लोग जब चाहते थे बिना कुछ दिये लिये उनकी मुर्गियां और बकरियां उठा कर लाते और बनाते खाते थे, अब वे उसकी दोगुनी चौगुनी कीमत वसूल रहे हैं और उस पर कभी कभी मना भी कर दे रहे हैं। गांवों में बात बात पर बवाल होने लगा है। नोनार के रघु मिसिर ने बताया कि

किस तरह वे लोग खेतों पर कब्जा कर रहे हैं, खेतों में लगी फसलें काट ले जा रहे हैं, किस तरह एक दिन अपने गांव के एक छोटी जाति वाले के बीमार पड़ने पर उन्होंने उसको शहर के अस्पताल ले जाने के लिए अपना ट्रैक्टर नहीं दिया और जब वह मर गया तो उनके ट्रैक्टर में उन लोगों ने आग लगा देने की असफल कोशिश की... आदि आदि। सबने अपने अपने दुखड़े पेश किये। अंत में सबने मिल कर तय किया कि बखेड़ापुर के भूतपूर्व सैनिक स्वर्गीय महावीर बाबा के नाम पर महावीर सेना बनायी जाय। सेना बनाने का विचार सबको पसंद आया। सबका तर्क था कि जिस तरह नान्हों की तरफ से लड़ने के लिए हथियारबंद नक्सलाइट पार्टी है, उसी तरह हमारी तरफ से लड़ने वाली हथियारों से लैस कोई सेना चाहिए। तभी ईंट का जवाब पत्थर से दिया जा सकता है। ज्वाला सिंह ने कहा कि हम लोग वोट भाजपा या कांग्रेस को देते हैं, मगर इन पार्टियों के नेता हमारे लिए हथियार नहीं चला सकते, खेत पर कब्जा करने वाले नक्सलाइटों से लड़ने के लिए कोई हथियारबंद दस्ता नहीं है, इसलिए महावीर सेना की बहुत जरूरत है। कांग्रेस और भाजपा के नेता हमें आर्थिक और प्रशासनिक मदद करेंगे तथा महावीर सेना शारीरिक रूप से गोला बारूद के साथ हमारी सुरक्षा करेगी और हम इस सेना के माध्यम से नान्हों को सबक सिखा सकेंगे। उनके बड़े हुए मन को चकनाचूर कर सकते हैं। उनको अपने अर्दब में ले सकेंगे। तय किया गया कि सेना में बड़ी जाति के जितने भी छटे हुए बदमाश, रंगबाज और लंठ किस्म के नवयुवक हैं, उनको भर्ती कर लिया जाय। आपस में चंदा कर उनके लिए हथियार और गोली बारूद का इंतजाम किया जाय। वे जिस गांव में जहां जहां जायें, वहां वहां के लोग उनके छिपने, रहने, खाने और पीने का इंतजाम करें। इन नवयुवकों को कुछ नगद न्यूनतम वेतन आदि भी दिया जाय। रहने, खाने, छिपने और पीने के समुचित बंदोबस्त और गोली बारूद के इंतजाम के साथ कुछ नगद मिलने का प्रस्ताव बेरोजगार और कम पढ़े लिखे नौजवानों को बहुत पसंद आया। बहुत सारे नौजवानों ने तत्काल सेना में शामिल होने की अपनी सहमति दे दी। सर्वसम्मति से नोनार के रघु मिसिर को सेना का अध्यक्ष, ठाकुर भीष्म सिंह को महासचिव, ज्वाला सिंह को संरक्षक, पचमा मास्साब को कोषाध्यक्ष और निर्मोही बालम को एरिया कमांडर बना दिया गया। तड़ तड़ बंदूकों के फायर से वातावरण गूंज गया। नारे लगने लगे महावीर बाबा अमर रहें... अमर रहें, अमर रहें... महावीर सेना जिन्दाबाद... रघु मिसिर जिन्दाबाद... ज्वाला सिंह जिन्दाबाद... निर्मोही बालम मत घबराना, तेरे पीछे सारा जमाना... एक का बदला दस से लेंगे... जिन्दाबाद जिन्दाबाद... माले पार्टी मुर्दाबाद... हमारे टुकड़ों पर पलनेवालों होश में आओ... होश में आओ, होश में आओ...

बखेड़ापुर में आधी रात को लगने वाले इन नारों से रेज टोला में दहशत फैल गयी। तत्काल वहां रूप चौधरी, परवतिया और राजबलम नेता पहुंच गये। इस टोले के सब नौजवान इकट्ठा हो गये। सबने अपने अपने हथियार संभाल लिये। जिसके पास जो हथियार था, उसे वह हाथों में लेकर चौकस हो गया। किसी के हाथ में तलवार, किसी के हाथ में भाला, किसी के हाथ में गंडासा, किसी के हाथ में हंसिया, किसी के हाथ में कुल्हाड़ी, तो किसी के हाथ में लाठी ही। परवतिया भी अब बंदूक से फायर करना सीख गयी थी। उसके हाथ में देसी पिस्तौल थी। जो जहां था, वहीं सजग और तैयार बैठा था, कि कहीं से कोई आहट दिखे तो तत्काल हमला बोलो। जिनके हाथ में पिस्तौलें, बंदूक आदि थी, वे एक दो चारों तरफ फैल गये थे। पर संयोग कहिये या पता नहीं महावीर सेना वालों के मन में क्या आया कि उन्होंने उस रात कोई हमला नहीं किया, वरना दोनों तरफ से बेहिसाब लाशें गिरतीं। थाना पुलिस के आते आते गांव श्मशान में बदल जाता।

दोनों पक्षों की जागते हुए और उतेजना व भय में लिपटे रह कर रात बीती। सुबह में जब मुर्गे बोलने लगे तब जाकर लोगों को थोड़ा इत्मीनान हुआ। लोगों को लगा कि बड़ा अपशगुन टला।

**रेज टोला** की मीटिंग हुई सुबह सुबह जिसमें सबको चौकस रहने की हिदायत दी गयी। किस तरह सजग रह कर आत्मरक्षा करनी है और किस तरह मौका पड़ने पर लड़ना भिड़ना है, इस पर सबने विस्तार से बातें की। राजबलम नेता ने विस्तार से बताया कि कामरेड नागभूषण ने कैसे गुरिल्ला लड़ाई लड़ने के लिए बताया है। घूरहू ये सब सुन कर अचरज में पड़ गये ई कवन कवन तरह के लड़ाई है एकरी मैया के, आदमी जानवर हो जायेगा का...?

अंत में रूप चौधरी ने नारायण कवि का बनाया हुआ एक गीत पेश किया, जिसे सबने पीछे पीछे मिल कर गाया

चारों ओर से घेरले बा पापी दुसमनवा, जाग भइया...  
 अब कइसे बांची जनवा, जाग भइया।  
 हमनीका रोटी बेटी भइल सब निलमवा, जाग भइया...  
 अब कइसे बांची जनवा, जाग भइया।  
 सुतले सुतल बीतल पुरुखन के उमरिया, जाग भइया...  
 अब तोहरे कान्ही भारवा, जाग भइया...  
 कहिये से घेरले बिया कारी ई बदरिया, जाग भइया...  
 फार जुलुम के अन्हरिया, जाग भइया...

20

**चारों कोनों में**

**आग लगी है**

**भर भर जल रहा है घर (अष्टभुजा शुक्ल)**

गांवों में जीवन की गहमागहमी घट गयी थी, फुसफुसाहटें बढ़ गयी थीं। लोगों को कोई बात कहनी होती तो जिससे कहनी होती उसके कान के पास मुंह ले जाते और कहते। मगर प्रदेश में एक बहरी, अहंकारी और भयंकर सरकार थी, जिसे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। और किसी में इतना दम कहां था कि जाकर उसके कान में मुंह सटाये। विपक्ष खुश था कि जनता त्राहि त्राहि कर रही थी, 'लो चुना है तो भोगो।' नगरों में अपहरण और छीनाझपटी का व्यापार चल निकला था। हर तरफ आतंक, आशंकाएं और अविश्वास काले बादल बन कर आकाश में छा गये थे। आतंक के बरगद ने चारों तरफ दूर दूर तक अपनी जड़ें और शाखाएं फैला ली थीं और उन पर दिन रात उल्लू और चील बैठे रहते थे जो न जाने क्या बोलते रहते थे और बीट करते रहते थे। जो आदमी घर से निकलता उसके माथे पर बीट इतनी ज्यादा फैल जाती और उन पक्षियों के शोर कानों में नगाड़े की तरह ऐसे बजने लगते जैसे कि आदमी को चेतनाशून्य बना देने का चहुंतरफा और अचूक प्रबंध कर दिया गया हो। खेती का कामकाज सिमट गया था, लोगों का दिन में भी घर से निकलना खतरे से खाली नहीं था। बंधारों बागीचों में अक्सर लाशें मिलने लगी थीं। दिन या रात में अचानक गोलियों की तड़ तड़ गूंजने लगती थी। कभी इस गांव की तरफ से शोर सुनाई पड़ता, कभी उस गांव की तरफ से। मवेशी खूटे पर बंधे हुए छटपटाते रहते, मगर किसे हिम्मत थी कि उन्हें धोने या चराने ले जाता। लोगों ने मवेशियों को बेचना शुरू कर दिया था, मगर खरीददार नहीं मिलते थे। गांवों से लोगों का पलायन बढ़ गया था। लोग गांव छोड़ कर शहर में कमाने या रहने के लिए भागने लगे थे। आसपास के तीन चार गांवों में दलितों का, तो दो गांवों में ठाकुरों और भूमिहारों का नरसंहार हुआ था। एक गांव में तो दलित परिवार के चालीस लोग एक ही रात गोलियों से भून डाले गये थे जिसमें एक तीन साल

की बच्ची भी थी। कुछ महिलाओं की योनि में गोली मार दी गयी थी। इस नरसंहार का जिम्मा अखबारों में बयान जारी कर महावीर सेना ने खुद ले लिया था। बच्चियों और औरतों की जघन्य हत्या के बारे में महावीर सेना के जोनल कमांडर निर्मोही बालम की तरफ से बयान छपा था कि हमारी सेना दरअसल उस फैक्ट्री को ही बंद कर देना चाहती है जिससे भविष्य के नक्सली पैदा हो सकते हैं। वहीं नक्सली पार्टी की ओर से हुए नरसंहारों के बाद उन गांवों में पार्टी के लोगों ने खून से दीवारों पर मोटे मोटे हफ्तों में लिख दिया था कि सामंती ताकतें होश में आओ वरना छह इंच छोटा कर दिया जायेगा। आग उगलते तरह तरह के नारे आपस में लड़ रहे थे। दीवारों से दीवारें लड़ रही थीं। जिन गांवों में नरसंहार सम्पन्न हो जाता, उन गांवों में सरकार की तरफ से बाद में थोड़ी लिखापट्टी और कुछ दूसरी औपचारिकताओं के बाद पुलिस कैम्प की स्थापना कर दी जाती। प्रदेश में जगह जगह ऐसे वारदातों के बाद तैनाती के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल को मंगा लिया गया था। नक्सली पार्टी का आरोप था कि ये पुलिसवाले भी सामंती ताकतों से मिले हुए हैं। पुलिस वाले गांवों में कैम्प के लिए तिरपाल तानते ही सबसे पहले गांव की बची देशी मुर्गियों और बकरियों पर टूटते और उनका भोग लगाते। गांव की नयी लड़कियों और युवा महिलाओं पर भी हाथ साफ करने की कोशिश करते।

पार्टी कार्यकर्ता और महावीर सेना के जवान केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की तैनाती के बावजूद गांवों में गुप्त रूप से घूमते रहते और अपने अपने समर्थकों के घरों में छिप कर रहते, मीटिंग करते और चंदा वसूलते। गांव वालों के पास आमदनी का कोई स्रोत नहीं बच सका था, मगर अपने अपने संगठनों को चंदे देना विवशता थी। संगठन के लोग चंदा नहीं देने पर धमकियां और सजाएं भी देते थे। चंदा वसूलने में दोनों संगठन अपने प्रभावित समर्थकों पर कोई कौताही या रियायत नहीं बरतते थे। महावीर सेना ने अपने समर्थकों पर खेत के हिसाब से प्रति बीघा एक रेट निर्धारित कर रखा था जिसके पास जितनी जमीन होती, उसके हिसाब से उन्हें चंदा देना पड़ता। चंदा देने पर आनाकानी करने वालों को संगठन की गुप्त बैठकों में बुला कर बांध कर पीटा जाता। ठीक वैसा ही सुलूक जैसा अब तक ये लोग छोटी जाति के अपने बंधुआ मजदूरों और रियाया के साथ करते आये थे। लोग जैसेतैसे जुगाड़ कर या यहां वहां से कर्ज लेकर भी चंदा देने को विवश थे। जिनके घर में नौकरी या दूसरी कोई बाहरी आमदनी या बहुत ज्यादा खेती थी, उनकी तो कोई बात नहीं थी मगर छोटी जोतवालों को काफी मुश्किलातों का सामना करना पड़ रहा था। शादियों का काम तक ठप पड़ गया था। अब्वल तो ऐसे अशांत इलाके में कोई अपनी बेटी या बेटा ब्याहना नहीं चाहता था। दूसरे शादी का उत्सव करने के लिए लोगों के पास कुछ था भी नहीं। शादियों के कई सालों से ठप पड़े होने के कारण बलात्कार और व्यभिचार की घटनाएं भी काफी बढ़ गयीं थीं। नवजात शिशु कूड़े के ढेरों पर फेंके जाने लगे थे। लड़कियों का बाहर अकेले निकलना मुश्किल था। शादी के लिए लड़कों का अपहरण होने लगा था। दबंग लोग दिनदहाड़े जाति विरादरी के किसी धनी परिवार के लड़के का अपहरण कर लाते और अपने घर की विवाह योग्य लड़की से शादी करा कर उसके घर लड़के लड़की को पहुंचा आते। इन अनचाही वधुओं को अपना जीवन तमाम तरह के संत्रास और घुटन के बीच गुजारना पड़ता। बहुएं जला कर मारी जाने लगी थीं, वैसे सरकारी रिकार्ड में वे स्टोव के फटने या घर में ढिबरी से साड़ी में आग पकड़ लेने के कारण मर रही थीं।

संगठनों के लोग चंदा वसूलने में ही निर्ममता से पेश नहीं आते बल्कि उनके दस्ते जिन गांवों में जाते, वहां अपने समर्थकों के घरों में रुकने पर खाने पीने और रहने के नाम पर भी काफी तंग करते। दोनों संगठनों के दस्तों में लगभग एक ही तरह के लोग थे। फिर भी नक्सली पार्टी के दस्तों के उत्पात और अत्याचार की शिकायत कम से कम पार्टी के भीतर की जा सकती थी और उसकी



सुनवाई भी होती थी, मगर महावीर सेना के दस्तों के अत्याचार और जुल्म की कहीं कोई सुनवाई नहीं थी। उसे सहने और चुप रहने के अतिरिक्त और कोई विकल्प था ही नहीं।

बखेड़ापुर में एक बार ललन बाबा के घर महावीर सेना के दस्तेवाले देर रात आये। उन्हें करीब एक बजे रात में अपने घर की जनानियों को जगा कर कुल करीब दस बारह लोगों के लिए खाना का इंतजाम करना पड़ा। उन लोगों ने खाने में पूड़ी सब्जी की फरमाइश की। पीने के लिए दारू का प्रबंध करना पड़ा। उन्हें आसपास के घरों के लोगों को भी जगा कर सारा कुछ प्रबंध किये बिना मुक्ति नहीं थी। इतनी देर रात गये पड़ोसियों के दरवाजे खुलवाने पर पहले तो पड़ोसी डर गये कि गांव में कोई कांड हो गया क्या मगर फिर लोगों ने मिलजुल कर सारा प्रबंध किया। खाते पीते तीन बज गया। रेज टोल के लोगों को महावीर सेना के दस्ते के गांव में रुके होने की खबर लग गयी। उन लोगों ने तत्काल जाकर पुलिस छावनी पर रिपोर्ट की। चूँकि लोगों ने समूह में जाकर और अपने नेता रूप चौधरी और राजबलम के नेतृत्व में पुलिसवालों से शिकायत की थी, इसलिए पुलिस को तत्काल कार्रवाई करनी पड़ी। पुलिस ने उसी समय छापा मारा। दस्ते के कुछ लोग भाग गये। कुछ लोग उन घरों में जनानियों के कपड़े पहन कर उनसे सट कर सो गये। घरवालों को बहुत बुरा लगा मगर महावीर सेना के लोगों की मुखालफत की कीमत उन्हें पता थी, इसलिए चुप रहे।

पुलिस बल के वापस लौटने के बाद सुबह छुप कर निकलते समय महावीर सेना के लड़ाके रेज टोली के दो लोगों का मर्डर भी करते गये। अगले दिन पुलिस की मारपीट समर्थकों को झेलनी पड़ी। कुछ लोग पकड़ कर जेल में बंद किये गये।

मर्डर के बाद पता नहीं कहाँ कहाँ से माले पार्टी समर्थक कार्यकर्ताओं का गांव में जमघट लग गया। आसपास के चार पांच गांवों की दलित महिलाएं, बच्चे और पुरुष लाठी, कुल्हाड़ी और हंसिया लिए हुए लाश के साथ पूरे गांव में घूमे। फिर लाश को ब्लॉक पर ले जाया गया, जहां विधायक केसी यादव के पधारने और मृतकों के आश्रितों को मुआवजा देने और नौकरी का आश्वासन दिलाने के बाद ही लाशों का अंतिम संस्कार किया गया।

पारवती को कम्युनिस्ट माले पार्टी ने महिला स्कवाड का कमांडर बना दिया था। वह अब महिलाओं को आंदोलन से जोड़ने और उन्हें हथियार चलाने का प्रशिक्षण देती थी। उसने बहुत सारी महिलाओं को पार्टी से जोड़ा था और उन्हें सक्षम बनाते हुए पार्टी के उद्देश्यों के लिए विभिन्न मोर्चों पर तैनात कराया था। रूप चौधरी को पार्टी ने एरिया कमांडर बना दिया था। आंदोलन अपने परवान पर था। पारवती का पार्टी के बहुत सारे बड़े नेताओं से सम्पर्क हो गया था। अब इधर के सभी गांवों में उसकी तूती बोलती थी। पूंजीपति और बड़े खेतिहर उसका नाम सुन कर कांपते थे। वह पूंजीपतियों और व्यापारियों से भी अब पार्टी के लिए चंदे वसूल करती थी। महावीर सेना के कमांडों की हिटलिस्ट में उसका नाम प्रमुखता से शामिल हो गया था। उसने एक बार देवनारायण डॉक्टर को दौड़ा कर गोली मारने का प्रयास किया था, मगर संयोगवश वे बच गये। गोली पैर में लगी थी।

यों कम्युनिस्ट पार्टी में सभी जाति के लोग थे और एरिया कमांडर और नेशनल कमेटी में तो भूमिहार, राजपूत और ब्राह्मण जाति के कुछ नेता बड़े पदों पर थे, मगर यह पार्टी मुख्यतः बड़ी जातिवालों को ही निशाना बनाती थी। इस पार्टी की घोषित लड़ाई सामंतों से थी। ये लोग सबसे पहला नारा यही लगाते, 'सामंती ताकतें होश में आओ।

महावीर सेना के लोग अपने समर्थकों को भड़काते, भठिहारा है सब कि कमनिस्ट है... आरे दू बीघा खेत नहीं त्रिपुरारी पंडित के, तो ऊ कैसे सामंत हो गये? उनके बेटा को भी नहीं छोड़ा सब नीच। दौड़ा के गोली मार दिया। वह तो हम लोग के सेना में भी नहीं था... कॉलेज में पढ़ता था। ई सब सफाया करने में लगा है धरती से बड़ जाति के, सामंत फामंत कुछ नहीं।'

“सोना बेच कर लोहा खरीदो... महावीर सेना जिन्दाबाद... जिन्दाबाद जिन्दाबाद। बोली का जवाब गोली से देंगे... गोली से देंगे गोली से देंगे...”

21

यह ऐसा समय है

जब कोई हो जा सकता है अंधा, लंगड़ा,  
बहरा, बेघर या पागल... (मंगलेश डबराल)

बखेड़ापुर में भी रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय, पुलिस छावनी में तब्दील हो गया था। स्कूल अब अस्थायी तौर पर ही लगता। बच्चे बहुत कम स्कूल आ पाते, शिक्षक भी कम आते या नहीं आते कौन पूछने वाला था। गांव के बिगड़े माहौल के कारण संगीता मैडम ने अपना ट्रांसफर जिला मुख्यालय पर करा लिया था। बल्कि नयी परिस्थितियों के कारण अब पूरे जिले में ही पढ़ाई लिखाई का कोई माहौल नहीं रह गया था। पढ़ाई लिखाई ही क्यों, विकास के सारे कामकाज लगभग ठप पड़ गये थे। सड़कों और पुलों का बनना, कृषि या डेयरी उद्यम सम्बंधी योजनाओं का कार्यान्वयन आदि तमाम सरकारी कारोबार जो विकास और प्रशासन के नाम पर आमतौर पर राजधानी से बाहर के उद्योग वंचित छोटे जिलों में चलते रहते हैं, उन पर जैसे एकाएक ब्रेक लग गया था। इससे पेशेवर ठेकेदारों और दलालों को भी काफी असुविधा का सामना करना पड़ रहा था। सरकारी अधिकारी आदि भी रिश्तत का भरपूर मजा उठाने में कठिनाई ही नहीं, वंचना तक का अनुभव कर रहे थे। वे जिले से बाहर अपना स्थानांतरण कराने के लिए लगे हुए थे। यहां सिर्फ कमाई ही बाधित नहीं थी, बल्कि जान पर भी आफत थी। अधिकारी अपराधियों की कमाई के स्रोत बन गये थे। कभी महावीर सेना वाले चंदा मांगते, कभी कोई गुंडा अपहरण की धमकी देकर फिरौती वसूलता।

वैसे यह ठीक वही समय था जब प्रदेश की कमान एक ऐसे बेबाक और सर्वहारा किस्म के नेता के हाथ में आ गयी थी, जो जेपी के मूवमेण्ट से निकला था। जिसने प्रदेश की जनता को बड़े बड़े सपने दिखाये थे, लोगों से उनकी भदेस जुबान में ही बातें करना और उन्हें ठेठ सर्वहारा अंदाज में सम्बोधित करना उसकी खास अदा थी। मगर प्रदेश में शासन की बागडोर संभालते ही उसने अपने तमाम लम्पट और खूंखार गुर्गों को भरपूर मनमानी करने की अनौपचारिक छूट दे दी थी। चोरी और अपहरण का कारोबार काफी तेजी से फैलने लगा था। प्रशासनिक अधिकारी चूंचपड़ करने पर सरेआम मार खाने लगे थे। पूरे राज्य में नेताओं के अलावा सभी लोग दहशत में जीने लगे थे। प्रदेश से व्यापारी और उद्योगपति पलायन कर रहे थे। कुल मिला कर राजनीति की फसल लहलहा रही थी और खादी का जेपी कट कुरता पजामा पहन कर घूमना रुआब का स्रोत बन गया था। दबंगई को वैधता मिल गयी थी। हर गली कूचे में दो चार नेता रहने लगे थे। चाय पान के खोखे राजनीतिक तिकड़मों का प्रशिक्षण स्थल बन गये थे। बड़ी संख्या में अपराधी विधायक बन गये थे। मुख्यमंत्री मंच पर आला अधिकारियों से खैनी बनवाता था। प्रदेश में ऐसे साहित्यकारों की एक जमात उभर आयी थी, जो मुख्यमंत्री की तारीफ में किताबें, आरती या चालीसा आदि लिख रहे थे। ऐसी किताबों को धीरे धीरे पाठ्यक्रमों में भी घुसाया जा रहा था।

इस जगरमगर राजनीतिमय गहमागहमी की चपेट में आने से भला संगीता मैडम कैसे बचतीं। उनका भी सत्ताधारी पार्टी के बुद्धिजीवी टाइप के एक विधान पार्षद से परिचय हुआ, जो समकालीन साहित्य के रसिक थे तथा तमाम साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं में छपने वाले लेखकों के जीवन परिचय के घनघोर पाठक। ऐसे ही दो एक पत्रिकाओं को उलटते पलटते उन्होंने संगीता मैडम का भी फोटो

कहीं देखा था और उनके परिचय को पढ़ा था। और उनके पते पर चिट्ठी लिख दी थी, जिसका जवाब भी आ गया था। धीरे धीरे पत्राचार बढ़ा था और सम्पर्क सम्बंध प्रगाढ़ होते होते भेंट मुलाकात होने लगी थी। अक्सर जब संगीता मैडम राजधानी आतीं, तो इस साहित्य रसिक विधान पार्षद नरोत्तम जी से मिलतीं और कभी कभी उनकी गेस्ट भी बनतीं। नरोत्तम जी उन्हें अपनी काली हुंडई कार में जिसके शीशे भी काले थे, बैठा कर शहर के तमाम पर्यटन स्थलों और पार्कों में घुमाते और सबसे अच्छे रेस्तरां में कभी लंच और कभी डिनर कराते। वे आपस में राजनीति और साहित्य में 'महिला विमर्श' पर बातें करते जिसका कुल निचोड़ यह होता कि 'कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है'। संगीता मैडम अंततः इस निष्कर्ष से बिल्कुल सहमत हो जातीं और कहतीं, "आप ठीके कहते हैं सर।" वे नरोत्तम जी को सम्पादक राजेन्द्र जी के 'स्त्री विमर्श' के बारे में बतातीं और नरोत्तम जी संगीता जी को लोहिया जी के स्त्री विमर्श के बारे में बताते। इस तरह वे परस्पर एक दूसरे के स्त्री विमर्श सम्बंधी सामान्य ज्ञान को अपडेट कर रहे थे। इस संगत का दोनों को परस्पर लाभ ही लाभ मिल रहा था और कुल मिला कर दोनों को संगत का भविष्य बहुत उज्ज्वल दिखाई दे रहा था। बल्कि लग रहा था कि इस दोस्ती से भौतिक सुख भी मिलेगा और सत्ता की मौज भी। लग क्या रहा था बल्कि उसकी आंच की मद्धिम मद्धिम, मीठी मीठी गर्मी दोनों को महसूस भी हो रही थी।

नरोत्तम जी ने संगीता मैडम का धीरे धीरे पार्टी के पदाधिकारियों और मंत्रियों से परिचय करवा दिया था और वे उनसे बहुत तेजी से हेलमेल बढ़ा रही थीं। पार्टी के दीगर नेता नरोत्तम जी की विद्वता और नरोत्तम जी की मुख्यमंत्री से नजदीकी के कारण संगीता मैडम के साथ प्रायः बहुत तमीज और आदर के साथ पेश आते ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, मगर कम से कम लिहाज रखते थे, ऐसा कहा जा सकता है। यह नजदीकी दिनोंदिन इतनी प्रगाढ़ होती चली गयी कि एक दिन संगीता मैडम ने स्वास्थ्य मंत्री से डायरेक्ट बात कर अपने प्रेमी अखिलेश डॉक्टर का ट्रांसफर राज्य की राजधानी में ही करा दिया और कुछ दिनों के बाद अपनी नौकरी से इस्तीफा देकर सत्ताधारी पार्टी ज्वाइन कर लिया। राजनीति में संलग्नता और व्यस्तता के कारण उनके लेखन में किञ्चित ठहराव पैदा हुआ, मगर सत्ता से सम्पर्क के कारण उनकी साहित्यिक हनक में तो इजाफा ही हुआ। साहित्य समीक्षक ओम छलिया ने जो मुख्यतः काव्य के समालोचक थे, संगीता मैडम के साहित्य में योगदान पर हिन्दी पट्टी में सर्वाधिक बिकने वाले अखबार दैनिक नव जागरण में पूरे एक पेज का लेख लिखा जिसे उस अखबार ने संगीता मैडम की तीन अलग अलग मूड्स की फोटो के साथ प्रकाशित किया। एक फोटो में तो संगीता मैडम मुख्यमंत्री की बगल में एक पुल के उद्घाटन के मौके पर खड़ी थीं और मुख्यमंत्री की ओर देख कर मुस्करा रही थीं। इस डिस्प्ले के साथ यह लेख छपने से संगीता मैडम को किञ्चित राजनीतिक फायदा हुआ और बदले में संगीता मैडम ने अखबार के साहित्य सम्पादक को रॉयल चैलेंज की दो बोटल शराब भिजवायी और समीक्षक ओम छलिया को बस फोन भर कर लिया। ओम छलिया ने उस फोन कॉल्स को इतना महत्वपूर्ण माना कि उसने इसे एक अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक घटना के रूप में अपनी डायरी में दर्ज कर लिया कि 'मैडमवा कबो मंतरी संतरी बनेगी, तो उसे याद दिलाया जायेगा। का पता कौनो कामे निकल आये...।'

कई तरह की छोटी पत्र पत्रिकाओं में संगीता मैडम के भर भर पेज के साहित्यिक साक्षात्कार छपने लगे, जिसमें वे अपनी भरपूर राजनीतिक चेतना का प्रमाण देते हुए वर्तमान मुख्यमंत्री और सत्ताधारी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष की जम कर तारीफ करतीं। ऐसे साक्षात्कारों को मौका देख कर वे मुख्यमंत्री को ले जाकर दिखलातीं, तो वे बहुत खुश होते और कहते कि फइलवा में लगवा दीजिए। इस तरह की फइलवा जब मोटी होने लगी तो मुख्यमंत्री को भी लगा कि मैडमवा का लगता है कि

मीडिया आ बुद्धिजीवी वर्ग में बहुत अच्छा कान्टैक्ट है, तो क्यों नहीं इसे प्रवक्ता टाइप का कुछ बनवा दिया जाय। उन्होंने प्रदेश अध्यक्ष से इस सम्बंध में बात की।

प्रदेश अध्यक्ष को यह बात अच्छी नहीं लगी क्योंकि मैडमवा को वे कई बार ट्राई कर चुके थे और असफल रहने पर यह निष्कर्ष निकाला था कि ई तो एकदमे करप्ट है और उसके प्रति उदासीन रहने लगे थे मगर मुख्यमंत्री खुद प्रस्ताव दे रहे थे तो वे क्या कहते, सहर्ष तैयार हो गये। इस तरह संगीता मैडम सत्ताधारी पार्टी की प्रदेश स्तरीय प्रवक्ता बना दी गयीं। सत्ताधारी पार्टी का प्रदेश प्रवक्ता बना दिये जाने के कारण वे राजधानी के धाकड़ किस्म के पत्रकारों की नजर में भी आ गयीं। मगर पत्रकारिता की कोई लक्ष्मणरेखा जैसी चीज होती है, उस कारण ये पत्रकार संगीता मैडम को हद से हद भौजाई भर अनुराग से ही देख पाते थे। संगीता मैडम चूँकि साहित्य से जुड़ी थीं, इसलिए वे पत्रकारिता के प्रति भरपूर स्नेह रखती थीं और इसीलिए वे पत्रकारों को भी एक हद तक ठीक ठीक प्यार करती थीं। पत्रकार उनके बारे में भले अपने दिमाग के भीतर जो भी ख्याल रखते हों पर अपने कलम से उनकी बुद्धिजीवी टाइप छवि बनाने में लगे हुए थे। उनकी प्रेस कांफ्रेंस में वे उनसे वैसे ही सवाल पूछते थे जिससे उनकी छवि साफ सुथरी और तेजतर्रार रूप में निखर कर आ जाये और इस छवि को अपने अखबार में चार से छह कालम तक में चिपका कर संतोष का अनुभव करते थे। सम्पादकों को कैसे पटया जाता है, संगीता मैडम ने राजनीति में आने के कुछ ही महीनों में जितनी तेजी से सीख लिया, वह हैरत में डालने वाला था। मगर संगीता मैडम को इससे फायदा यह हुआ कि वह मुख्यमंत्री की और खासमखास होती चली गयीं।

समय बदलता गया, परिस्थितियां पलटती गयीं। धीरे धीरे हालात तो यहां तक पहुंचे कि अब विधान पार्षद नरोत्तम जी के लिए भी संगीता मैडम का दर्शन 'जब चाहा, जहां चाहा' के आधार का नहीं रहा। उन्हें भी मौके का इंतजार करना पड़ता अब। इस बात से किन्चित्त दुखी भी रहते। उनके अंदर ईर्ष्या की मानव सहज लहरें हिलोंरं मारतीं जबतब।

## 22

**दिमाग में सिर्फ एक सन्नाटा है  
मस्तिष्क में कोई विचार नहीं  
मन में कोई भाव नहीं (राजेश जोशी)**

अचानक बहुत दिनों बाद पटना के एक बीयर बार में एक शाम धीरू और सुदामा टकरा गये। बहुत दिनों बाद बल्कि कई वर्षों बाद मुलाकात के बावजूद दोनों को एक दूसरे को पहचानने में तनिक देर न लगी। दोनों बचपन के यार थे, इतने अंतराल के बाद मिलने पर वे दोनों आपस में लिपट गये। फिर एक ही मेज पर बैठ कर बीयर का आर्डर किया। सामान्य हालचाल के दौरान दोनों ने इस अंतराल में अपनी अपनी पढ़ाई लिखाई, बेरोजगारी, संघर्ष और भागमभाग की कहानी एक दूसरे को सुनायी। नौकरियों के साक्षात्कारों में पूछे जाने वाले ऊटपटांग सवालों की चर्चा करते हुए दोनों हंसते रहे। धीरू उर्फ धीरेन्द्र पांडेय जो अब पत्रकार हो गया था और एक उपसम्पादक के रूप में एक राष्ट्रीय अखबार में काम करने लगा था, वह तो बेरोजगारी के दारुण अनुभवों, भर्ती बोर्डों की धांधलियों और विश्वविद्यालयों में व्याप्त अराजकता और भ्रष्टाचार को लेकर एक पूरी किताब लिखने की ही योजना बना रहा था। वह अपने अनुभवों को बहुत रोचक ढंग से बता रहा था। सुदामा ने उसे बताया कि किस तरह कई जगहों से छंटते छंटते आखिर में उसकी नियुक्ति एक बैंक में हुई जबकि उसकी तनिक भी दिलचस्पी बैंकिंग में नहीं है। उसका प्रिय विषय तो राजनीतिशास्त्र है और वह अध्यापन के काम

में लगना चाहता था। उसका मानना था कि नियति इतनी प्रबल चीज है कि उसके आगे प्रयत्न और प्रतिभा तक को पानी भरना पड़ता है। वह इसे कई कई राजनीतिक घटनाक्रमों के उदाहरणों से साबित करना चाह रहा था पर धीरू इस आकलन से अपने को सहमत नहीं पा रहा था। बात के इसी सिलसिले में बखेड़ापुर की बात चली आयी। किस तरह बदलाव की अंगड़ाइयां लेता हुआ वह गांव जातीय कलह और कल्मष की चपेट में आ गया और अंततः हत्यारी कार्रवाइयों के बीच छटपटा रहा है। धीरू का इस विषय में मानना था कि इस तरह के जातीय झगड़े की आग को वर्तमान सत्ताधारी दल जानबूझ कर भड़का रहा है ताकि लोग आपस में इस मारकाट में उलझे रहें और शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार और अराजकता की ओर उनका ध्यान न जाय, लोग विकास की मांग न करें। पुल, खाद, पानी, नहर, सड़क की मांग न करें। रोजगार की मांग न करें। सुदामा जबकि इस मामले को सामाजिक बदलाव की छटपटाहट के तौर पर देख रहा था और समूचे घटनाक्रम को स्वतःस्फूर्त मान रहा था। दोनों कुछ चीजों पर सहमत भी थे जैसे कि राजनीति अपराधियों की ऐशगाह बनती जा रही है। गोली और गुंडई के बल पर प्रजातंत्र का मजाक उड़ाते हुए किस तरह दबंग लोग जबरन सत्ता हथिया रहे हैं, दोनों ने इस पर एक तरह की प्रतिक्रियाएं व्यक्त कीं। अपराधी मंत्री और विधायक बन कर किस तरह अफसरों को गलत काम करने को विवश कर रहे हैं, इससे दोनों चिन्तित दिखे। धीरू ने सुदामा को एक दिलचस्प घटना सुनायी, “राजधानी के एक डॉक्टर की कार चोरी चली गयी। वे बेचारे थाने में गये, रपट लिखायी, दौड़ते रहे, हार थक कर एस.पी., डी.आई.जी., आई.जी. सबके यहां गुहार लगाने पहुंचे, कहीं से कोई सुनवाई नहीं हुई। अंततः एक नेता उनको मुख्यमंत्री के यहां ले गया। जब मुख्यमंत्री के यहां शिकायत करने पहुंचे तो उनकी कार वहीं उन्हें लगी हुई दिखी। तो यह हाल है।”

सुदामा ने सिगरेट सुलगा ली। कहने लगा, “आज लोगों पर हथियारों का ऐसा पागलपन सवार हुआ है कि लोग रोटी से अधिक हथियार की चिन्ता करते हैं। लोगों में असुरक्षा और ईगो काफी भीतर तक घर कर गये हैं। कोई किसी की कुछ मदद करे न करे, सबक जरूर सिखाना चाहता है। इस सामंती आचरण को बढ़ाने में हाल की राजनीति मार्गदर्शक की तरह काम कर रही है।”

धीरू का मानना था, “लोगों में हथियारों की होड़ पैदा करने के लिए कम्युनिस्ट पार्टियां भी जिम्मेदार हैं। वे वर्ग शत्रुओं से लड़ने की जगह कमोबेश एक ही तरह की समस्याओं और आर्थिक स्थितियों में घिरे लोगों को आपस में लड़ा रही हैं। जिन गांवों में कम्युनिस्ट पार्टियों ने इस तरह का युद्ध छेड़ा है, वहां खेती किसानों का काम बंद हो गया है। किसान मजदूर दोनों छटपटा रहे हैं। लोग आंख मूंद कर गांवों से शहरों की ओर दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं। लगता है कि कम्युनिस्ट आंदोलन चलाने वाले खुदे कन्फ्यूज हैं। इसलिए उनके भीतर ही आपसी वैचारिक और सांगठनिक टूट फूट चल रही है।”

सुदामा ने इस बीच जल्दी जल्दी दो घूंट भरे और कुछ देर सोचता रहा फिर बोला, “मुझे इस बात की बिल्कुल प्रामाणिक जानकारी है कि महावीर सेना को मुख्यमंत्री की ओर से परोक्ष आर्थिक और प्रशासनिक मदद मिल रही है। वहीं कम्युनिस्टों के प्रति भी सरकार का रुख नरम है। दोनों तरफ के एक भी बड़े नेता नहीं गिरफ्तार किये जा रहे हैं बल्कि कार्रवाई के नाम पर छोटे छोटे लोगों को गिरफ्तार कर मारापीटा जा रहा है। बल्कि वैसे लोग खासतौर पर प्रताड़ित किये जा रहे हैं जो कहीं से भी इस लड़ाई में शामिल नहीं हैं बल्कि इसके भुक्तभोगी जरूर हैं।”

धीरू ने बीयर का घूंट भरते हुए समझाने के अंदाज में कहा, “भाई जो सताये और दबाये गये लोग हैं, वे आखिर कभी न कभी तो कुनमुनायेंगे ही। किसी का अनंत काल तक दमन नहीं किया जा सकता। साम्यवादी आंदोलन या क्रांति की बात जाने भी दीजिए तो दलित दमित लोगों को थोड़ा

रिलीफ चाहिए न।” इस पर सुदामा ने हस्तक्षेप किया, “असली शोषक, बड़े बड़े उद्योगपति, सेठ, शासक जिन्होंने अधिसंख्य पूंजी और व्यवस्था को घेर रखा है, वे तो बड़े बड़े शहरों और महानगरों में बैठे हैं उनसे क्यों नहीं लड़ रहे माओवादी या मार्क्सवादी? अम्बानी, बिड़ला, टाटा, बजाज कौन कौन तो हैं, तो ये गरीबों और सर्वहारा के माई बाप हैं क्या? इनके बारे में तो कभी कुछ नहीं कहते ये लोग।”

एक एक बीयर के बाद उन दोनों ने एक एक बीयर और ली। अब दोनों के ऊपर नशे का हल्का हल्का रंग छाने लगा, तो बातों का विषय भी थोड़ा बदला और बतियाने का लहजा भी। राजनीति में महिलाओं के शोषण की तरह तरह की घटनाओं पर बातें करते करते संगीता मैडम की बात आ गयी। धीरू ने मजाक किया कि संगीता मैडम तो मर्दों का भी शोषण कर रही हैं। सुदामा असहमत था, मगर धीरू के बताने के अंदाज पर वह हंसने लगा। इसी प्रक्रिया में वे गांव की लड़कियों के बारे में बातें करने लगे। दोनों अपनी अपनी जानकारी और याद के अनुसार बताने लगे कि कौन किसके साथ फंसी, कौन किसके साथ लेटी और कौन कहां ब्याहने के बाद अब भी अपने किस प्रेमी से जुड़ी है जैसी तमाम छिछोरी व हल्की बातें...। उनकी आवाजें लड़खड़ाने लगी थीं। नशा दोनों की खोपड़ी और जुबान को नचाने लगा था।

धीरू ने कहा, “सुदामा, भाई सुदामा अपने बखेड़ापुर के लिए हमें कुछ सोचना होगा। गांव से लोग भाग रहे हैं और उसे भूल जा रहे हैं। हमारा गांव चीख चीख कर हमें पुकार रहा है।”

सुदामा गहरे दुख से भर कर जैसे बोल रहा हो, “भाई धीरू अब गांवों का कुछ नहीं हो सकता। वहां तमाम असुविधाएं हैं। जाति पाति है। पढ़ने लिखने की सुविधा नहीं है। मारकाट है। वहां अब न कोई मास्टर जाना चाहता है, न डाक्टर... ऐसे में हम क्या कर सकते हैं?”

“सुदामा, गांव नहीं बचेंगे तो ये सभ्यता नहीं बचेगी। दाने दाने को मोहताज हो जायेंगे लोग। अन्नदाता गांवों में बसते हैं। हमें गांवों को बचाना होगा। हमें अपने बखेड़ापुर को बचाना होगा।” रोने लगा धीरू।

थोड़ी देर दोनों एक दूसरे को समझाते रहे पर उनके समझाने का अंदाज कुछ ऐसा था, जैसे दोनों खुद को ही समझा रहे हों। दोनों जैसे इस हालात में थे कि समस्या तो दोनों को बखूबी पता हो मगर हल किसी को नहीं।

दोनों लड़खड़ाने हुए बीयर बार से बाहर निकल आये। रात काफी चढ़ आयी थी।

बाहर कहीं दूर मंद स्वर में लाउडस्पीकर पर गोरख पांडेय का गीत बज रहा था

सूतल रहलीं सपन एक देखलीं  
सपन मनभावन हो सखिया  
फूटलि किरनिया पुरुब असमनवा  
उजर घर आंगन हो सखिया  
अखिया के नीरवा भइल खेत सोनवा  
त खेत भइलें आपन हो सखिया  
गोसइयां के लठिया मुरइया अस तूरलीं  
भगवलीं महाजन हो सखिया  
केहू नाहीं ऊंचा नीच केहू के न भय  
नाहीं केहू बा भयावन हो सखिया  
मेहनति माटी चारों ओर चमकवलीं

ढहल इनरासन हो सखिया  
बैरी पैसवा के रजवा मेटवलीं  
मिलल मोर साजन हो सखिया

23

बदला कुछ भी नहीं  
केवल आबादी बढ़ती गयी है  
गुनाहों की फेहरिस्त में कुछ और गुनाह जुड़ गये हैं  
सच्चे, झूठे, फौरी और फर्जी।  
लेकिन उनके जवाब में देह से उठती हुई चीख  
हमेशा से बेगुनाह थी, है और रहेगी। (विस्साव शिबोस्का)

प्रदेश में विधानसभा चुनाव की घोषणा हो गयी है।

सुरक्षा व्यवस्था पूरी तरह से चाकचौबंद की जा रही है। हथियारों की जब्ती हो रही है। लाइसेंस रिन्यूअल कराया जा रहा है। छोटे मोटे बदमाशों को धर कर भीतर किया जा रहा है। नक्सलाइट के नाम पर छोटी जाति वाले मजदूर भी गिरफ्तार किये जा रहे हैं। राजबलम नेता को भी गिरफ्तार कर लिया गया है। महावीर सेना वाले खुश हैं कि ज्वाला सिंह का छोटका सादू ही जिले का एसपी है, नान्ह लोगों को चापे हुए है। ऊपर से भी लगता है उसको छूट मिली हुई है। बखेड़ापुर में घुरी राम के घर छापेमारी हुई है। दस किलो लैंड माइंस तार, दो सौ डेटोनेटर एसएलआर, कार्बाइन की पांच सौ गोलियां, ग्रेनेड के पार्ट्स, दो हजार मीटर एक्सप्लोसिव फ्यूज बरामद हुआ है। पूरे टोले में जो जो मिला, गया भीतर। मार मार कर पुलिस ने गर्दा कर दिया है। औरतों की भी पिटाई हुई है। हाय हाय मच गया.. लगता है कुछ को पता था कि पुलिस छापा मार सकती है, अधिसंख्य फरार थे पहले से ही।

हीरा बाबा दतुअन लिए हुए मड़ई पर इधर से उधर टहल रहे हैं। छांगुर सिंह पास आते हैं, फुसफुसा कर बोलते हैं, “मालूम है, सरवा सब गांवे उड़ाने का इंतजाम किया था। इतना बम, बारूद, गोला, गोली बरामद हुआ है कि लगता है, भूज कर रख देने की बेवस्था कर लिया था सब। चुनाव के पहिलही धरती से बड़ जाति का विनाश कर देना चाहता था सब एकरी मइया की... बाकी एसपीओ सहेबवा कम तेज नहीं है छोड़े हुए है एक से एक कटहवा कुकुर...।”

ललन बाबा आ गये हैं, “अब रूपो चउधरिया के काल आइये गया है... बाचेगा नहीं अब। मुखमंत्रिया एकरा पीछे पड़ा है। सुनते हैं कि कह रहा था कि हमरा पार्टी में आ जाओ, तो उसको ई मरदवा छव दिखाने लगा।”

“हां तो ऊ बढ़िया बढ़िया छव धरने वाले लोगों का भाव बिगाड़ दिया है। गुंडा है जवान...।”  
आरे ई कोइरी राम के नास के घरी आ गया है। सुनते हैं परवतिया भी इसके खिलाफ हो गयी है।  
“परवतिया? ऊ काहे?”

“जब मन ना हो, तबो ऊ सब कीजिएगा, तो कौन मेहरारू आज के जमाना में बरदास करेगी जी? यौन सोसण के आरोप लगा दिहिस है। पाटी वाला एनक्वायरी कर रहा है...”

“ई सरवा सब कइसा पाटी है जी। अइसन अइसन गड़बड़ घोटाला करता है आ सुनते हैं कि विवाह को भी वेश्यावृत्ति कहता है।”

कई लोग जुट आये हैं। सब अपनी राय रख रहे हैं।

चुनाव की चर्चा चलने लगी है। किसको टिकट मिला, किसका टिकट कटा। लोग अनुमान लगा रहे हैं।

“ज्वाला बाबू कह रहे थे कि संगीता मैडमवा को भी टिकट मिल गया है।”  
“तो इस बार हम लोग मैडमवे के हुमच के भोट दे दें का कि जीत जाये?”  
“मैडमवा कौन बड़ जाति है, ओबीसी है, ओबीसी... अन्य पिछड़ा वर्ग...”  
“बड़ जाति कहां खड़ा हो रहा है केहू। सब त नान्हे आ पिछड़ा लड़ रहा है, कांग्रेस से केसी यादव आ भाजपा से शारदा देवी।”

“वाजपेयी जी कौन जाति हैं? बाभने हैं न? तो एकवट के शरदवे में मार दिया जाये का?”  
“शारदा देविया भी तो हरिजने है।”  
“नहीं तो क्या, उसको भोट देने से वाजपेयी जी मुखमंत्री बन जायेंगे?”  
“कोई मुख्यमंत्री बने, उसकी पाटी को भोट देने पर कम से कम अजोध्या जी में मंदिर तो बनवाएगी।”

“मंदिर बनवाने का इहे नीयत है कि शारदा देवी को टिकट दे दो? शारदा देविया अजोध्या जी गयी भी होगी?”

“तो बड़ा धरम संकट है भाई, किसको दिया जाये? हम लोगों को महावीरे सेना का कंडीडेट खड़ा करना चाहिए था, ना?”

ज्वाला सिंह भी आ गये हैं। जोर का ठहाका लगाते हुए कहते हैं, “ना ना ना... जमाना दूसरा है। सांप भी मारो और लाठी भी बचाओ। हम लोगों को सत्ता पार्टी से बहुत मदद मिल रही है, नाहीं तो महावीर सेना के सब नेता भीतर होते। इसी को मदद करना चाहिए। महावीर सेना का भी ऐलान है कि संगीता वर्मा को मदद किया जाये।”

“मिल गया मैडमवा को टिकट? एकदम फाइनल?”

“एकदम फाइनल। कल चलना है नॉमिनेशन है।”

“संगीता वर्मा जिन्दाबाद। जिन्दाबाद... जिन्दाबाद।”

“संगीता वर्मा मत घबराना... तेरे पीछे सारा जमाना।”

बड़ टोली में स्ट्रेटजी तय हुई कि इस बार एकवट के वोट देना है। एक नान्ह को बूथ में घुसने नहीं देना है।

संगीता मैडम के नॉमिनेशन में बजाड़ी पागल को छोड़ कर बखेड़ापुर के बड़ टोली के तमाम लोग अपने हरवे हथियार के साथ पहुंचे। महावीर सेना के दस्ते के भी लोग छिपछिपा कर पहुंचे। पचमा मास्साब भी। अंकवारी में संगीता मैडम को भर लिया पचमा मास्साब ने। संगीता मैडम ने भी स्ट्रेटजिकली पचमा मास्साब को अंकवार में पूरा दबाया कि पोलिटिकली कोई कोर कसर न रह जाय। निहाल हो गये पचमा मास्साब। सोचा, इस चुनाव में चाहे शहीद हो जायें, मगर पांच बूथ कब्जा करेंगे। जीत गयी तो इसी के डेरा में एक कोना में पड़े रहेंगे। अपना शाम को दू पैग मार कर तबला ठेकेंगे... ताकथिन्नाधिनताक...। संगीता मैडम को अंकवार में पकड़े पकड़े सुख का सपना देखने लगे पचमा मास्साब।

बखेड़ापुर के नौछटिये नारा लगाने लगे, “संगीता मैडम मत घबराना...”

“जीतेगी भाई, जीतेगी... संगीता वर्मा जीतेगी।”

एक छोटी गाड़ी में शराब की बोतलें भरी हुई थीं। शाम को बखेड़ापुर में उन सारी बोतलों के सिल टूटे।

चुनाव प्रचार में सभी पार्टियां दारू, नोट और नारे के बल पर वोट की सौदेबाजी में एक दूसरे को पछाड़ देना चाहती थी। प्रत्याशियों को उनकी पार्टियों की ओर से धन के अलावा हथियार और गुंडों की भी बाजाप्ता सहायता दी जा रही थी। जैसा कंडिडेट, उसको उतने गुंडे। हर कीमत पर वोट



चाहिए। नोट की नदी बहा दो, हर गड़ही में दारू बहा दो, हर नुक्कड़ पर नाच करा दो... जितनी नाच पार्टियां थीं सब बुक हो गयीं। कहीं नाच हो रहा है, कहीं पूड़ी जलेबी बंट रही है... कहीं धोती बंट रही है... जिसको जो चाहिए ले लो, वोट दे दो...। केसी यादव तो मजाक में यहां तक कह दे रहे हैं लोगों से कि हमारा चाहो तो पिछवाड़ा ले लो, मगर वोट दे दो...। जनता को मजा आ रहा है... धन धन हो गान्धी जी कि सुराज दिलाये ऐसा कि नेता अपना पिछवाड़ा देने तक को राजी है...। जै बोलो जवाहिर लाल की, बाबा साहेब आम्बेडकर जी की जै हो...।

संगीता मैडम के चुनाव प्रचार में बखेड़ापुर में हेलिकॉप्टर से एक दिन मुख्यमंत्री भी आये।

उन्होंने यहां भी वही भाषण दिया, जो हर जगह दे रहे थे कि... अबकी बार मौका दे दो, दिखा देंगे। धरती को स्वर्ग बना देंगे। विकास की नदी बहा देंगे। हर हाथ को काम देंगे। किसानों की फसलों का उचित दाम देंगे...। नहर की सफाई करा देंगे... लोकतंत्र को मजबूत बनाने का काम करेंगे, हम वादा करके याद रखने का काम करेंगे... एक बार और जिता दो, हम यह काम करेंगे, वह काम करेंगे।

बखेड़ापुर के लोगों की भाषण में दिलचस्पी नहीं थी। वे बीच बीच में नारे लगा रहे थे या संगीता मैडम को देख रहे थे कि वे किसकी किसकी ओर देख कर कैसे मुस्करा रही हैं। कैसे हंस रही हैं?

सहजा भाई हेलिकॉप्टर का दाम मालूम करने के चक्कर में थे। उन्होंने हेलीकॉप्टर के बगल में स्टेनगन लिए खड़े दारोगा से बहुत साहस से पूछा, “कितना के आ जाता होगा सरकार ई हेलीकाप्टरावा?”

उस दारोगा को मुख्यमंत्री का भाषण बोर कर रहा था। सहजा भाई का सवाल उसे दिलचस्प लगा। उसने मजा लेने के लिए सवाल का जवाब सवाल से ही दिया, “लेना है का काका? का कीजिएगा लेके? एको कट्टा खेत नहीं जोत पायेगा।”

इस सवाल से लजा गये सहजा भाई। सोचे, नोनार का रघु भिसिरवा होता तो इसी टाइम दाम गिन देता।

**बखेड़ापुर** में हर पार्टी का उम्मीदवार पहुंचा। सबके दरवाजे पर घूमा। हर जगह से विजयी भव का आशीर्वाद पाया।

एक रूप चौधरी ही सिर्फ उन्हीं गलियों में घूमा, जहां से वोट मिलने की उम्मीद थी। वह अपने क्षेत्र में छोटी जाति के उन घरों में भी गया, जहां धिन के मारे दूसरी पार्टियों के उम्मीदवार न जा सके। रूप चौधरी पहली बार चुनाव लड़ रहा था, मगर उसकी लहर थी। मीडिया वाले उसे मुख्य टक्कर में बता रहे थे। उसके पास खर्च करने या लुटाने के लिए कुछ भी नहीं था। वह किसी को कुछ नहीं दे सकता था, मगर गरीब लोगों को न जाने उसमें कौन सी उम्मीद नजर आ रही थी। उसके पीछे पीछे पैदल बिना किसी बैनर झंडे के भूखे प्यासे लोग घूम रहे थे। आपस में एक दूसरे का उत्साह बढ़ा रहे थे। गजब था उन सबका जीवत।

रूप चौधरी के पक्ष में प्रचार करने के लिए कोई बड़ा नेता भी नहीं आया। मगर उसके समर्थकों का मनोबल काफी मजबूत था। रूप चौधरी अपनी चुनावी सभाओं में भाषण नहीं देता था। वह भीड़ जुट जाने पर झूम झूम कर नारायण कवि का एक गीत गाता था। उसके पीछे पूरी भीड़ गाती थी

*हमनी के लेले जाला पापी दुसमनवा, जेहलखनवा*

*झूठे के बता के शैतनवा, जेहलखनवा... हमनी*

*हमनी के नान्ह जात*

*कसहूं कमात खात*

*झूठे के बनाके बेइमनवा, जेहलखनवा... हमनी...*

साधु के बनायी भेस  
 कि आली जाली लड़ीं केस  
 सांसत में परल बा परानवा, जेहलखनवा... हमनी...  
 जोतीं बोयीं काटीं दाना  
 तबो ध के जाई थाना  
 हाथ में धराके हथियरवा, जेहलखनवा... हमनी...  
 सुनी सब गरीब भाई  
 सोची कइसे उबरि जीवनवा... हमनी...

कई लोग इस गीत को गाते हुए रोने लगते। परवतिया कहती हमारे बाबू आ माई की हत्या का बदला लेना है, तो रूप चौधरी को जिताना होगा... हर आदमी को वोट के दिन बूथ पर पहुंचना होगा। गरीबों को हक मारने वालों को वोट से चोट दो...

लाल झंडा लाल निशान... हक के लिए जाग गया... मजदूर किसान...  
 इंकलाब जिन्दाबाद इंकलाब जिन्दाबाद....जिन्दाबाद जिन्दाबाद....

**वोट** के दिन बखेड़ापुर के बूथ को दो किलोमीटर बाहर से घेर लिया है महावीर सेना ने। बूथ पर पुलिस है। शांति से मतदान हो रहा है। पर दो किलोमीटर दूर लाशें गिर रही हैं। शाम तक तड़ातड़ गोली चलने लगी। पर मतदान केन्द्र पर शांतिपूर्ण मतदान सम्पन्न हो गया। पोलिंग पार्टी को कोई दिक्कत नहीं हुई। दिन भर मालपुआ चाभते और ना ना ना करते दिन गुजर गया।

अखबारों ने अगले दिन छापा जिसकी जहां चली, उसने वहां की मनमानी। जनतंत्र का अपहरण। छिटपुट हिंसक वारदातों के साथ मतदान शांतिपूर्ण सम्पन्न। जम कर बरसे वोट...

मगर प्रदेश में अखबार पढ़ने से पहले ही रद्दी में डाल दिये गये। लोगों को पता था कि कैसे हुआ मतदान और कितना हुआ मतदान। लोग इंतजार करने लगे काउंटिंग का। कयास लगाने लगे अगली सरकार का। लोगों को अब पता था कि अगली सरकार जिसकी भी बने, वही सब होगा, जो पहले होता आया है।

इस चुनाव में संगीता मैडम जीत गयीं।

उनकी जीत के अवसर पर उनके आवास पर जश्न मना। मुर्गे और बकरे कटे। शराब की दरिया बही। धीरू और सुदामा ने इतनी चढ़ा ली कि होश खो बैठे। बाहर निकलते हुए सुदामा जैसे चीखते हुए पता नहीं हर्ष में कि अवसाद में गा रहा था...

सैंया तूड़ दीह किल्ली

चल दिल्ली जिला ओहीजे हिल्ली...

धीरू उतनी ही तेज आवाज में सुर में सुर मिला रहा था।

रास्ते से गुजरते एक सज्जन ने हंसते हुए दूसरे से कहा, “लगता है बखेड़ापुर वाले हैं...”

दूसरे ने पहले से पूछा, “कहां है बखेड़ापुर?”

पहले ने हंसते हुए कहा, “कहां नहीं है बखेड़ापुर...।”

**उपन्यास में जिन कवियों की पंक्तियां इस्तेमाल की गयी हैं उनके प्रति आभार**

## निज लय का अनुपम गद्य

पंकज पराशर

**कबीर** ने कहा है कि *हृद चले सो मानवा बेहद चले सो साधु/हृद बेहद दोनों तजै ताते मता अगाध*। यकीनन हृद में चलने वाले मानव और बेहद चलने वाले साधु पुरुषों ने विधाओं के दायरे में रह कर अच्छा तो लिखा है, परंतु ऐसा कम लोगों ने और कम लिखा है जिसे बार बार पढ़ने को जी चाहे।

पिछले डेढ़ दो दशकों में हिन्दी की वे रचनाएं ज्यादा पाठकों का प्यार पाने में सफल और चर्चित रहीं, जो विधाओं के घेरे को नजरअंदाज करके सम्भव हुईं। हालांकि आलोचना के हलकों में इस पर सुचिन्तित ढंग से चर्चा नहीं हुई, लेकिन पिछले कुछ सालों में कुछ कथाकारों और कवियों ने जैसा गद्य लिखा है वह न केवल उनकी शक्ति और प्रतिभा का कमाल है, बल्कि उससे हिन्दी गद्य की भी नयी ताकत और सौन्दर्य का पता चलता है। अभी हाल में स्थापित कवि लेखक **राजेश जोशी** की किताब आयी है **किस्सा कोताह**। यह न पूरी तरह किस्सा की किताब है, न पूरी तरह गप्प या गल्प, न यह आत्मकथा है, न शहर दर शहर के अनुभवों संस्मरणों का बयान, न यह बीते हुए वक्त को महज मुड़ मुड़ कर देखने की कोशिश है। यदि कोई मस्तिष्क फैसलाकुन तरीके से सोचने के मामले में कंडीशंड न हो, तो आपको लगेगा कि इसमें क्या नहीं है! वह जो सबमें है वह इसमें है, पर जो इसमें नहीं है वह फिर किसी में नहीं है। राजेश जोशी ने 'किस्सा कोताह' को हालांकि 'एक गप्पी का रोजनामचा' कहा है, मगर इस रोजनामचा को वे जिस तरह परिभाषित करते हैं, उसका मार्ग एक नये सुचिन्तित शास्त्र की ओर जाता है।

'किस्सा कोताह' में छह किस्तों (पुस्तक में हालांकि हर जगह किश्त लिखा गया है। सही शब्द है किस्त, जो अरबी भाषा का स्त्रीलिंग शब्द है। इसी तरह पृष्ठ 17 पर लिखा गया है ब्रम्ह, पर सही शब्द है ब्रह्म) में किस्से बयान किये गये हैं और हर किस्त की शुरुआत में 'गप्पी' ने किस्से के शास्त्रीय

हृद को परिभाषित करने की कोशिश की है। मसलन : “गल्प के भीतर से एक सच को ढूँढने की कला से कहानी जन्म लेती है और सच के भीतर गल्प की तलाश से संस्मरण। मुझे लगता है कहानी और संस्मरण के घालमेल से एक ऐसी हयवदन विधा पैदा हो सकती है जो कहानी भी हो और संस्मरण भी। और न कहानी हो न संस्मरण।” (पृ.33) मुकरियों के शिल्प सौन्दर्य को याद करें और फिर कथा आलोचना के सुपरिभाषित तथ्यों को याद करें, तो शायद हृद और बेहद तजने की कबीराना बात बेहतर ढंग से समझ में आती है। अद्भुत कथाकार मनोहरश्याम जोशी ने कहा है कि कुछ लोग खिलंदड़े अंदाज में बहुत बड़ी और गहरी बात कह जाते हैं, लेकिन कुछ लोग बेहद गम्भीरता से फूहड़ और हास्यास्पद बात करते हैं। इस पुस्तक का नायक गप्पी हर नये किस्से की शुरुआत में बिल्कुल खिलंदड़े अंदाज में किस्सों के बारे में नये तथ्यों को उद्घाटित करता है : “किस्सों में कोई सिलसिला नहीं होता। आगे का किस्सा पीछे और पीछे का किस्सा आगे सुनाया जा सकता है। वक्त के साथ साथ किस्सेबाज बदल जाते हैं किस्सा सुनने वाले भी। और जब किस्सेबाज बदलते हैं और किस्सा सुननेवाले तो पुराने किस्से भी नये हो जाते हैं।” (पृ.57) एक और नयी बात भी देखते चलिए : “जीवन और किस्से कभी समाप्त नहीं होते। मनुष्य जैसे अपना पुनरुत्पादन करता है उसी तरह किस्से भी अपनी औलादें पैदा करते रहते हैं और उनका वंश कभी समाप्त नहीं होता। मनुष्यों में बांझपन एक बार मिल भी जाये पर किस्सों में किसी किस्म का बांझपन नहीं होता। हम आप ज्यादा से ज्यादा चार पीढ़ी पहले के किसी पूर्वज को जानते होंगे। गया में फलगू नदी पर बैठा हमारे खानदान का कोई पंडा अपना खाता खोल कर अधिकतम दस पीढ़ी के नाम बता देगा। स्मृति की नदी उद्गम की दिशा में बहुत दूर तक नहीं बहती। किस्सों का वंशवृक्ष बनाना तो और भी टेढ़ी खीर है।” (पृ.88)

आज के जमाने में आदमी के पास सब कुछ है जो पहले कभी मध्यवर्ग के पास नहीं था, पर जो अपार फुरसत थी वह आज के लोगों के पास नहीं है। पर ‘किस्सा कोताह’ में जब गप्पी (राजेश जोशी) का किस्सा शुरू हो जाता है, तो फिर फुरसतक्षीण सभ्यता का आधुनिक मनुष्य यह भूल जाता है कि उसका स्थायी भाव वक्त के अभाव का रोना हो गया है। किस्सागोई की यह जबर्दस्त ताकत है जिसे इस पुस्तक में लेखक ने एकदम उरूज पर पहुंचा दिया है। सो पाठक जब तक किताब नहीं पढ़ जाता तब तक एक सम्मोहन की स्थिति में रहता है और काफी देर बाद किस्सों का सिलसिला जब खत्म होता है, तब भी उसे लगता है कि अरे, किताब खत्म हो गयी! इतनी जल्दी! 164 पृष्ठ की किताब इतनी पतली भी नहीं होती जनाब कि आपको इस तरह विस्मय हो और आप कहें कि किस्से इतनी जल्दी खत्म हो गये! पर अतीत की पीठ पर अपने नाखूनों से समय ने जो कुछ लिखा था, उसे इस किस्सागो ने जिस अंदाज में सुनाया उसके बाद फिर भला होश किस कमबख्त को रहता है! सहृदय पाठक किस्सा भी सुने और समय का हिसाब किताब भी रखे यह कैसे मुमकिन है? ईमान से कहता हूं, जैसे मिलन के दौरान प्रेमियों को समय का कोई अनुमान नहीं रहता कुछ कुछ वैसा ही अहसास ‘किस्सा कोताह’ के पाठकों को होता है।

गप्पी यानी लेखक पहला किस्सा अपने ननिहाल से शुरू करता है। फिर तो भाई बहन, नरसिंहगढ़, विन्ध्याचल की पहाड़ियां, अमराई, तलहटियों का जो जिक्र शुरू होता है, तो बारीक से बारीक चीजों का सूक्ष्म अवलोकन ही नहीं, एक एक चीज का शुरू से अखीर तक पूरा विवरण आता है। नरसिंहगढ़ का एक विवरण देख कर लगता है कि कई बार जो काम हास्य से सहजता से सम्भव हो जाता है, उसे क्रोध से करना असम्भव है। सामंती समय में भी प्रत्युत्पन्नमति जन कैसे हास्य के हथियार से सटीक वार करते थे, देखिए : “नरसिंहगढ़ में दशहरे का रावण मिट्टी का बनाया जाता था और उसे महाराज मारते थे। महाराज रथ पर बैठ कर आते और एक तीर मार देते। महाराज का

जयकारा लगता और फिर जनता लाठी मार मार कर रावण को ढेर कर देती।” (पृ.22) पर शुद्ध देसी घी खाने की आदी जनता डालडा में जरा सा शुद्ध घी मिला कर तली जाने वाली पूरियों की चतुराई का जवाब अद्भुत हास्य शिल्प में देती है : “तोरणद्वार पर डालडा के डिब्बे लटका कर उन पर लिख दिया गया था डालडा सरकार। भानुप्रताप बहुत गुस्सा हुए और बिना रावण मारे वापस लौट गये। लोगों को मजा आ गया कि महाराज को भगा दिया। बचाखुचा गुस्सा रावण पर निकल गया।” (पृ.23) इस तरह जनमानस के क्रोध का विरेचन होता है। फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी मशहूर कहानी ‘तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम’ में एक स्थान पर लिखा है कि कचराही मोगलाही में दो चार बातें तो की जा सकती है, लेकिन दिलखोल गप्प तो अपने गांव की बोली में ही की जा सकती है। सो किस्सागो राजेश जोशी दिलखोल गप्प करते हुए ऐसे ऐसे आंचलिक शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिसे समझने में मानक हिन्दी के अभ्यस्त लोगों को थोड़ी दिक्कत हो सकती है। मिसाल के तौर पर, ‘संद’, ‘कवेलू’, ‘परना’, ‘कबीट’, ‘पिन्नास’, ‘खोड़ला’ इत्यादि। परंतु कथारस इतना मनभावून है कि इस तरह के छोटे मोटे कंकड़ ज्यादा नहीं अखरते।

पुस्तक में नरसिंहगढ़ ही नहीं, शहर भोपाल भी प्रमुखता से आया है और यह शहर जैसे गप्पी की रगों में दौड़ता है। यकीन न हो तो गप्पी की ही जुबानी सुन लीजिए : “गप्पी सही मायने में बर्कूकट भोपाली था। पुराने भोपालियों को बर्कूकट कहा जाता था। पुराने वाशिन्दों का मानना था कि रियासत में चारों ओर दरवाजे और फसीलें थीं। दरवाजे से बाहर सरकडे जैसी बर्कू की झाड़ियां थी। बर्कू को काट कर एक मोटी लिखावट वाली कलम बनायी जाती थी।” (पृ.42) भोपाल का इतिहास, दंतकथाएं, रस्मों रिवाज और रवायत अपने पूरेपन में पुस्तक में मौजूद है। भोपाल की भाषा का सच भी जान लीजिए : “गालियों के बिना भोपाल की जबान का तसव्युर बेमानी था। एक पूरे वाक्य के लिए जो जरूरी चीजें थीं उसमें गालियां भी शामिल थीं। भोपाल की भाषा में कई तरह की मिलावट थी। उसमें बुंदेली, मालवी, उर्दू और गालियां, सबकी जगह पहले से ही तय थी।” (पृ.40)

राजेश जोशी ने ऐसे ऐसे जीवंत और मजेदार किस्से बयान किये हैं कि यथार्थ भी कई बार जादुई यथार्थ जैसा लगने लगता है। मसलन यही किस्सा देख लीजिए : “बाबा को किसी हकीम ने बता दिया था कि आप बराबर वजन की रोटियां या पूरियां खाया करें। मां उनके लिए बराबर बराबर लोई की पूरियां बनातीं। बाबा खाना खाने से पहले हर पूरी को तौल तौल कर देखते। जिसमें भी वजन कम जादा होता उसे किनारे से तोड़ कर बराबर करते। कभी कभी पूरी या रोटी वापस रसोई में भेज दी जाती कि इसका वजन तीन माशा ज्यादा या पांच माशा कम हो गया।” (पृ. 51) ऐसे दिलचस्प और मजेदार प्रसंगों की भरमार है पुस्तक में। गप्पी यानी लेखक का जीवन संघर्ष, शिक्षा, एक अदद नौकरी की तलाश, नौकरी की दुश्वारियां, भोपाल छूट जाने का डर, उज्जैन में बीता हुआ समय यहां जिस रूप में आया है, वह कथारस के आवरण में आत्मकथा है। वहीं भोपाल, इंदौर, उज्जैन जैसे शहरों के रगो रेशे का जैसा जीवंत और प्रामाणिक चित्रण यहां आया है वह किसी यात्रा वृत्तांत लेखक से सम्भव नहीं है। यहां यह मिसाल भी देखना बेहद रोचक है कि किस तरह किसी स्थान, रीति रिवाज, पर्व त्योहार, लोगों की बोलियां, सनक, गालियां और शहर में धड़कते इतिहास का बयान गल्प शैली में प्रामाणिक ढंग से किया जा सकता है। जैसे लेखक ने इस कृति को किसी विधा विशेष के बाड़े में धकेलने की कोशिश नहीं की है, उसी तरह फिलवक्त आलोचकों समीक्षकों को भी इस कृति को किसी विधा के दायरे में धकेलने की जल्दी नहीं मचानी चाहिए।

**किस्सा कोताह :** राजेश जोशी, **प्रकाशक :** राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नयी दिल्ली, **मूल्य :** 250 रु.

# व्यंजना शक्ति का नया रूप

अजय वर्मा

‘जिनकी मुट्टियों में सुराख था’ महत्वपूर्ण युवा कथाकार **नीलाक्षी सिंह** का नया कहानी संग्रह है। इसमें संकलित कहानियों का अंदाज नया है। संवेदना और अनुभूति की सघनता इनके पहले कहानी संग्रह ‘परिन्दे का इंतजार सा कुछ’ में भी है, पर उस संग्रह की कहानियों में कथ्य की बुनावट और कहने के ढंग में एक आवेग है जो अक्सर रूमनियत का आभास देता है। रूमनियत भरे आवेग की भी जरूरत होती है। कहानी के जड़ हो चुके ढांचे और यथार्थ को देखने के तरीके में जो निश्चयात्मकता आ जाती है उससे कहानी एक प्रकार की रूढ़ि का शिकार हो जाती है इस रूढ़ि को तोड़ने के लिए आवेग की जरूरत होती है। नीलाक्षी के पहले संग्रह की कहानियों में यही आवेग है। ‘परिन्दे का इंतजार सा कुछ’ नामक कहानी साम्प्रदायिक दंगों को लेकर रूढ़ि बन चुकी वैचारिकी को ही नहीं तोड़ती बल्कि वस्तुवर्णन और भाषा का जो राजनीतिकृत भावुकतापूर्ण रूप इस प्रकार की कहानियों में दिखलाई पड़ता था और जिसको लेकर अस्सी के दशक में ही संदेह उत्पन्न होने लगा था, नीलाक्षी की वह कहानी पूरी तरह उसे तोड़ देती है और जो साम्प्रदायिकता पॉलिटिकली करेक्टनेस में कैद हो गयी थी, उससे उसे मुक्ति मिल गयी, वह एक समग्र मानवीय विमर्श के रूप में सामने आयी।

लेखक वैचारिक स्तर पर जैसे जैसे गम्भीर होता जाता है, वैसे वैसे आवेग कम होता है और अनुभूति तथा संवेदना अधिक गहरी, अधिक घनी होने लगती है तथा भाषा में खास पैनापन दिखलाई देने लगता है। कहानी में आने वाले पात्र संवेदनाओं की मूर्त छवियां न होकर सच्चे मानव चरित्र के रूप में आने लगते हैं। यहां सुरेन्द्र चौधरी के इस कथन का उल्लेख करना प्रासंगिक लगता है कि चरित्र को छोड़ कर संवेदनाओं की मूर्त छवियां बनाना सिर्फ पात्रों की भीड़ जुटाना है। ‘जिनकी मुट्टियों में सुराख था’ की पहली कहानी ‘साया कोई’ स्त्री के राजनीतिक इस्तेमाल और उसके विरुद्ध स्त्री की प्रतिक्रिया की कहानी है। इसमें अनेक पात्र आये हैं पर उन्हें पात्रों की भीड़ नहीं कहा जा सकता, वे सच्चे अर्थों

में मानव चरित्र बन कर आये हैं। ये मानव चरित्र विभिन्न किस्म के हैं दबू, स्वार्थी, चाटुकार, लम्पट, परजीवी और छलछद्म से भरे, तिकड़मी, कई तो कैरीकेचर लगते हैं। इनमें स्त्रियाँ भी हैं, पुरुष भी।

कहानी के केन्द्र में जो विक्रमगंज वाली है, उसे लेखिका ने प्रायः स्त्री कह कर ही सम्बोधित किया है। स्त्री यहां एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार की उन स्त्रियों का वाचक है जो परिवार के लिए मरतीखपती है लेकिन परिवार में उसकी उपस्थिति का किसी को आभास तक नहीं होता। यह उस स्त्री की जिन्दगी है, निरर्थक, व्यर्थ। पारिवारिक विमर्श में उसकी कोई पहचान ही नहीं और इसका कारण वही प्राचीन धारणा। वंशबेल वाली। यह स्त्री मां बनने से वंचित है और परम्परा के अनुसार दोष उसी का माना जाता है। यानी पहचान का संकट एक जैविक प्रभेद के रूप में जितना है, उतना ही परम्पराबद्ध सामाजिक। मगर इसी कहानी में अन्य स्त्रियाँ भी हैं जो इससे नितान्त भिन्न हैं, जैसे स्त्री की दिवंगत सास चमकी देवी, जिसके पैदा होने पर उसकी दादी ने नमक चटा कर मारना चाहा था और उस नवजात ने मुंह दूसरी ओर फेर लिया था, उसी चमकी देवी के बारे में लेखिका कहती है कि ससुराल में आते ही अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण उसने कई उपनाम बटोर लिये थे... कुटनी, घरफोड़न, लुत्ती वगैरह। पांच भाइयों वाले संयुक्त घर से उसने एक एक को खदेड़ कर भगाया। यह स्त्री का एक दूसरा रूप है। तीसरी स्त्री इस कहानी में चमकी देवी की पुत्री है जिसका मुंह हमेशा सूजा हुआ मालूम पड़ता है लिहाजा लेखिका हर जगह उसे 'मधुमक्खी के छत्ते की शिकार स्त्री' कह कर सम्बोधित करती है। इस प्रकार इस कहानी में हर स्त्री के चरित्र में विविधता है और इससे मालूम पड़ता है कि चालू स्त्री विमर्श की तर्ज पर नीलाक्षी स्त्री को एक भिन्न जैविक प्रभेद मान कर उसे सामान्यीकृत करने के पक्ष में नहीं हैं बल्कि उसके चरित्र के वैविध्य को ध्यान में रख कर सामाजिक संरचना में उसकी भूमिका को चित्रित करती हैं। उत्तर आधुनिक दृष्टि से जिस प्रकार आजकल स्त्री को एक भिन्न प्रजाति मान कर उसे व्यापक मानवीय चिन्तन से अलग एक पॉकेट आयडेंटिटी में बदल दिया गया, नीलाक्षी उसका प्रतिकार करती हैं। व्यंग्य, विडम्बना एवं विसंगतियों को प्रकट करने में समर्थ भाषा के जरिये इन स्त्रियों के चरित्र एवं पारिवारिक सामाजिक भूमिका तथा स्थिति का इतना सजीव चित्र नीलाक्षी प्रस्तुत करती हैं कि ये मानव चरित्र जीते जागते मालूम पड़ते हैं। इसी व्यंग्य, विडम्बना और विद्रूपता को अभिव्यक्त करने वाली भाषा में नीलाक्षी ने पुरुष चरित्रों का भी विवरण दिया है। इस प्रकार विचित्र किस्म के मानव चरित्रों की रचना करके लेखिका कहानी के केन्द्रीय चरित्र विक्रमगंज वाली की कथा कहती है और यह कथा दरअसल परम्परागत सामाजिक विमर्श में स्त्री की दारुण स्थिति और समकालीन स्त्री सशक्तीकरण के पाखंड और विद्रूपता की कथा है। इसके बावजूद स्त्री विमर्श का इकहरापन स्त्री की इस कथा में नहीं है।

आज स्त्री सशक्तीकरण के नाम पर स्त्रियों को जो सशक्त बनाने का पाखंड किया जा रहा है उसका सबसे सशक्त उदाहरण है पंचायत चुनाव में स्त्रियों को अवसर देना। इसकी वास्तविकता यह है कि स्त्री को मोहरा बना कर चुनाव के सारे तिकड़म पुरुष करता है और मुखिया बनने के बाद भी उसकी सारी शक्तियों का उपयोग और उपभोग पुरुष ही करता है।

चुनाव के ठीक पहले स्त्री में अचानक एक परिवर्तन आता है और वह अपने वजूद पर विचार करने लगती है। और अंततः चुनाव के दिन जब उम्मीदवार के रूप में अपना वोट देने जाती है तब वह इस तिकड़म में मोहरा बनने से विद्रोह कर देती है।

जब मानवीय भावनाओं और संवेगात्मक अनुभूतियाँ निरर्थक हो रही हों; तब साहित्य में भाषा का एक नया ढब पैदा होना लाजिमी है। युग की विद्रूपता को दिखलाने के लिए भाषा में व्यंग्य का एक नया तरीका नीलाक्षी अपनाती हैं जिसमें अंतर्विरोध को रेखांकित करने के लिए एक प्रसंग में अन्य प्रसंग के ब्योरे लाती हैं जिससे भाषा की व्यंजना शक्ति का एक अलग रूप दिखलाई देता है

क्योंकि ये ब्योरे भिन्न होते हुए भी कथा के प्रवाह से बाहर नहीं हैं, उदाहरण के लिए यह प्रसंग द्रष्टव्य है “बच्ची ने वहीं... गांव की जीर्ण पड़ चुकी पक्की सड़क पर तत्काल अपनी सर्वमान्य घृणित लाल राशनकार्ड मार्का योनि से मुक्ति पा ली।” कहने की जरूरत नहीं कि नीलाक्षी की भाषा में काव्यात्मकता है। बच्ची की मृत्यु की एक पंक्ति की सूचना में उसकी पृष्ठभूमि, सामाजिक विकास में व्याप्त असमानता और लोक लुभावान प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करती हैं वे। आचार्य कुंतक ने जिसे वक्रोक्ति के तहत और पाश्चात्य नयी आलोचना में रैसम, एलन टेट ने तनाव सिद्धांत के तहत व्याख्यायित किया है उसकी उपस्थिति नीलाक्षी की भाषा में जगह जगह दिखलाई पड़ती है।

इस संग्रह में कुल छः कहानियां संकलित हैं और अनुभव तथा संवेदना की दृष्टि से सब अलग अलग हैं किन्तु एक बात सभी कहानियों में समान रूप से दिखलाई पड़ती है, वह है मनुष्य की आदिम प्रेमानुभूति के प्रति लेखिका का गहरा अनुराग। युग के तनावों, संकटों और अंतर्विरोधों का चित्र खड़ा करके ही नीलाक्षी कलाकर्म के दायित्व से मुक्त नहीं हो जातीं बल्कि इनके बीच भी वे जीवन की मर्मस्पर्शी अनुभूति की तलाश करती हैं। इसीलिए संग्रह की प्रायः सभी कहानियों में स्त्री पुरुष के बीच के नैसर्गिक अनुराग को वे तमाम अंतर्विरोधों और विरोधाभासों से ऊपर रखती हैं। ‘स्वांग’ कहानी में जो स्वामी नाम का युवक है वह मेहनत, ईमानदारी जैसे आदर्श लेकर अपने सपनों को साकार करने मुम्बई आया है और यहां आकर उसका सामना महानगरीय जीवन की कठोर वास्तविकता से होता है। दफ्तरों के चक्कर काटने के दौरान बस में उसकी भेंट चित्र सावरकर नामक लड़की से होती है जो कालगर्ल है। अपने पेशे को लेकर उसके भीतर कोई हीन भावना नहीं है पर स्वामी इसको लेकर द्वंद में पड़ जाता है। लड़की का मानना है कि वह अपना धंधा ईमानदारी से करती है, दिन में शरीफ जीवन बिताती है और शाम के वक्त पूरी ईमानदारी से स्वामी के साथ रहती है इसलिए वह भी ईमानदार है। इस प्रकार लेखिका सामाजिक रूप से स्त्री के वर्जित क्षेत्र में जाकर उसकी भावनाओं को सामने लाती है और यह दिखलाती है कि देह व्यापार करने से स्त्री की मानवीय भावनाएं मर नहीं जातीं, मन के स्तर पर वह भी एक सामान्य स्त्री ही होती है, उसे भी स्नेह और प्रेम की चाह होती है।

‘ऐसा ही कुछ भी’ दो पीढ़ियों की स्त्रियों के अंतर्द्वंद्व की कहानी है। यह अंतर्द्वंद्व कच्ची उम्र की लड़की इवा कार्गिक और उसकी बूढ़ी हो चली इजा वसुंधरा कार्गिक की है। द्वंद का कारण लड़की की कच्ची उम्र की रूमनियत है। केन्द्र में ट्यूशन पढ़ाने वाला ट्यूटर विक्रम आहूजा है जो परिपक्व और काफी गम्भीर किस्म का आदमी है। यह द्वंद तीनों के मन में अलग अलग भी चलता है और आपस में टकराता भी है। मगर अंतर्जगत की गुत्थियों में लेखिका इस कहानी में कुछ ज्यादा ही उलझी हुई मालूम पड़ती है इसलिए पठनीयता और रोचकता के बावजूद कहानी कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाती। इसकी तुलना में ‘सूत्र’ शीर्षक कहानी कुछ अधिक प्रभावशाली है। आज के भारी आपाधापी वाले समय में छोटे शहर से महानगर जाकर ऊंचे सपने देखने वाला युवा किस प्रकार हताशा और निराशा का शिकार होता है, यही इस कहानी की मूल थीम है।

‘आदमी, औरत और घर’ वास्तव में दाम्पत्य जीवन के अटूट प्रेम की कहानी है। अनेक विसंगतियों के ब्योरे के बावजूद लेखिका ने इस कहानी में स्त्री और पुरुष के बीच के कोमल एवं भावपरक आनुभूतिक जीवनराग को स्वर देने की चेष्टा की है। यह स्वर जीवन जीने के कठिन संघर्षों, यंत्रणादायक जीवन स्थितियों के बीच से उठता है। इन यंत्रणादायक स्थितियों के लिए जितना जिम्मेदार पुरुषवादी अहं है उतना ही जिम्मेदार समकालीन जीवन का कठोर और क्रूर यथार्थ है।

स्त्री-पुरुष की नैसर्गिक प्रेम भावना को जिन्दगी की क्रूरताओं के बीच भी जीवंत दिखला कर लेखिका ने मनुष्य की सम्बंध चेतना की रागात्मकता को प्रमाणित करने का काम किया है। आज जब प्रेम, संवेदना



वगैरह अस्मिता के टकराव में निरर्थक करार दिये जा रहे हैं और इसके कारण मनुष्यता का अस्तित्व खतरे में मालूम पड़ रहा है, नीलाक्षी की यह कहानी विश्वास दिलाती है कि अभी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है।

संग्रह की अंतिम कहानी है 'जिनकी मुट्टियों में सुराख' था। इसमें लेखिका ने कुछ चरित्रों का बयान जैसा प्रस्तुत किया है। इस बयान में स्मृतियाँ हैं जो वर्तमान में ललक पैदा करती हैं। अतीत को वर्तमान में जीने वाले चरित्र पिता और पुत्री हैं। दोनों अपना अपना बयान समानांतर रूप में दर्ज करते हैं। पिता अखबारों में चुटकुले लिखने का काम करता है। उसका जीवन उसके पुराने घर की ही तरह खोखला, रहस्यमय जैसा है। घर के एक कमरे में ताला लगा दिया गया है क्योंकि उसकी जरूरत नहीं पड़ती। घर के एक कोने को घर से काट दिया गया है। इसी तरह इस परिवार के सारे सदस्य मानो परिवार से काट दिये गये हैं। लड़की मुम्बई में समूह में नाचने का काम करती है। जिस ग्रुप में वह काम करती है उसका इंस्ट्रक्टर आदिल है जो काम के मामले में सख्त है। लड़की डांस के समय एक स्टेप में हमेशा गलती कर जाती है, इसलिए उसे हटा दिया जाता है। लड़की का पीछा बचपन की स्मृतियाँ करती हैं, पिता का पीछा अपने बचपन की स्मृतियाँ। पिता की स्मृति में बसे हिरखी मिसिर हैं जो मसखरी करते थे, मगर उनकी कला की भी कोई पूछ नहीं थी, लोगों का मनोरंजन भले हो जाता था। इस प्रकार मरा हुआ हिरखी मिसिर भी कहानी में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। कला की दुनिया में ऐसे अनेक लोग गुमनामी की मौत मर जाते हैं, यही इस कहानी का मूल भाव है।

नीलाक्षी की कहानी अक्सर एक डर पैदा करती है, पर इस डर के बावजूद उम्मीद खत्म नहीं होती, हाशिये में ही सही। जीवन के प्रति उम्मीद जगाती हैं ये कहानियाँ।

जीवन को लेकर यह द्वंद्व नीलाक्षी की कहानियों की प्रमुख विशेषता है जो अनुभव संवेदना और जीवनदृष्टि के समन्वित रूप से उपजा है। इनके पहले संग्रह में संकलित कहानियों से लेकर इस संकलन की कहानियों तक की कथायात्रा पर गौर करें तो मालूम पड़ेगा कि बाजार और भूमंडलीकरण के दौर में जो यथार्थ विशृंखल और बहुस्तरीय रूपों में दिखलाई दे रहा था; इस संग्रह तक आते आते वे उसे एक केन्द्रीकृत स्तर पर लाने और उसके प्रति एक स्पष्ट समझ बनाने की कोशिश करती हैं। कहने की जरूरत नहीं कि समझ में ही विकल्प की सम्भावनाओं की तलाश की जा सकती है। इनके पहले संग्रह की कहानियाँ जिस दौर में लिखी गयी थीं वह भूमंडलीकरण और नये बाजार के भारत में प्रसार का प्रारम्भिक दौर था। इनके जो भयावह परिणाम आज दिखलाई दे रहे हैं, उस दौर में वे संशय और प्रश्नों के रूप में थे। 'परिन्दे का इंतजार सा कुछ' नामक पहले संकलन में संकलित 'एक था बुझवन', 'प्रतियोगी' और संकलन की प्रतिनिधि कहानी 'परिन्दे का इंतजार सा कुछ' में ये संशय दिखलाई पड़ते हैं। इसीलिए इस लेख के प्रारम्भ में बतौर उदाहरण 'परिन्दे का इंतजार सा कुछ' कहानी के बारे में कहा गया है कि उसमें एक प्रकार की रूमानियत है। इसके बावजूद वह कहानी इसलिए विशिष्ट रूप में पहचानी गयी क्योंकि साम्प्रदायिक विमर्श की भावुकतापूर्ण तीव्रता से भिन्न नीलाक्षी उसमें तनाव पैदा करती हैं जिससे नाटकीयता कहानी के शिल्प का अविभाज्य अंग बन जाती है और कहानी में विडम्बना उत्पन्न होती है। यह विडम्बना कहानी को प्रभावान्विति तक पहुँचाती है। इस बिन्दु पर आकर नीलाक्षी दो कारणों से विशिष्ट नजर आती हैं एक तो इनके ब्योरों में व्यंग्य और विडम्बना का भेद बना रहता है जो उनके समकालीन बहुत कम कथाकारों में दिखलाई देता है, दूसरा कि वे विमर्शों से पीछा छुड़ाने की बजाय उसकी रूढ़ि को तोड़ती हैं। विडम्बना नाटकीयता से उत्पन्न होती है, भाषा में व्यंग्य का अस्तित्व बना रहता है। व्यंग्य विडम्बना में नहीं बदलता, जैसे 'स्वांग' में स्क्रीन पर जब स्वामी के मन की बात आती है तब इससे नाटकीयता उत्पन्न होती है, न कि भाषा में निहित व्यंग्य से। फिर विमर्शों से पीछा छुड़ाने का यह मतलब नहीं है कि कथाकार अपने समय

के संकटों का ब्योरा भर प्रस्तुत कर दे। नीलाक्षी विमर्शों की थोथी समाजशास्त्रीयता को अस्वीकार करते हुए भी यथार्थ के प्रति अपना नजरिया स्पष्ट करती हैं।

पहले संग्रह की कहानियों में जो संशय थे, वे इस संग्रह की कहानियों में निर्णयात्मक रूप में दिखलाई देते हैं। पहले संग्रह की कहानियों, जैसे 'एक था बुझवन' या 'प्रतियोगी' में दिखती है कि नया बाजार साधारण लोगों से जीने की गुंजाइश छीन रहा है। इसके कारण जो मानवीय सम्बंध की संवेदना गायब हो रही है, उससे उपजा तनाव और यातना इस संग्रह की कहानियों में दिखता है। बाजार ने अनेक अंतर्विरोध उत्पन्न किये हैं और आज के कथाकारों के पास अंतर्विरोधों का अम्बार है, पर कौन से अंतर्विरोध किस प्रकार इतिहास की प्रक्रिया को बाधित करते हैं यह नीलाक्षी की कहानियों में स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। इनकी नैरेटिव इनर्जी की यह खासियत है कि कहानी के तनाव से विडम्बना अचानक नहीं उत्पन्न होती, ऐसा होने पर कहानी अति नाटकीयता का शिकार हो जाती है। वह नाटकीयता से उत्पन्न होती है और नाटकीयता की एक पूरी प्रक्रिया है। 'साया कोई' शीर्षक कहानी में स्त्री चुनावी पाखंड का प्रतिकार अचानक नहीं करती, इसके पहले की पूरी प्रक्रिया का जो तनाव है, बीच में जो पति पत्नी के सम्बंध की संवेगात्मक स्थितियों के अंतरंग वर्णन हैं, वे सब मिल कर कहानी को उस चरमबिन्दु पर पहुंचाते हैं जहां स्त्री प्रतिकार करती है। कहानी का यह तनाव युगीन संकटों से टकराने के कारण उत्पन्न हुआ है जिसका परिणाम है मानवीय सम्बंध की गरिमा की प्रतिष्ठा। बाजार, भ्रष्ट राजनीतिक संस्कृति और मखौल बन चुके लोकतंत्र से जो मनुष्य जीवन संकटग्रस्त हुआ है उसके खिलाफ इस रूप में लेखिका खड़ी होती है।

जाहिर है कि नीलाक्षी सिर्फ यथार्थ के ब्योरे भर प्रस्तुत करके नहीं रह जातीं, इसीलिए इनके ब्योरे कहानी में अमूर्तन नहीं पैदा करते। इस लेख में 'ऐसा ही, कुछ भी' शीर्षक कहानी को कुछ कमजोर कहा गया है तो इसलिए कि वह धीम और चरित्र निर्माण के हिसाब से अति विस्तार का शिकार हो गयी है, बावजूद इसके वह कहानी भी कम से कम अमूर्तन का शिकार नहीं है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि बाव्य अनुभव और सूचनाएं नीलाक्षी के यहां आकर अनुभूति में बदल जाती हैं और इस द्वंद से ये अनुभव और सूचनाएं रचनात्मक बन जाती हैं, सूचना और अनुभूति कहानी में अलग अलग नहीं लगती। एक और खासियत है नीलाक्षी की जो इन्हें अपने समकालीन लेखकों से अलग करती है वे आज के त्रासद यथार्थ से खुद आहत नहीं होतीं, जबकि अधिकतर कथाकार कहानी में खुद आहत हो जाते हैं जिससे उनकी अनुभूति एक तंग दायरे में सिमट जाती है। नतीजा होता है कि कहानी में संकट के चित्र तो होते हैं पर उनके प्रतिकार के लिए कोई सशक्त चरित्र कहानीकार नहीं रच पाता। इसीलिए आज की कहानी भयानक रूप से तात्कालिकता से ग्रस्त है। नीलाक्षी उन थोड़े से कथाकारों में एक हैं जिन्होंने समझा है कि कहानी में निर्वैयक्तिकता व्यर्थ नहीं होती। इसीलिए परिघटनाओं को बहुत महत्त्व न देने के बावजूद नीलाक्षी की कहानियों का कथा संघटन कमजोर नहीं है और इनके चरित्र याद रखने योग्य हैं।

नीलाक्षी की भाषा का वैशिष्ट्य है काव्यात्मकता। यह कहानी में कविता का प्रयोग नहीं है, भाषा की काव्यात्मकता शिल्प में बदल जाती है और कहानी में व्यंग्य का स्वर भोथरा होने से बच जाता है। काव्यात्मक प्रभाव शिल्प से बाहर दिखलाई देता है तो वह सिर्फ भाषिक खेल रह जाता है। मगर नीलाक्षी काव्यात्मकता को कथाशक्ति में बदल देती हैं और व्योरों को बिना बोझिल बनाये आभासी यथार्थ की वास्तविकता को मूर्त कर देती हैं। ऐसा इसलिए सम्भव होता है कि काव्यात्मकता उनके यहां अलग से थोपी हुई न होकर वस्तु एवं शिल्प में रची बसी है। निःसंदेह आज के कथाकारों के बीच एक भिन्न पहचान बनाती हैं उनकी कहानियां।

**जिनकी मुद्रियों में सुराख था :** नीलाक्षी सिंह, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, मूल्य : 120 रु.

# भूमंडलीकरण के दौर में आधुनिकता

अरुण होता

आजादी के बाद से हिन्दी के प्रगतिशील आलोचकों में परम्परा और आधुनिकता की लम्बी बहस चली थी। अजय तिवारी पिछले बीस वर्षों से भी अधिक अवधि से 'आधुनिकता' को लेकर चिन्तन मनन करते आ रहे हैं। कभी लेख के रूप में तो कभी व्याख्यायन के रूप में और कभी शोध आलेख अथवा निबंध के रूप में आधुनिकता सम्बंधी उनका चिन्तन अभिव्यक्त होता आया है। समीक्ष्य पुस्तक **आधुनिकता पर पुनर्विचार** में कुल बारह निबंध संगृहीत हैं।

मध्यकालीनता और आधुनिकता का द्वंद्व और संघर्ष काफी पुराना है। लेखक ने इनकी टकराहट को बिल्कुल नये ढंग से बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया है। मध्यकालीनता और आधुनिकता की पहचान सरल नहीं है, संश्लिष्ट है। इनके सम्बंध के बारे में प्रचलित अवधारणाओं और मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न खड़ा करते हुए अजय लिखते हैं *सतयुगी कलयुगी की अवधारणा कालचक्र की अवधारणा है, जो मध्यकालीनबोध का परिचायक है। इस धारणा का गहरा सम्बंध सनातनवादी चिन्तन से है। सनातनवादी चिन्तन सामाजिक स्थिरता से जन्म लेता है और वह केवल भारत की विशेषता है।* (पृ. 12) इसी प्रकार आधुनिकता के बारे में प्रचलित धारणा कि उसका जन्म औद्योगिक क्रांति के साथ हुआ; इसे लेखक 'यांत्रिक समझ'मानता है। बड़े ही तार्किक ढंग से लेखक ने प्रस्तुत किया है *ऐसा नहीं हुआ कि इधर चिमनी से धुआं उठा और उधर आधुनिकता प्रकट हुई यानि औद्योगिक क्रांति से पहले आधुनिकता के लक्षण अदृश्य थे। अगर ऐसा है तो आधुनिकता महज जीवन पद्धति होगी, जीवनमूल्य नहीं। क्या यह कहा जा सकता है कि आधुनिकता केवल जीवन पद्धति (या जीवन शैली) है? यदि आधुनिकता जीवन मूल्य भी है तो इसका विकास क्रमशः हुआ होगा।* (यथोपरि) आगे चल कर लेखक ने यह स्थापित किया है कि किसी विचार को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेना मध्यकालीन

दृष्टि है जबकि प्रचलित धारणा पर सवाल करना, उसे तर्क की कसौटी पर परखना आधुनिक दृष्टि है।

आधुनिकता बाजार, जनतांत्रिक मूल्यों और वैज्ञानिक दृष्टि से सम्बंधित है। इन्हीं तत्वों के आधार पर मध्यकालीनता को दूर किया जा सकता है। कबीर, तुलसी, निराला, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, हुमायूँ कबीर, रोमिला थापर आदि के विचारों के आधार पर लेखक ने अपनी स्थापना को पुष्ट किया है *मध्यकालीनता का सबसे तगड़ा झोंका अंग्रेजी राज में आया।* (पृ. 23) अक्सर हम यह मानते हैं कि अंग्रेजी राज में भारत में कल कारखाने स्थापित होने के कारण ज्ञान विज्ञान के दरवाजे खुले। भारत में आधुनिकता को बल मिला। लेकिन, सच तो यह है कि इन्हीं कल कारखानों ने देशी उद्योगों और और व्यापार का लगभग ध्वंस कर दिया। किसान, कारीगर, बुनकर, रंगरेज आदि की स्थिति दयनीय हो गयी। साम्प्रदायिक विद्वेष को बढ़ावा मिला। जनता को अंधविश्वास और रूढ़ियों में जकड़े रखने का पुरजोर प्रयास हुआ। मूल्यों का क्षरण हुआ। यह क्षरण इतना अधिक और इतनी तेजी के साथ हुआ कि भारत में अंधकारयुग की प्रवृत्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। जबकि मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन हुआ था और उस आंदोलन को व्यापक रूप प्रदान करने में व्यापार की उन्नति ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अतः लेखक ने भारतीय साहित्य के सम्बंध में अंधकार युग सम्बंधी यूरोपीय धारणा को अनुचित ठहराया है *दोनों (मध्यकालीनता और आधुनिकता) के बीच संवाद हो सकता है, सामंजस्य नहीं। एक का जीवन या पुनर्जीवन दूसरे के निषेध पर आधारित है। इतिहास में बार बार हम प्रगति और प्रत्यावर्तन के ऐसे दौर देखते हैं। लेकिन, इससे मध्यकालीन और आधुनिक मूल्य प्रणालियों में निहित अंतर्विरोध मिट नहीं जाता।* (पृ. 34)

‘नवजागरण की इतिहासदृष्टि’ शीर्षक निबंध में नवजागरण के चार प्रमुख मुद्दों को सिलसिलेवार ढंग से प्रस्तुत किया है। नवजागरण का अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दा भाषा, संस्कृति और जाति को माना है तो विशेषाधिकारों को चुनौती, मानववाद और तर्क तथा अनुभव के नये संगठन को अन्य मुद्दों के रूप में स्वीकार किया है। जनपदीय बोलियों के साथ खड़ी बोली के रिश्ते, सामंती ढांचा को लेखक ने हिन्दी भाषी समाज की आंतरिक समस्याओं के रूप में चिह्नित किया है। इन समस्याओं के बारे में रामविलास शर्मा के चिन्तन और उसके महत्व का आकलन किया गया है।

अजय तिवारी ने ‘आधुनिकीकरण पर पुनर्विचार’ शीर्षक एक अति समृद्ध, तथ्याधारित, गहन चिन्तन मनन परक शोधालेख प्रस्तुत किया है। मार्क्स, एंगेल्स, फूको, ईगल्टन, फ्रेडेरिक जेनेसन, फीदेल कास्त्रो, एडवर्ड सईद के साथ साथ सुमित सरकार, सुधीर चंद्र, सुनील खिलवानी, हुमायूँ कबीर, महात्मा गांधी, आन सान सू ची आदि के हवाले से लेखक ने आधुनिकता के अंतर्द्वंद्व, प्रति आधुनिकता, बाजार, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रतिरोध और वर्चस्व जैसे विषयों पर जो प्रवाहधर्मी विचार प्रस्तुत किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इससे लेखक के व्यापक अध्ययन का पता तो चलता है, साथ ही शोधालेख का उत्कृष्ट नमूना भी पाठकों के सामने प्रस्तुत होता है। गम्भीर शोध आलेख होते हुए भी इसकी पठनीयता बनी रहती है जो इसका प्रमुख वैशिष्ट्य है।

अक्सर आधुनिकता को पूंजीवाद का पर्याय मान लिया जाता है। उसे पूंजीवादी परियोजना के तहत स्वीकारा जाता है। यह गलत है। लेखक ने यूरोप की आधुनिकता और भारतीय आधुनिकता के स्वरूप में निहित अंतर को भी स्पष्ट किया है। आधुनिकता के बारे में प्रचलित समझ और अवधारणा से भिन्न है लेखक की दृष्टि। उसका मानना है *आधुनिकता अगर तर्कवाद, मानववाद और आर्थिक प्राविधिक विकास के मूल्यों से परिभाषित होती है तो श्रमिकों की दासता, प्रकृति के दोहन और पूंजी के अंतरराष्ट्रीयकरण से भी परिभाषित होती है। वह अगर स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व से परिभाषित*

होती है तो विषमता, परतंत्रता और उत्पीड़न से भी परिभाषित होती है। उसने ज्ञान, अनुशासन, मानवाधिकार ही नहीं दिये, साम्राज्यवादी उपनिवेश भी दिये। फिर भी आधुनिकता और पूंजीवाद को पर्याय मान लेना भूल है। (पृ.46)

बंकिम, भारतेन्दु, गांधी की आधुनिकता सम्बंधी दुविधाओं के बहाने उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी की उलझनों को उद्घाटित किया गया है। दरअसल, ये दुविधाएं और उलझनें इन रचनाकारों की सीमा नहीं थीं, सामर्थ्य थी। जो भी उनके विचार में अंतर्विरोध था वह केवल उनका नहीं पूरे युग का था।

गांधी जी के उपनिवेश विरोध को विज्ञान विरोध समझ लिया जाता है। इस पर अजय का कहना है *गांधी जी विज्ञान के विरोधी न थे। मशीन को वे पश्चिमी साम्राज्यवाद की देन समझते थे, इसलिए उसका विरोध करते थे। वे आधुनिकता के विरोधी न थे।* (पृ.50)

आधुनिकता समस्याग्रस्त तो है ही दुविधाग्रस्त भी है। इसलिए लेखक ने आधुनिकता की दो परम्पराएं बतायी हैं साम्राज्यवादी आधुनिकता और प्रतिरोधी आधुनिकता। कहना न होगा कि 'खुली लूट' का तमाम वामपंथी और दक्षिणपंथी कर्णधारों ने विरोध किया। इस लूट से ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति का घनिष्ठ सम्बंध था। मजदूर वर्ग तथा विभिन्न देशों ने संघर्षशील विरोधी चेतना प्रदर्शित की थी। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, बाजारवाद और संचार क्रांति दमनकारी विचार से कतई भिन्न नहीं हैं। ये तीनों एक दूसरे के पूरक हैं, प्रेरक भी। इसे व्याख्यायित करने के पश्चात अजय जी लिखते हैं *वर्चस्व के साधन के रूप में संचार उपभोक्तावादी बाजार का सहचर है। वहां एकरूपता का साम्राज्य है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भी ऐसी ही एकरूपता लागू करता है।* (पृ.59)

'साहित्य और वर्गीय प्रक्रिया' निबंध में वर्गों की संरचना को जटिल और बहुस्तरीय कहा गया है। अतः समाज का यथार्थ भी जटिल और बहुस्तरीय होता है। वर्ग संरचना की विविधताओं के साथ व्यक्ति के सम्बंध की विशेषताएं मिल कर हमारी चेतना में सामाजिक सम्बंधों के अप्रत्याशित प्रतिबिम्ब उत्पन्न करती हैं। भूमंडलीकरण के दौर में मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी के 'बाजार' और 'संचार' के मायालोक में डूबे रहने के कारण वर्ग, हित, संघर्ष आदि रूढ़िग्रस्त हो गये हैं। इस संदर्भ में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद पर विचार करते हुए लिखा गया है *पूंजी की हितचेतना अत्यंत संगठित और जागरूक है, पर जनता की हितचेतना बराबर कुंठित और खंडित हो रही है 'वर्ग' की चर्चा को रूढ़िवाद बनाना इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का द्योतक है।* (पृ.80) लेखक के अनुसार साहित्य और वर्ग का सम्बंध होता है। साहित्य वर्गीय चेतना की अभिव्यक्ति है। रचनाकार की सहानुभूति उसकी रचना में प्रतिफलित होती है *साहित्य रचना या रचित साहित्य में व्यक्त यथार्थ और जीवन मूल्यों के साथ वर्गों का सम्बंध भी होता है।* (पृ.91) तुलसी, बिहारी, निराला के रचना संसार के आधार पर लेखक ने सिद्ध किया है कि वर्ग प्रक्रिया के बीच साहित्य ऐतिहासिक मानवीय घटना में तब्दील होता है।

मार्क्स के सूत्रों को आधार बना कर श्रम और कला को मनुष्य का रचनात्मक सारतत्व कहा गया है। मनुष्य के विकास में श्रम और कला की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। मनुष्य के रचनात्मक अस्तित्व को प्रकट करने में श्रम और कला के महत्व को ठुकराया नहीं जा सकता है *वर्ग प्रक्रिया और कला प्रक्रिया का सम्बंध भूमंडलग्राम और यांत्रिक उत्पादन के वर्तमान युग में भी लुप्त नहीं हुआ है। कलाकार या तो 'बाजार' का विरोध करेगा या 'बाजार' का अंग बनेगा।* (पृ.99)

समकालीन साहित्य में प्रतिरोध का स्वर प्रबल है। विकासशील देशों में 'बाजार' के असली चेहरे को सामने लाने का सफल प्रयास हो रहा है। समकालीन हिन्दी कविता, कहानी, उपन्यास की इस दिशा में स्थिति संतोषजनक है। रचनाकार यथार्थ के विविध रूपों को उद्घाटित कर रहे हैं

सम्मोहक कला और पारदर्शी भाषा का उपयोग यथार्थ के उन रूपों को सामने लाने के लिए कर रहे हैं जिन्हें बाजार और संचार की उत्तर आधुनिक दुनिया ने पृष्ठभूमि में ठेल दिया है। (पृ.101)

‘साहित्य, समाज और व्यक्ति’ शीर्षक देख कर यह प्रतीत हो सकता है कि यह एक मामूली विषय हैं लेकिन, लेखक ने इस विषय पर गम्भीरता के साथ विचार किया है। भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के मतों को मार्क्सवादी दृष्टि से विश्लेषित किया है तथा अपनी मौलिक स्थापनाएं भी दी हैं। लेखक ने इस निबंध में सामाजिक जीवन, सामाजिक संदर्भ आदि को ध्यान में रखते हुए साहित्यिक और कलाकृतियों का विश्लेषण किया है। सामाजिक संदर्भ बदलने पर केवल नयी अंतर्वस्तु जन्म नहीं लेती, उस अंतर्वस्तु का नया संगठन भी अनिवार्य हो जाता है। (पृ.108) लेखक ने तुलसी के ‘मानस’ और ‘कवितावली’ में निहित मूलभूत अंतर को तुलसी की सामाजिक दृष्टि में अंतर का परिणाम बताया है। अपने अन्य निबंधों की भांति लेखक ने अपने युगीन संदर्भों को महत्व दिया है। छोटे छोटे वाक्य, पारदर्शी भाषा, विचारों की स्पष्टता आदि इस निबंध की खूबी है। संस्कृति मनुष्य की समग्रता है। सामाजिक विखंडन संस्कृति के विरुद्ध है। इसलिए वर्ग समाज संस्कृति का क्षरण करते हैं और संस्कृति वर्गभेद को अस्वीकार करती है। मुनाफाखोरी और भुखमरी दोनों मनुष्य को पशु बनाते हैं। (पृ.111)

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में हिन्दी पत्रकारों और हिन्दी पत्रकारिता की जो स्थिति थी, आज भी वैसी है। बंगाल और महाराष्ट्र के पत्रकारों ने ‘जनचेतना’ के प्रचार प्रसार में जो भूमिका अदा की थी, लगभग वैसा कार्य ‘सरस्वती’ ने भी किया था। ‘सरस्वती’ का स्वर्णकाल 1903-1920 माना जाता है। ‘सरस्वती’ के माध्यम से ‘नयी चेतना’ के प्रसार हेतु सम्पादक को अनथक प्रयास, गहरी निष्ठा और अपार तनाव झेलना पड़ा था। प्रगतिशील आलोचक प्रो. अजय तिवारी ने ‘सरस्वती’ के पुराने अंकों को खंगाल कर अपनी खोजी दृष्टि का तो परिचय दिया ही है साथ ही महावीर प्रसाद द्विवेदी की चेतना और दृष्टि को बड़े दिलचस्प ढंग से ‘नयी चेतना का संघर्ष’ शीर्षक लेख में प्रस्तुत किया है। लेखक की स्थापना है ‘सरस्वती’ केवल अपने समय की पत्रकारिता का ही मानदंड नहीं बनी, बल्कि वह आज की पत्रकारिता के लिए भी मार्गदर्शक है। सम्पादन की विशेषता और प्रकाशन की तकनीक के अनुसार नहीं, सामाजिक दृष्टिकोण और सांस्कृतिक सरोकारों के अनुसार वह अवश्य शिक्षक भी है।’ (पृ.117)

बांग्ला और मराठी सचेतनशील जातियां थीं। सरस्वती ने उनसे प्रेरणा ली और अंग्रेजों तथा सामंतों से संघर्ष करते हुए निश्चित दिशा निर्धारित करने वाली जातीय चेतना का विकास किया। ज्ञान विज्ञान, दर्शन, कृषि समस्या, सामाजिक संहिता, परिवार व्यवस्था, कला साहित्य, वैश्विक परिघटनाओं आदि विषयों का विवेचन बड़ी शिद्दत के साथ किया जाता था। इससे ‘सरस्वती’ का महत्व स्थापित होता है। ‘सरस्वती’ ने आधुनिकता को विकसित किया उसने भाषा और साहित्य, संस्कृति और विज्ञान, दर्शन और समाज सभी क्षेत्रों में सक्रिय रुचि ली तथा भारतीय जीवन को पुनर्गठित करने और हिन्दी भाषी जनता की चेतना को जागृत करने में उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका निभायी। (पृ.126)

‘सौन्दर्य चिन्तन : कुछ प्रश्न’ शीर्षक निबंध से लेखक की सौन्दर्य चिन्तन सम्बंधी गहरी सूझबूझ और वैचारिकता, बौद्धिकता और कला चिन्तन का परिचय मिलता है। मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के आधार पर सौन्दर्य चिन्तन प्रस्तुत किया गया है तथा बाजारवादी भ्रष्ट संस्कृति तथा पूंजीवादी तंत्र की चालाकियों को भी पाठकों के सामने उद्घाटित करने का प्रयास हुआ है।

अजय ने गांधी जी को ‘सहस्राब्दी पुरुष’ और ‘भारत की राष्ट्रीय आत्मा बन कर विश्व मानवता के लिए योगदान’ करने वाले महात्मा के रूप में परिचित कराया है। अमरीकी समाज का पूंजीवादी चरित्र है लेकिन यहां गांधी दर्शन अपना करने का ढोंग करने वालों की भी जम कर खबर ली गयी है।

अमेरिकी न्याय व्यवस्था के वर्ग चरित्र का भी मखौल उड़ाया गया है उत्पादक को सजा न देना और उपभोक्ता को सजा देना, यह अमरीकी लोकतंत्र का पूंजीवादी चरित्र है। (पृ.164)

‘हिन्दी संस्कृति और धर्मनिरपेक्षता’ एक जरूरी निबंध है जिसे सभी हिन्दी प्रेमियों को पढ़ना चाहिए। आज सबसे बड़ा खतरा साम्प्रदायिकता है। लेखक के अनुसार इसका सम्बंध धर्म से नहीं, राजनीति से है। लेखक अपने गहरे आत्मविश्वास के साथ लिखता है साम्प्रदायिकता के बारे में यह बात बार बार प्रमाणित हुई है कि हिन्दू आबादी का बहुसंख्यक हिस्सा साम्प्रदायिक नहीं है, मुस्लिम आबादी का बहुसंख्यक हिस्सा भी साम्प्रदायिक नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनों में थोड़े से लोगों के गिरोह हैं जो साम्प्रदायिक हैं। (पृ.175)

प्रताप नारायण मिश्र ने नारा दिया था ‘हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्थान’। इस नारे का गलत और मनमाना अर्थ लगा कर मासूम लोगों को खूब भरमाया जाता रहा। भटकाया जाता रहा। लेखक ने उन संदर्भों और परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट किया है जिस स्थिति में ‘हिन्दू’ शब्द का प्रयोग किया गया था। उसकी स्पष्ट घोषणा है तब तक हिन्दू एक धार्मिक अस्मिता का सूचक पद नहीं था। (पृ.176) तमाम तथ्यों से इसे सिद्ध किया गया है। कुलीन सवर्ण हों या दलित, जो भी अमेरिकी साम्राज्यवाद के समर्थन में तर्क देते हैं कि भारत के जातिवाद का खात्मा अमेरिका ही कर सकता है, उन्हें लेखक आड़े हाथों लेता है। दरअसल, पराधीन भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के समर्थकों की तरह आज का ‘कुलीन’ पूंजीवादी साम्राज्य का गुणगान कर रहा है।

‘साहित्य और समकालीनता’ शीर्षक लेख में अजय तिवारी ने समकालीनता के स्वरूप, उसकी अवधारणा आदि पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है। समकालीनता के संदर्भ में फैली हुई तमाम भ्रांतियों का निराकरण इस लेख में हो जाता है। लेखक ने अपने विचारों की पुष्टि के लिए पर्याप्त मात्रा में उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

समीक्ष्य पुस्तक में एक आलेख है ‘सामाजिक यथार्थ और साहित्य’। दअसल, अरुण माहेश्वरी की किसी पुस्तक की चर्चा करते हुए उसकी स्थापनाओं से असहमतियां व्यक्त करते हुए इस लेख का तानाबाना बुना गया है। आज आलोचना की दुनिया से असहमतियां गायब होती जा रही हैं। इस दृष्टि से आलेख का महत्व है। पुनः इस आलेख का महत्व इसमें भी है कि अजय तिवारी की तीक्ष्ण बौद्धिक शक्ति, तार्किकता, वस्तुनिष्ठता आदि का भी परिचय इससे मिल जाता है। वे खरी खरी बात कहने से भी नहीं हिचकते। आलोचना करते समय ‘टेक्स्ट’ को ध्यान में रखते हैं, मित्रता को नहीं। फिर भी पता नहीं, क्यों ऐसा लगता है कि अजय ने व्यर्थ की एक किताब पर यह लेख लिख कर अपना समय, ऊर्जा, बुद्धि और तर्क नष्ट किया है।

एक बात और है। लगभग दो सौ पृष्ठों की इस किताब में सरसरी निगाह से देखने पर भी 41 प्रूफ की भूलें पायी गयीं। एकाध स्थल पर क्रियारूप में भी गलती पायी जाती है। जैसे, अंग्रेजों के पहले तुर्कों ने विजय किया, दूसरी जातियों ने विजय किया। (पृ.39)

यह पुस्तक अजय तिवारी के आलोचकीय व्यक्तित्व को ऊंचाई प्रदान करती है तथा आधुनिकता के पुनर्विचार के बहाने हमारे समय के महत्वपूर्ण सवालों से टकरा कर आलोचना के क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करती है।

**आधुनिकता पर पुनर्विचार** : अजय तिवारी, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, मूल्य : 200 रु.

# समय की सचाइयां तलाशता साहित्य

बिपिन तिवारी

**रचनाकार** अपने समय की सचाइयों को साहित्य में अभिव्यक्त करता है। समय की सच्चाइयां साहित्य की विषयवस्तु को प्रभावित करती हैं। इसीलिए हर दौर का साहित्य विषयवस्तु और रूपपक्ष दोनों स्तर पर पहले के साहित्य से अलग होता है। बीसवीं सदी के आखिरी दशक या इक्कीसवीं सदी और उसके बाद का साहित्य इसी संदर्भ में अलग तरह का है। यह वह दौर है जब समाज में साम्प्रदायिकता, दलित राजनीति, नक्सलवाद समेत अनेक समस्याएं देश के सामने खड़ी दिखायी देती हैं। समाज में हो रहे इन बदलावों को साहित्य ने बहुत ही बारीकी से पकड़ने की कोशिश की है।

बीसवीं सदी के आखिरी दशक में जो नयी समस्याएं खड़ी हो रही थीं उनकी जड़ें बहुत गहरी थीं। इस मामले में चाहे साम्प्रदायिकता को लें या जातिवादी राजनीति के उभार को, इन सबकी पृष्ठभूमि आजादी के कुछ समय बाद से ही बननी शुरू हो गयी थी। यह बात अलग है कि तब इनका कोई खास अस्तित्व नहीं था। राजनीतिक अस्थिरता के दौर में भारत में हिन्दू साम्प्रदायिक दलों ने अपना आधार जरूर मजबूत किया। यही वजह थी कि इस दौर में हुए दंगों में हिन्दू साम्प्रदायिक दलों की भूमिका किसी न किसी रूप में दिखायी पड़ती है। हिन्दू साम्प्रदायिकता की चरम परिणति बाबरी मस्जिद विध्वंस के रूप में हुई। फलतः एक पूरी की पूरी कोम भय के साये में जीने लगी। वहीं जातिवादी राजनीति के उभार के बीच भी काफी गहरे हैं। लेकिन इस सदी के अंत में वह एक राजनीतिक शक्ति के रूप में दिखायी पड़ती है। दलित राजनीति के उभार से न केवल शहरी संरचना अपितु ग्रामीण संरचना भी बदलने लगी। साथ ही इसी दशक में आदिवासियों के हितों जल जंगल जमीन को लेकर जंगली इलाकों में नक्सली राजनीति अपने पैर बहुत तेजी से पसार रही थी। इस आंदोलन में काफी पढ़े लिखे लोग शामिल थे, जो कि देश के वर्तमान हालात और राजनीतिक व्यवस्था से क्षुब्ध थे। जो संख्या और



प्रसार के लिहाज से आज काफी मजबूत हो चुके हैं। लेकिन विडम्बना यह है कि सरकार इनके द्वारा उठायी जाने वाली समस्याओं का निदान करने के बजाय इन्हें ही देश की मुख्य समस्या मान बैठी है। देश की इन वर्तमान समस्याओं को केन्द्र बना कर इस दौर का साहित्य रचा गया है। इस समीक्षात्मक आलेख में नमिता सिंह के उपन्यास 'लेडीज क्लब', मदन मोहन के उपन्यास 'जहां एक जंगल था' और शैलेन्द्र सागर के उपन्यास 'एक सुबह यह भी' की विवेचना करने की कोशिश की गयी है।

**नमिता सिंह** का उपन्यास 'लेडीज क्लब' अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के इर्दगिर्द बना गया है। नमिता सिंह वरिष्ठ लेखिका हैं। उपन्यासकार के तौर पर यह उनका दूसरा उपन्यास है। 'लेडीज क्लब' की कथावस्तु के माध्यम से मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज की सचाइयों को देखा जा सकता है। उपन्यास के नाम पर यदि जायें तो यह उपन्यास अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में किस तरह और किन परिस्थितियों में एक 'लेडीज क्लब' का निर्माण किया जाता है और इसके माध्यम से कौन कौन से सामाजिक काम, बहस मुवाहिदा और पूरे मुस्लिम कट्टरपंथ के खिलाफ किस तरह लड़ाई लड़ी जाती है, उस पर केन्द्रित है। इसमें सबसे पहले साम्प्रदायिकता को लेते हैं। आज की तारीख में यानी कुछ समय पहले तक (जब तक साध्वी प्रज्ञा ठाकुर आदि का नाम सामने नहीं आया था) साम्प्रदायिकता के मसले पर एक पूरी की पूरी जमात को इसका उत्तरदायी बना दिया जाता था। आर.एस.एस. और उससे जुड़े संगठनों ने इस दुष्प्रचार में खुल कर हिस्सेदारी की। उपन्यास की कथावस्तु का फलक बहुत व्यापक है। एक तरफ तो उपन्यास की कथावस्तु का सिरा 1980 और 82 के बीच है तो दूसरी ओर की सीमारेखा गोधरा और उसके बाद तक के समय में हैं। उपन्यास में कथा की शुरुआत ही होती है : "सन् 80 और 82 के बीच चलने वाले लम्बे दंगों के बाद ऐसा अमूमन होने लगा। सिर पर छोटी तबलीगी टोपी और दाढ़ियां। कुछ दाढ़ियां चेहरे पर थीं तो कुछ पेट के भीतर। छात्र छात्राओं के बीच तबलीगी जमात दिखायी देने लगी। यूनिवर्सिटी की राजनीति में उनका दखल ऊंचाई छूने लगा। शुक्रवार को हॉस्टलों में लड़कों के कमरों पर छापों जैसा माहौल। जोहर की नमाज! क्या मजाल कोई कमरे में रह जाये। ऐसे दौरें दौरों में फतवों की गाज सबसे पहले लड़कियों पर गिरनी ही थी।" (पृष्ठ 23) जमात के लड़कों ने कैम्पस की गतिविधियों में अपने साम्प्रदायिक एजेण्डे पेश करने शुरू कर दिये। अब लड़कियां न तो ड्रामा क्लब में भाग ले सकती थीं और न ही किसी अन्य गतिविधि में। कैम्पस की आबोहवा पूरी तरह बदलने लगी। जिसके खिलाफ शहनाज आपा ने लम्बी लड़ाई लड़ी थी। शहनाज आपा ड्रामा क्लब की इंचार्ज थीं। शहनाज आपा ने सीधे सीधे कहा, "ये यूनिवर्सिटी है, मदरसा नहीं। यहां शिक्षक समुदाय है, जमात नहीं। यहां ज्ञान बांटा जाता है, जहालत नहीं।" (पृ. 23) यहां बात सिर्फ ड्रामा क्लब में लड़कियों के भाग लेने की नहीं थी अपितु कैम्पस में बढ़ती फिरकापरस्त सोच की थी। इस पर उन्हें क्या नहीं कहा गया... वेश्या, चरित्रहीन, फ्रस्टेटेड वुमन, लड़कियों को बिगाड़ रही हैं। यह सब आरोप जमात की तरफ से ही नहीं लगाये जा रहे थे अपितु कैम्पस के अध्यापकों का एक धड़ा भी दबी जुबान से ही संस्कृति के नाम पर उन लड़कों का साथ दे रहा था। ऐसे ही परिवेश के बीच कैम्पस की औरतों ने मिल कर 'लेडीज क्लब' बनाया था। 'लेडीज क्लब' बनाने के पीछे औरतों को समाज की मुख्य चिन्ताओं से जोड़ना था। इस क्लब में बाद में शहर की कुछ प्रतिष्ठित महिलाओं को भी जोड़ा गया, जिससे क्लब सिर्फ यूनिवर्सिटी तक सीमित होकर न रह जाये। जिसमें विमलेश बहन प्रमुख थीं। विमलेश बहन वैसे तो एक सामान्य घरेलू महिला थीं, लेकिन एक घटना के बाद वह लोकल से नेशनल बन गयीं। विमलेश बहन ने जब सड़क पर दो लड़कियों के साथ कुछ लोगों को जोर जबरदस्ती करते देखा, तो तुरंत उन दोनों की जाति धर्म की परवाह की चिन्ता किये बिना, उनको बचाने में जुट

गयीं। जबकि कैम्पस के पढ़े लिखे लोगों में अपने दीन धर्म आदि को लेकर अतिरिक्त चिन्ताएं हो रही थीं। कैम्पस के कुछेक प्रोफेसर पूरी तरह नमाजी थे। यानी आधुनिक ज्ञान विज्ञान सम्पन्न धर्म की चौहद्दी में फंसे कूपमंडूक। इसमें बहुत सारे विदेशी विश्वविद्यालय से एक खास डिग्री लेकर लौटे लोग भी शामिल थे। यह वही लोग थे जो विदेश तो अपने पंख फैलाने गये थे, लेकिन अपने को उस संस्कृति में एडजस्ट नहीं कर पाये। प्रोफेसर शौकत अली इसी का शिकार हैं।

शौकत अली के मार्फत उपन्यासकार पूरे मुस्लिम मध्यवर्गीय समाज की वास्तविकता दिखाने का प्रयास करता है। आज के मुस्लिम आतंकवाद के संदर्भ में इसको देखा जाये तो बात पुष्ट हो जाती है। आज की तारीख में जितने भी मुस्लिम युवक आतंकवादी गतिविधियों में शामिल हैं, उनमें अधिकतर विज्ञान के बहुत अच्छे छात्र रहे हैं। सवाल यहां किसी एक खास अनुशासन को लेकर नहीं है अपितु सवाल है उनकी चेतना को लेकर। यह सारे के सारे लोग जिन्दगी और पेशे को अलग अलग तरह से जीते हैं। फलतः वह एक तरफ वैज्ञानिक खोज करते हैं तो दूसरी तरफ धर्म, समाज आदि को लेकर उनका नजरिया संकीर्ण बना रहता है।

उपन्यास में 1992 के बाद की परिस्थितियों को भी अलीगढ़ के संदर्भ में समझने की कोशिश की गयी है। यह वह दौर है जब दंगों के दिनों में, एक अनजाने भय की आशंका में लीला गुप्ता और उनके पति कैम्पस छोड़ कर चले गये। लीला की पड़ोसी शाहिदा उनके जाने के बाद बहुत रोयी थीं। जो हालात पैदा हो रहे थे उसमें किसी को भी किसी पर विश्वास नहीं रह गया था।

लीला गुप्ता का कैम्पस से जाना एक ऐसे अविश्वास को जन्म दे गया था, जो सबके ऊपर तारी था। ऐसे ही माहौल में कुलसुम बेन का लड़का जफर भी इसी हवा का शिकार हो गया था। उसने कैम्पस के कुछ कुतों को जहर देकर मार डाला। पूरे माहौल में नफरत भर गयी थी। हिन्दू साम्प्रदायिक लोग मुसलमानों को चुनचुन कर निशाना बना रहे थे और मुस्लिम हिन्दुओं को। हिन्दू साम्प्रदायिकों ने कैम्पस के मेडिकल कॉलेज के बारे में यहां तक अफवाहें उड़ा दी थीं कि मेडिकल कॉलेज में हिन्दुओं को मौत की नींद सुलाया जा रहा है। मेडिकल कॉलेज की दीवारें चीख रही थीं और डॉक्टर अपने लरजते होठों से बुदबुदा रहे थे, “हम बचनबद्ध हैं अपने पेशे से। हम मरीज की जात नहीं पूछते। उसका धर्म नहीं बूझते। यहां सिर्फ एक रिश्ता है। डॉक्टर और मरीज का। सिर्फ दो इन्सान और एक रिश्ता।” (पृ. 147)

उपन्यास में नमिता सिंह ने मुस्लिम समाज की कुछ अंदरूनी पतों को हटाने की कोशिश की है। मुस्लिम समाज के बारे में आमतौर से यह धारणा बनी हुई है कि वह कट्टर समाज है, वह अल्लाह की रवायतों के हिसाब से जिन्दगी जीता है। ऐसे ही कुछ और भी धारणाएं प्रचारित हैं। उपन्यास इन सब बातों का बारीकी से विवेचना करता है। उपन्यास अलीगढ़ के आसपास के मुस्लिम समाज की जो सचाई प्रस्तुत करता है वह एक नये तरह की है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय का जो पढ़ा लिखा मुस्लिम समाज है, वह कहने को तो पढ़ा लिखा, ज्ञानसम्पन्न है। लेकिन उसमें कुछ लोगों पर उन्हीं दीन धर्म की बातों का प्रभाव है। शौकत अली, महबूब साहब और ऐसे भी कुछ और लोग हैं, जो इसी तरह के विचारों से प्रभावित हैं। उपन्यास में महिलाओं की भाषा पर उनके आसपास के परिवेश का जबर्दस्त प्रभाव है। विमलेश बहन और कुलसुम की भाषा इसका प्रमाण है। विमलेश बहन खड़ी बोली बोलती हैं तो कुलसुम की भाषा पर जौनपुर का जबर्दस्त प्रभाव है। उपन्यास के बाकी पात्र खड़ी बोली में ही अपनी बात कहते हैं। उपन्यास में सबसे बढ़िया चरित्र शहनाज आपा का बन पड़ा है। शहनाज आपा का संघर्ष, उनकी चाल ढाल, भाषण देने की कला और भी बहुत सारी बातें। उपन्यास में शहनाज आपा की शख्सियत सबसे अलग दिखायी पड़ती है। उपन्यास में शौकत अली के मार्फत पढ़े लिखे मुस्लिम व्यक्ति के अंतर्मन में धर्म और अपनी संस्कृति को लेकर किस तरह का गहरा द्वंद्व चलता

है, इसको बहुत गहराई से महसूस किया जा सकता है। साथ ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि दीन धर्म की उलझन एक आधुनिक ज्ञान विज्ञान सम्पन्न व्यक्ति को किस रास्ते पर लाकर खड़ा कर देती है इसका उसे खुद भी भान नहीं होता है।

**मदन मोहन** का उपन्यास **‘जहां एक जंगल था’** पूर्वांचल में महामारी बन चुकी इंसेफेलाइटिस बीमारी को केन्द्र में रख कर लिखा गया है। उपन्यास की कथावस्तु के बारे में ‘मेरी ओर से’ में उपन्यासकार ने लिखा है ‘उपन्यास की कथावस्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश के अति पिछड़े पूर्वांचल का गांव है, जहां सात आठ जिलों की एक बड़ी आबादी बसती है। जिलों की सीमाएं एक दूसरे को छूती हुई नेपाल और बिहार की सीमाओं तक जाती हैं। मैंने इसी इलाके को प्रातिनिधिक रूप से उपन्यास की कथाभूमि बनाया है।’ (पृ. 7) इंसेफेलाइटिस एक ऐसी बीमारी है जो गरीब, अशिक्षित पूर्वांचल के गांवों में बहुत तेजी से फैल रही है। इस बीमारी से हर साल पूर्वांचल के हजारों लोगों की जान चली जाती है। लेकिन सरकार इसके प्रति कोई गम्भीर रुख अखिर नहीं करती है। राजनीति में बैठे लोगों के अपने क्लास इंटेरेस्ट हैं। उनके इंटेरेस्ट में पूर्वांचल की अशिक्षित जनता की समस्याएं नहीं हैं। इसी ‘इंसेफेलाइटिस’ या मस्तिष्क ज्वर से बाबूलाल की बहू की मृत्यु हो चुकी है। बाबूलाल इस बात को नहीं जानता है। वह तो इसे किसी दूसरे रूप में देखता जानता है। बाबूलाल ने गोरखनंदन को बताया “पतोहिया बेवकूफी कइलस। कुछ दिन त जइसन जे सुझौलस, तइसन कइलस। जब बेमारी ‘गढुवा’ गइल, लइकिनी आंख उलटे पुलटे लागल, धौंकनी चले लागल तब हाहाबीपों में बीरगंज के अस्पताल में भर्ती कइलस। जब तक पहुंची कि टें बोलि गइल बचिया।” (पृष्ठ 46) इंसेफेलाइटिस से हो रही मौतों से पूर्वांचल की जनता जब एक सदमे से गुजरने लगी और मीडिया से लेकर हर जगह जब सरकार की आलोचना की जाने लगी तब सरकार ने इसके ठीके मंगवाये। लेकिन ठीकों की कीमत इतनी ज्यादा थी कि कुछ खास लोगों को मिल पाते थे बाकी उसी तरह मरते रहे। मदन मोहन ने इसी को केन्द्र में रख कर उपन्यास का तानाबाना बुना है। वैसे यह उपन्यास सिर्फ पूर्वांचल की समस्या को ही नहीं दिखाता अपितु इसका कथानक भारत के किसी भी अंचल के लिए मौजू है। यह उनका पहला उपन्यास है। उपन्यास में जिस समस्या को कथावस्तु के रूप में चुना गया है, उससे उनके संवेदना की गहराई और सरोकार दोनों को देखा जा सकता है। इंसेफेलाइटिस को केन्द्र में रख कर बुनी गयी इस कथा में सिर्फ ‘इंसेफेलाइटिस’ जैसी बीमारी की कहानी नहीं है अपितु इसके माध्यम से ग्रामीण समाज की उस तस्वीर को भी देखा जा सकता है, जो कि अब बन रही है।

इसके साथ ही उपन्यास में पैखी और गोरखनंदन की प्रेम कहानी भी समानांतर चलती रहती है। इस प्रेम कहानी के माध्यम से ग्रामीण समाज में हो रहे बदलाव को ज्यादा गहराई से समझा जा सकता है। इन दोनों के बीच का जो प्रेम है उसका अंत भले ही सुखद नहीं है लेकिन इससे मध्यवर्गीय समाज के दोहरे चरित्र को आसानी से समझा जा सकता है। यह वह वर्ग है जो पहले तो क्रांतिकारी बातें करता है लेकिन बाद में मौका आने पर अपने ही वायदे से मुकर जाता है। समाज परिवार की इज्जत मर्यादा ज्यादा मायने रखने लगती है। गोरखनंदन और पैखी की प्रेम कहानी में पैखी ही समर्पण भाव से प्रेम करती है जबकि गोरखनंदन तो पैखी से किये वायदों को भी नहीं निभाते। इसी कारण पैखी मुखर है। वह अपने प्रेम की खातिर गांव के यादवों के खिलाफ जाकर अदालत में गवाही देती है। जबकि गोरखनंदन तो अपने ही घर वालों के खिलाफ नहीं जा पाते हैं।

गोरखनंदन का मालेपुर गांव दो गुटों में साफतौर से बंटा हुआ है। एक तरफ गांव के ठाकुर बिजयी सिंह हैं और दूसरी ओर हैं गांव के यादव। अब प्रदेश में यादवों की सरकार है सो वह भी

गांव के सवर्णों के खिलाफ सीधे सीधे खड़े हैं। बिजयी सिंह जैसे तो कांग्रेसी हैं लेकिन समाज में उच्च वर्ण की श्रेष्ठता स्थापित करने को लेकर वह संघ के कार्यकर्ता अपरबल पांडे के साथ अपना मेलजोल बनाये रहते हैं। अपरबल पांडे का गांव में स्कूल है जिस पर केसरिया रंग का झंडा लहराता रहता है। इससे उनकी विचारधारा को आसानी से समझा जा सकता है। अपरबल पांडे का लड़का चिक्कन पांडे जंगल की वनटंगिया जमीन को औने पौने दामों में पट्टा करवा कर उस पर रिहायशी कॉलोनी बनाना चाहता है। मालेपुर गांव के राकेश बाबा इस षड्यंत्र के खिलाफ वनटंगिया मजदूरों का साथ देते हैं। वहीं मालेपुर गांव में राकेश बाबा चुल्हाई प्रधान के फर्जी कारनामों की कलाई खोलते हैं। चुल्हाई प्रधान के इन फर्जी कामों की जांच करने एक टीम आयी हुई है। चुल्हाई प्रधान कहता है “सर लगाये गये सारे आरोप झूठे हैं। राकेश बाबा गांव का विकास नहीं चाहते हैं। हर विकास कार्य में रोड़े अटकाना चाहते हैं। ताकि विकासविहीन कष्ट भोगती जनता के बीच इनका संगठन फलता फूलता रहे। गांव जवार में आंदोलन सत्याग्रह से अशांति फैला रहे हैं। सर, कौन नहीं जानता कि राकेश बाबा और मंगल चमार, कोरी मिल कर, बिशुनपुर और रजही जंगल के वनवासियों को उकसा कर, बीरगंज के निकट जंगल की खाली पड़ी पचासों एकड़ जमीन पर कब्जा करना चाहते हैं। जब कि उस जमीन का पट्टा मैना गांव के ठेकेदार चिक्कन पांडे को रिहायशी कॉलोनी बनवाने के लिए हो चुका है।” (पृ. 236) चुल्हाई यादव और अपरबल पांडे दोनों की नजर में राकेश बाबा विकास विरोधी हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि इन दोनों के षड्यंत्र को राकेश बाबा सफल नहीं होने दे रहे हैं। इसीलिए दोनों लोग राकेश बाबा के खिलाफ हैं। राकेश बाबा पढ़ा लिखा नवयुवक है जो अपने ज्ञान का उपयोग गांव की अशिक्षित जनता को शिक्षित और जागरूक करने के लिए कर रहा है। लेकिन जब जांच टीम आती है तो चुल्हाई यादव के खिलाफ कोई कुछ नहीं बोलता है। जांच टीम रुपया पैसा ले लिवा कर चेतावनी देकर चली जाती है। यानी राकेश बाबा का पूरा संघर्ष इस भ्रष्ट व्यवस्था की भेंट चढ़ जाता है। राकेश बाबा इन तथाकथित व्यवस्था के रखवालों की नजर में व्यवस्था विरोधी हैं। राकेश बाबा इसीलिए चुनाव प्रक्रिया को बेमतलब की कवायद मानते हैं “चुनाव एक राजनीतिक प्रक्रिया है, जिसमें हिस्सेदारी के लिए जनता यानी मतदाता को राजनीतिक रूप से चेतन सम्पन्न होना चाहिए। क्या हमारे देश की बहुसंख्यक जनता का राजनीतिक वैचारिक स्तर ऐसा है? जवाब है नहीं। क्योंकि वैचारिक स्तर उन्नत होने पर बहुसंख्यक जनता के, किसी गुंडा, माफिया, जातिवादी, हिंसक, साम्प्रदायिक और शोषक के पक्ष में मत देने का प्रश्न ही नहीं रह जाता। और चूंकि ऐसा नहीं है, इसलिए धनबलियों बाहुबलियों के बूते पार्टियों द्वारा देश की बहुसंख्यक जनता को भेड़ बकरियों की तरह हांका जा रहा है। भीड़तंत्र को बनाये रखने के लिए वास्तविक जनतंत्र के रास्ते अवरुद्ध किये जाते हैं। वस्तुतः आजादी के बाद से ही, जिस व्यवस्था में हम सांस ले रहे हैं, उसका चरित्र ही वृहत्तर जनता के ‘कल्याणकारी जनतंत्र’ का विरोधी है। तो ऐसे में इस चुनाव का भला क्या मतलब?” (पृ. 207)

गोरखनंदन भी कभी ऐसे ही विचारों से प्रेरित रहे थे। आज वही सब विचार इनके अपराधबोध का कारण हैं। गोरखनंदन के माध्यम से मध्यवर्गीय समाज की विडंबना को देखा जा सकता है। यह वर्ग पहले तो क्रांतिकारी विचारों से बहुत प्रेरित होता है लेकिन जब जीवन जीने की बात आती है, तब सारे सिद्धांत बेमतलब हो जाते हैं।

अंततः गोरखनंदन इन सबसे परेशान होकर अपनी जमीन राकेश बाबा को एक पत्र के माध्यम से लिख जाते हैं। इस तरह गोरखनंदन अपने को अपने सामाजिक अपराधबोध से मुक्त कर लेते हैं। गोरखनंदन की मुक्ति भले ही हो गयी हो लेकिन क्या वह वास्तव में पैखी के प्रति अपने कर्तव्य से मुक्त हुए? इसका जवाब उपन्यासकार नहीं देता है।

पैखी ने बिना किसी उम्मीद के गोरखनंदन को प्रेम किया। वह जानती थी कि वह जिस पर इतना विश्वास कर रही है और जिसे वह अपना सर्वस्व सौंप रही है, वह उसके विश्वास को कभी तोड़ेगा नहीं! लेकिन गोरखनंदन तो अपने ही किये वायदों पर खरा नहीं उतर सके। लिहाजा उनके भीतर पैखी को लेकर गहरा अपराधबोध पैदा हो गया। गांव आने के बाद से यह अपराधबोध ज्यादा गहरा हो गया है। पैखी की अपने शराबी पति से नहीं बनी तो मायके में आकर रहने लगी। वह किसी पर बोझ नहीं है। गोरखनंदन के खेत पर एक छोटी मड़इया डाल ली है और मजदूरी करके अपना गुजारा करती है। शायद इतना ही लिया है गोरखनंदन से, अनजाने में ही। वैसे प्रेम में तो उसने अपना सर्वस्व दिया ही है। गोरखनंदन के लिए भले ही यह एक नवयौवना युवती का पागलपन ही क्यों न हो? लेकिन पैखी के लिए यह प्रेम था। इसी प्रेम के चक्कर में वह पुरुष दर पुरुष भटकती रही। आखिर पैखी को कैसे प्रेम की तलाश थी?

उपन्यास में पत्रकारिता जैसे पेशे की भी वास्तविक स्थिति दिखायी गयी है। आज की तारीख में पत्रकार अपने को लोकतंत्र का पहरूआ मानते हैं लेकिन अपने निजी हितों की खातिर इस व्यवस्था के असली चरित्र को दिखाने से परहेज करते हैं। इसके बदले में वह अधिकारियों से लेकर राजनीतिक नेताओं से तोहफे वसूलते हैं और बड़े होटलों में दावतें खाते हैं। दोनों को एक दूसरे की जरूरत है। इस पूरे परिदृश्य को गोरखनंदन और उनके चचेरे भाई विशम्भर के बीच की जो बातचीत है उससे समझा जा सकता है। विशम्भर कहता है “भाई साहब, सारा मामला विश्वास के संकट का है। लोकतंत्र में विश्वास का संकट! आज जो हम आहत हुए हैं, और ठगे ठगे से महसूस कर रहे हैं, इसे भी उसी संकट से जोड़ कर देखिए! ‘लोक’ तो ‘तंत्र’ में विश्वास करना चाहता है, किन्तु तंत्र लोक के साथ विश्वासघात कर रहा है! इसके पीछे सत्ता की राजनीति, धनलोलुपता, नैतिक पतनशीलता वगैरह वगैरह बहुत सी वजहें हैं।” (पृ. 173) यह है इस व्यवस्था की सचाई। जिसमें कहने को तो सब कुछ लोकतंत्र के नाम पर किया जाता है जबकि वास्तविकता तो यह है कि यहां सब मिल कर इस लोक के खिलाफ ही तंत्र का प्रयोग करते हैं। इसीलिए विरोध करने वाले लोग विकास विरोधी माने जाते हैं। राकेश बाबा इसी रूप में हैं।

उपन्यासकार भले ही गोरखनंदन को राकेश को भूमि दान कर देने के बाद क्रांतिकारी बना दे, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि पैखी का सवाल अभी भी अनुत्तरित है। जिसका हल न तो पैखी चाहती है और न उपन्यासकार देता है। उपन्यास का यदि कोई केन्द्रीय चरित्र है तो वह पैखी है। पैखी भले ही पढ़ी लिखी नहीं है लेकिन वह जो भूमिका निभाती है उसका एक अलग मायने है। वह प्रेम की एक अलग परिभाषा गढ़ती है, निःस्वार्थ प्रेम की परिभाषा।

**शैलेन्द्र सागर** का उपन्यास ‘**एक सुबह यह भी**’ आज की दलित राजनीति पर केन्द्रित है। उपन्यास के जग्गू और रामरती के माध्यम से आज की दलित राजनीति का ग्रामीण समाज पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ रहा है, इसको समझा जा सकता है। ‘जग्गू मामूली सा पढ़ा लिखा दलित समाज का युवक है। जो नौकरी के चक्कर में न जाने कहां कहां अर्जियां देता रहा, लेकिन एक छोटी सी नौकरी नहीं मिल सकी। कहीं पहुंच कहीं भाई भतीजावाद तो कहीं नंगी सियासत।’ (पृ. 10) फलतः गांव के ठाकुर साहब के यहां मुनीमी की नौकरी कर ली। गांव पर दो गुटों का प्रभुत्व रहा है। एक गुट है गांव के यादवों का और दूसरा है गांव के ठाकुरों का। चूंकि दलित राजनीति से गांव की परिस्थितियां बदल रही हैं। गांव में दलित राजनीति और उसकी नीतियां पहुंच रही हैं जिसको लेकर लोगों में राजनीतिक गोलबंदी शुरू हो गयी है। फलतः गांवों की संरचना भी बदलने लगी है। ‘सालों साल गांव में यादवों

का वर्चस्व रहा है जो किसी हद तक आज भी कायम है। हालांकि अब प्रदेश की राजनीति का गांव पर इतना गहरा प्रभाव पड़ने लगा है कि राजधानी की रंगत बदलने से गांव के समीकरण, समन्वय और सम्बंध रातोंरात बदल जाते हैं। कभी भगवा, कभी हरा तो कभी नीला रंग सड़कों, दीवारों, पोस्टरों, बसों, दफ्तरों और बाबुओं के पहनावे तक में चारों ओर दिखलाई देता है। इतना ही नहीं, उसका असर लोगों के कार्य व्यवहार और दिलोदिमाग पर भी महसूस होने लगता है।' (पृ. 11)

लोकेश गांव का युवा प्रधान है जो बारहवीं पास है। पिता की मृत्यु के बाद वह दोस्तों, रिश्तेदारों के कहने पर प्रधानी का चुनाव लड़ा और जीत गया। जैसे लोकेश की दिलचस्पी ठेकेदारी में थी। पिता जब प्रधान थे तब वह छोटे मोटे पुल पुलियों का ठेका लेता रहता था। लेकिन अब वह अपने गांव का प्रधान था। गांव पर ब्राह्मणों और ठाकुरों का वर्चस्व था। वे इस वर्चस्व को इस बदली हुई परिस्थिति में बनाये रखना चाहते थे। इसीलिए गांव के स्कूल में इन सबका प्रयास था कि सवर्ण अध्यापक ही आये। खुद स्कूल के हेडमास्टर भी घोर ब्राह्मणवादी थे। उनका इस बारे में स्पष्ट मानना था कि स्कूल में दलित मास्टर आने से, माहौल खराब हो जायेगा। इसीलिए तैनाती के समय उन्होंने इसका बड़ा ध्यान रखा था। स्थानीय नेताओं से लेकर क्षेत्र के विधायक तक के लिए स्कूल का मतलब था 'उनके लिए स्कूल केवल विद्या का मंदिर ही नहीं था, बल्कि राजनीति का केन्द्रबिन्दु था। किसी क्षेत्र में विद्यालय बनाने से पहले नेता मतदान केन्द्र के रूप में इसकी महत्ता व भूमिका को आंकना जरूरी समझते थे।' (पृ. 15)

ऐसे में जब गांव में मध्याह्न भोजन की शुरुआत हुई तो सरकारी नियम के अनुसार खाना बनाने के लिए एक दलित औरत की नियुक्ति की जानी थी। लोकेश प्रधान और गांव की शिक्षा समिति ने गांव के जगू की पत्नी रामरती को इसके लिए चुन लिया। हेडमास्टर स्कूल में इसे प्रधान का हस्तक्षेप मान रहा था। हेडमास्टर ने रामरती को रसोई के बाहर बैठा दिया, जो सिर्फ रसोई के बर्तन भाड़े मांज कर लौट जाती थी। एक बूढ़ा ब्राह्मण रसोई में खाना बनाता था। पंचायती राज में प्रधान को स्कूलों में बहुत सारे अधिकार मिल गये थे। सो प्रधान इसे स्वीकार नहीं कर पा रहा था। लोकेश ने इसकी शिकायत थाने में करा दी तो रामरती को खाना बनाने का काम मिल गया लेकिन उसके द्वारा बनाये गये खाने को उच्च वर्ण के लड़के खाने को तैयार नहीं थे।

लेकिन दलित बच्चे चुपचाप खाना खा रहे थे। रामरती दलित बच्चों को देखते हुए तृप्ति महसूस कर रही थी। लेकिन दूसरी तरफ उसे दुःख इस बात का था कि सवर्ण बच्चे भूखे पेट बैठे हुए थे। रामरती स्कूल में दलित बच्चों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार को रोज ही देखती रहती थी। 'दलित बच्चों को कक्षा के पीछे अलग पंक्ति में बैठाया जाता था। उनकी तख्ती या कापी को अध्यापक दूर से देखते थे। उनके लिए सख्त हिदायत थी कि वे अध्यापकों के करीब न आयें। सवर्ण बच्चों को दंड स्वरूप हाथ से मारा जाता था उनके कान एंठे जाते तो दलित बच्चों को मुर्गा बनने या एक बच्चे द्वारा दूसरे के कान एंठने जैसी सजा दी जाती जिससे अध्यापक उनके स्पर्श से सुरक्षित रहे।' (पृ. 20) ऐसे में रामरती ने जब से स्कूल में खाना बनाने जाना शुरू किया है स्कूल का माहौल ही बदल गया है। रामरती थोड़ा बहुत पढ़ी लिखी भी है। लेकिन मास्टरों के लिए इसका कोई मायने नहीं है, दोष तो उसकी जाति का है। रामरती जाति से चमार है। इस बात को स्कूल का हेडमास्टर बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है। इस बात को लोकेश बहुत अच्छी तरह से जानता है। इसीलिए उसने रामरती से सीधे सीधे कह दिया है कि यह सब मास्टर ब्राह्मणवादी हैं, लुआछूत को मानते हैं, उनसे होशियार रहने की जरूरत है। लेकिन इसके बावजूद रामरती को वही सब प्रताड़ना से गुजरना पड़ता है। जब से हेडमास्टर के खिलाफ रामरती को लेकर शिकायत हुई है तब से उसे वही सारे उल्टे सीधे सवाल उससे पूछे जा रहे हैं। ये सवाल ऐसे हैं जिनका जवाब यदि सीधे दिया जाये तो शंका और गहरी हो जाये।

लेकिन जवाब जब सीधे ही हों तब उत्तर क्या दिया जाये? दरोगा भी कुछ ऐसे ही सवाल रात में घर में घुस कर पूछ गया था। दरोगा ने रामरती से कहा, “मुझे सब कुछ साफ साफ बता दे। देख, तेरी मदद करने आया हूँ। किसी ने कोई गलत काम किया हो तो छिपाना मत।” “कैसा गलत काम साब?” रामरती ने परेशान होकर पूछा। “किसी भी तरह का।” “ना साहब।” “प्रधान ने कभी कुछ।” “अरे न साहब। प्रधान जी से तो मैं सिर्फ एक बार मिली हूँ।” “अकेले?” “नयी साब, अपने आदमी के साथ और वो भी जब पहले दिन विद्यालय जाना था।” “सच सच बतला, प्रधान तुझे अच्छी तरह जानता होगा, तभी तुझे यह काम दिलवाया।” “साहब, मुझे कहां जाने प्रधान जी।” “अच्छा!” “ठीक है। जैसी तेरी मर्जी। पर हमें अपना ही समझ।” (पृ. 47) रामरती को आज फिर शिक्षा अधिकारी के सवालों का जवाब देना था। चूंकि रामरती जवान और बेऔलाद थी, सो जब जांच आयी तो जांच का सारा एंगिल रामरती के चरित्र पर ही केन्द्रित हो गया।

हेडमास्टर से कहीं दरोगा आकर रुपये जैसे ऐंट ले जाता तो कहीं विधायक जी का आदमी उनसे पचास हजार रुपये की मांग करता। शिक्षा अधिकारी तो और भी ज्यादा मास्टर से खींचना चाहता था। उधर विधायक जी लोकेश की बढ़ती लोकप्रियता से खफा हो रहे थे। उनकी ही सरकार में उनको बिना विश्वास में लिए स्कूल में कैसे नियुक्ति कर ली गयी, सो वह भी अपने सारे मामले लोकेश से इसी समय निपटा लेने के मूड में थे। दरोगा से उसने सीधे सीधे कह रखा था कि किसी भी तरह से बचना नहीं चाहिए। गांव का माहौल तो पहले से ही लोकेश के खिलाफ था। ठाकुर हरपाल सिंह मास्टर्स की मदद कर रहे थे। लोकेश को दरोगा ने फिरोज डकैत के मर्डर में अभियुक्त बना दिया और मास्टर को मारने का फर्जी मामला भी लोकेश पर लाद दिया गया।

ऐसे में रामरती और जग्गू को लेकर पूरा गांव खिलाफ था। गांव के लोग यह मान रहे थे कि यह सब जग्गू और रामरती के कारण ही हो रहा है। रामरती ऐसे में स्कूल छोड़ देना चाहती है। लेकिन सवाल इतना आसान नहीं है। एक तरफ लोकेश जग्गू और रामरती को लेकर पूरा संघर्ष छेड़े हुए हैं और दूसरी तरफ स्कूल का माहौल है। लोकेश ने जग्गू से कहा था, “काम कैसे छोड़ देगी। मैं तुम लोगों की लड़ाई लड़ रहा हूँ और तुम्हीं लोग साथ नहीं दोगे। फिर आगे बढ़ने की बात क्यों सोचते हों। सारा बवाल रामरती को लेकर ही शुरू हुआ है। अब वह भी पीछे हट जायेगी तो कैसी लड़ाई, किसकी लड़ाई।” (पृ. 139) यहां समस्या गांव की राजनीति से पैदा हो गयी थी। एक साधारण सी घटना कैसे राजनीति के अखाड़े में पहुंच कर असाधारण हो जाती है, इसको इस पूरे प्रकरण से समझा जा सकता है। जग्गू और रामरती प्रभुत्व के संघर्ष में पिसने को मजबूर हैं।

गांव के ठाकुर हरपाल सिंह उच्च वर्ण की श्रेष्ठता को लेकर मास्टर्स के पीछे खड़े हैं। तो लोकेश जग्गू और रामरती के माध्यम से पूरे दलित समाज के वोट पक्के कर लेना चाहते हैं। जबकि क्षेत्र के विधायक लोकेश के इस मंसूबे को ठाकुर हरपाल सिंह की ही तरह पूरा होने देना नहीं चाहते। इसीलिए वह जग्गू रामरती से कहते हैं कि लोकेश तुमको अपने लाभ के लिए ही इसे पचड़े में फंसा रहा है। आखिर कोई समस्या थी तो हमसे बताते हम तो तुम्हारी जाति के हैं। इन सबके बीच जग्गू और रामरती फंसे हुए हैं। जग्गू और रामरती इन सबसे अपने को मुक्त भी नहीं कर सकते थे। लोकेश ने कहा था “तेरे लिए ही यह सारी लड़ाई मोल ली है और अब तू ही पीछे हट जायेगी। इस वक्त तूने काम छोड़ दिया तो हेडमास्टर की जीत तो होगी ही, गांव में फिर तुम लोगों का कोई आदमी, औरत कहीं काम नहीं कर पायेगा। यह प्रधान और हेडमास्टर की लड़ाई नहीं है, यह तुम लोगों के अधिकार की बात है। आजादी के पचास साठ साल बाद भी तुम लोगों को अपना कानूनी हक नहीं मिलेगा तो फिर आजादी का क्या मतलब है।” (पृ. 64)

लोकेश इस संघर्ष में रामरती और जग्गू को एक हथियार मात्र मानता है। वह इस पूरे मामले को एक दलित के शोषण के रूप में ही प्रचारित करना चाहता है, जिससे वह इस पूरे मामले में एक जातपात विरोधी, व्यक्ति के रूप में दिखे और गांव के ठाकुर हरपाल सिंह आदि दलित विरोधी साबित हो जायें। दलित राजनीति की वास्तविक शक्ति अब भी उन्हीं लोगों के हाथों से संचालित हो रही है जो पहले से शक्तिसम्पन्न रहे हैं। रामरती और जग्गू दलित महिला मुख्यमंत्री के शासन में भी लाचार हैं। उन्हें न्याय नहीं मिल पा रहा है।

आज के दौर में भी यदि रामरती और जग्गू न्याय के लिए भटकते रहेंगे तो यह पूरी भारतीय राजनीति के लिए शर्म की बात है। रामरती और जग्गू के सामने तो केवल एक छोटी सी नौकरी का सवाल है। जबकि लोकेश तो इस दमन को एक अलग रूप में देखता है। लोकेश कहता है “अब मैं अपने बारे में भी सोचूंगा। अपनी जिन्दगी को भी ढरें पर लाऊंगा चाहे उसके लिए मुझे कुछ भी करना पड़े। मैंने औरों के बारे में बहुत सोच लिया।” (पृ. 207) रामरती तो इस झमेले से मुक्त होने के लिए नौकरी छोड़ देना चाहती है। जबकि लोकेश इसका पूरा फायदा लेने के मूड में है। इस पूरे मामले को यदि देखा जाये तो लोकेश ने रामरती और जग्गू के माध्यम से पूरे ग्रामीण समाज की वर्णवादी श्रेष्ठता को चुनौती दी है। लेकिन रामरती और जग्गू इस संघर्ष में पिस जाते हैं। एक दिन भोर में पता चलता है कि रामरती गायब है। “चारों दिशाओं में जग्गू रामरती को तलाशता रहा। उसके नंगे पैर लहलुहान होकर खून से रिसने लगे। बदन पसीने से लथपथ था और उसकी करुण आवाज पूरे गांव पर एक मनहूस साये की मानिन्द डोल रही थी। सूरज की किरणें अब चारों ओर फैल गयी थीं। खेतों और गांव में उजास उतर आया था। पर जग्गू की आंखों में गाढ़े अंधकार की अभेद्य दीवार जड़ गयी थी।” (पृष्ठ 224)

शैलेन्द्र सागर ने इस उपन्यास में एक नये तरह का सच दिखाया है। यह ऐसा सच है जो दलित राजनीति की आड़ में न देखा जाता है और न ही सुना जाता है। इसलिए दलित राजनीति को भी बहुत ही आलोचनात्मक दृष्टि के साथ देखने की जरूरत है। लेकिन शैलेन्द्र सागर ने कुछ पात्रों को इस रूप में गढ़ा है जो कहीं न कहीं मिसफिट दिखायी पड़ते हैं। जैसे लोकेश के बारे में पहले ही यह बात कह देते हैं कि वह एक सीधा सादा छोटा ठेकेदार है। जिसका पढ़ाई लिखाई से कुछ खास मतलब नहीं है। यह बात सही है कि जब लोकेश रामरती की नौकरी लगवाता है तो उसके पीछे उसके निश्चित उद्देश्य हैं। लेकिन आगे चल कर लोकेश दलितों के अधिकार की बात करने लगता है। यह बात लोकेश जैसे चरित्र के हिसाब से फिट नहीं बैठती। कथा में पात्र को जिस तरह से प्रवेश कराया गया है अंत तक उसी हिसाब से उसके चरित्र में बदलाव होना चाहिए, नहीं तो पात्र के विकास का कोई मतलब नहीं रह जाता। इस सम्बंध में प्रेमचंद के ‘गोदान’ को देखा जा सकता है। ‘गोदान’ में गोबर का विकास पूरे विस्तार के साथ है। इसलिए जरूरी हो जाता है कि कथावस्तु के विस्तार के साथ साथ पात्र का भी विकास होता चला जाये नहीं तो कथा उपदेशपरक हो जाती है।

**लेडीज क्लब :** नमिता सिंह, **प्रकाशक :** सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 360 रु.

**जहां एक जंगल था :** मदन मोहन, **प्रकाशक :** अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, **मूल्य :** 495 रु.

**एक सुबह यह भी :** शैलेन्द्र सागर, **प्रकाशक :** सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 360 रु.



# कविता की नाउम्मीदी के खिलाफ

मदन कश्यप

श्रीप्रकाश शुक्ल के नये संग्रह **रेत में आकृतियां** को उनके पिछले दो काव्य संकलनों 'जहां सब शहर नहीं होता' और 'बोली बात' की परम्परा में देखने के साथ साथ एक नये प्रयोग के रूप में देखने की भी जरूरत है। वैसे कलाओं का अंतरावलम्बन हिन्दी कविता के लिए कोई नयी बात नहीं है। पहले भी चित्र या मूर्तिशिल्प को देख कर, संगीत सुन कर अथवा सिनेमा से प्रभावित होकर ढेरों कविताएं लिखी गयी हैं, उनमें से कुछ बेहद अच्छी भी हैं। हमारी भाषा में शमशेर जैसे कवि हुए हैं जो स्वयं एक अच्छे चित्रकार थे और कई चित्रों को देख कर उन्होंने अविस्मरणीय कविताएं लिखीं, उनकी कविता की अंतर्वस्तु तक पर अतियथार्थवादी चित्रकला आंदोलन का गहरा प्रभाव है और चित्रात्मकता तो खैर उनकी कविता की सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता है ही। मगर श्रीप्रकाश की कविताएं अंतरावलम्बन की परम्परागत अवधारणा का अतिक्रमण करती हैं और एक नयी अवधारणा के साथ कविता की नयी जमीन तैयार करती हैं। इसीलिए इसे एक नया प्रयोग कहा जाना चाहिए। एक ऐसा प्रयोग जिसमें एक नयी परम्परा के सूत्रपात की सृजनात्मकता अंतर्निहित है।

वैसे श्रीप्रकाश शुक्ल ने लोकजीवन और संस्कृति को नये सामाजिक संदर्भों से जोड़ कर देखने और मुग्ध होने की जगह जरूरी सवाल उठाने के चलते अपने दूसरे संग्रह 'बोली बात' से ही अपनी मजबूत पहचान बना ली थी, मगर उनका यह नया संग्रह उससे बिल्कुल अलग समकालीन हिन्दी कविता को एक भिन्न पहचान देता है। इस बात को रेखांकित करने के लिए उनकी रचना प्रक्रिया के साथ साथ सामाजिक प्रक्रिया को समझने की जरूरत है। इसमें कलाओं के अंतरावलम्बन से आगे बढ़ कर कविता और शिल्प की साझेदारी दिखायी देती है।

इस क्रम में मैं सबसे पहले रेत में आकृति की एक निजी स्मृति की चर्चा करना चाहूंगा। वैसे तो रेत पर प्राकृतिक रूप से भी कभी कोई सुंदर आकृति बन जाती है। खासकर सागर तटों पर लहरें

अक्सर रेत में कुछ गड़ने और फिर उसे झटपट मिटाने की कोशिश करती रहती हैं। मगर जब कोई कलाकार रेत की क्षणभंगुरता को अपनी कला का शाश्वत स्पर्श देने की कोशिश करता है, तब जो आकृति बनती है वह स्मृतियों में दर्ज हो जाती है। ऐसी पहली रचना आज से कोई पच्चीस वर्ष पहले पुरी के सागरतट पर देखी थी। उलझेपुलझे बालों वाले एक सांवले ठिगने कलाकार ने हमारे सामने ही रेत में शिव की विशाल मुखाकृति गढ़ दी, ललाट पर चंद्रमा, जटा से बहती गंगा और गले में सर्पमाला। शाम ढल रही थी और किनारे से कुछ दूर हट कर जल रही बत्तियों से आ रही मद्धम रोशनी में यह आकृति बहुत प्रभावशाली लग रही थी। भीगी रेत चमकीले पत्थर का रूप ले चुकी थी।

दूसरी ओर, लहरें लगातार तेज होती जा रही थीं, उनका उठान और फैलाव बढ़ता जा रहा था। हमारे देखते देखते एक बड़ी सी उत्पाती लहर आयी और उस आकृति को धोती हुई चली गयी। हमें रेत की वास्तविकता का एहसास करा गयी। कुछ देर तक तो ऐसा लगा कि रेत की स्मृति में वह आकृति बची हुई है और वह भी उसे वापस पाने के लिए छटपटा रही है। पर लहरों के तीन चार हमलों के बाद सब कुछ खत्म हो गया सा लगने लगा।

फिर भी मेरी स्मृति में वह शिल्प आज भी बरकरार है। शाश्वत कलाएं सिर्फ कैनवासों, दीवारों अथवा शिलाओं पर ही उकेरी हुई नहीं होती हैं, वे हमारी स्मृतियों में भी जिन्दा रहती हैं। कविता उन निजी स्मृतियों को सामूहिक और शाश्वत बनाती है। श्रीप्रकाश शुक्ल ने कविता में कुछ वैसी ही स्मृतियों को दर्ज करने का उपक्रम किया है।

अपने समय के ख्यातिलब्ध कलाकार थे राम छटपार। उनके निधन के बाद उनके शिष्य चर्चित मूर्तिशिल्पी मदनलाल ने उनकी स्मृति और काम को जुगाने के लिए बहुत कुछ किया है। एक शिल्प न्यास भी बनाया है, जिसका भवन अभी अधूरा है लेकिन वह अभी से कला गतिविधियों का केन्द्र बन गया है। वाराणसी में प्रतिवर्ष 10 जनवरी को उनके जन्मदिन पर इस अद्भुत शिल्पोत्सव की शुरुआत होती है।

बी.एच.यू. के निकटस्थ सामने घाट के पीपा पुल के पास रामनगर वाले इलाके की बालुका राशि कलाकारों का स्पर्श पाकर कुछ इस तरह संवर जाती है कि देखते बनता है। यह आयोजन पिछले नौ दस वर्षों से चल रहा है। कोई एक सप्ताह चलने वाले इस आयोजन को प्रतिदिन शहर के हजारों लोग नदी पार करके देखने आते हैं। मदनलाल के प्रयत्न से बी.एच.यू. और काशी विद्यापीठ के कला संकायों के छात्रों सहित सौ से अधिक नागरिक और बच्चे रेत में तरह तरह की आकृतियां गढ़ते हैं और इसके माध्यम से कई बार समय के ज्वलंत सवाल को भी उठाते हैं।

इसे एक नयी तरह का कला आंदोलन भी कहा जा सकता है जिसमें कलाकार समय के ज्वलंत सवालों से टकराते भी दीखते हैं। श्रीप्रकाश शुक्ल ने अपनी कविताओं के माध्यम से उसे और विस्तार दे दिया है।

श्रीप्रकाश की कविताएं केवल आकृतियों तक ही सीमित नहीं हैं, वह रेत और धारा यानी जड़ता और गतिशीलता के अंतर्सम्बंधों और टकराहटों को भी कई कई कोणों से देखती हैं और उनकी अलग अलग व्याख्याएं प्रस्तुत करती हैं। 'करुणा' शीर्षक कविता का अंत देखिए : *यह जो रेत है/असल में रेत नहीं है/नदी की करुणा है/जिसे नदी ने पुरखों के लिए छोड़ रखा है/अपने आंचल में। (पृ. 7)*

इसी तरह 'नदी' कविता में कवि एक और व्याख्या करता है : *यहां रेत में बहती नदी थी/जहां बहती हुई नदी/लगातार रेत हो रही थी/.../सूखना अंततः रेत होना है। (पृ. 21)*

फिर 'सुख भरी रेत' की इन पंक्तियों को देखें : *हाय! कैसे कहूं/कि अतीत की दुख भरी लहर से/कभी कभी ज्यादा भयानक होती है/वर्तमान की सुखीरी रेत! (पृ. 80)*

कवि की चिन्ता में पर्यावरण और समाज की कड़वी सचाइयां भी शामिल हैं। वह आगाह करता है कि 'शहर तभी तक आबाद है जब तक बह रही है एक नदी।'

कुछ कविताएं रेत में गढ़ी गयी आकृतियों और उनके कलाकारों से सीधा संवाद करती हैं तो कुछ उनमें चित्रित ज्वलंत घटनाओं को और गहराई देती हैं। 'निठारी कांड' पर गढ़ी गयी आकृति पर प्रतिक्रिया देते हुए श्रीप्रकाश लिखते हैं : *यह पिचकारी नहीं हैं साहब/यह निठारी है/.../जरा इन्हें छूकर तो देखो/कितने बच्चों की किलकारियां सुनायी देंगी/यहां!* (पृ. 35)

इस तरह शब्द यहां चित्र के प्रभाव को और गहरा बनाते हैं।

संकलन में नदी, रेत और उसमें गढ़ी आकृतियों की व्याख्या, प्रतिक्रिया और उनके साथ संवाद के माध्यम से एक नया आख्यान रचा गया है, जीवन और जगत का एक ऐसा आख्यान जिसमें रेत नदी और शिल्प, सब एक बड़े रूपक के अवयव बन जाते हैं।

श्रीप्रकाश शुक्ल रेत में उभरी या उभारी गयी आकृतियों को ही नहीं देखते हैं उन लोगों को भी देखते हैं जो उन शिल्पों में अपनी आकृति तलाश रहे होते हैं अथवा अपनी ही आकृति के साक्षात्कार से बच रहे होते हैं : *यहां रेत में उभरी आकृतियों के बीच/हर कोई डूब रहा था अपनी आकृति/और हर कोई भागता था अपनी ही आकृति से।* (पृ. 14)

इस तरह कविता दो स्तरों पर व्यापक जनसमुदाय से जुड़ती है। आकृतियों में गढ़ी गयी सामाजिक स्थितियों के चित्रण से शुरु होकर वह दर्शकों की मनःस्थितियों के अंकन तक की यात्रा पूरी करती है।

'रेत में दो पहर' और 'रेत में घर' जैसी कुछ ऐसी कविताएं भी इस संग्रह में हैं जिनमें कलाकृति के सौन्दर्य के साथ साथ कलाकर के श्रम को भी कवि दर्ज करता है : *यह कलाकार के श्रम की आकृतियां हैं/जिसमें रेत ने अपने को खुला छोड़ रखा है/.../ये कलाकार हैं जो पिता की भूमिका में/नन्हें नन्हें हाथों को/थोड़ी थोड़ी काया दे रहे हैं/और थोड़ी थोड़ी छाया भी।* (पृ. 33) *ये कलाकार हैं/हर पल बनाते हैं एक घर/रहने के लिए नहीं/लौटने के लिए* (पृ. 47)

एक अन्य कविता 'सुनो सुनो हो कलाकार' में कवि सीधे आकृतियां गढ़ने वाले शिल्पियों से संवाद करता है। दूसरी तरफ 'ऐश्वर्य' जैसी एक अद्भुत प्रेम कविता भी है जिसमें कवि दृश्यों से टकरा कर स्मृतियों में लौटता है। कुल मिला कर रेत में सब कुछ रेत नहीं है, बल्कि रेत होती हिन्दी कविता के लिए नयी सम्भावनाएं भी हैं। श्रीप्रकाश शुक्ल ने, जैसाकि शुरु में ही संकेत किया गया, इस संकलन की कविताओं में अंतरावलम्बन से आगे बढ़ कर कला के साथ साझेदारी की है और इस क्रम में अपने शब्दों के माध्यम से 'शिल्पों' और चित्रों का अर्थ विस्तार किया है तो इसके माध्यम से कविता को नयी जमीन भी दी है। एक कविता 'गवईगंध' की शुरुआती पंक्तियां हैं : *'रेत/जीवन की हर नाउम्मीदी के खिलाफ/एक सम्भावना है।'* (पृ. 86)

इसे थोड़ा बदल कर कहें तो यह कविता की नाउम्मीदी के खिलाफ भी एक सम्भावना है।

**रेत में आकृतियां :** श्रीप्रकाश शुक्ल, **प्रकाशक :** भारतीय ज्ञापनीठ, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 120 रु.

# तो जीवन कितना वृहत्तर हो जायेगा

अनिल त्रिपाठी

**बीसवीं** सदी के अंतिम दशक में जिन युवा रचनाकारों ने अपनी रचनात्मक क्षमता से कविता की जमीन को उर्वर किया उनमें **जितेन्द्र श्रीवास्तव** महत्वपूर्ण हैं। बीस बाईस वर्ष की इस काव्ययात्रा में रचनात्मक समुज्ज्वल साक्ष्य के रूप में उनके पास कई संग्रह हैं। **कार्यांतरण** उनका पांचवां संग्रह है। जबकि उनकी उम्र चालीस से भी कम है। कविकर्म की यह गुणवत्तापरक निरंतरता उत्तर समकालीन कविता परिदृश्य में रेखांकित किये जाने योग्य है। जितेन्द्र के लिए कविता की जमीन उनकी अपनी मूल जमीन है, कोई पाही पुरवा नहीं। अपने कवि होने को जिस दृढ़ता के साथ जितेन्द्र सामने रखते हैं वह अन्य के यहां दुर्लभ है। कार्यांतरण संग्रह में एक कविता है 'अपनों के मन का', उसमें वे लिखते हैं *मैं कवि नहीं झूठ फरेब का/रुपया पैसा सोने चांदी का/मैं कवि हूं जीवन का सपनों का/ उजास भरी आंखों का/...मैं कवि हूं जी हां कवि हूं अपने मन का/अपनों के मन का।* इस प्रकार की आत्मविश्वासपरक स्वीकारोक्ति छायावाद, प्रगतिवाद और नयी कविता के कवियों में थी। 'मैं कवि हूं पाया है प्रकाश' जैसी निराला की अमर काव्यपंक्ति से लेकर त्रिलोचन की काव्यपंक्ति 'मैं उस जनपद का कवि हूं' से होते हुए नयी कविता के अनेक कवियों में इस तरह का दृढ़ विश्वास दिखता है। प्रश्न उठता है कि इस प्रकार की स्वीकारोक्ति क्यों कम होती गयी? अपने रचनाकर्म के प्रति संशय का कारण आत्मविश्वास की कमी या फिर हमारे चारों तरफ का वातावरण जिसमें नयों की क्षमता की स्वीकारोक्ति के प्रति घोर दुराग्रह है। बहरहाल कारण जो भी हो प्रतिज्ञा और पक्षधरता की यह साहसभरी साफगोई ही वह आईना है जिसमें जितेन्द्र के सघन ऐन्द्रिय संवेदन अनुभवों को देखा जा सकता है।

कार्यांतरण जितेन्द्र की अपनी रचनात्मक यात्रा का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। बल्कि पड़ाव से ज्यादा मोड़। क्योंकि काव्यानुभूति और प्रस्तुति दोनों ही स्तरों पर इसमें व्यापक परिवर्तन के संकेत मिलते हैं। इसमें उनका 'अनभैसांचा' यथार्थ की जटिल एवं बहुविधि स्तरीयता के बीच 'बौद्धिक

सघनता' के रूप में तब्दील होता दिखायी देता है। यह वही बौद्धिक सघनता है जिसे साही कविता के लिए अनिवार्य गुण मानते थे। यह बौद्धिक सघनता अनुभूति एवं विवेक के सम्यक संतुलन से आती है। सभ्यता के इस व्यापक एवं जटिल परिदृश्य के बीच सन्निहित सच की बहुविध स्तरीयताओं की पहचान के लिए यह बेहद जरूरी है। अच्छा लगता है कि कार्यांतरण के कवि में अनुभूति की सांद्रता और विवेक की सजगता दोनों मौजूद है, जिसकी वजह से वे कोरी भावुकता और कोरी बौद्धिकता के अतिरेकों से बच सके हैं। सभ्यता, व्यवस्था, शक्ति, बाजार और तकनीक के बीच मौजूद हमारे समय की संश्लिष्ट जटिलताओं की पहचान और प्रति मानवीय शक्तियों की दुरभिसंधियों के बरक्स प्रतिपक्ष रचने या आविष्कृत करने में यह बौद्धिक सघनता उनके यहां स्पष्ट दिखायी पड़ती है। यहां एक बात और भी कहना जरूरी है कि इसी बौद्धिक सघनता के कारण उनकी कविता मुखर होने से बचती है। प्रतिपक्ष विनम्रता के साथ submit होता है।

प्रतिपक्ष रचने और अपना पक्ष रखने का यह अंदाज कविता के 'फॉर्मेट' में आसान नहीं है, इसके लिए पर्याप्त तैयारी की आवश्यकता होती है। यहां कविता की संरचना में न्यस्त कथ्य दूसरों को शामिल करने की अनिवार्य प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। 'सेल्फ' जिस तरह से 'अदर्स' में कार्यांतरित हो रहा है उससे कविता संवादधर्मी बन रही है। याद आते हैं लारेंसे डरेल जिन्होंने कहा था कि 'कविता में सत्य को संकेतित किया जाता है, कहा नहीं जाता, क्योंकि कहने से बात बिगड़ जाती है।' उत्तर समकालीन कविता में जितेन्द्र का यह हुनर उन्हें बाकियों से अलग करता है। 'रुकिये, देखिये और सोचिये', जैसी क्रियात्रयी जितेन्द्र की कविताओं के आत्मीय पाठ के लिए बेहद जरूरी है।

कार्यांतरण को पढ़ते हुए जहां जीवनानुभव की अपार विविधता दिखायी देती है वहीं यह भी दिखायी पड़ता है कि कवि दो तीन विषयों के प्रति अधिक सजग है। वे विषय हैं रिश्तों की ऊष्मा, स्मृतियों की भूमिका एवं बेटियों के प्रति उत्तरदायित्वबोध। 1990 के बाद बदलती परिस्थितियों, नयी बनी व्यवस्थाओं, तकनीक और पूंजी के गठजोड़ से उभरी सभ्यताओं ने जिस प्रतिमानवीय स्थिति का निर्माण किया है उसमें शायद इन्हीं तीनों पर सबसे अधिक मार पड़ी है। इसीलिए जितेन्द्र लिखते हैं *अब मुश्किल हो गया है/अपनी ही आंखों के आरपार देखना/अब बहुत कम लोग हैं/जो आईने के सामने खड़े होकर साहस कर सके/स्वयं से नजरें मिलाने का।* रिश्तों की ऊष्मा को बरकरार रखने की उनकी जिद ही है वे लिखते हैं *पूरे मन से धोनी है/ रिश्तों पर जमीं मैल/चाहे वह जमीं हो मेरे कारण/या किसी के भी।*

एक समय में या अक्सरहां कविता में स्मृतियों के उपयोग को आलोचक 'नॉस्टाल्जिया' के खाते में डाल कर उसकी प्रभावी भूमिका को नकारते रहे हैं। लेकिन स्मृतियां हमेशा से ही एक रचनाकार के लिए सघन प्रतिरोध के स्वर रचने का माध्यम रही हैं। कहना चाहिए कि वे संवेदनशील मनुष्य की सजगता का सूचकांक हैं। यही कारण है जिस राष्ट्र, समाज में अपनी जातीय स्मृति का लोप होता है वह राष्ट्र समाज उतना ही प्रतिगामी होता है। याद पड़ता है मिलान कुंदेरा ने एक जगह लिखा है कि सभ्यता एवं व्यवस्था के विरुद्ध मनुष्य का संघर्ष मूलतः विस्मृति के विरुद्ध स्मृति का ही संघर्ष है। यह अकारण नहीं है कि जितेन्द्र स्मृतियों की रचनात्मक भूमिका को नकारने वाले लोगों को आगाह करते हैं और लिखते हैं कि *जो नहीं जानते स्मृति सत्य/वे नहीं जान सकते/स्मृतियों में जाना हमेशा सुख में जाना नहीं होता... वे नहीं जान सकते/लौटना किस वजन की क्रिया है।* इस संदर्भ में स्मृतियां कविता का यह अंश भी ध्यातव्य है कि *कुछ लोगों को लगता है/जैसे स्मृतियां पीछे ले जाती हैं हमें/लेकिन ऐसा होता नहीं है/स्मृतियां अक्सर तब आती हैं/जब सूख रहा होता है/अंतर का कोई कोना।* अंतर के किसी कोने के सूखने के विरुद्ध स्मृतियों की यह भूमिका दरअसल मानवीय संवेदनशीलता एवं जिजीविषा को सुरक्षित रखने के उद्घाम उपक्रम का ही प्रमाण है।

पिछला दशक 'इतिहास की पुनर्खोज' का रहा है। इसमें इतिहास से छूट गये लोगों जैसे कि किसान, मजदूर, दलित, स्त्री आदिवासी समाज की चिन्ताएं प्रमुख रूप से केन्द्र में थीं। इतिहास के इस पुनर्निर्माण में स्मृतियों की भूमिका इतिहास को पुनर्रचित करने के किसी भी कारगर औजार से ज्यादा प्रभावी रही है। जितेन्द्र ऐसे ही समाज की पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं *वे कभी स्वीकार नहीं कर सकते वह बात/जिसमें छिपा दी गयी हो उनके पूर्वजों की रुलाई/वे अपना इतिहास अपनी स्मृति से लिखने को उत्सुक हैं।* 1990 के बाद का समय अस्मितामूलक विमर्शों के लिए भी जाना जाता है। स्त्री एवं दलित प्रश्न उसके मुख्य विषय थे। जितेन्द्र स्त्री अस्मिता के प्रश्न को लोकतांत्रिक मूल्यों से जोड़ते हैं। स्त्री विमर्श में देह विमर्श के ठीक विपरीत स्त्री शिक्षा, स्वतंत्रता आत्मनिर्भरता, आर्थिक सशक्तीकरण, बेटियों के प्रति परिवार के उत्तरदायित्व आदि प्रश्न उनके लिए ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। प्रेम पर भी उन्होंने खूब लिखा है। पूरा संग्रह 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' अलग से प्रकाशित है। इस पर कहने की जरूरत नहीं।

कायांतरण संग्रह में कई ऐसी कविताएं हैं जो सीधे राजनीति को लेकर है। राजनीतिक स्वर की यह उपस्थिति उनकी बुनियादी चिन्ताओं को अभिव्यक्त करती है। प्रधानमंत्री का दुख, दुनिया बदलने के लिए, तो जनता अधिकार है तुमको, सरकार की नजर, लोकतंत्र में लोक कलाकार, एक नया गीत, तुरंता हो चुकी इस दुनिया में आदि कविताएं इसी विचारभूमि पर रची गयी है। कई बार कई कवि 'पोलिटिकली करेक्ट' होने की प्रत्याशा में इस तरह की कविताएं लिखते हैं। इन कविताओं में घोर निराशा और नाउम्मीदी होती है। प्रायः अपने समय को धिक्कारती हुई ये कविताएं सामने आती हैं। लेकिन जितेन्द्र के यहा ऐसा नहीं है। उनके यहां आशा भविष्यत् का विशेष है। इसलिए वे कहते हैं कि *देखिए अभी सूखी नहीं है उम्मीद की नदी/अभी बाकी हैं बहुत से लोगों में प्रतिरोध जैसी आदतें।*

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि कायांतरण जितेन्द्र की अपनी काव्ययात्रा का एक मोड़ है। उस मोड़ की शिनाखा उनकी रचनात्मक प्रविधि में भी देखी जा सकती है। 'एक नया गीत' कविता इसका मुखर उदाहरण है। पूरी कविता राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण पर एक गहरा व्यंग्य है। लेकिन कविता की संरचना जिस तरह से सामने आती है वह एकदम अलग है। होनो लू लू, मोनो लू लू, पोनो लू लू की टेक कविता में व्यंग्य की धार को अधिक पैना करती है। लोकतंत्र को कमजोर करने की अपराध और अपराधी द्वारा साजिश किस तरह कविता के स्ट्रक्चर को बदल देती है इसका उदाहरण ये पंक्तियां हैं *लू लू हुल्लू हुल्लू/लोकतंत्र उड़ा चुल्लू चुल्लू चारों ओर उल्लू उल्लू/ हा हा हू हू... हा हा हू हू/ होनो लू लू/मोनो लू लू/पोनो लू लू।* कई जगह मुहावरे कविता की शकल लेते दिखायी देते हैं। 'बिजली की तरह गिरता हुआ' ऐसी ही कविता है। बिम्बों के प्रति आकर्षण उनमें पहले से भी था, यहां भी कुछ खूबसूरत बिम्ब दिखते हैं जैसेकि *सूरज जा रहा है/खेत फोड़ने/कांधे पर लिए कुदाल/और रखा कर फसलें रात भर/ घर को गया चांद।* संरचनात्मक धरातल पर कविता में पूरा वाक्य लिखने का आग्रह इस संग्रह में दिखायी देता है। परिणामस्वरूप इस संग्रह की कविताएं गद्य से थोड़ा निकट आती जान पड़ती हैं।

कुल मिला कर यह संग्रह न केवल जितेन्द्र की बल्कि समकालीन रचनात्मक परिदृश्य की एक उपलब्धि है। जितेन्द्र के कवि के बारे में उन्हीं की काव्य पंक्तियों का सहारा लेते हुए कहा जा सकता है कि *यदि इस तरह लौट पाये हर आदमी/ थोड़े संयम, थोड़ी आत्मालोचना, थोड़े राग विराग के साथ/ तो शिकायतें कितनी कम हो जायेंगी लाभ लोभ की तो जीवन कितना वृहत्तर हो जायेगा।*

**कायांतरण :** जितेन्द्र श्रीवास्तव, **प्रकाशक :** किताबघर, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 180 रु.

# काव्य चित्त का परिष्कार और विस्तार

जितेन्द्र श्रीवास्तव

तीन दशकों से लगातार कविताएं और गीत लिख रहे वरिष्ठ कवि **उमेश चौहान** के कवि कर्म का विस्तार अवध से लेकर सुदूर केरल तक है। उन्होंने मलयालम की कविताओं को हिन्दी में और हिन्दी की कविताओं को मलयालम में अनूदित कर दोनों भाषाओं के काव्य परिसर को विस्तृत और उदार बनाया है। वर्ष 2012 में प्रकाशित **जनतंत्र का अभिमन्यु** उनका चौथा कविता संग्रह है। इस संग्रह में कविताओं और कुछ गीतों के आलावा अवधी भाषा में लिखी कविताएं और गीत भी संकलित हैं। संग्रह को पढ़ते हुए यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि उमेश चौहान 'चतुर सुजान' किस्म के कवि नहीं हैं। वे कवि होने के मुकम्मल अर्थों में कवि हैं। एक ऐसे समय में जब चालाकियों से कविताएं गढ़ने वालों की संख्या बढ़ती जा रही हो तब एक ऐसे कवि के संग्रह से गुजरना सुखद अनुभव की तरह है जो अपनी भावुकता और रूमनियत को छिपाता नहीं बल्कि अपनी ताकत बना लेता है।

उमेश चौहान की राजनीतिक समझ और सामाजिक प्रतिबद्धता अंसदिग्ध है। वे बृहत्तर मानवीय संरोकारों के कवि हैं। अपनी कुछ कविताओं में उन्होंने मितकथन को महत्व दिया है तो कुछ में बहसधर्मिता को। इस संग्रह की पहली कविता, जो कि शीर्षक कविता भी है, एक प्रश्न के साथ शुरू होती है। कवि सीधे प्रश्न करता है *आज इस नये दौर के महाभारत में जनतंत्र का अभिमन्यु बचेगा क्या?*

फिर धीरे धीरे यह कविता बहसधर्मी होती चली जाती है। गौर करने की बात है कि उमेश चौहान जनतंत्र का अर्जुन, जनतंत्र का कर्ण या जनतंत्र का युधिष्ठिर जैसे पदों का प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि अभिमन्यु के माध्यम से जो बात कही जा सकती है, वह किसी अन्य मिथकीय पात्र के सहारे सम्भव नहीं है। वे मिथकों से अभिमन्यु को निकाल कर अपनी कविता में लाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि अभिमन्यु का प्रसंग आते ही चक्रव्यूह की स्मृति हो आती है। कवि जानता है

कि वर्तमान समय में धर्म, जाति, क्षेत्र जैसे अनेकों अभेद्य चक्रव्यूह समाज में हैं। कवि को कहना पड़ता है इस युद्ध में अभिमन्यु की मृत्यु तो तय है ही/पांडवों की हार भी निश्चित है/क्योंकि इसमें जीत के लिए केवल संख्या बल ही निर्णायक है।

लेकिन यहां यह रेखांकित किया जाना भी आवश्यक है कि उमेश चौहान आईना दिखा कर आगे बढ़ जाने वाले कवियों में नहीं हैं। वे गहरी प्रश्नाकुलता और उम्मीद के कवि हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता है कि कैसे बचायी जाये अब इस जनतंत्र की साख। वे 'सूर्यघड़ी' के माध्यम से अपने समय और समाज की गति को संकेतित और व्याख्यायित करते हैं जंतर मंतर की सूर्यघड़ी/नित्य साक्षी बनती है/समय के उन पड़ावों की/जहां पर तख्तियों और बैनरों पर लटकी होती हैं/उस समय के तमाम सताए हुए लोगों की उम्मीदें और विश्वास, लेकिन भारत के भाग्य विधाताओं की तरह ही/यह सूर्यघड़ी भी/दिन के किसी भी पहर नहीं धमती/समय के किसी भी ऐसे पड़ाव पर सहानुभूति से भर कर,/भले ही शहर में/कितनी भी दहला देने वाली कोई दुर्घटना घटित हो/जिसमें सहम कर थम जायें/बाकी की सभी कलाई अथवा दीवार की घड़ियां।

इस कविता को पढ़ते हुए 'उन्हें अपनी मुट्टियों में जकड़ लेना होगा लपक कर सूर्य के रथ को' जैसी पंक्ति को एक चमकदार वाक्य मान कर तेजी से आगे नहीं बढ़ जाना चाहिए। हताशा के क्षणों में गहरे रूमान वाली ऐसी पंक्तियां जीवद्रव्य और प्राणवायु का कार्य करती हैं।

उमेश चौहान की कविताएं मुक्ति के प्रसंगों को अपेक्षित गहराई के साथ सामने लाती हैं। यही कारण है कि उनमें कोई आसान रास्ता खोजने की कोशिश के बदले विभ्रमों से टकराहट है। सुनहरी रश्मियों का प्रकाश पुंज खोजने वाला यह कवि अच्छी तरह जानता है कि आदमखोर सिंह बाहर के उजाले में निर्द्वंद्व घूम रहे हैं। इसीलिए वह 'उजाले की तलाश' को एक साथ स्वप्न और विडम्बना की तरह प्रस्तुत करने में सक्षम हुआ है।

इस संग्रह की कई कविताओं में दार्शनिक चिन्ताएं दिखायी देती हैं लेकिन वे किसी रहस्यवादी आवरण में नहीं हैं। सुनामी और तीन वर्ष के एक बच्चे का प्रसंग लेते हुए वे 'महानाश' पर विचार करते हैं और किसी ईश्वर की शरण में जाने के बदले अंतरराष्ट्रीय राजनीति में छिपे शक्ति विमर्श को रेखांकित और प्रश्नांकित करते हैं।

सत्य की आखों में आंखें डालने की लालसा से भरी कविताओं वाले इस संग्रह की रेंज बड़ी है। 'मैं चोर नहीं' शीर्षक कविता पढ़ते हुए कोई कठकरेज पाठक ही अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रख पायेगा। यह पाठकीय भावनाओं के दोहन की नहीं बल्कि उसके विस्तार की कविता है। सिर्फ तर्क बुद्धि के सहारे कविता लिखने वाले कवियों के लिए मनुष्यता के संधान की ऐसी कविता लिखना असम्भव है। ध्यान देना होगा कि उमेश चौहान गीतों से कविता की ओर आये हैं लेकिन उनकी सभी कविताएं प्रगीतात्मक नहीं हैं। उनकी कई कविताओं में गद्य का वैभव है लेकिन उनके पास वह अपेक्षित विवेक भी है, जो कविता के गद्य को अन्य विधाओं के गद्य से अलगाता है।

परिवर्तन एक ऐसा शब्द है जिसे लोग अपने अपने ढंग से समझते और समझाते हैं। एक कवि के रूप में उमेश चौहान भी परिवर्तन के आकांक्षी हैं लेकिन वे किसी क्षणिक परिवर्तन के हिमायती नहीं हैं। वे मनुष्यता के पक्ष में किसी बड़े परिवर्तन का स्वप्न देखते हैं समय आ गया है कि अब/जीवन के सारे अर्धविरामों को/बदल डाला जाये पूर्णविरामों में/क्योंकि पूर्ण विराम ही होते हैं/मंजिलों तक पहुंचने के परिचायक।

यहां यह रेखांकित किया जाना अनावश्यक न होगा कि 'बेसुरे हो चुके सारे के सारे विप्लव गानों' के बावजूद यह कवि आम लोगों के प्रति विश्वास से भरा हुआ है। यह गहरी संग्लनता ही है



कि वह यह देख और कह पाता है वे जमीन से उखड़े हुए दरख्त की भांति सूख रहे/पर उनकी जड़ें अभी/पूरी तरह जमीन से अलग नहीं हुई थीं शायद, दरअसल, अपनी इन तमाम बुनियादी लाचारियों के बावजूद/उनके भीतर अभी भी/अपना अस्तित्व बचाये रखने की उत्कंठा बरकरार थी/और इसीलिए वे चुपचाप/अब आखिरी संघर्ष की तैयारी करने के लिए/बस तन कर खड़े ही होने वाले थे किसी वक्त।

उमेश चौहान में रूमान है लेकिन इसका यह आशय नहीं कि उन्हें यथार्थ की पहचान नहीं है। उन्हें यथार्थ की सटीक पहचान है। वे जब गांव को काव्य विषय बनाते हैं तो रूमान को किसी ताख पर रख आते हैं और बदलाव का स्वप्न देखते हुए पुनः उसे अपने अंतःकरण का अस्त्र बनाते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि यथार्थबोध के साथ साथ रूमान भी किसी अर्थपूर्ण बदलाव के लिए बेहद जरूरी होता है। दुनिया बदलने का स्वप्न रूमानी लोग ही पालते हैं। व्यवहार बुद्धि तो सांसारिक सफलताओं का अस्त्र है।

इस संग्रह की कुछ छोटी छोटी कविताएं अलग से आकृष्ट करती हैं। उनके भीतर का काव्यरस देर तक पाठक के अंतर्मन में टपकता रहता है। कुछ कविताओं के शीर्षक मन मोहते हैं। जैसे बिता भर धूप, पत्ता भर छांव। ये शीर्षक एक तरह का बिम्ब भी बनाते हैं। लेकिन इन कविताओं का कथ्य विचलित करता है। 'पत्ता भर छांव' की इन पंक्तियों को देखें सामने बस पत्ता भर छांव है/सुलगते चूल्हे पर/धूमाक्रमित आंख से टपकी/आंसू की एक बूंद जैसी/निष्कल आश्वासन देती/मेरे भस्मावशेषों को/समेटने तक के लिए भी/जरूरत भर की शीतलता न दे पायेगी/आसमान से उतारी गयी/सुख की पत्ता भर छांव यह।

इस संग्रह में कुछ प्रेम कविताएं भी हैं लेकिन यहां यह रेखांकित करना होगा कि उमेश चौहान की प्रेम कविताएं हिन्दी में इन दिनों लिखी जा रही प्रेम कविताओं से थोड़ी अलग हैं। इनमें से कुछ प्रेम के दार्शनिक और उदात्त पक्ष के बारे में हैं। 'सच्चा प्रेमी' शीर्षक कविता में कवि की प्रेम सम्बंधी समझ अभिव्यक्त हुई है।

हिन्दी में गम्भीर कविताओं के पाठक गीत का नाम सुनते ही नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। लोगों के मन में एक बात बैठ गयी है कि गीत अनिवार्य रूप से लिजलिजे होते हैं। लेकिन यह अधूरा सच है। हिन्दी में आज भी अच्छे गीत लिखे जा रहे हैं। इस संग्रह में संकलित छः गीत (नवगीत) उत्कृष्ट कविता के उदाहरण हैं। ऐसी रचनाओं में 'यह कैसा बसंत आया' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

उमेश चौहान बसंत पर लिखते हुए प्रकृति चित्रण की ओर नहीं जाते। किसी वायवीय प्रसंग या प्रिया के सौन्दर्य की ओर नहीं जाते बल्कि गहरे डूब कर सामाजिक सांस्कृतिक समीक्षा प्रस्तुत करते हैं। इस प्रक्रिया में वे अपने समय और समाज के साथ अपने गहरे जुड़ाव का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए पाठकीय चित्त को जाग्रत करते हैं। कहना न होगा कि समर्थ कवि इसी तरह अपने पाठकों तक पहुंच कर उनका विरेचन करते हैं। 'जनतंत्र का अभिमन्यु' संग्रह की एक विशिष्टता इसमें संकलित अवधी की रचनाएं भी हैं। इनमें उमेश चौहान का कवित्व देखते ही बनता है। हिन्दी कविताओं के संग्रह में आर्यों ये अवधी भाषा की रचनाएं पाठकों के चित्त के साथ ही हिन्दी कविता के वर्तमान परिसर का विस्तार करती हैं।

**जनतंत्र का अभिमन्यु** : उमेश चौहान, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, मूल्य : 180 रु.

## मत

तद्भव का यह अंक कई कारणों से याद किया जायेगा। इस अंक में विख्यात लेखिका कृष्णा सोबती की रचना 'मार्फत दिल्ली' अमित छाप छोड़ती है। विभाजन जैसी भीषण त्रासदी के बाद उजड़े हुए लोग अपनी जिन्दगी के लिए जिस तरह संघर्ष कर रहे थे उसे बड़ी मार्मिकता और चित्रात्मकता के साथ कृष्णा जी ने सामने ला दिया है। इस अंक में नित्यानंद तिवारी और वीर भारत तलवार के आलेख वैचारिक जागरण से सम्पन्न बनाते हैं तो अरुण कमल का वृत्तांत तथा कात्यायनी, श्रीप्रकाश शुक्ल, गीत चतुर्वेदी की कविताएं प्रभावित करती हैं। मुर्दहिया के बाद मणिकर्णिका में तुलसीराम पुनः अपनी प्रभावशाली लेखनी के साथ मौजूद हैं। दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा का लेख भी नये प्रश्न उठाने के कारण विचारोत्तेजक है। इतने अच्छे अंक के लिए आपको बधाई। **प्रदीप शर्मा**, सूरत, गुजरात

अभय कुमार दुबे का लेख रामविलास शर्मा जी के कृतित्व का जिस तरह मूल्यांकन प्रस्तुत करता है वैसा अभी तक सम्भव नहीं हुआ था। यह लेख हमें अपने प्रसिद्ध आलोचक को नये सिरे से जानने समझने का अवसर उपलब्ध कराता है। इसी तरह नित्यानंद तिवारी का लेख आलोचना की रूढ़ियों से मुक्त होकर नये और विचारोत्तेजक विश्लेषण से समृद्ध है। कृष्णा सोबती, अरुण कमल और तुलसीराम के गद्य लेखन के क्या कहने। **सुजीत कुमार सिंह**, पिथौरागढ़, उत्तराखंड

तद्भव का अक्टूबर 2012 अंक पढ़ा। सम्पादकीय आलेख पढ़ कर ऐसा लगा कि किसी ने मेरे मुंह की बात छीन ली हो। अखिलेश जी का यह कहना पूरी तरह सही है कि एक गम्भीर वैचारिक मंथन की परम्परा क्षीण होती जा रही है। आलेख के अंतिम अंश में अखिलेश जी ने लिखा है कि अनेक मुद्दे अभिव्यक्त होने के लिए पुकार रहे हैं। वस्तुतः लेखक का व्यवहार सकारात्मक होना चाहिए; उसे ईमानदारी से अपना काम करना चाहिए।

अभय कुमार दुबे, वीरभारत तलवार, विजय मोहन शर्मा, नित्यानंद तिवारी के आलेख पढ़े।

कविताएं अच्छी लगें। चौधरीराम यादव, अजय तिवारी, ओम निश्चल, वीरेन डंगवाल, वैभव सिंह, अशोक सिंह यादव के आलेखों से तुलसीराम, वीरेन्द्र कुमार बरनवाल, विनोद कुमार शुक्ल, अरुण कमल, कुमार अम्बुज, बोधिसत्व प्रियदर्शन मालवीय की पुस्तकों की जानकारी मिली। 'तद्भव' किसी भी बुद्धिजीवी के लिए हवा का एक बड़ा 'डोज' है। **सच्चिदानंद विशाख**, पटना, बिहार

इस बार तद्भव नहीं मिली। बुक स्टाल वाले ने पढ़ने को दिया, शायद इसीलिए जल्दी पढ़ गया, वर्ना तद्भव पढ़ने के लिए फुर्सत चाहिए। कृष्णा सोबती के 'मार्फत दिल्ली' से जल्द ही जी उचट गया। रामविलास शर्मा की तीन किस्म की डायरियां पढ़ कर मेरा हौसला फिर से जागा। डॉ. सत्यनारायण ने मेरी डायरी को गांधी डायरी कह कह कर मेरा मनोबल गिरा दिया था। क्या जरूरी है कि हर शख्स एक ही अंदाज की डायरी लिखे! नवीन जोशी और उमाशंकर चौधरी की कहानियां पढ़ पाया। दोनों अच्छी हैं। 'कट टु दिल्ली' तो अद्भुत है। गीत चतुर्वेदी क्या खूब कविताएं लिखते हैं! डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा कारुणिक है। मैं तो यों ही रोता रहता हूँ। लोगों ने क्या क्या भुगता है! आत्मकथा में रदानी है। दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा के विशेष में वाकई कुछ विशेष है। अरुण कमल यूँ ही कहते हैं कि वे गद्य के रचनाकार नहीं हैं। ऐसा गद्य तो गद्यकारों के पास भी नहीं है।

रमेश उपाध्याय जाने क्यों यथार्थवाद और मार्क्सवाद में इतने अटके हुए हैं? नवम्बर 12 के कथादेश में भी डॉ. सत्यनारायण की रचनाओं पर उनका जोर यथार्थवाद पर रहा। फिर उनमें एक खराबी ये है कि हर लेख में अपनी कहानियों का जबरन जिक्र कर डालते हैं। ये हरकत आंख में उंगली डालने वाली है। इस उम्र में आत्मप्रचार? **हसन जमाल**, जोधपुर, राज.

तद्भव 26 मिल गया है। भाई अरुण कमल जी को अभी अभी एक पत्र लिखा है, जिसमें आपके मोगल रूप (यह अरुण कमल जी का दिया हुआ आपके लिए प्रयुक्त) को धन्यवाद दिया है मैंने। 'अर्थात् औरों की कथा' के बहाने उनके नये रूप का दर्शन हुआ है। इतनी विशिष्ट रचना के लिए (चूँकि आप ही इसके निमित्त बने हैं) उनके साथ साथ आपको धन्यवाद देना कैसे भूल सकता हूँ। इसलिए यह पत्र।  
**केदार कानन, सुपौल, बिहार**

तद्भव 26 में कई बातें महत्वपूर्ण हैं। यह देख कर आश्चर्य होता है कि सम्पादकीय में हर बार किसी एक विषय को लेकर बात उठायी जाती है वह भी गम्भीर और संक्षेप में, आप ऐसा किस तरह कर पाते हैं? इस बार कई बातें ऐसी कही गयी हैं जिनका संज्ञान हर पाठक को लेना चाहिए। सत्य है कि 'हम समाज और सभ्यता से मुंह चुरा कर साहित्य की चुनौतियों की तह तक नहीं पहुंच सकते।' ऐसा लगता है कि गैर दलित लेखक इतना जानते हुए भी 'दलित चिन्तन के दायरे से अपने को बाहर करते गये या उदासीन होते गये।' भला यह कौन सा तर्क है। अगर गैर दलित लेखक दलित दृष्टि को आत्मसात करते हुए मानवतावादी समतावादी लेखन करेंगे तो उनको कौन रोक सकता है? यदि ऐसा लगता है कि 'आज सृजन की दुनिया में जड़ता और नींद को तोड़ देने वाला कोई वैचारिक विस्फोट नहीं हो रहा है' तो इसके कारण को खोजने का प्रयास कौन करेगा, यह भी सोचना होगा। दलित एवं स्त्री लेखन तो जड़ता और यथास्थितिवाद को तोड़ने की आकांक्षा को लेकर सामने आ रहा है। जिनको, 'जनमानस या राष्ट्रमानस जैसे शब्द कहीं खो गये और उनके स्थान पर स्त्रीमानस या दलितमानस जैसे शब्द ज्यादा चलन में आते चले गये' से कठिनाई होती है उन बौद्धिक वैभवशालियों को जन और राष्ट्र, स्त्री और दलित से रहित कहीं अन्यत्र दिखायी देते हों तो कोई क्या करे। पचास प्रतिशत संख्या में स्त्री तो है ही, पुरुषों में लगभग पच्चीस प्रतिशत दलित पुरुषों को मिला कर लोकतांत्रिक बहुमत प्रणाली के आधार पर जन और राष्ट्र का मानस इनके मानस से अलग किस प्रकार हो सकता है, समझ में नहीं आता। आज तक 'निजी स्वामित्व और वंचितों की भागीदारी का परस्पर विरोधी आदर्श कभी व्यावहार में नहीं उतरा।' अजय तिवारी ने यह कह कर सच को उघड़ा ही किया है। अभय कुमार दुबे ने मार्क्सवादी ज्ञानकांड पर सजग और सतर्क होकर ही नहीं बल्कि चुनिन्दा संदर्भ देकर अच्छा लेख तैयार किया है। लगता है कि इन्होंने डॉ. रामविलास शर्मा की प्रक्रिया अपनाते हुए, जिसमें यह पहले तय कर लिया जाता है कि सिद्ध क्या करना है और साक्ष्य संदर्भ बाद में जुटाये जाते हैं, नया ज्ञानकांड रचने की सिद्धहस्तता प्रदर्शित की है। बहुपठित विद्वान अपनी बौद्धिक सामर्थ्य का मनचाहा प्रयोग करके मनचाहे निष्कर्ष निकाल सकता है। यह भी डॉ. रामविलास शर्मा के साथ साथ उन्हीं के लगभग विद्वान श्री दुबे जी कर देते हैं। भारत में मार्क्सवाद 'राष्ट्रवादी सवर्ण हिन्दू पुरुष' की दृष्टि से विकसित न किया गया होता तो कुछ और बात होती। क्या तद्भव भी नूरा कुशती का आयोजन करने लगा है। बहस और जवाबे शिकवा के औचित्य का प्रश्न खड़ा होता है। डॉ. राजकुमार असंदिग्ध रूप से विद्वान व्यक्ति हैं। इनके तर्क गम्भीरता से लिए जाते हैं। आलोचना और रचना में वैयक्तिक सोच और चयन का क्षेत्र सदा से खुला हुआ रहा है। यहां पर समस्या दो तरीके की आती है। पहली, आलोचक और रचनाकार अपने चयन की ही प्रवृत्ति के रूप में स्थापित घोषित करने लगा है। भले ही मुट्ठी भर आलोचक और रचनाकार उस प्रवृत्ति को अपना रहे हों। सार्वभौमता का मुकुट उन्हीं को पहनाने का प्रयास किया जाता है। प्रवृत्तियों की बहुलता का नकार यहां पर घोषित रूप से चलता है। योरप के उन विद्वानों के संदर्भ देकर अपनी बात में वजन बढ़ाने का प्रयास किया जाता है जिनका अनुकरण करते हुए यह प्रवृत्ति अपनायी जाती है। दूसरी, अन्य प्रवृत्ति को अपनाते वाले कुछ विद्वान अपनी प्रवृत्ति के पक्ष में सामान्यीकरण करने के बजाये 'हम भी हैं के स्थान पर मैं भी हूँ' का अहमन्यता भरा प्रदर्शन करने को आत्मप्रचार का साधन मानते हैं। दोनों विधियां अंततः साहित्य की आलोचना एवं रचना को हानि ही पहुंचाती हैं। कथा साहित्य में भी पाठकों की कमी का रोना रोया जाने लगा है। हालांकि स्त्री और दलित लेखन में ऐसा नहीं है। फिर भी लेखन में उद्गमित कला और बांध व कैनाल बना कर गढ़ी गयी कला का अंतर हमें समझना होगा।

तद्भव में अधिकतर उद्गमित कथा साहित्य को जगह मिलती रही है परंतु कई बार गद्दी हुई कहानियां भी नयी प्रवृत्ति के बहाने से सामने अड़ा दी जाती हैं या खड़ी कर दी जाती हैं। शायद इसलिए कि पाठक ऐसी कहानियों से भी परिचित हो सकें। आलोचनात्मक लेखों की विश्वसनीयता और स्तर को तो विद्वान पाठक ही पहचान सकते हैं। सारी बातों को लेकर तद्भव का यह अंक अधिक सजग लगता है। नित्यानंद तिवारी ने मार्के की बातें कहीं। **हरपाल सिंह 'अरुष'**, मुजफ्फरनगर, उ.प्र.

अक्तूबर का अंक अत्यंत रोचक बन पड़ा है। आपने विवादात्मक और विवादास्पद साहित्य की जो बात की है, विचारणीय है। आधुनिक समय की आपाधापी और सही मूल्यों के इतर होने के कारण कमतर साहित्य की चर्चा ज्यादा है, जिससे यह बात और भी प्रासंगिक हो जाती है। साहित्य की विवादात्मकता उसके लेखन से उपजने वाले गम्भीर प्रश्नों और लेखन के अपने विन्यास में ही हो सकती है, उससे इतर नहीं। पर इस तरह साहित्य को देखने समझने की चेष्टा का पतन हुआ है।

यह अंक अत्यंत पठनीय और संतुलित है। नवीन जोशी की कहानी 'फेसबुक और बनना पड़ोसी के मकान का' और राकेश मिश्र की कहानी 'परिवार, राज्य और निजी सम्पत्ति' अच्छी लगीं। तरुण भटनागर की कहानी 'द रायल घोस्ट' एक अद्भुत वृत्तांत की तरह है। किसी कहानी को विदेशी भूमि पर साधना और सहजता के साथ बाजार की समस्या को धनाढ्य वर्ग के नजरिये से देखना इसे विशिष्ट बनाता है। यह एक ऐसी कहानी है, जो देश और काल की सीमा के परे है। इसका कथानक अलग किस्म का है, ऐसा जिस पर बहुत कम पढ़ने को मिला। बुआ का यह कथन कि हर चोरी, चोरी तो नहीं है न मां, या डायना की मौत की कथा, यह कहानी बहुत कुछ बखान करती है। सुंदर आख्यान है, ऐसा मैं कह सकता हूं। कात्यायनी और प्रीति चौधरी की कविताएं भी अच्छी लगीं। **नीलाम्बर शुक्ल**, इलाहाबाद, उ.प्र.

तद्भव-26, हर बार की तरह सम्पन्न और सार्थक अंक। तुलसीराम की आत्मकथा का दूसरा भाग शुरू करने के लिए आभार। निश्चय ही तुलसीराम की आत्मकथा को भविष्य में एक कालजयी कृति के रूप में याद किया जायेगा।

कृष्णा सोबती जैसी श्रेष्ठ रचनाकार की श्रेष्ठ रचना 'मार्फत दिल्ली' उपलब्ध कराने के लिए आपको धन्यवाद। यहां कृष्णा जी की कलम का जादू पूरी तरह प्रभावी हुआ है। सुख और दुख, जिन्दगी और मौत, आजादी और बंटवारा इन परस्पर विरोधी भावों को जिस तरह उन्होंने साथ साथ रचा है वह उनके जैसी समर्थ लेखिका के लिए ही सम्भव है। कहानियां सभी अच्छी हैं। उमाशंकर चौधरी की लम्बी कहानी विशेष प्रभाव छोड़ती है। कात्यायनी, श्रीप्रकाश शुक्ल, एकांत श्रीवास्तव, यू.के.एस. चौहान की कविताएं उल्लेखनीय हैं। **अशोक झा**, भागलपुर, बिहार

अंक-24 में प्रकाशित कहानी पर राजकुमार के आलेख पर वरिष्ठ कथाकार रमेश उपाध्याय ने अच्छी बहस की है। उन्होंने यथार्थवाद और मार्क्सवाद के पक्ष से राजकुमार की कुछ स्थापनाओं को चुनौती देने का प्रयास किया है। वैसे इस कार्य में वह अपनी रचनाओं का उदाहरण न देते तो बेहतर होता। इस कड़ी में राजकुमार का जवाब 'जवाबे शिकवा' काफी प्रभावशाली है। दरअसल यह बहस कहानी को देखने की दो दृष्टियों की भिन्नता के कारण सामने आयी है। इस तरह की बहस कहानी विधा के विकास के लिए फलप्रद सिद्ध होंगी।

कृष्णा सोबती का 'मार्फत दिल्ली' और वीर भारत तलवार का लेख 'महाराष्ट्रीय नवजागरण में निरंतरता' अंक की उपलब्धि हैं। **परेश गुप्ता**, उज्जैन, म.प्र.

तद्भव एक ऐसी पत्रिका है जिसमें साहित्य के साथ समाजशास्त्र, इतिहास, संस्कृति, शिक्षा आदि पर भी समग्री पढ़ने को मिलती है। इस दृष्टि से इस अंक में प्रकाशित दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा का लेख संग्रहणीय लेखिका को हमारी बधाई पहुंचाएं। **ललित माथुर**, अलवर, राज.

## इस अंक के लेखकों के पते

- भानु भारती** : 56 ए, पॉकेट-एफ, मयूर बिहार-II, दिल्ली-110091, मो. 9811320632
- मोहम्मद मसूद** : एम एम-231 सेक्टर-डी, अलीगंज, लखनऊ, उ.प्र., मो. 9450391300
- रमानाथ मिश्र** : एन-448 आशियाना, लखनऊ-226012, मो. 9452292909
- अवधेश मिश्र** : 117 पटेल नगर विस्तार, सेक्टर-9, इंदिरानगर, लखनऊ, मो. 9415666954
- वंदना शुक्ल** : डी 200 विद्यानगर, पिलानी-333003, मो. 9928831511
- शिवेन्द्र** : फ्लैट-202, बी विंग, द्वितीय तल, अपना घर, बी सीएचएस लिमि., पिम्प्रिपदा, मलाड (ईस्ट), मुम्बई-400097, मो. 9930960657
- हरबंस मुखिया** : बी-86 जी एफ, सन सिटी, सेक्टर-54 गुडगांव-122003, मो. 9899133174
- विष्णु नागर** : ए-34 नवभारत टाइम्स अपार्टमेंट, मयूर बिहार फेज-I, दिल्ली-110091, मो. 9810892198
- बद्री नारायण** : गो.व. पंत सा.वि. संस्थान, यमुना एनक्लेव, संगम नगर, झूंसी, इलाहाबाद, उ.प्र., मो. 9450613293
- प्रकाश** : सहायक सम्पादक, अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उ.प्र., मो. 9760885303
- अशोक कुमार पांडे** : 508 भावना रेजीडेन्सी, सत्यदेव नगर, गांधी रोड, ग्वालियर, म.प्र., मो. 9425787930
- अपर्णा मनोज** : 23 माधव बंगलोज-II, निकट मोहिनी गेस्ट हाउस, मोटेरा, अहमदाबाद-382424, मो. 9825905082
- अविनाश मिश्र** : पाखी, बी-107 सेक्टर-63, नोएडा-201303, मो. 9818791434
- डॉ. तुलसीराम** : 19 दक्षिणापुरम, जे.एन.यू., नयी दिल्ली-110067, मो. 9868249324
- अरुण कमल** : 4 मैत्री शांति भवन, बी.एम. दास रोड, पटना-800004, मो. 9931443866
- हरे प्रकाश उपाध्याय** : ए 935/4 इंदिरानगर, लखनऊ-226016, मो. 8756219902
- पंकज पराशर** : सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि., अलीगढ़-202202, उ.प्र., मो. 9634282886
- अजय वर्मा** : हिन्दी विभाग, अन्नदा कॉलेज, हजारीबाग, झारखंड, मो. 9576119790
- अरुण होता** : 2 एफ धर्मतल्ला रोड, कस्बा, कोलकाता-700042, मो. 9434884339
- बिपिन तिवारी** : C/o श्री सौरभ बाजपेयी, 349 झेलम छात्रावास, जे.एन.यू. नयी दिल्ली-110067 मो. 9990653770
- मदन कश्यप** : ए-3 सी-78 शालीमार गार्डन एक्सटेंशन-2, गाजियाबाद-201005, मो. 9999154822
- अनिल त्रिपाठी** : हिन्दी विभाग, जय नारायण पी.जी. कॉलेज (केकेसी) लखनऊ-226001, उ.प्र., मो. 9412569594
- जितेन्द्र श्रीवास्तव** : हिन्दी विभाग, इंदिरा गांधी रा.मु.वि.वि., मैदानगढ़ी, नयी दिल्ली, मो. 9818913798

